भारतीय चित्रकला का इतिहास

डा० अविनाश बहादुर वर्मा

भारतीय चित्रकला का इतिहास

लेखक

डा० अविनाश बहादुर वर्मा

प्रकाश बुक डिपो

बड़ा बाजार, बरेली

पूज्य पिता

स्व०-डॉ० राजबहादुर वर्मा 'राज'

(उर्दू जगत के सुप्रसिद्ध कवि)

की

स्मृति में

उपोद्रघात

हमारे देश में कला-इतिहास एक नितान्त नवीन बौद्धिक अनुशासन है। जो कुछ उदाहरण इस दिशा में उपलब्ध हैं उनमें उन विदेशी यात्रियों के विवरण अधिक हैं जो भारत की संस्कृति व धर्म के आकर्षण से यहां आए थे। 'कला' जीवन व संस्कृति का आवश्यक अग है केवल इसी हेतु इनके विवरणों में यहां की कला पर भी कुछ दृष्टिपात हुआ है। तारानाथ ही अवश्य ऐसा यात्री था जिसने भारत की कलाकृतियों को केन्द्र मान कर बहुत कुछ लिखा है। वास्तव में वह एक बौद्ध लामा के रूप में तिब्बत से भारत आया था, परन्तु उस समय प्रचलित 'नाग-पंथ' से वह इतना प्रभावित हुआ कि यहाँ आकर उसने धर्म परिवर्तन कर लिया। उसके विकसित मस्तिष्क का यह महत्वपूर्ण उदाहरण है और शायद इसी कारण उसके लेखों में पूर्वाग्रह बहुत कम है। अन्यथा, जो कुछ भी यहाँ की कला के सम्बन्ध में अब तक लिखा गया है उसमें या तो धर्मान्धता व यहां की सांस्कृतिक श्रेष्ठता के कारण बहुत कुछ अतिशयोक्ति है, या फिर यहां की कला में विदेशी योगदान का महत्व सिद्ध करने के लिए, उसके विरुद्ध बहुत अधिक पूर्वाग्रह से काम लिया गया है। कुछ हमारी परम्परा भी ऐसी रही है कि कला साधन को धर्म-साधन के अन्तर्गत ही लिया गया जिसमें 'अहं' का निराकरण ही प्रधान रहा है। फलतः हमारे कलाकार आत्मश्लाघा व आत्म प्रचार से बहुत दूर रहे। प्रथमबार मुगल साम्राज्य में ही कलाकृतियों को नामांकित करने की प्रथा आरम्भ हुई जिसका अल्पाधिक प्रभाव पहाड़ी व दक्षिणी कला पर दिखाई देता है। कहीं-कहीं मन्दिरों के दान-पात्रकों में शिल्पी का नाम भी दिया गया है, इससे अधिक कुछ नहीं।

ऐसी स्थिति में भारत का कला-इतिहास न केवल एक महत्वपूर्ण अनुशासन बन जाता है, वरन वह अत्यन्त दुरूह भी है, और इस दिशा में किया गया प्रत्येक प्रयास सराहनीय है। अब तक तो हमारे विश्वविद्यालयों की स्थिति भी बहुत अजीब सी रही है। वहां 'कला' संकाय होते हुए भी उनमें कला जैसी कोई वस्तु देखने को नहीं मिलती। इतिहास के अध्ययन-अध्यापन में कला को केवल एक गौण स्थान मिलता रहा है और समस्त मोटे-मोटे ग्रन्थ शासकों के जन्म-मरण व कार्यकलापों से ही सम्बद्ध रहे हैं। हर्ष का विषय है कि अब यह स्थिति कुछ बदलती दिखाई पड़ रही है। इतिहासकारों ने जन-जीवन और तत्सम्बद्ध कार्यकलापों को शोध के विषय के रूप में स्वीकार करना आरम्भ कर दिया, स्वभावतः शिल्प व कला

उनके अन्तर्गत आ जाते हैं। दूसरे, 'कला संकाय' में 'कलाहीन' विषयों के अतिरिक्त अब, कला के क्रियात्मक अभ्यास, ऐतिहासिक अध्ययन व शास्त्रीय विवेचना को भी मान्यता मिलने लगी है।

वैसे तो कला-इतिहास के अन्तर्गत जो कुछ भी अब तक लिखा गया है उसमें भी 'इतिहास' की ओर अधिक बल रहा है और 'कला' की ओर कम। इस कथन से मेरा तात्पर्य यही है कि कलाकृतियों के रचना सौन्दर्य को स्पष्ट करने के प्रति हमारे लेखक उदासीन रहे हैं और तिथियों, व्यक्तियों के बोझ से ही पुस्तकों को लादते रहे हैं। इसका एक कारण संभवत: यह भी हो सकता है कि हमारे देश में रंगीन चित्रों का मुद्रण अभी तक बहुत अधिक धन की अपेक्षा रखता है और कला सम्बन्धी पुस्तकों की खपत अभी इतनी नहीं है। मेरी समझ में इतिहास के अध्ययन में कला व संस्कृति का अध्ययन ही सब कुछ है, यदि इस अध्ययन को सोद्देश्य बनाना हो। इतना ही नहीं, सर्जक कलाकारों व शिल्पियों के लिए भी कला-साहित्य का अध्ययन परमावश्यक है, क्योंकि बिना अपनी परम्परा का ज्ञान प्राप्त किए कोई भी कलाकार आगे उन्नति नहीं कर सकता। परम्परा से अपरिचित व्यक्ति आत्म-सम्मान व आत्मविश्वास से रहित होकर, प्रत्येक प्रेरणा के लिए विदेशों की ओर ही मुख ताकता रहेगा, और उधार की प्रेरणा कभी उन्नति की ओर अग्रसर नहीं करा सकती।

कला शिक्षा की दिशा में विदेशों में बहुत कुछ शोधकार्य हो चुका है, जिसके फल-स्वरूप कला-शिक्षण में बहुत कुछ वाञ्छनीय परिवर्तन हो गया है। हमारे देश में इस ओर व्याप्त उदासीनता के कारण विदेशों की शिक्षण पद्धति को मजबूरी से अपनाना पड़ रहा है। मैं इसमें कोई दोष नहीं समझता। मगर, इसके साथ एक बहुत बड़ा भय है, वह यह कि हमारे विद्यार्थी कहीं विदेशी शिक्षण-पद्धति के कारण विदेशी कला का भी अनुकरण न करने लगें। इस चुनौती को स्वीकार तभी किया जा सकता है जब हम अपने विद्यार्थियों में अपनी कलागत परम्परा की प्रचुरता में विश्वास उत्पन्न करा सकें। आज कला-इतिहास का महत्व इसी कारण और भी अधिक बढ़ गया है।

अब आवश्यकता इस बात की है कि इस अनुशासन की ओर वे लोग आगे आवें जिनकी रुचि न केवल इतिहास में है वरन् कला के क्रियात्मक सिद्धान्तों से भी परिचित हों। ऐसा होने पर ही हमारे देश में ऐसे उपयोगी ग्रन्थ लिखे जा सकेंगे जिनमें कला-इतिहास को शासकों के जीवन वृतों से मुक्ति दिलाकर सौन्दर्य-बोधात्मक विवेचन होगा। दूसरी ओर आवश्यकता इस बात की है कि पूर्वाग्रहों के कारण अब तक जो कुछ भी विदेशियों द्वारा हमारी कला परम्परा के विरुद्ध लिखा गया है, और अब भी लिखा जा रहा है, उस सबका नीर-क्षीर विवेक द्वारा शुद्धीकरण किया जाय जिससे आगामी पीढ़ी कलागत सत्य को सहज ही प्राप्त कर सके।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक श्री अविनाश बहादुर वर्मा स्वयं एक क्रियात्मक कलाकार होने के अतिरिक्त कला-इतिहास के प्राध्यापक हैं। अतः इनसे आशा की जाती है कि इस दिशा में वे बहुत कुछ महत्वपूर्ण योगदान देंगे। कई वर्षों का अध्यापन अनुभव होने के कारण उनकी शैली में कठिन ग्रन्थियों को भी सहजता से खोलने की क्षमता है, और पुस्तक का कोई भी अंश ऐसा नहीं है जिसे परिश्रम के आलस्य के कारण अस्पष्ट छोड़ दिया गया हो। मैं आशा करता हूं कि 'भारतीय चित्रकला का इतिहास' भारतीय कला व इतिहास दोनों के विद्यार्थियों को उपयोगी सिद्ध होगी।

ह० (हरिश्चन्द्र राय)
प्रधानाचार्य
राजकीय ललित कला महाविद्यालय
शिमला (हि० प्र०)

पूर्व दर्शन

श्री अविनाश बहादुर वर्मा ने 'भारतीय चित्रकला का इतिहास' पुस्तक लिख कर कला के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण योगदान दिया है। दिन प्रतिदिन अपना देश कला के प्रति सजग होता जा रहा है और जहाँ कला केवल इन्टरमीडिएट कक्षाओं तक के लिए पठन-पठान का विषय थी, वह अब न केवल एम० ए० तक ही पढ़ाई जाती है, वरन् उसमें शोध कार्य भी होने लगा है। बहुत दिनों तक भारत के नागरिक पश्चिमी विद्वानों के द्वारा ही अपने देश की कला को भी समझने का प्रयास करते रहे हैं, परन्तु अब स्वतन्त्र भारत में इस बात की आवश्यकता है कि भारतीय लेखक जो विदेशियों की तुलना में अपने देश की कला परम्पराओं को अधिक भली-भाँति समझ सकते हैं, कला इतिहास पर अपनी सम्मति प्रकट करें।

कला सर्वत्र ही पाश्चात्य रंग में रंगती जा रही है। ऐसे समय में 'भारतीय चित्रकला का इतिहास' पुस्तक भारतीय चित्रकारों, कला-साधकों और कला-विद्यार्थियों का ऐसा सम्बल बनेगी, जो उन्हें अपने देश की कला-परम्पराओं और उनके इतिहास को समझने में विशेष सहयोग प्रदान करेगी, साथ ही उन कला शैलियों को समझने और अपनाने में सहायता देगी जो संसार प्रसिद्ध रह चुकी हैं।

यह पुस्तक न केवल भारतीय चित्रकला के इतिहास तथा शैलियों का स्पष्टीकरण करेगी वरन् उस कमी को भी पूरा करेगी जो आज का कला-विद्यार्थी भारतीय चित्रकला के इतिहास पर एक समुचित पुस्तक के अभाव से अनुभव करता है।

ह० (सी० बरतारिया)
एम० ए० अर्थशास्त्र एवं चित्रकला
राजकीय डिप्लोमा (पेन्टिग) बम्बई
भूतपूर्व अध्यक्ष-ड्राइंग एन्ड पेन्टिग विभाग
डी० ए० बी० कालेज-कानपुर।

कृतज्ञता ज्ञापन

कला का भंडार अनन्त सागर के समान विशाल है और मेरी यह पुस्तक उस कला इतिहास के ज्ञान की एक बूंद मात्र ही है। प्रौगैतिहासिक काल से आधुनिक काल तक मानव की असंख्य कलाकृतियों का क्रमिक लेखा-जोखा तो काल के आघातों तथा सुरक्षण के समुचित अभावों के कारण मिल पाना कठिन समस्या है फिर भी अनेक कालों की कला-कृतियों के न्यूनाधिक संग्रहों तथा उल्लेखों आदि के आधार पर कला इतिहास की टूटी कड़ियाँ जोड़ दी गई हैं, इस प्रकार अनेक अनुमानों तथा निकटवर्ती देशों के कला-इतिहास से भी भारत की कला का सम्बन्ध स्थापित कर भारत की निजी कला का रूप निश्चित किया गया है।

भारतवर्ष के अनेक राज्यों में समय-समय पर अनेक कला-शैलियाँ विकसित हुई हैं जिनका अध्ययन करना आवश्यक है। मुगल, राजस्थानी तथा पहाड़ी राज्यों में विकसित कला शैलियों का पूर्ण विवेचन उत्तर मध्यकाल की भारतीय चित्रकला को नवीन गौरव प्रदान करता है। इसी दृष्टिकोण को लेकर इस पुस्तक रूपी बूंद में गुप्त कालीन कला का गौरव, पहाड़ी कला सरिता का सलिल और राजस्थान की कलामय मरुभूमि का सुखद आनन्द भी संग्रहित है।

यह बूंद मेरे शिष्यों तथा मेरे अनुज स्व० श्री सतीश बहादुर वर्मा के चिर-आग्रह का परिणाम है और वे मेरे धन्यवाद के पात्र हैं। साथ ही अपने प्रिय अनुज स्व० सतीश बहादुर वर्मा (सहसम्पादक—धर्मयुग तथा सम्पादक बांरीबन्दर), परममित्र डा० रामस्वरूप आर्य अध्यक्ष--हिन्दी विभाग, वर्द्धमान कालेज, बिजनौर) का बहुत आभारी हूँ कि उन्होंने पुस्तक की भाषा तथा रूप सुधारने में मुझे अत्यधिक सहयोग दिया। श्रीमती सन्तोष वर्मा ने अनेक पत्र आदि यथोचित ढंग से संयोजित करने में अत्यन्त सहयोग प्रदान किया है जिसका मैं अनुग्रहित हूं। श्रीमती वर्मा ने छायाफलक प्रस्तुत करने में जो सहायता प्रदान की वह चिर स्मरणीय है।

अनेक फलकों के छाया चित्र प्राप्त करने के लिए मैं राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली के अधिकारियों तथा निर्देशक-पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग-भारत, नई दिल्ली, का आभारी हूं जिनके सौजन्य तथा सहयोग से मैं प्रमाणित छायाफलक प्रस्तुत कर सका हूं।

अन्त में मैं आदरणीय दादा श्री हरिशचन्द्र राय, प्रधानाचार्य-राजकीय ललित कला महाविद्यालय, शिमला (हिमाचल प्रदेश) का बहुत आभारी हूं जिन्होंने मुझे सदैव साहस, सहयोग तथा प्रेरणा प्रदान की और उन्होंने उपोद्घात लिख कर जो अनुग्रह किया है उससे पुस्तक के एक अछूते अंग की पूर्ति हो गई है। अतः मैं इन विद्वानों के प्रति श्रद्धावनत हूं। बन्धुवर श्री पी० यन० चोयल ने भूमिका के शब्द लिखकर अपने जिस प्रेम को प्रदर्शित किया है वह चिर-स्मरणीय है और मैं उनके प्रति आभारी हूँ।

भारतीय चित्रकला के मर्मज्ञ उन विद्वानों का मैं अत्यधिक ऋणी हूं जिन्होंने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है और अपनी प्रेरणादायक कृतियों के द्वारा इस विषय को परम लोकप्रिय बनाया है। इस दृष्टि से स्व० परसी ब्राउन, स्व० डा० आनन्दकुमार स्वामी, श्री डब्ल्यु० जी० आर्चर, डा० हरमनगोएट्ज, डा० मोती चन्द्र पद्मविभूषण, रायकृष्णदास, स्व० श्री नान्हलाल चमनलाल मेहता, श्री कार्ल खण्डाला-वाला तथा श्री रंधावा की पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित उनकी रचनाओं से मैंने यथेष्ट सहायता तथा प्रेरणा ली है। अतएव इस पुस्तक में जो कुछ भी श्रेयस्कर है वह इन्हीं कला आलोचकों तथा विद्वानों के ऋण का फल है।

अन्त में मैं प्रकाशक महोदय के प्रति अपना आभार प्रकट करना परम कर्त्तव्य समझता हूं जिन्होंने मेरे अनेक सुझावों तथा परामर्शों को सहर्ष स्वीकार किया और पुस्तक के प्रकाशन में उत्साह, सहृदयता तथा तत्परता का परिचय दिया।

डा० अविनाश व. वर्मा 'अविनाश'

सम्मति

सनेहाच्च बहुमानाच्च स्मारये त्वां, न शिक्षये ।

कृष्णदत्त बाजपेयी
टैगोर प्रोफेसर तथा अध्यक्ष
प्राचीन भारतीय इतिहास,
संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग

सागर विश्व विद्यालय
सागर (म०प्र०)
दिनांक २९-३-१९७५

'भारतीय चित्रकला का इतिहास' नामक इस ग्रन्थ में आदिकाल से लेकर आधुनिक युग तक की भारतीय चित्रकला का इतिहास रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है । इस विषय से सम्बन्धित साहित्यिक तथा पुरातत्वीय सामग्री का ग्रन्थ में अच्छा विवेचन किया गया है । प्रत्येक युग की सौन्दर्यपरक पृष्ठभूमि को देकर आपने सम्बन्धित चित्रकला की समीक्षा की है । चित्रकला का इतिहास जानने वालों विशेषत: विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओं के छात्रों, के लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी है । चित्रफलकों से यह उपयोगिता बढ़ गई है ।

इस उपयोगी ग्रन्थ के लिए आपको तथा आपके प्रकाशक को हार्दिक साधुवाद ।

—कृष्णदत्त वाजपेयी

डा० बी० एन० शर्मा
एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्
कीपर
नेशनल म्युजियम
जनपथ, न्यू-दिल्ली—११

१३ अक्टूबर, १९७३

'भारतीय चित्रकला का इतिहास' ले० डा० अ० ब० वर्मा

भारतीय हिन्दी साहित्य में चित्रकला से सम्बन्धित ग्रन्थों का अंग्रेजी की तुलना में प्रकाशन तथा प्रस्तुतीकरण नगण्य है । अभी हाल के दशक में चित्रकला पर कुछ ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, उसी अभाव की स्थिति में इस ग्रन्थ का विमोचन हुआ जिसने कि चित्रकला के क्रमबद्ध इतिहास की न केवल महत्ती आवश्यकता की पूर्ति की अपितु विश्वविद्यालयीन उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों के लिये यह कहना अधिक नहीं होगा कि एक सहज पठनीय ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है । इसके पहले भी इतिहास

ग्रन्थ उपलब्ध थे और वे विषय के अनुकूल रोचक भी हैं पर विद्वान लेखक ने रोचक विषय को और भी रोचक बनाकर अभिव्यक्त किया है।

विवेच्य ग्रंथ में चित्रकला समग्र रूप से सभी आयामों के साथ पूर्वा पर प्रभाव और अवन्तियों का विश्लेषण आदिकाल अथवा आदिमकाल से लेकर अद्यतन समय तक है। चित्रकला से संबद्ध ग्रंथों के सन्दर्भों का दिया जाना इस कृति की अपनी विशेषता कही जा सकती है। कुल मिलाकर 'भारतीय चित्रकला का इतिहास' नामक ग्रन्थ को उच्च कोटि का ग्रंथ निर्विवाद रूप से माना जा सकता है। शुभमस्तु।

—ब्रजेन्द्र नाथ शर्मा

✲

डा० आर० पी० तिवारी
एस० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०, एफ० आई० ए० यस०
हस्तिनापुर कालेज, युनिवर्सिटी आफ दिल्ली,
इन्डिया।

दिनांक ७ नवम्बर, १९७३

'भारतीय चित्रकला का इतिहास'

इस कृति ने चित्रकला के उच्च अध्ययन तथा चित्रकला से सम्बन्धित अनुसंधित्सुओं के लिए समग्र सामग्री विश्लेषण के साथ प्रस्तुत की है। विद्वान लेखक द्वारा अपनाया गया काल विभाजन अपने आप में महत्व रखता है। हो सकता है कि कुछ आलोचक इनके काल विभाजन से सहमत न हों किन्तु मेरा मत है कि अशत: कुछ ही हेर-फेर के साथ इस तरह के काल विभाजन को ही अपनाना उचित है। सामग्री की दृष्टि से ऐसा अभी तक कोई ग्रंथ नहीं है जिसमे कि एक ही स्थान पर प्रागैतिहासिक-सामग्री, साहित्यिक-सामग्री, मूर्तियों से उपलब्ध परम्परायें, गुफायें तथा उपलब्ध चित्रकला का राजपूत, मुगल, पहाड़ी तथा इतर सभी स्वरूपों पर अध्ययन प्रस्तुत किया गया हो। इसके अनन्तर आधुनिक काल का विस्तृत ब्योरा अपने आप में न केवल परिमार्जित ही है अपितु पूर्ण है, उस पर निर्भर रह कर किसी भी तरह का विश्लेषण किया जा सकता है।

चित्रकलागत प्रवृतियों को वर्मा जी ने बहुत ही श्रेयरूप से विषय की प्रस्तुती के उपरान्त ही विश्लेषित किया है। चित्रकला का अध्ययन अपने आप में काफी रुचिकर विषय है। यदि वह सुघड़ता के साथ प्रस्तुत हो तो और भी रोचक हो जाता है, यह बात इस कृति की विशेषता कही जा सकती है।

भारतीय चित्रकला में भी विदेशी लेखकों ने अनेकों ग्रंथ अंग्रेजी व अन्य भाषाओं में प्रस्तुत किये हैं किन्तु हिन्दी में इस तरह के ग्रन्थों का अभाव-सा है। वर्मा जी ने इस अभाव की पूर्ति भारतीय दृष्टिकोण के साथ पूर्ण की है। कुल मिला कर यह प्रौढ़ कृति है।

—आर० पी० तिवारी

इस संस्करण के सम्बन्ध में दो शब्द

इस संस्करण में विषय प्रवेश के शब्द तथा सिन्धु घाटी सभ्यता की प्राचीनतम कला-कृतियों का वर्णन बढ़ा दिया गया है। यह कृतियां कुयेटा क्षेत्र झोव घाटी, मकरान क्षेत्र आदि में प्राप्त हुई हैं। इन कृतियों के आधार पर भारत की प्राचीन चित्रकला का अनुमान लगाया जा सकता है। इस संस्करण में रेखाचित्र तथा छाया फलक चित्रों की संख्या में वृद्धि की गई है जिससे कि पाठकगण चित्रों की रेखा, आकृति तथा उनकी संयोजन शैली की विविधता का उचित रूप से अध्ययन कर सकें। इन चित्रों से पाठ्य-सामग्री अधिक सरल और रोचक बन सकेगी। आशा है कि पाठकगण इन संशोधनों का स्वागत करेंगे।

डा० अविनाश ब. वर्मा
'अविनाश'

अभिव्यक्ति-माध्यम

रेन ह्याग ने कहा है कि 'कई लोग कला को केवल मनोरंजन का विषय मानते हैं—एक ऐसी वस्तु जो जीवन से अलग हो।' वास्तव में वे नहीं जानते कि कला सीधे जीवन के तले में घुसकर देखती है और उसके रहस्य की पर्तें उखाड़ फेंकती है। कला के अतिरिक्त कोई ऐसा माध्यम नहीं है जो जीवन को भेदकर उसके मूल को प्रस्तुत कर सके। भारतीय कला का भी यही आदर्श रहा है। मनोरंजन अथवा नेत्रों का विलास इसका लक्ष्य कभी भी नहीं रहा। विश्लेषण एवं अन्तर-उद्-बोधन की भारतीय कला में अपूर्व क्षमता रही है। अजन्ता, एलोरा, बाघ, सिंहगिरी, सित्तनवासल, तुर्किस्तान, बामिया, काश्मीर, पाल, जैन, मुगल, राजस्थानी व पहाड़ी चित्रकला में भारतीय जीवन को अत्यन्त गहराई के साथ प्रस्तुत किया गया है। अन्तरदृष्टि व अयथार्थ शैली के कारण १९वीं शती के अन्त तक लोगों का ध्यान इस ओर नहीं जा सका। अत: भौतिक दृष्टि से देखने वालों के लिए भारतीय कला रहस्य एवं प्रतीक के आवरण में दबी रही। मार्शल तथा स्मिथ जैसे कलामर्मज्ञों ने यह धारणा बना ली कि गांधार शिल्प रचना के बाद भारत में कोई गणनात्मक सृजन हुआ ही नहीं। यह भ्रम अब टूट गया। डा० आनन्द कुमारस्वामी, ई० वी० हेवेल व पर्सी ब्राउन आदि विद्वानों के समस्त प्रयत्नों ने भारतीय कला को अन्वेषण का विषय बना दिया है। विश्व-कला में आज भारतीय चित्रकला का अत्यन्त सम्मानित स्थान है। इसका एक और भी कारण हो सकता है—१९वीं शती के मध्य तक यूरोप की चित्रकला ग्रीक मान्यों से अनुप्राणित थी। इसी दृष्टि से अन्य देशों की भी कला मापी अथवा परखी जाती थी। १९वीं शती के अन्त में फ्रांस में कला के क्षेत्र में क्रांति होनी शुरू हुई, २०वीं शती के प्रारम्भिक १०-२० वर्षों तक आते-आते तो ऐसी भारी उथल-पुथल हुई की पुरानी सारी मान्यतायें टूट गईं। नई खोज व अन्वेषण की अपेक्षा ने कलामर्मज्ञों का ध्यान सहज ही पूर्व की ओर खींचा। जो कला अभी तक अंधेरे के गर्त में दबी थी एकाएक उभार पा चकाचौंध पैदा करने लगी। भारतीय कला भी आकर्षण का केन्द्र हो गई क्योंकि उसमें भी कुछ ऐसे तत्व थे जो आधुनिक कला से मेल खाते थे, जैसे अत्यधिक कल्पना, अन्तर्मुखी प्रवृत्ति एवं निरूपण का वस्तु-निरपेक्ष ढंग। इस दृष्टि से भारतीय कला एक नया ही आदर्श लेकर संसार के सम्मुख आई।

भारतीय कला में आत्मगात करने की अपूर्व क्षमता रही है। जो भी प्रभाव आया इसके खून में समा गया और इसके अंतर से ऐसी कला धारा बही जो अत्यन्त मौलिक एवं नवीन थी। एक ही सूत्र में बंधी होने पर भी हर काल की भारतीय चित्रकला अपना पृथक अस्तित्व रखती है। राजस्थानी चित्रकला अजंता व बाघ से प्रत्युत्पन्न दिखने पर भी धरातलीय विभाजन, संयोजन, विद्या, आकृति-अंकन एव

वर्ग विधान की दृष्टि से अपना अलग निजस्व रखती है। समय की दुर्लभता एवं यातायात की कठिनाई ने शायद ही किसी राजस्थानी कलाकार को अजन्ता की कला का अध्ययन या अनुशीलन का मौका दिया होगा। राजस्थान के अलग-अलग राज्यों, रियासतों एवं छोटे-छोटे ठिकानों की चित्रकला में भी स्थानीय शैलीगत भेद देखा जा सकता है। इससे यह जाहिर होता है कि आदान-प्रदान की संभावना यहाँ कम ही रही होगी। हाँ, यह आवश्यक है कि १७वीं से १९वीं शती तक मुगल तथा राजस्थानी चित्रकला का समकालीन युग रहा है। सांस्कृतिक एवं राजनीतिक दृष्टि से भी काफी एकता रही है व लेन देन होता रहा है। इसके कारण दोनों कलाओं का बाहरी आवरण एक जैसा होना स्वाभाविक है। जहाँ दोनों कलायें एकाश्रित हो पनपीं वहाँ तो इनका रूप ऐसा एकात्म हो गया कि पहचानना भी कठिन हो गया, जैसे—जयपुर में। फिर भी कलात्मक दृष्टि रखने वालों के लिए राजस्थानी एवं मुगल चित्रकला का भेद जानना कठिन नहीं है। हर कला में मौलिकता की झलक है।

कुछ विद्वानों का आरोप है कि मध्यकाल भारतीय चित्रकला का अंध-युग रहा है। प्रगतिशील कलाकार इसमें विश्वास नहीं रखता है। जैन चित्रकला की निरूपण की अबोधता, बात कहने का ठेठपन, ग्रामीण जैसी कर्कशता, रेखाओं की कोणात्मक आवृति एवं क्षिप्रता, अलंकरणात्मक नाटकीय संयोजन तथा इने गिने रगों से युक्त अत्यन्त चटकीली वर्णमाला तकनीकी दृष्टि से दोषपूर्ण हो सकते हैं, पर अभिव्यक्ति की दृष्टि से यही इसके गुण भी हैं। फ्रांस की फ्रॉवी (Fauvi) व जर्मनी की अभिव्यंजनावादी (Expressionism) कला इन्हीं गुणों से सम्पन्न है।

यूरोपियन साम्राज्य काल में भारतीय प्रगति में एक रुकावट आ गई। यथार्थ शैली के यूरोपियन तैल चित्रों की चटक-मटक ने कलाकारों को भ्रमा-सा दिया, उनकी कल्पनाधारा सूख गई। ऐसा लगा मानों भारत में कला सृजन हुआ ही नहीं। ऐसी कुण्ठा के समय स्व० अवनीन्द्रनाथ टैगोर तथा उनके शिष्य मंडल ने भारतीय कला में पुनर्जागरण के बीज बोये। यह आन्दोलन कला की दृष्टि से कितना भी नगण्य क्यों न हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उस समय भारतीय कला जगत में एक अजीब हलचल मच गई थी जिसके फलस्वरूप आजादी के बाद अत्यन्त सृजनात्मक प्रवाह आया जिससे भारत में कई नवीन शैलियों की उद्भावना हुई।

भारतीय कला अध्ययन का रोचक विषय है। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने भारतीय चित्र-शैलियों एवं उनके सूक्ष्म भेदों का बारीकी के साथ अध्ययन किया है। विद्यार्थी वर्ग के लिये तो यह पुस्तक ज्ञानवर्धक होगी ही, आशा है कला-समाज में भी इसका उचित सम्मान होगा।

ह० (परमानन्द चोयल)
अध्यक्ष चित्रकला विभाग
महाराजा भूपाल कालेज,
उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

तालिका

१—विषय-प्रवेश

(पृष्ठ १ से पृष्ठ ८ तक)

विषय-प्रवेश—

संस्कृति तथा कला। कला संस्कृति एवं सभ्यता। कला का उद्देश्य। भारतीय चित्रकला की विशेषताएं— धार्मिकता, अन्त: प्रकृति का योगी या साधक की दृष्टि से अंकन, योग पूजन, मानवेत्तर प्रकृति का समन्वय तथा आदर्शवादिता, कल्पना, प्रतीकात्मकता, आकृतियां तथा मुद्राएं, सामान्य पात्र, आलंकारिकता, नाम, रेखा तथा रंग। कला अध्ययन के स्रोत—धार्मिक ग्रन्थ, ऐतिहासिक ग्रन्थ, शिला लेख, मोहरें तथा मुद्रा, प्राचीन खण्डहर, यात्रियों के वृत्तान्त, आत्मकथायें या राजाओं का इतिहास।

२—आदिकाल

(पृष्ठ ९ से पृष्ठ ४४ तक)

आदिकाल की चित्रकला—(मानव के जन्म से लेकर ५० ई० तक)

चित्रकला का उद्गम—चित्रकला की परिभाषा—मानव की उत्पत्ति और विकास-क्रम—एजोईक युग या कल्प, पैलोजोईक युग या कल्प, मेसोजोईक युग या कल्प, सिनोजोईक युग या कल्प— भारतवर्ष का आदि रूप— आदिकाल के मानव की चित्रकला। प्रागैतिहासिक काल— पूर्व-पाषाण युग, मध्य पाषाण युग, उत्तर पाषाण युग, भारतवर्ष में उत्तर पाषाण युग की चित्रकला के उदाहरण—बिल्लासरंगम, बेलारी, वाईनाड के एडकल, हरनीहरन, विन्ध्याचल पर्वत की कैमूर श्रेणी की चित्रकला, सिंहनपुर, मिर्जापुर, मनिकापुर, पंचमढ़ी, होशंगाबाद, भोपाल क्षेत्र, बांदा, ग्वालियर क्षेत्र, बिहार— प्रागैतिहासिक चित्रों का उद्देश्य— चित्रों का विषय, प्रागैतिहासिक काल के चित्रों की विशेषताएं तथा मूल प्रवृत्तियां—चित्रों का विधान, रंग तथा आकार। धातु युग। सिन्धु घाटी सभ्यता, कुयेटा सभ्यता की कला, अमरीनाल सभ्यता की कला, झोब सभ्यता की कला, कुल्ली में ही सभ्यता की कला, मोहनजोदड़ो सभ्यता की कला— लोथल मूर्तियां, हड़प्पा सभ्यता की कला। सांकर तथा भूकर सभ्यता की कला— चित्रकला। वैदिककाल,—जोगीमारा की गुफा— जोगीमारा गुफा के चित्र, जोगीमारा के चित्रों के विषय, जोगीमारा गुफा के चित्रों की विशेषताएं— पूर्वबौद्धकाल। वैदिक तथा पूर्व-बौद्धकालीन साहित्य में चित्रकला का उल्लेख— चित्र-लक्षण, चित्रकला की उत्पति की कथा—ऋग्वेद, महाभारत, रामायण, अष्टाध्यायी, नाट्यशास्त्र, मेघदूत तथा रघुवंश, विनय-पिटक, थेराथेरी गाथा, उम्मग जातक, तारानाथ के उल्लेख, कामसूत्र— (६४ कलाएं)। चित्रकला के छ: अंग— रूपभेद, प्रमाण, भाव, लावण्य योजना, सादृश्य वर्णिका-भंग।

३—बौद्धकाल
(पृष्ठ ४५ से पृष्ठ ९६)

बौद्धकाल की चित्रकला (५० ई० से ७०० ईसवीं तक)
गान्धार शैली, बुद्ध की छवि का प्रचलन, बौद्ध कला का प्रचार। अजन्ता की गुफायें— अजंता की खोज, प्रतिकृतियां तथा प्रचार, अंजता के चित्रों की सुरक्षा, गुफाओं का गणनाक्रम तथा सुरक्षित चित्र, गुफाओं का समय, आधुनिक समय में भित्तिचित्रण और तत्सम्बन्धी रंग बनाने की विधि, अजन्ता में भित्तिचित्रण विधि, अजन्ता के भित्तिचित्रों के रंग, अजन्ता की गुफाओं के चित्रों का विषय, अजंता की गुफाओं की चित्रकारी, नवीं गुफा के चित्र, दसवीं गुफा के चित्र, सोलहवीं गुफा के चित्र, सत्रहवीं गुफा के चित्र, उन्नीसवीं गुफा के चित्र, छठी गुफा के चित्र, ग्यारहवीं गुफा के चित्र, पहली गुफा के चित्र, दूसरी गुफा के चित्र। बाघ की गुफाएं – बाघ की गुफाओं की स्थिति, बाघ का परिचय तथा गुफायें, गुफाओं का समय, गुफाओं की खोज तथा सुरक्षा, बाघ गुफाओं के चित्र– पहला दृश्य, दूसरा दृश्य, तीसरा दृश्य, चौथा पांचवां दृश्य, छठा दृश्य, सातवां दृश्य। बादामी की गुफायें - प्रथम दृश्य, दूसरा दृश्य, तीसरा तथा चौथा दृश्य। सित्तनवासल की गुफा सित्तानवासल के चित्र। सिघिरिया की गुफाएं—सिघिरिया गुफाओं का समय, चित्रण विधि शैली, सिघिरिया के चित्र। अजंता के गुफाओं के चित्रों की शैली, अजन्ता शैली की विशेषतायें, चित्रों की विशालता और योजना, छत्तों के आलेखन, आलेखन, अलंकारिकता, रेखा, सरलता, हस्त-मुद्रायें तथा अंग-भगिमायें, चित्रों का विषय, जातक कथायें, वर्ण, विधान, परिप्रेक्ष्य, मुकुट, आभूषण तथा अलंकरण, केश विन्यास, स्त्रियों का स्थान, आध्यात्मिकता और सहानुभूति की भावना, भाव तथा रूप, युद्ध-दृश्य, वस्त्र तथा भवन, आकार, छन्द तथा लय, षडङ्ग तथा चित्रण विधि, सजीवता। बौद्धकाल की चित्र कला के अन्य प्रमाण—बौद्धकालीन शैलियां॥

४—मध्यकाल
(पृष्ठ ९७ से पृष्ठ १२४)

मध्यकाल की चित्रकला—(७०० ई० से १६०० ई० तक)
वृहत्तर भारत की चित्रकला। पूर्व-मध्यकाल की चित्रकला, पूर्व मध्यकाल के भित्ति-चित्र एलोरा पल्लव भित्तिचित्र, चोल राजवंश चित्रण विधि। पूर्व-मध्यकाल के कलाविषयक साहित्यिक ग्रन्थ—विष्णु धर्मोत्तर पुराण, मानसार, चित्रलक्षण, समरांगण सूत्र। उत्तर-मध्यकाल की चित्रकला—अभिलषितार्थ चिन्तामणि (मानसोल्लास), सुरसुन्दरीकथा, तरंगवती, कर्ण सुन्दरी, त्रिषष्ठिशलाका पुरुष-चरित्र, कथा सरित सागर, वृहत्कथा मंजरी, नैषधचरित्र, पद्मपुराण, प्रसन्नराघवं। पाल शैली-पूर्वपीठिका पाल-पोथियां, सचित्र पोथियां, पाल शैली के चित्रों की विशेषताएं। जैन शैली—जैन शैली का उपयुक्त नाम, अपभ्रंश शैली के चित्र, अपभ्रंश शैली के चित्रों की विशेषतायें। उत्तर मध्यकाल के भित्तिचित्र—विजयालय चोलेश्वर मन्दिर, तिरपतिकुरम, लेपाक्षी, एलोरा बेरूल। चित्रकला का पुनरुत्थान।

७ – पहाड़ी चित्रकला

चित्रकला (कुल्लू शैली)—कुल्लू के कला संरक्षक राजा, चित्रों का विषय—कुल्लू के चित्रों की विशेषतायें। मन्डी की चित्रकला (मण्डी शैली)। जम्मू की चित्रकला (जम्मू शैली)—जम्मू की स्थिति तथा महत्व, जम्मू शैली तथा चित्र, जम्मू शैली के चित्रों की विशेषतायें—मानव आकृतियां, रंग तथा रेखा, वेशभूषा। पून्छ की चित्रकला—पून्छ की स्थिति तथा इतिहास, पून्छ के चित्र, पून्छ शैली पर गुलेर का प्रभाव, पून्छ की स्थानीयता, पून्छ की चित्रकला की विशेषतायें। टिहरी गढ़वाल की चित्रकला (गढ़वाल शैली)—गढ़वाल की स्थिति, ऐतिहासिक महत्व, गढ़वाल की चित्रकला मोलाराम, संकटकाल, गढ़वाल के चित्रकार तथा मोलाराम के चित्र—टिहरी गढ़वाल शैली की विशेषतायें—रेखा तथा मानव आकृतियां, वस्त्र तथा आभूषण, भवन तथा घरेलू दृश्य, प्रकृति तथा वनस्पति, हाशिए, विषय। काश्मीर शैली—विषय, काश्मीर शैली की विशेषतायें।।

८—आधुनिक काल

(पृष्ठ २७५ से पृष्ठ ३१६)

आधुनिक काल की चित्रकला--(१८०० ई० से आज तक)

दिल्ली तथा लखनऊ शैलियाँ, राजस्थान तथा पंजाब की शैलियां, पटना शैली, दक्षिण भारत के राज्यों की कला—तंजौर शैली, मैसूर शैली। विदेशी कला का आगमन, राजा रवि वर्मा, कला का पुनरुत्थान—ई० बी० हैवेल, अवनीन्द्रनाथ टैगोर। बंगाल स्कूल का प्रचार-साधन, प्रसार, रविशंकर रावल का आन्दोलन। बम्बई का पाश्चात्य रूप। बंगाल स्कूल के चित्रों की विशेषतायें, बंगाल स्कूल की तकनीकी, ह्रासोजनक प्रवृत्तियाँ। बम्बई स्कूल का योगदान। नूतन प्रवृत्तियां—यामिनीराय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अमृता शेरगिल, गगनेन्द्रनाथ ठाकुर, नन्दलाल बसु असित कुमार हाल्दर, देवीप्रसाद राय चौधरी, मंथन का युग और भविष्य की सीमायें—कलकत्ता ग्रुप, नूतनवादी प्रवृत्तियां, अविनाश, अनादि अधिकारी, अब्दुल रहीम अप्पाभाई अलमेलकर, अकबर पदमसी, उषा मंत्री, एन० खन्ना, के०एच० आरा, के०के० हेब्बर, के०एस० कुलकर्णी, गोपाल कृष्ण, गोपाल मधुकर, छाया आर्य, छैल बिहारी लाल वार्तरिया, ज्योतिष भट्टाचार्य, जार्ज कीट, प्राणनाथ मांर्गो, पी०टी० रेड्डी, परमानन्द चोयल, प्रफुल्लचन्द्र जोशी, प्रकाशचन्द्र, बरुआ. विजय भारद्वाज, भावेश सान्याल, मदनलाल नागर, माधव सातवलेकर, मनीषी डे, मकबूल फिदा हुसैन, मोहन सामन्त, दिनकर कौशिक, नारायण श्रीधर बेन्द्रे, रामगोपाल विजयवर्गीय, रणवीर सिंह विष्ट, रामकुमार, रघुवंश कुमार भटनागर, वीरेन, बद्रीनाथ आर्य, वीरेन्द्र नारायण, सुधीर रंजन खास्तगीर, सैयद हैदर रजा, हृदय नारायण मिश्र, सतीश गुजराल, सतीश चन्द्र, सुरेन्द्र बहादुर (सुमानव), शैलोज मुखर्जी, शांति देव, श्यावक्ष चावड़ा, शिवकुमार शर्मा, यज्ञेश्वर कल्याणजी शुक्ल, हरिशचन्द्र राय।। आधुनिक समस्या ?

परिशिष्ट—भारतवर्ष के सार्वजनिक चित्र संग्रहालय। भारतवर्ष में चित्रों के निजी संग्रह। कुछ कला वीथियां। कलाकारों के प्रमुख कला संगठनों की सूची। संदर्भ ग्रन्थ (हिन्दी)। संदर्भ ग्रन्थ (अंग्रेजी)। अनुक्रमणिका।

रेखाचित्र तालिका

१

विषय-प्रवेश

१

विषय प्रवेश

संस्कृति तथा कला

किसी भी देश की संस्कृति उसकी आध्यात्मिक, वैज्ञानिक तथा कलात्मक उपलब्धियों की प्रतीक होती है। यह संस्कृति उस सम्पूर्ण देश के मानसिक विकास को सूचित करती है। किसी देश का सम्मान तथा उसका अमर-गान उस देश की संस्कृति पर ही निर्भर करता है। संस्कृति का विकास किसी देश के व्यक्ति की आत्मा तथा शारीरिक क्रियाओं के समन्वय एवं संगठन से होता है।

संस्कृत का रूप देश तथा काल की परिस्थितियों के अनुसार ढलता है। भारतीय संस्कृति का इतिहास बहुत विस्तृत है। भारतीय संस्कृति का विकास लगभग पांच सहस्र वर्षों में हुआ और इस संस्कृति ने विविध क्षेत्रों में इतना उच्च-विकास किया कि संसार आज भी भारतीय संस्कृति से अनेक क्षेत्रों में प्रेरणा ग्रहण करता है। संस्कृति की रचना-क्रम भूत, वर्तमान तथा भविष्य में निरन्तर संरचित होता रहता है।

मानव संस्कृति में कलात्मक तथा आध्यात्मिक विकास का उतना ही महत्व है जितना वैज्ञानिक उपलब्धियों का। कलात्मक विकास में मुख्यतया, साहित्य, कला अथवा शिल्प, स्थापत्य, संगीत, मूर्ति, नृत्य एवं नाटक का विशेष महत्व है। अतः किसी देश की संस्कृति का अध्ययन करने के लिये उस देश की कलाओं का ज्ञान परम आवश्यक है। कला के द्वारा देश के, समाज, दर्शन तथा विज्ञान की यथोचित छवि प्रतिबिम्बित हो जाती है। दर्शन यदि मन की क्रिया है तो विज्ञान शरीर की क्रिया है परन्तु कला मानव-आत्मा की वह क्रिया है

जिसमें मन तथा शरीर दोनों की अनुभूति निहित है अतः कला मानव संस्कृति का प्राण है जिसमें देश तथा काल की आत्मा मुखरित होती है।

कला संस्कृति एवं सभ्यता

कला संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है जो मानव मन को प्रांजल सुन्दर तथा व्यवस्थित बनाती है। भारतीय कलाओं में धार्मिक तथा दार्शनिक मान्यताओं की अभिव्यक्ति सरल ढंग से की गई है। भारतीय चाक्षुष-कलाओं में दार्शनिक तत्वों को प्रतीक रूप में संजोया गया है और धार्मिक प्रसंगों को विस्तृत रूप से प्रतिबिम्बित किया गया है। इस प्रकार संस्कृति यदि किसी देश की आत्मा है तो सभ्यता उस देश का तन है। मनुष्य ने प्रत्येक काल में अपने विकास के प्रयत्नों से अपने कार्य-कलापों में निपुणता एवं कुशलता, अग्रसरता तथा विस्तीर्णता की परम सीमाओं को प्राप्त करने की चेष्टा की है जिससे उसकी सभ्यता का निरन्तर विकास हुआ है। यही सभ्यता संस्कृति को बल प्रदान करती है और उसका अंग बनकर उसकी मान्यताओं को निरन्तर आगे बढ़ाती रहती है। इस प्रकार हमारा रहन-सहन, मानसिक विकास तथा जीवनचर्या, हमारी सभ्यता का प्रतीक है। सभ्यता से विकसित नवीन साधनों, यंत्रों तथा प्रविधियों का प्रयोग करना हर प्रगतिशील कलाकार का उद्देश्य है, इस प्रकार कलाकार की कला-कृतियाँ संस्कृति के परम्परागत रूप को दर्शाती हुई, परिवर्तन ग्रहण करती हुई गतिमान रहती हैं। कलाकार की इन प्रविधियों तथा क्रियात्मक रूपों का समाज में शनैःशनैः प्रचलन होता जाता है। एक व्यक्ति दूसरे की कला देखकर कलाकार की इन रचना-विधियों को ग्रहण करता जाता है इसी प्रक्रिया को परम्परा कहते हैं। इन सांस्कृतिक, सामाजिक एवं कलात्मक व्यवहारों के प्रचलन को ही परम्परा कहते हैं। प्रत्येक देश की इसी प्रकार एक कला-परम्परा बन जाती है जिसका उस देश की संस्कृति तथा सभ्यता में महत्व पूर्ण स्थान होता है।

कला का उद्देश्य

प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में जीवन के चार प्रयोजन बताये गये हैं—१. अर्थ, २. काम, ३. धर्म तथा ४. मोक्ष। अतः मानव की कलाओं का उद्देश्य भी इन्हीं तत्वों की प्राप्ति माना गया है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के चित्र सूत्र में इस प्रकार कहा है—

"कलानां प्रवरं चित्रं धर्मकामार्थमोक्षदम्।"

अर्थात् कला के द्वारा धर्म, काम, अर्थ तथा मोक्ष की प्राप्ती होती है। इसी प्रकार भारत में 'कला के लिए कला' न होकर सम्पूर्ण जीवन के लिये कला को साधन माना गया है।

भारतीय चित्रकला की विशेषताएँ

भारतीय चित्रकला तथा अन्य कलाएं अन्य देशों की कला से भिन्न हैं।

भारतीय-कलाओं की कुछ ऐसी महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं जो भारतीय-कलाओं को अन्य देशों की कलाओं से अलग कर देती है। यह विशेषताएं निम्न हैं—

१. **धार्मिकता**—भारतीय कलाओं का जन्म ही धर्म के साथ हुआ है और हर धर्म ने कला के माध्यम से ही अपनी धार्मिक मान्यताओं को जनता तक पहुँचाया है। इसी प्रकार भारतीय चित्रकला तथा शिल्प का लगभग तीन-चार हजार वर्षों से धर्म से सम्बन्ध रहा है अतः भारतीय चित्रकला में धार्मिक भावनायें पूर्ण रूप से समा गयी और चित्र कला को धार्मिक महत्व के कारण ही धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का साधन माना गया है। चित्रकला तथा अन्य कलाओं को परम-आनन्द का साधन माना गया है।

२. **अन्तः प्रकृति का योगी या साधक की दृष्टि से अंकन**—भारतीय चित्र-कला तथा अन्य शिल्पों में सांसारिक सादृश्य या बाहरी समानता का महत्व नहीं है बल्कि मनुष्य के स्वभाव या अन्तःकरुण को गहराई तथा पूर्णता से दिखाने का अत्याधिक महत्व है। गहन-भावना या अन्तःकरण की इस छवि को चित्रकार योगी के समान प्रस्तुत करता है। जिस प्रकार भारतीय योगी ध्यान तथा स्मृति की अवस्था को प्राप्त करके बाहरी तथा आन्तरिक प्रकृति तथा प्रकृति के विस्तीर्ण क्षेत्र का एक ही स्थान पर बैठकर साक्षात्कार कर लेता है उसी प्रकार भारतीय चित्रकार भी एक स्थान से अनेक स्थानों अथवा क्षेत्रों की विस्तीर्णता को एक साथ ही ग्रहण करके व्यक्त कर देता है और इस प्रकार उसकी रचना में आकाश, पाताल तथा धरा की कल्पना एक साथ ही समाविष्ट हो जाती है। वह पाश्चात्य कलाकारों की भाँति आकृति के एक दर्शित पक्ष या स्थिति तक सीमित नहीं रहा है और न ही चाक्षुष-परिधि तक सीमित रहा है, उसने सदैव मन की आँख को खोलकर आकाशीय दृष्टि को धारण करके सृष्टि के रचयिता के समान ही एक कथा, घटना या विषय को सम्पूर्ण रूप से एक ही चित्रपटी पर प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि अजन्ता की विस्तीर्ण चित्रा-वलियों में जंगल, सरोवर,उद्यान, रंगमहल, पर्वत, प्रकृति तथा कथा के पात्र चित्रकार ने एक साथ ही एक दृश्य में अंकित कर दिये हैं। कलाकार ने चाक्षुष-सीमाओं से मुक्त होकर अनेक स्थितियों तथा पात्रों आदि को एक साथ अपने मानसिक परिप्रेक्ष्य के धरातल से प्रस्तुत किया है। भारतीय चित्रकला की इस विशेषता को आज योरप के कलाविद् भी मानने लगे हैं।

३. **योग पूजन**—योगी तो बिना चित्र या प्रतिमा के भी ब्रह्म-ध्यान एवं प्रभू-पूजन कर सकते थे परन्तु विशाल जन-समाज योगी नहीं होता, अतः इस दृष्टि को रखकर हमारे आचार्यों ने स्पष्ट उद्घोष किया—

> "अज्ञानां भावनार्थाय प्रतिमा परिकल्पिता।
> सगुण-ब्रह्म-विषयक-मानस-व्यापार आसनन् ॥"

मध्यकालीन शिल्प-शास्त्रीय रचना 'अपराजित-पृच्छा' में चित्र के उद्देश्य एवं क्षेत्र के विषय में रोचक वर्णन है। इस ग्रन्थ से निम्न अवतरण विचारणीय हैं—

चित्रमूलोद्भवं सर्वं त्रैलोक्य सचराचरम् ।
ब्रह्म विष्णुभवाद्याश्च सुरासुरनरोरगा: ।।
स्थावरं जंगमं चैव सूर्यचन्द्रौ च मेदिनी ।
चित्रमूलोद्भवं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ।।
(अपराजित-पृच्छा)

४. मानवेत्तर प्रकृति का समन्वय तथा आदर्शवादिता – भारतीय कलाकार सम्पूर्ण चेतन तथा अचेतन जगत को सृष्टि का अंग मानता है, इसी से उसकी रचनाओं में मानवीय तथा प्राकृतिक जगत का अनोखा रूप दिखाई पड़ता है। मानवी तथा दैवी प्राकृत शक्तियों का निरूपण, पुरुष तथा नारी का समन्वय, कठोरता एवं कर्कशता, कोमलता एवं निर्मलता आदि अनेक विरोधी अथवा पूरक तत्वों का भारतीय चित्रकला में समन्वय प्राप्त होता है। दुर्गा के रूप में नारीत्व, पवित्रता, वीरता तथा कोमलता का समन्वय दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार गणेश, हनुमान, गरुड़ आदि रूपों में मानव, पशु या पक्षी सुलभ रूक्षता आदि का समन्वय दिखाई पड़ता है। भारतीय चित्रों की पृष्ठभूमि में अनेक अलंकरणों या अभिप्रायों के रूप में प्राकृतिक वनस्पतियों, पेड़, पौधों, फूल-पत्तियों आदि की भव्य भावपूर्ण तथा सजीव छवि अंकित की गयी है। भारतीय कला में सौन्दर्य का आधार प्राकृतिक जगत से प्रेरित है, उदाहरणार्थ जैसे नेत्रों की रचना कमल, मृग, अथवा खजन, तथा भुजाओं की रचना मृणाल तथा मुख की रचना चन्द्र या कमल, तथा होंठ की रचना बिम्बा-फल के समान की गयी है। चित्रकार ने जड़ तथा पशु में समान रूप से आत्मा दर्शाई है इसी कारण पशु में मानवीय भावना का ओज और मानवाकृतियों में दैवी या प्राकृतिक सौन्दर्य या ओज दर्शाई पड़ता है।

भारतीय कलाओं का जन्म चक्षु की अपेक्षा मन या आत्मा के धरातल में होता है इसी कारण उसमें सांसारिक यथार्थ की अपेक्षा आत्मा की पवित्रता से अनुप्राणित आदर्श रूप ही अधिक है। चित्रकार यथार्थ जगत में जैसा देखता है वैसा अंकन नहीं करता, बल्कि जैसा उसको होना चाहिए वैसा चित्रित करता है। वह उसको सत्य, शिव और सुन्दर रूप प्रदान करता है इस प्रकार वह आदर्श रूप की रचना करता है।

५. कल्पना भारतीय चित्रकला कल्पना के आधार पर ही विकसित हुई है, अत: उसमें आदर्शवादिता का उचित स्थान है। भारतीय मनीषियों ने प्रकृति तथा यथार्थ के ऊपर उठकर कल्पना के सहारे बाह्य-जगत तथा अन्तर्जगत की गहराइयों को खोजा। उन्होंने अनेक काल्पनिक देवी-देवताओं की कल्पना की- कल्पना का सर्वश्रेष्ठ रूप ब्रह्मा, विष्णू तथा शिव के रूप में दिखाईपड़ता है। कल्पना का सर्वोत्तम

उदाहरण नटराज रूप में विकसित हुआ। नटराज रूप में सृष्टि का सृजन, विनाश, जीवन तथा मरण का सजीव नृत्य दर्शाया गया है। महासंहार के उपरान्त नव-सृष्टि का क्रम निरन्तर प्रवाहित है, जो नटराज के महान् कलात्मक रूप में कलाकार ने साक्षात कल्पित किया है।

६. प्रतीकात्मकता—प्रतीक कला की भाषा होते हैं। पूर्वी देशों की कलाओं में भारतीय कला के समान ही यथार्थ आकृतियों पर आधारित प्रतीक तथा सांकेतिक प्रतीकों का अत्याधिक महत्व है। भारत की कलाओं में, जटाजूट, मुकुट, सिंहासन, चक्र, पादुका, कमल, हाथी, हंस आदि का विशेष स्थान है।

कलाकारों ने अपने भावों को व्यक्त करने के लिये प्रत्यक्ष तथा सांकेतिक कलात्मक दोनों प्रकार के प्रतीकों का सहारा लिया है। प्रकृति, पर्वत, यक्ष-देवता, ममता आदि के लिये प्रतीकों के द्वारा विम्बित किया गया है।

७. आकृतियाँ तथा मुद्राएँ – भारतीय कलाओं में आकृतियों तथा मुद्राओं को आदर्श रूप प्रदान करने के लिए अतिशयोक्ति पूर्ण, अथवा चमत्कारपूर्ण तथा अलंकारिक रूप प्रदान किये गये हैं। यही कारण है कि अधिकांश भारतीय, चित्रकला तथा मूर्तिकला में भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैलियों की आकृतियों मुद्राओं तथा अङ्गभङ्गिमाओं का विशेष महत्व है। आकृतियों की रचना यथार्थ की अपेक्षा भाव अथवा गुण के आधार पर की गई है। मुद्राओं के विधान से आकृति की व्यंजना की गई है तथा आकृति के भावों को दर्शाया गया है। अजंता शैली की आकृतियाँ तो अपनी भावपूर्ण नृत्य-मुद्राओं के कारण जगत प्रसिद्ध हैं ही, राजपूत तथा मुगल शैलियों में भी विविध नृत्य मुद्राओं का समावेश किया गया है। मुद्राओं के द्वारा अनेक भाव सफलता से दर्शाये गये हैं—उदाहरणार्थ ध्यान, उपदेश, क्षमा, भिक्षा, त्याग, तपस्या, वीरता क्रोध प्रेम, विरह, काँटा निकालने की पीड़ा, प्रतीक्षा, एकाकीपन आदि मानव मन के भावों को बड़ी सरल तथा स्वाभाविक मुद्राओं के द्वारा मूर्तिमान किया गया है। भारतीय कलाओं में मुद्राओं का आधार भरत मुनि द्वारा रचित नाट्य शास्त्र था। नाट्य-शास्त्र के अभिनय प्रकरण में वर्णित अंगों तथा उपांगों के भिन्न-भिन्न प्रयोग द्वारा अनेकों मुद्राओं का अवतरण किया गया है। मुद्राओं को हम भाव-छवि भी कह सकते हैं।

८. सामान्य पात्र—पाश्चात्य् कला में व्यक्ति वैशिष्ठ का महत्व है परन्तु भारतीय कला में सामान्य पात्र विधान परम्परागत रूप से विकसित किया गया है। सामान्य पात्र का विधान का अर्थ है आयु, व्यवसाय, अथवा पद के अनुसार पात्रों की आकृति तथा आकृति के अनुपातों का निर्माण करना। राजा-रंक, देवता तथा राक्षस, साधु तथा सेवक, स्त्री, गंधर्व, शिशु, किशोर, युवक तथा वामन आदि के रूपों तथा उनके अंग प्रत्यंग के, अनुपातों को भारतीय कला में निश्चित किया गया है। पद अथवा व्यवसाय के अनुसार उनके चिन्ह तथा आसन आदि भी निश्चित किये गये हैं।

९. आलंकारिकता—अलंकरण से आकर्षण प्राप्त होता है, अत: कला का कार्य अलंकरण करना भी है। भारतीय कलाकार सत्यं तथा शिवं के साथ साथ सुन्दरं की कल्पना भी करता है। अतएव सुन्दर तथा आदर्श रूप के लिए वह अलंकरणों का अपनी रचनाओं में प्रयोग करता है और आकृतियों की रूपश्री का वर्धन होता है, जैसे चन्द्र के समान मुख, खंजन अथवा कमल के समान नैन, कदली-स्तम्भों के समान जंघाएं, शुक-चंचु के समान नासिका।

भारतीय आलेखनों में अंकरण का उत्कृष्ठ रूप दिखाई पड़ता है। अजन्ता में छत्तों के अलकरणों, राजपूत तथा मुगल चित्रों के हांसियों में पुष्पों, पक्षियों, मानवाकृतियों, पशुओं तथा प्रतीक चिन्हों आदि को अति-अलंकारिक रूपों में प्रस्तुत किया गया है। अजंता तथा बाघ की पत्री चित्रावलियाँ संसार में आलंकारिकता का उत्तम उदाहरण हैं।

१०. नाम--भारत में चित्रों पर चित्रकारों के द्वारा नामांक्ति करने की परम्परा नहीं थी। कलाकारों के नाम अपवाद रूप में कुछ ही कृतियों पर अकित हैं। मुगलकाल में चित्रकारों के द्वारा चित्रों पर अपने नाम लिखने की प्रथा प्रचलित हुई और चित्रों के निर्माता कलाकारों के नाम चित्रों पर अंकित किये जाने लगे।

११. रेखा तथा रंग—भारतीय चित्रकला रेखा-प्रधान है। चित्र की आकृतियाँ प्रकृति एवं वातावरण सबको निश्चित सीमा रेखाओं मे अंकित किया गया है। इन आकृतियों में सपाट रंग का प्रयोग किया गया है। रंगों का प्रयोग अलंकारिक या कलात्मक योजना पर आधारित है या रंगों को सांकेतिक आधार पर प्रयोग किया गया है

कला अध्ययन के स्रोत

कला अध्ययन के स्रोत से अभिप्राय उन साधनों से है जो प्राचीन कला इतिहास के जानने में सहायता देते हैं। भारत की चित्रकला के अध्ययन के स्रोत निम्न श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं—

(१) **धार्मिक ग्रन्थ** (Religious Books)—धार्मिक ग्रन्थ जैसे, वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि, तथा जैनियों तथा बौद्धों के ग्रन्थ उस प्राचीन समय की कला पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। रामायण, महाभारत तथा बौद्ध थेराथेरी की कथाओं आदि में कला की पर्याप्त चर्चा की गयी है।

(२) **ऐतिहासिक ग्रन्थ**—प्राचीन काल के राजा अपने राजकाल की घटनाओं को लिखवाया करते थे। बहुत सी प्राचीन पुस्तकें तथा लेख नष्ट हो चुके हैं परन्तु फिर भी अनेक ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे कला विषयक ज्ञान प्राप्त होता है।

(३) **शिला-लेख** – (Inscriptiosns)—शिलाओं पर अंकित कई शिलालेख प्राचीन लेख बादामी, अजंता तथा बाघ आदि गुफाओं में प्राप्त हैं जिनसे इनकी कला

शैलियों का ज्ञान होता है । महाराज अशोक के खुदवाये अनेक शिला लेख प्राप्त हैं तथा समुद्रगुप्त के समय का एक लेख भी इलाहाबाद के दुर्ग में प्राप्त है जिससे मौर्य कालीन मूर्तिकला आदि के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है ।

(४) **मोहरें तथा मुद्राएँ** (Seals and Coins)— मुद्राएं ऐतिहासिक समय की कला का ज्ञान देने में सहायक सिद्ध होती हैं । मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा से प्राप्त मोहरों पर अंकित पशु-आकृतियों से उस समय की उन्नत मूर्तिकला का अनुमान लगाया जा सकता है । इसी प्रकार मौर्य काल के समुद्रगुप्त की मुद्राओं या मुगल कालीन जहाँगीर की मुद्राओं से भी उन्नत कला-शैलियों का परिचय प्राप्त होता है ।

(५) **प्राचीन खण्डहर** (Old Ruins) — प्राचीन समय के ऐतिहासिक भवनों धार्मिक स्मारकों, मन्दिरों तथा मकानों की खुदाई या सफाई के उपरान्त कई स्थानों पर चित्र तथा मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं जैसे बादामी तथा अजंता में सफाई के उपरान्त तथा खुदाई के उपरान्त कई कलाकृतियों का ज्ञान प्राप्त हुआ । एलौरा के चित्रों का ज्ञान सफाई के उपरान्त प्राप्त हो रहा है ।

(६) **यात्रियों के वृत्तान्त** (Accounts of Travellers) —समय-समय पर अनेक विदेशी यात्री भारत आये । उन्होंने भारत में जो कलाकृतियाँ देखीं उनका विवरण भी दिया है । उदाहरण के लिये चन्द्रगुप्त मौर्य के समय की कलाकृतियों का वृत्तान्त मैगस्थनीज ने तथा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय की कृतियों का वृत्तान्त फाह्यान ने दिया है । सोलहवीं शताब्दी के तिब्बत के बौद्ध इतिहासकार ने भारत के बौद्ध स्थलों का भ्रमण किया और उसने भारत की कला तथा कला-शैलियों का पर्याप्त विवरण अपने लेखों में दिया है ।

(७) **आत्मकथायें या राजाओं का इतिहास**— मुगल बादशाह बड़े कला प्रेमी थे । उन्होंने अपनी आत्म-कथायें स्वयं लिखी हैं । इन आत्म-कथाओं में बाबर की 'वाकयात-ए-बाबरी' तथा जहाँगीर की आत्मकथा 'तुजके जहाँगीरी' में उस समय के कलाकारों तथा कलाकृतियों आदि का पर्याप्त वर्णन है । मुगल काल में ही अकबर के समय में अब्बुलफजल ने 'आईने-अकबरी' की रचना की जिसमें अकबर का इतिहास लिखा गया । इस ग्रन्थ से अकबर कालीन चित्रकला-सम्बन्धी सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है ।

उपरोक्त स्रोतों के आधार पर भारतीय कला का ज्ञान एकत्र किया गया है । इन स्रोतों के अतिरिक्त प्रत्यक्ष सुरक्षित कलाकृतियाँ कला विशेष की कला के विषय में सुनिश्चित एवं प्रमाणिक ज्ञान प्रदान करने में सबसे अधिक सहायक सिद्ध होती है ।

★

आदिकाल

२

आदिकाल की चित्रकला
(३०,००० ई० पू० से ५० ई० तक)

चित्र कला का उद्गम

चित्रकला का इतिहास उतना ही पुराना कहा जा सकता है, जितना मानव का इतिहास। मनुष्य ने जिस समय प्रकृति की गोद में नेत्रोन्मीलन किया उस समय से ही उसने निर्माण के तारतम्य से अपने जीवन को सुखी तथा समृद्ध बनाने की चेष्टा की और इस निर्माण कार्य के फलस्वरूप उसने ऐसी कृतियों का सृजन किया जो उसके जीवन को सुखद और सुचारु बना सकें। इसी समय से मनुष्य की ललित भावना भी जाग उठी और उसने अपनी मूक भावनाओं को अनगढ़ पत्थरों के यन्त्रों तथा तूलिका से बनी टेढ़ी-मेढ़ी रेखा-कृतियों के रूप में गुफाओं और चट्टानों की भित्तियों पर अंकित कर दिया। उसके जीवन की कोमलतम भावनायें तथा संघर्षमय जीवन की सजीव झांकियाँ आदि-मानव की कला-कृतियों के रूप में आज भी सुरक्षित हैं। आदिकाल से आज तक मनुष्य रेखा तथा आकार, तक्षण तथा कर्षण के द्वारा अपनी भावनाओं को व्यक्त करता चला आ रहा है। मानव ने रेखा और आकार के माध्यम से अपनी प्रगति, आत्मा और युग का सदैव स्वागत तथा अंकन किया है। मानव ने इन असंख्य चित्रकृतियों के आधार पर चित्रकला की आज एक निश्चित परिभाषा निर्धारित हो चुकी है।

चित्रकला की परिभाषा

"किसी समतल धरातल जैसी भित्ति, काष्ठ-फलक, आदि पर रंग तथा रेखाओं की सहायता से लम्बाई, चौड़ाई, गोलाई तथा ऊंचाई को अंकित कर किसी रूप का आभास करना चित्रकला है।"

मानव की उत्पत्ति और विकास-क्रम

चित्रकला के इतिहास का अध्ययन करने से पूर्व मानव का विकास-क्रम भी देखना आवश्यक है। इस अध्ययन से आदि-मानव की कलाकृतियों के काल-क्रम का अनुमान लगाया जा सकता है। जीव-वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी पर सर्वप्रथम एक कोष्ठक जीव ही थे और उनसे ही मनुष्य का विकास हुआ। जीव का यह विकास-क्रम चार भागों में विभाजित किया जा सकता है, जो इस प्रकार हैं—

(१) एजोईक कल्प
(२) पैलोजोईक कल्प,
(३) मेसोजोईक कल्प,
(४) सिनोजोईक कल्प।

(१) **एजोईक युग या कल्प** – इस युग में पृथ्वी पर एक कोष्ठक जीव ही था। यह जीव आज से लगभग एक अरब पचास करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी पर विकसित हुआ।

(२) **पैलोजोईक युग या कल्प** – इस युग में जीव सर्वप्रथम अकशेरुकी (Invertebrates) प्राणियों जैसे सिवार, स्पन्ज या जैली मछली तथा रेंगने वाले जीवधारियों, पक्षियों तथा विशालकाय वृक्षों और जंगलों के रूप में विकसित हुआ।

(३) **मेसोजोईक युग या कल्प**—इस युग में कशेरुकी जीवों का विकास हुआ जिन्हें सरीसृप (Reptiles) माना जाता है।

(४) **सिनोजोईक युग या कल्प** – इस युग में आज जैसे जीव का विकास हुआ जिससे विभिन्न प्रकार के स्तनधारी उत्पन्न हुए। इन स्तनधारी जीवों के विकास में मनुष्य भी था। मनुष्य की उत्पत्ति आज से लगभग २०,००,००० वर्ष पूर्व मानी जाती है। इस समय मनुष्य अनुमानतः वनमानुषाकार रहा होगा। इसी वनमानुषाकार अवस्था से मानव ने आज जैसे मनुष्य का रूप लिया है और यही सृष्टि के विकास का चरमोत्कर्ष और अन्तिम चरण है।

भारतवर्ष का आदि रूप

भूगर्भ-वेत्ताओं की खोजों के आधार पर भारतवर्ष उपद्वीप का रूप आज जैसा न था, बल्कि केवल दक्षिणी भारत कई द्वीपों का एक समूह था जो भूगर्भ-वेत्ताओं के द्वारा 'गोंडवाना' के नाम से पुकारा गया है। यह प्रायद्वीप दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, तथा दक्षिणी अमेरिका तक फैला हुआ था। इन सब द्वीपों से प्राप्त पशु और अश्मीभूत वनस्पति अवशेषों या फासिलस में साम्य से भी ऐसा ही ज्ञान प्राप्त होता है।

आदिकाल के मानव की चित्रकला

भारत की आदि-कालीन चित्रकला का अध्ययन करने के लिए हम इस काल को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) प्रागैतिहासिक काल,
(२) वैदिक काल,
(३) पूर्व-बौद्ध काल।

प्रागैतिहासिक काल

मनुष्य ने पृथ्वी पर जन्म लेने के पश्चात् अपनी असहाय स्थिति को देखा। प्रकृति की महान शक्तियों के सम्मुख उसकी नगण्य चेतना जाग्रत हुई और उसने उदर की क्षुधा शान्त करने के लिए, शरीर को शीत, ताप और वर्षा से सुरक्षित रखने के लिए, तथा भयंकर पशुओं से सुरक्षा करने हेतु नाना प्रयत्न किये। उसने इस काल (६ लाख वर्ष ई० पू०) में पाषाण के औजार तथा हथियार बनाये जिनसे आखेट कर उदर-क्षुधा की पूर्ति तथा अपने शरीर की सुरक्षा कर सके हजारों वर्ष बाद इसी विकासक्रम में आगे चलकर उसने सुरक्षा के लिए गुफाओं की शरण ली। उसने अपने जीवन की कोमल भावनाओं में आखेट की गति और पशुओं की मनोहारी छवि का अनुभव किया, जिसको उसने रंगों से सनी तूलिका तथा सबल टांकी से गुफाओं तथा चट्टानों की कठोर समतल शिलाओं पर उरेह दिया। इस प्रकार उसने अपने जीवन के मधुर तथा विषादमय क्षणों को अमर बना दिया। उसने पर्वतों की कन्दराओं को अपना निवास बनाया और अनगढ़ प्रस्तर-खण्डों को काटकर उसने आखेट के लिये हथियार बनाये। इन कन्दराओं को गर्म और प्रकाशित करने के लिए उसने पशुओं की चर्बी तथा लकड़ी को जलाया। उसने गुफाओं के धूमिल प्रकाश में अपने जीवन की सरस तथा सरल अभिव्यक्ति तूलिका के माध्यम से खुरदरी चट्टानों, गुफाओं की दीवारों तथा फर्श पर चित्रों के रूप में अंकित कर दी। इस समय मनुष्य ने विशेष रूप के पाषाण, लकड़ी तथा मिट्टी का ही प्रयोग किया, इस कारण इस काल को विद्वानों ने 'पाषाण-युग' के नाम से पुकारा है।

मानव की प्रगति के आधार पर पाषाण-युग को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) पूर्व पाषाण युग या पुरा प्रस्तर युग (Palaolithic Age or Megalithic age)—
३०,००० ई० पू० से २५,००० ई० पू० तक।

(२) मध्य-पाषाण युग या मध्य प्रस्तर युग (Middle Stone Age or Mesolithic age)—
२५,००० ई० पू० से १०,००० ई० पू० तक।

(३) उत्तर-पाषाण युग या नव प्रस्तर युग (Neolithic Age)—
१०,००० ई० पू० से ५,००० ई० पू० या ३०१० ई० पू० तक।

(१) **पूर्व-पाषाण-युग**—इस युग के अवशेष विशेष रूप से औजारों तथा हथियारों आदि के रूप में मिलते हैं जिसमें असंयत गढ़न है तथा आकार भद्दे हैं। यह अवशेष प्राय: पशुओं की अश्मीभूत अस्थियों के साथ प्राप्त हुए हैं। इस युग के अवशेष भारतवर्ष में बहुत कम प्राप्त हुए हैं, और जो भी उदाहरण उपलब्ध हैं वह दक्षिणी-भारत के क्षेत्रों से प्राप्त हुये हैं। भूगर्भ-शास्त्रियों के अनुसार दक्षिणी भारत ही सबसे प्राचीन भाग है। इस समय का मनुष्य क्वार्टी-जाइट (Quartizite) मनुष्य के नाम से पुकारा गया है। बहुत से क्वार्टीजाइट यंत्र आदि मद्रास-सिटी, गंटूर जिले के अंगोला नामक स्थान और कुडापा में प्राप्त हुए हैं। इस युग को विद्वानों ने तीस हजार से पच्चीस हजार वर्ष ईसा पूर्व का माना है। भारतवर्ष में पूर्व पाषाण-युग की चित्र-कला के उदाहरण प्राप्त नहीं हुए हैं। पूर्व पाषाण-युग का मानव दक्षिणी भारत में मद्रास सिटी के पास, चिङ्गलेपुत, अंगोला तथा कुडापा क्षेत्र तक सीमित रहा।

(२) **मध्य पाषाण-युग**— इस समय की बहुत कम सामग्री प्राप्त हो सकी है। इस समय के मानव ने पुरा पाषाण-युग या पूर्व-पाषाण युग के मानव के समान प्रस्तर का ही प्रयोग किया।

(३) **उत्तर पाषाण-युग**— इस युग के अवशेष भी बहुत कम प्राप्त हैं। जो उदाहरण प्राप्त हैं उनमें से अधिकांश बेलारी के आस-पास प्राप्त हुए हैं। इस युग का पत्थर का गढ़ा हुआ एक गोल यंत्र नर्मदा नदी की घाटी से भी प्राप्त हुआ है और इसके साथ नर्मदा घाटी में दरियाई-घोड़े तथा अन्य पशुओं की अश्मीभूत हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं। इसी प्रकार का एक प्राचीन यन्त्र गोदावरी नदी की घाटी से भी प्राप्त हुआ है। बुन्देलखण्ड, आसाम (असम) तथा नागपुर की पहाड़ियों, मिर्जापुर, गाजीपुर तथा विन्ध्याचल की कैमूर पर्वत श्रेणियों में प्राचीन कला के अवशेष प्राप्त हुए हैं। पूर्व-पाषाण युग का मानव कुडापा तथा मद्रास सिटी के क्षेत्र तक सीमित रहा परन्तु उत्तर-पाषाण युग का मानव सारे भारतवर्ष में फैल गया और बेलारी उसका प्रधान केन्द्र बना रहा। इस समय के मानव की यन्त्र निर्माण करने की उद्योगशालाएँ दक्षिणी भारत में प्राप्त हुई हैं। इस काल में मनुष्य पत्थर के यन्त्रों पर पालिश करता था और चाक पर बने मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग करता था। कुछ स्थानों पर हिरौंजी के टुकड़े तथा सिल और पत्थर प्राप्त हुए हैं जिन पर हिरौंजी को पीसा जाता था। इससे प्रमाणित है कि हिरौंजी का रंग के रूप में प्रयोग किया जाता था। बेलारी तथा कई अन्य स्थानों में पत्थर पर रेखाओं को खोदकर चित्र बनाये गये हैं। उत्तर-पाषाण युग के मानव ने सर्वप्रथम चित्रकला का प्रयोग किया और आज भी उसकी चित्रकला के उदाहरण विभिन्न स्थानों में सुरक्षित हैं।

भारतवर्ष में उत्तर-पाषाण युग की चित्रकला के उदाहरण

भारतवर्ष में उत्तर-पाषाण युग की चित्रकला के अनेक स्थानों पर रोचक उदाहरण प्राप्त हुए हैं। इन उदाहरणों से आदिकाल की चित्रकला के विकास-क्रम का ही ज्ञान नहीं होता बल्कि आदि-मानव के जीवन पर भी यथेष्ठ मात्रा में प्रका[illegible]

पड़ता है। इस युग की चित्रकला के प्रमुख उदाहरण बेलारी, बाईनाड-एडकल[1], होशंगाबाद, सिंहनपुर[2], बुन्देलखण्ड तथा बघेलखण्ड (विन्ध्याचल), मिर्जापुर, रायगढ़, हरनीहरन, बिल्लासरंगम, बुढ़ार, परगना, आदि स्थानों में प्राप्त होते हैं।

बिल्लासरंगम—यह गुफा मद्रास राज्य में स्थित है। अनुमानतः इस गुफा का समय उत्तर-पाषाण युग का आरम्भिक चरण है। यहाँ पर कुछ हड्डियों के हथियार प्राप्त हुए हैं। यहाँ पर जादू के प्रचलन के प्रतीक-चिन्ह या चित्र अंकित किये गये हैं। स्व० रांगेय राघव ने इस गुफा को नियोलिथिक युग का माना है।[3]

बेलारी—सर्वप्रथम एफ० फांसेट के बेलारी के निकट प्राप्त प्रागैतिहासिक चित्र कृतियों का विवरण १८९२ ई० में प्रकाशित किया। पुनः १९०१ ई० में उन्होंने बाईनाड एडकल गुफा चित्रों का, परिचय प्रकाशित किया। दक्षिण भारत में बेलारी उत्तर-पाषाण युग के मानव का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ पर एक गुफा में एक शिकार का दृश्य तथा जादू के विश्वास के अनेक प्रचलित चिन्ह अंकित किये गये हैं। इन चिन्हों में एक छः कोणों का सितारा (षटकोण) उल्लेखनीय है। इन गुफाओं की चित्रकला स्पेन की कोगुल गुफा की आदिम-चित्रकला के समान ही है।

बाईनाड के एडकल—यह स्थान दक्षिणी भारत में स्थित है। यहां पर बेलारी के समान ही जादू के विश्वास के अनेक चिन्ह अंकित किये गये हैं। इन चिन्हों में स्वास्तिका चिन्ह, सूर्य के चिन्ह और चौखूटे खाने (चतुष्कोण) लाल और काले रंग से चित्रित किये गये हैं। यह चिन्ह जादू-टोने के प्रतीक हैं। यहाँ पर मनुष्य को सर पर कुछ पहने हुये चित्रित किया गया है, जो स्पेन के चित्रों से बहुत समानता रखता है।

हरनीहरन—१८८३ ई० में कार्लाइल ने इस क्षेत्र के गुफा चित्रों का विवरण जनरल आफ एशियाटिक सोसायटी-बंगाल में दिया। मिर्जापुर क्षेत्र में विजयगढ़ दुर्ग के समीप हरनीहरना एक गांव है। यहाँ पर हरनीहरन गुफा में कुछ चित्र प्राप्त हुये हैं। यहाँ पर एक गैंडे का आखेट करते हुये शिकारियों का रोचक चित्र प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार के कुछ आखेट चित्र विजयगढ़ के दुर्ग के समीप घोडमंडर गुफा तथा परगना में भी प्राप्त हुये हैं। यह चित्र तथा गुफायें उत्तर-पाषाण युग की है परन्तु कॉकवर्न महोदय ने हरनीहरन गुफा के चित्रों को बहुत परवर्ती मानकर उनका समय शताब्दी ईसवी तक माना है। इन गुफाओं में जादू के प्रचलन के चिन्ह अंकित किये गये हैं और यहाँ प्राचीन हथियार तथा अन्य यन्त्र भी प्राप्त हुये हैं। हरनी-हरन गुफा के चित्रों में आखेटकों की प्रहार करती हुई मुद्रायें तथा पशु के सींगों के ऊपर उछले निरस्त्र आखेटकों की नाटकीय स्थिति का रोचक चित्रण है।[4]

---

1. तथा 2 'प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास' ले० रांगेय राघव, पृष्ठ-७।
3. 'प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास'—ले० रांगेय राघव, पृष्ठ ६।
4. टिप्पणी—हरनीहरन गुफा के चित्रों में आखेटकों की प्रहार करती हुई मुद्रायें तथा सींग के ऊपर वायु में उछले निरस्त्र आदमियों की स्थिति का चित्रण रोचक है।

विन्ध्याचल पर्वत की कैमूर श्रेणी की चित्रकला– विन्ध्याचल की पहाड़ियों की खुदाई में उत्तर-पाषाण युग के मनुष्य के बनाये चित्र प्राप्त हुये हैं। इन पहाड़ियों में चित्रित चट्टानों तथा गुफाओं के आस-पास पत्थर की चट्टानों या सिलों पर हिरौंजी के घिसे हुये पत्थर प्राप्त हुये हैं जो आदि मानव ने चित्र बनाने के लिए रंग के रूप में प्रयोग किये थे। इन स्थानों पर प्रागैतिहासिक मनुष्य ने पूर्ण रूप से अपनी चित्र शालाएं स्थापित कर ली थीं जिनमें वह रंग को पत्थर की सिल के ऊपर घिस कर रंग बना कर चित्र का निर्माण करता था। यहाँ पर जानवरों के पुट्ठों की हड्डी भी मिली है जिसको वह रंग बनाने की प्लेट या तस्तरी के रूप में प्रयोग करता था। विन्ध्याचल पर्वतमाला के अन्तर्गत अनेक चित्रों में आदि-मानव अपने केन्द्र बनाकर रहने लगा। इस प्रकार उत्तर-पाषाण युग की चित्रकला के प्रमाण बिन्ध्या तथा कैमूर पर्वतमाला में अनेक स्थानों पर सुरक्षित हैं। इनमें प्रमुख चित्र-उदाहरण रायगढ़, मिर्जापुर, पंचमढ़ी होशंगाबाद, ग्वालियर, बांदा आदि क्षेत्रों में प्राप्त हुये हैं।

सिंहनपुर – सिंहनपुर के चित्रों की खोज १९१० ई० में डब्ल्यू० ऐण्डर्सन ने की, तत्पश्चात पर्सी ब्राउन ने १९१७ में और अमरनाथ दत्त ने १९३१ ई० में इन चित्रों का परिचय दिया। सिंहनपुर मध्य प्रदेश की रायगढ़ रियासत में मांढ़नदी के किनारे पूर्व की ओर स्थित है। सिंहनपुर नामक ग्राम में ५० चित्रित शिलाश्रय तथा गुफायें मिली है। ये गुफायें एक रेतीली चट्टान में स्थित है। इनके द्वार पर कंगारु के असंयत चित्र बने हैं। सिंहनपुर के पास एक सुरंगनुमा गुफा में अधिक पशुओं का अंकन किया गया है। जिसमें घोड़ा, बारहसिंगा, हिरन, साही, अरना भैंसा, सांड, सूंड उठाए हाथी तथा खरगोश आदि जानवरों का सजीव अंकन है। यहाँ पर एक गुफा में दीवार पर जंगली सांड़ को पकड़ते हुए और बर्छी से छेदते हुए आखेटकों का एक बड़ा मार्मिक दृश्य चित्रित किया गया है। इस चित्र में कुछ आखेटक चारों ओर से हिंस्र पशु को घेर रहे हैं और कुछ प्रबल पशु की खींस से वायु में उछल गये हैं और कुछ पृथ्वी पर गिर पड़े हैं। इस चित्र में पशु तथा आखेटकों की भयकरता तथा गति का सुन्दर अंकन किया है।

उसी दीवार पर एक दूसरा चित्र अंकित किया गया है जिसमें एक घायल भैंसा बुरी तरह तीरों से छिदा हुआ दम तोड़ रहा है, उसके चारों ओर भालों आदि से सुसज्जित शिकारियों का दल है। इस चित्र में प्राण त्यागते हुए भैंसे को आदिम चित्रकार ने बड़ी सफलता से सरल तथा साधारण आकारों में बांध दिया है। इन चट्टानों के निचले भाग में बहुत से पत्थर के औजार तथा हथियार प्राप्त हुए हैं, जिससे इन गुफाओं को उत्तर-पाषाण युग का मानने में कोई संदेह नहीं रह जाता। इन चित्रों को देखकर स्पष्ट हो जाता है कि प्रागैतिहासिक मनुष्य में चित्रण के लिए एक प्राकृतिकप्रदत्त प्रेरणा थी। उसने इन चित्रों में प्रभावशाली ढंग से गेरुए रंग की तूलिका के द्वारा अपने विचारों को पिरोया है। ऐण्डर्सन तथा पर्सी ब्राउन महोदय के पश्चात्

गॉर्डन द्वारा सिंहनपुर का विवरण विशद शब्दों में प्रस्तुत किया गया। इसी क्षेत्र में कबरा पर्वत, करमागढ़, खैरपुर तथा बोतालदा में अनेक शिलाश्रय तथा गुफायें प्राप्त हुई हैं जिनमें गुहावासी मानव के चित्र प्राप्त हुए हैं। यहाँ पर क्षेपाँकन (Stencil) पद्धित में चित्र बनाये गये हैं। इन चित्रों को गॉर्डन ने पर्याप्त परवर्ती माना है परन्तु जादू के विश्वास के प्रचलन के प्रतीक चिन्हों का यहाँ पर चित्रण किया गया है जिससे यह चित्र प्राचीन सिद्ध होते हैं।

मिर्जापुर विन्ध्याचल पर्वत की कैमूर श्रृंखलाओं में स्थित मिर्जापुर जिले (उत्तर प्रदेश) में एक सौ से अधिक गुफायें तथा शिलाश्रय प्राप्त हुए हैं।

उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में कैमूर-श्रृंखला के अन्तर्गत मिर्जापुर जिले में कोहबर, महड़रिया, भल्डरिया, विजयगढ़, छातों, विढ़म, लिखनिया-१, लिखनिया-२, लौहरी, खोड़हवा, रौंप, कंडाकोट, सोरहोघाट, घोड़ामंगर, पभोसा (चुनार) आदि स्थान आदिम मनुष्य के प्रमुख केन्द्र थे। मिर्जापुर क्षेत्र में एक सौ से अधिक शिलाश्रय तथा गुफायें इन्हीं स्थानों पर प्राप्त हुई हैं, जिनमें गुहावासी मानव की चित्रकला के प्रमाण सुरक्षित है। मिर्जापुर क्षेत्र के अन्तर्गत सहवाइयापथरी, मोहरानपथरी, वागापथरी, लकहटपथरी नामक पहाड़ियों में भी आदिम चित्रों के उदाहरण प्राप्त होने के उल्लेख प्रकाशित हुए हैं।[1] लिखनिया-१ में हाथियों के पकड़ने के दृश्यों को बड़ी सुन्दरता से चित्रित किया गया है। लिखनिया-२ में पशु आखेट के दृश्यों के साथ-साथ नृतन-वादन में मस्त व्यक्तियों के समूह भी अंकित किये गये हैं। यह चित्र गुफा की छतों तथा भित्तियों पर बनाए गए हैं। एक अन्य स्थान पर लम्बी चोंच वाले पक्षी की आकृति भी बनाई गई है। विजयगढ़ गुफा में तीन आदमियों को लाल पीले तथा सफेद रंग से बनाया गया है। इसके अतिरिक्त विजयगढ़ गुफा में सुअर, गैंडा, बारहसिंगा तथा हिरन आदि पशुओं का चित्रण किया गया है। मिर्जापुर क्षेत्र में स्थित गुफाओं के चित्र में अधिक स्वाभाविकता और यथार्थता से चित्रित पशुओं में गैंडा, सांवर, हिरन, सुअर तथा बारहसिंगा हैं। यह चित्र स्पेन की कोगुल गुफा के चित्रों का आकार, चित्रण शैली तथा रेखांकन में पर्याप्त समान दृष्टिगोचर होते हैं। यहां पर एक सांवर के पकड़ने का दृश्य तथा दूसरा गैंडे के आखेट का दृश्य मार्मिक ढंग से अंकित किया गया है। एक दृश्य में सुअर का आखेट (देखिये छाया फलक संख्या-१) और दूसरे दृश्य में एक हिरन का आखेट अंकित किया गया है। इन्हीं आखेट दृश्यों के साथ एक पशु पर कुत्तों का आक्रमण भी अंकित किया गया है। यहां एक स्थान पर एक सुसज्जित द्वार पर एक चोंचदार पुरुष बैठा बनाया गया है जिससे प्रतीत होता है कि यह गुफा कोई एक तन्त्र-मन्त्र शाला है। इस क्षेत्र में अधिकांश चित्र गेरू, हिरौंजी या कोयले से बनाये गये हैं। इन चित्रों से भारतवर्ष की आदिम

1. 'सम्मेलन-पत्रिका'—कला विशेषांक (सन् १९५८)—लेख 'भारत के कला मंडप'।

चित्रकला का इतिहास ही प्राप्त नहीं होता बल्कि पूर्वी देशों की प्राचीन सभ्यता के विकास पर भी प्रकाश पड़ता है।

रौंप, तथा घोड़मंगर गुफा में काकबर्न महोदय ने गैंडे के आखेट-दृश्य अंकित पाये थे। घोड़मंगर में मगर तथा घोड़े के चित्र अंकित है। भल्डरिया में शिलाश्रयों तथा गुफाओं में काकबर्न ने (१८८३ ई० में) अनेकानेक पशु-आखेट-चित्र अंकित पाए। मिर्जापुर के प्रसिद्ध पिकनिक स्पाट (स्थल) विढम में भी प्रागैतिहासिक चित्रकारी से युक्त शिलाश्रय प्राप्त हुआ है। मिर्जापुर क्षेत्र की परवर्ती चित्रकारी का समय ५,००० ई० पूर्व से ४,००० ई० पू० के अन्तर्गत माना जा सकता है।

मनिकापुर – मनिकापुर और उसके निकटवर्ती क्षेत्र में खुले स्थान में गेरु से बने कुछ चित्र प्राप्त हुए हैं। एक चित्र में पहिये रहित गाड़ी और तीन घोड़ों का अंकन है।

पचमढ़ी—पचमढ़ी क्षेत्र के चित्रों को प्रकाश में लाने का श्रेय डी० एच० गार्डन नामक विद्वान को है। १९३६ ई० में उन्होंने पचमढ़ी के चित्रों के सम्बन्ध में रेखाचित्रों तथा फलक चित्रों सहित एक विशद लेख प्रकाशित किया। पचमढ़ी (मध्य प्रदेश) क्षेत्र में गुहावासी मानव की चित्रकारी के अनेक उदाहरण प्राप्त हुए हैं। इस क्षेत्र की चित्रकृतियों के विवरण-लेखन का श्रेय डी० एच० गार्डन महोदय को प्राप्त है। यहां पर उन्होंने पन्द्रह से अधिक शिलाश्रयों एवं गुफाओं की खोज-बीन की है। यहां पर महादेव-पर्वत के चारों ओर अवस्थित डारोकीदीप, महादेव बाजार, सोनभद्रा, जम्बूदीप, निम्बुभोज, बनियाबेरी, मारोदेव, तामिया और झलाई आदि स्थानों में अनेक चित्रित शिलाश्रय तथा गुफायें प्राप्त हुई हैं। पचमढ़ी के शिलाचित्रों में पशु तथा आखेट चित्रों के अतिरिक्त सशस्त्र-युद्ध दृश्यों तथा नृत्य-वादन के चित्र भी मिलते हैं। यहां पर 'बाजारकेव' में एक विशालकाय बकरी का चित्र है। इस क्षेत्र में माँडादेव गुफा की छत में 'शेर का आखेट' का एक दृश्य अंकित है। इस क्षेत्र में इमली खोह में सांभर के आखेट का दृश्य है। इस क्षेत्र में चट्टानों पर पशु की पंक्तियों के अंकन के साथ-साथ दैनिक जीवन के चित्र भी अंकित किये गये है—जैसे अनेकानेक चित्रों में गायों को चराते हुए चरवाहे और शहद इकट्ठा करते हुए मनुष्य दिखाए गए हैं। विषय, आकार और प्रकार के आधार पर पचमढ़ी क्षेत्र के अधिकांश चित्र पर्याप्त परवर्ती प्रतीत होते हैं। गार्डन ने ये चित्र भारत की निषाद जाति की उन्नति-कालीन संस्कृति के परिचायक माने हैं और उन्होंने इन चित्रों का समय ईसवी शताब्दी से बहुत परवर्ती माना है।

होशंगाबाद – होशंगाबाद नगर (मध्य प्रदेश) पचमढ़ी से पैंतालीस मील दूर नर्मदा नदी पर स्थित है। इस नगर से इटारसी जाने वाले मोटर मार्ग पर ढाई तीन मील की दूरी पर आदमगढ़ पहाड़ी है। इसी पहाड़ी में एक दर्जन से अधिक शिलाश्रय हैं जिनमें हाथी, महिष, घोड़े, सांभर, जिराफ-समूह, अस्त्रारोही, अश्वारोही, चार

धनुरधारी, आदि क्षेपांकन (Stencil) पद्धति से बनाये गये हैं। यहाँ पर विभिन्न शैलियों में किये गए चित्रण-प्रयोगों के पाँच या छ: स्तर हैं जो अनेकानेक कालों के द्योतक हैं। इस क्षेत्र में पुरातत्व विभाग की ओर से उत्खनन किया गया है जिससे पाषाण-युगों से सम्बद्ध आदिम-मानव के निवास आदि के चिन्ह प्रकाश में आने की अधिक संभावना है। आदमगढ़ की एक गुफा में एक हाथी पर चढ़े आखेटकों को जंगली भैंसे का आखेट करते हुए चित्रित किया गया है। यहां पर कुछ आखेटक घोड़ों पर सवार हैं और कुछ पैदल दौड़ रहे है (देखिए छाया फलक-२)। डा० जगदीश गुप्त ने इस क्षेत्र में बुदनी तथा रहेली का नाम भी प्रागैतिहासिक चित्रकला के लिए प्रस्तुत किया है। यहां पर एक शिलाश्रय पर एक मोर का विशाल चित्र अंकित है और एक स्थान पर वनदेवी का चित्र अंकित है।

भोपाल क्षेत्र — भोपाल क्षेत्र में धरमपुरी, गुफामंदिर, शिमलाहिल, बरखेड़ा, सांची, सेक्रेटरियेट, उदयगिरि, आदि स्थानों में आदिम-चित्रकला के उदाहरण प्राप्त हुए हैं। धरमपुरी नामक स्थान पर एक शिलाश्रय में गेरुए रंग से अंकित हिरन के आखेट का रहस्यमय चित्रण है। इस चित्र में शिकारी के पैरों तक पत्तियों से ढके होने के कारण भ्रमवश हिरन उनके समीप आ गया अंकित किया गया है।

बांदा — बांदा क्षेत्र में सरहत, मलवा, कुरियाकुंड, अमवां, उल्दन, चित्रकूट आदि स्थानों में शिलाश्रय तथा चित्रत गुफायें प्राप्त हुई हैं।

ग्वालियर क्षेत्र — ग्वालियर, शिवपुरी तथा फतेहपुर सीकरी के आस-पास भी आदिम चित्रकला के चिन्ह प्राप्त हुए हैं।

बिहार - बिहार क्षेत्र में चक्रधरपुर नामक ग्राम में आदिम-चित्रकला के कुछ उदाहरण प्राप्त हुए हैं। एक चित्र में एक आदमी लेटा है और कुछ आदमी उसके पास बैठे हैं। इन चित्रों का समय श्रीमती अल्चिन तथा असित कुमार हलदार ने २,००० ई० पूर्व माना है।

मन्दसौर — मन्दसौर जिले में मोरी गाँव में गुफा-चित्र प्राप्त हुए हैं। यहाँ ३० खोहे हैं जिनमें, सूर्य कमल स्वास्तिक चिन्ह बने हैं।

भीमबेटका — मध्य प्रदेश की राजधानी भूपाल से लगभग ४० कि० मी० दक्षिण में भीमबेटका नामक एक पहाड़ी में लगभग ६०० प्राचीन गुफाएं प्राप्व हुई हैं। इन गुफाओं में प्रस्तर सामग्री भी प्राप्त हुई है जो ३००० ई० पू० से १०००० ई० पू० की है। यहाँ पर लगभग २७५ गुफाओ में चित्रों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। यहाँ पर बने चित्र का समय लगभग १०००० ई० पू० से १००० ई० पू० तक का माना गया है। भीमबेटका होशंगाबाद से भोपाल की ओर जाने वाली रेल लाईन पर बरखेड़ा तथा उब्बेदुल्लागंज स्टेशनों के मध्य में स्थित है। यह स्थान मियांपुरसु (भीमपुरा) नामक आदिवासी गाँव से २ कि०मी० की दूरी पर स्थित है। यहाँ पर हिरण, बारह-सिगा, सुअर, रीछ, भैंसे आदि के चित्र अकित हैं। परवर्ती चित्रों में आखेटक, कृषक, ग्वाले आदि चित्रित हैं।

इन स्थानों के अतिरिक्त बेला स्टेशन (पटना) से आठ मील की दूरी पर स्थित पहाड़ियों में सुदामा, लोमश, रामाश्रय, विश्व झोपड़ी तथा गोपी गुफाओं की चित्रकला भी प्रागैतिहासिक महत्व की मानी गई है। भुवनेश्वर से पांच भील पश्चिम में उदयगिरि, खण्डगिरि और नीलगिरि की ६६ गुफाओं को चित्रों की दृष्टि से प्राचीन माना गया है। इस प्रकार काश्मीर की सुप्रसिद्ध अमरनाथ गुफा में भी चित्रों के अवशेष मात्र रह गये हैं।

भारतवर्ष में जो चित्र प्राप्त हुये हैं उनमें से अधिकांश चित्रों का समय दस या बारह हजार वर्ष ईसा पूर्व से सात या आठ सौ वर्ष ईसा पूर्व अनुमान किया जाता है। गॉर्डन महोदय ने इन चित्रों को बहुत परवर्ती काल का मानने का प्रयत्न किया है और उन्होंने पूर्वाग्रह के कारण इन चित्रों का समय आठवीं शताब्दी ईसा पूर्व स्वीकार किया है, परन्तु यह बात ठीक नहीं प्रतीत होती। यह बात सत्य है कि इन क्षेत्रों में आदिम जातियां अभी भी निवास करती हैं और अब भी इस प्रकार के चित्र बनाती हैं, परन्तु अनेकानेक स्थानों पर खरोष्ट लिपि में लेख उत्कीर्ण रहने के कारण इनको हम परवर्तीकाल का नहीं मान सकते। खरोष्ट लिपि बहुत प्राचीन है, इसके अतिरिक्त जो पशु तथा शस्त्र वहां अंकित किये गये हैं वह भी पाषाण-युग के है। अत: गॉर्डन का मत ठीक नहीं है और यह चित्र प्राचीन हैं। ब्राडिक महोदय ने संसार के प्रागैतिहासिक चित्रों की प्राचीनता का विवेचन करते हुए भारत में प्राप्त चित्रों को कालक्रम में अमेरिका तथा यूरोप के बाद रखा है।

प्रागैतिहासिक चित्रों का उद्देश्य

पाषाण-युग के मनुष्य ने अपने चारों ओर के वातावरण की स्मृति को बनाये रखने के लिए तथा अपनी विजय का इतिहास व्यक्त करने की भावना के वशीभूत होकर इन चित्र-कृतियों का निर्माण किया। गुहावासी मानव ने अमूर्त भावना को मूर्त रूप प्रदान करने की वृत्ति, जिसमें 'जादू-टोना-टोटका आदि भी आ जाते हैं,' के कारण भी चित्र बनाये हैं। मूलत: ये ही मनोवृत्तियां समूची मानव उन्नति की प्रेरक हैं।

इन चित्रों में आदि-मानव का जीवन परिलक्षित होता है। आखेट करने से पूर्व आदिम आखेटक पशु का चित्र बनाकर कुछ जादू-टोना करने से अपने आखेट की सफलता में विश्वास करता था। उसका विश्वास था कि जिस पशु को वह चित्ररूप में अंकित करता है वह उसके वश में सरलता से आ जाता है। प्राय: ऐसे चित्र मिले हैं जिनमें तीरों, बर्छों या भालों से बिंधे पशु अंकित किये गए हैं। कदाचित आखेट के लिए प्रस्थान से पूर्व आदिम-आखेटक अनेक आखेटक समूहों को आहत-पशु के चित्र के सहारे पशु के अनेक अंगों पर आक्रमण तथा प्रहार करने की शिक्षा देता था। इस समय पशु को मारकर खाना, तथा उसके बाद उल्लास में नृतन-गायन आदि मनुष्य की दिनचर्या थी, यही सब उत्तर-पाषाण युग के चित्रों में दिखाई पड़ता है। गुहावासी-मानव ने अपनी सफलता के लिए अदृश्य शक्ति की पूजा-स्वास्तिका, षटकोण, अंकों

तथा रेखाओं आदि अनेक चिन्हों के रूप में टोना-टोटका मानकर आरम्भ कर दी थी।

चित्रों का विषय

आदिम मनुष्य का दृष्टिकोण भयानक पशुओं के शिकार के चित्रण तथा अपने दैनिक जीवन के कार्य-कलापों के अंकन तक ही सीमित रहा। अतः उसने सांभर, बारह-सिंगा, महिष, गैंडा, हाथी, घोड़ा, खरगोश, सुअर जैसे पशुओं का स्वाभाविकता के साथ अंकन किया है। यह पशु उसने आखेट में देखे थे और उसने उनका पीछा करते हुए उनमें दैत्य जैसी शक्ति का अनुभव किया था। इन पशुओं की गति और शक्ति पर उसने विजय प्राप्त की थी, इस कारण उसके प्रमुख विषय के रूप में पशु जीवन का आना स्वाभाविक था। पशुओं के माँस से उसकी उदर-क्षुधा भी मिटती थी और उनकी खाल से वह शरीर ढकता था। सुअर, हाथी, गैंडा तथा बारहसिंगा आदि के डील-डौल और शक्ति से भी वह प्रभावित हुआ होगा। अतः पशु और पशुओं के आखेट-दृश्य तथा जादू के विश्वास के प्रतीक चिन्हों का चित्रण इस समय की कला का प्रधान विषय है। दौड़ते, उछलते, गिरते और प्रहार करते आखेटक, खींस मारते हिंस्र-पशुओं या आक्रमण करते गतिशील पशुओं में अत्यधिक सजीवता है। इन चित्रों में मानव ने अपने भावों को सरलतम रूपों तथा ज्यामितीय आकारों में संजोया है। यह कृतियां आदिम मानव की बाल-सुलभ प्रकृति की उत्तम झांकी हैं। इन चित्रों में प्रागैतिहासिक युग के मनुष्य का सम्पूर्ण इतिहास संचित है। इन चित्रों की सीमा रेखायें, गतिशील हैं, यद्यपि चित्र असंयत और सरल हैं।

प्रागैतिहासिक काल के चित्रों की विशेषतायें तथा मूल प्रवृत्तियाँ

चित्रों का विधान—प्रागैतिहासिक काल के चित्रों के समस्त उदाहरण लाल, काले या पीले और सफेद रंगों से बने हैं। यह चित्र चट्टानों की दीवारों, गुफाओं के फर्शों, भित्तियों या छत्तों में बनाये गये हैं। अनेक चित्र प्रस्तर शिलाओं पर भी प्राप्त हुये हैं। चट्टानों की खुरदरी दीवारों पर लाल (गेरू या हिरौंजी), काले (कोयला, काजल या कालिख) या सफेद (खड़िया) रंगों को पशु की चर्बी में मिलाकर यह चित्र बनाये गये हैं। इन चित्रों में रेखा या सीमा-रेखा की प्रधानता है, इस कारण इनको रेखा-चित्र मानना संगत है। आकृति की सीमा रेखा को अधिकांश किसी नोकीले पत्थर से खोदकर बनाया गया है जिससे वह वर्षा के जल से धुल न जाये और स्थाई बनी रहे। सामान्यतया दो तीन रेखाओं से मानव आकृतियों का निर्माण किया गया है और कभी-कभी चौखूटे धड़ से मनुष्य आकृति बनाई गई है जिसमें तिरछी और कभी पड़ी रेखायें भर दी गई हैं।

रंग तथा आकार—इन चित्रों में रंग का प्रयोग बाल-सुलभ प्रकृति के आधार पर किया गया है। आकृति को भरने के लिये धरातल पर रंगों को सपाट लगाया गया है। इन चित्रों में सुगमता से प्राप्त खनिज रंगों का प्रयोग किया गया है। इन

रंगों में प्रधानता गेरू, हिरौंजी, रामरज, तथा खड़िया का प्रयोग है। इन रंगों के अतिरिक्त रासायनिक रंगों में कोयला या काजल का प्रयोग किया गया है। अधिकांश आकृतियों के निर्माण में सीधी रेखा, वक्र और आयत आदि ज्यामितीय आकारों का प्रयोग है। कई ज्यामितीय आकारों को सांकेतिक रूप में भी प्रयोग किया गया है, जिसमें स्वास्तिका, त्रिभुज, वृत्त, षटकोण तथा आयताकार हैं। संम्भवतः इन आकारों से प्रकृति की विभिन्न शक्तियों या जादू के विश्वासों को व्यक्त किया गया है। अधिकांश चित्रों को रेखाओं के द्वारा बनाया गया है अन्यथा पूर्ण रूप से या पूरक रूप में क्षेपांकन (Stencil) पद्धति का प्रयोग है।

यद्यपि यह चित्र भद्दे, असंयत और कठोर हैं परन्तु इनमें गति तथा सजीवता है और तूलिका की शक्ति इनकी प्रमुख विशेषता है।

चित्रकार अपनी तूलिका किसी रेशेदार लकड़ी, बाँस या नरकुल आदि के एक सिरे को कूटकर बनाता था। आदिम चित्रकार रंगों को पशुओं की चर्बी में मिलाने के लिए पशुओं की पुट्ठे की हड्डी को प्याली के समान प्रयोग में लाते थे। यद्यपि अधिकांश चित्रकारी के उदाहरण रेखा और सपाट रंगों के प्रयोग से बनाये गये है फिर भी कहीं-कहीं गोलाई का आभास होता है। इन चित्रों की सरलता, सुगमता तथा सूक्ष्म रेखांकन पद्धति आज के कलाकार के लिए एक महान प्रेरणा हैं।

मिर्जापुर, सिंहनपुर, पचमढ़ी, होशंगाबाद आदि क्षेत्रों से प्राप्त इस काल के कृषि सम्बन्धी चित्र-उदाहरणों में जीवन स्तर तथा युग परिवर्तन के चिन्ह दृष्टि-गोचर होने लगते हैं परन्तु अभी तक यह निश्चित नहीं किया जा सका है कि वह अवस्था इस क्षेत्र में कब आई, परन्तु यह निश्चित है कि पाषाण-युग के पश्चात् धातु युग का समारम्भ हुआ। इस युग में मनुष्य ने लकड़ी तथा पत्थर के अतिरिक्त धातुओं का प्रयोग भी आरम्भ कर दिया।

वैदिक सभ्यता का उदय

धातु-युग—प्रागैतिहासिक काल के समाप्त होते ही धातु-युग के साथ वैदिक काल का उदय होता है। दक्षिण भारत में पाषाण-काल के पश्चात् लौह-युग ही आरम्भ हुआ, परन्तु उत्तरी-भारत में ताम्र और सिन्ध में कांस्य-युग के पश्चात ही सम्पूर्ण भारत में लौह युग आया। यद्यपि दक्षिण-भारत में बहुत सी कांसे की बनी सामग्री प्राप्त हुई है परन्तु या तो वह बाद की है या दूसरे क्षेत्रों से आयात की गई है।

मध्य प्रदेश के गुनजेरिया नामक ग्राम में तांबे के बने यंत्रों के ४२४ उदाहरण प्राप्त हुए हैं जो लगभग २,००० बर्ष ईसा पूर्व के हैं। इसी प्रकार उत्तरी भारत में कानपुर, फतेहपुर, मैनपुरी तथा मथुरा जिले में तांबे के बने प्रागैतिहासिक यंत्र तथा हथियार प्राप्त हुये हैं। उत्तर पूर्व में हुगली से लेकर पश्चिम में सिन्ध तक

विस्तीर्ण क्षेत्र से तांबे के हंसियों, तलवारों तथा भालों के फलकों आदि के उदाहरण प्राप्त हुए हैं। ताम्र और कांस्य-युग का उत्तरी-भारत में बहुत पहले ही उदय हो चुका था और लौह-युग भी दक्षिणी भारत से पहले ही आरम्भ हो गया था। दक्षिण-भारत में पाषाण युग कालान्तर तक चलता रहा और बाद में एक साथ लौह-युग आया। अथर्ण वेद में ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे उत्तरी भारत में लोहे का प्रयोग सिद्ध हो जाता है। अथर्व वेद अनुमानत: २५००ई०पूर्व का है। दूसरे ग्रीक इतिहासकार हेराडोट्स के लेखों से ऐसा ज्ञात होता है कि फारस के सम्राट एक्सराएक्स (Xerxes) की अध्यक्षता में ४८० ई० पूर्व में जो भारतीय सेना यूनान के विरुद्ध लडी उसने लोहे के फलकों से युक्त तीरों का प्रयोग किया। ऐसे प्रमाण भी प्राप्त होते है कि सिकन्दर के भारत पर आक्रमण करने के समय भारतीयों ने युद्ध में स्पात (स्टील) तथा लोहे के फलक वाले तीरों का प्रयोग किया। खेद है कि इस समय की कला के उदाहरण बहुत कम प्राप्त हैं, केवल मोहनजोदड़ो और हड़प्पा क्षेत्र की खुदाई से कांस्य युग की कला के उदाहरण प्राप्त हुए हैं। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा सिन्धु नदी की घाटी में स्थित थे और यहाँ पर एक उच्च सभ्यता विकसित हुई, इसी कारण इसको विद्वानों ने 'सिन्धुघाटी-सभ्यता' के नाम से पुकारा है। यह वैदिक सभ्यता विस्तीर्ण उत्तरी भारत के मैदानों में फैली हुई थी।

सिन्धु घाटी सभ्यता की कला (३५०० ई० पू० २५०० ई० पू०)

चीन से लेकर मध्य एशिया तथा भारतवर्ष में ईसा से चार हजार वर्ष पूर्व से लेकर ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व के मध्य एक सभ्यता का जन्म हुआ। इस सभ्यता की खोज का श्रेय सरजॉन मार्शल तथा डा० अरनेस्ट मैंक के लिए प्राप्त है। उन्होंने सन् १९२४ ई० में इस सभ्यता का संसार को ज्ञान कराया। इस विशाल क्षेत्र में लाल तथा काली पक्की मिट्टी के बर्तन बनाने की कला का विशेष विकास हुआ। ये बर्तन पशु-पक्षी, मानव-कृतियों तथा ज्यामितिक अभिप्रायों से अलंकृत किये जाते थे। पुरातत्व-वेत्ताओं से इस सभ्यता को 'मृतक पात्रों' की सभ्यता के नाम से पुकारा है। भारत तथा पाकिस्तान में इस प्रकार की सामग्री मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, चानूदडो, झांगर, झूकर, कुल्ली एवं लोथन नामक स्थानों से उत्खनन के पश्चात प्राप्त हुई है।

पुरातत्व विभाग ने सिन्धु घाटी क्षेत्र में १९२२ ई० में स्व० आर० डी० बैनर्जी की अध्यक्षता में उत्खनन कार्य आरम्भ किया और लरखना जिले में मोहन-जोदड़ो तथा लाहौर और मुल्तान के बीच हड़प्पा की खुदाई में एक विकसित सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुये। पुन: इसी प्रकार की सभ्यता का ज्ञान काठियावाड़ क्षेत्र के लोथल नामक स्थान जिला अहमदावाद सर्गावाला ग्राम के अन्तर्गत १९५४ ई० में एस० आर राओ की अध्यक्षता में कराए गए पुरातत्व विभागीय उत्खनन कार्य से प्राप्त हुआ। इस प्रकार की सभ्यता के अवशेष चानूदड़ो में भी प्राप्त हुए हैं।

सिन्धु क्षेत्र की समृद्धि फारस के सम्राट अच्छेयनिद (५वीं श० ई० पू०) तक बनी रही। सिकन्दर महान् ने भी भारत पर आक्रमण करते समय इस भाग

को हरा भरा पाया था। यहाँ के भवन अवशेषों की ठोस तथा ऊंची आधार शिलाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि इस क्षेत्र में सिन्धु नदी की बाढ़ से क्षति होने का भय बराबर बना रहता था। राजस्थान में पीलीवंगन तथा काली वंगन की खुदाई में भी इसी प्रकार की प्राचीन सभ्यता के प्रमाण स्वरूप अनेक पात्र मिले हैं।

भारतवर्ष में प्रागैतिहासिक कृषक जातियाँ उत्तरी बलूचिस्तान से सिन्ध तक ४००० ई० पू० तक बस चुकी थीं। यह कृषक जातियाँ काली तथा लाल मिट्टी के बर्तन बनाती थीं। यह बर्तन सरल ढंग के रंगीन आलेखनों से सजाये जाते थे। इन आलेखनों की चित्रकारी आदिम शैली की है। आरम्भिक कृषक सभ्यता के स्थलों के उत्खनन में दार्ष्टिक कलाओं के अवशेष प्राप्त नहीं हुए हैं। कृषक सभ्यता के चिन्ह इस विस्तीर्ण क्षेत्र में स्थान-स्थान पर प्राप्त हुये हैं। इस सभ्यता का अनेक चरणों में विकास होता गया जिसके प्रमाण अनेक भू-तलों की खुदाई में प्राप्त हुए हैं जिनका काल विभाजन निम्न प्रकार से किया जा सकता है। इस सभ्यता का पूर्ण विकसित रूप, सिन्धु नदी के किनारे अनेक स्थलों की खुदाई में प्राप्त हुआ। इस कारण इस सभ्यता को 'सिन्धु-घाटी सभ्यता' के नाम से पुकारा गया है।

१. मिट्टी के बर्तनों से पूर्व की सभ्यता (जिसका काल तथा रूप अनिश्चित है)।
२. कुयेटा सभ्यता-- ३५०० ई० पू० से ३००० ई० पू०।
३. अमरी-नुन्दरानाल सभ्यता -- ३००० ई० पू० से १८०० ई० पू०।
४. झोभ सभ्यता - ४००० ई० पू० से २५०० ई० पू०।
५. कुल्ली में ही सभ्यता-- २८०० ई० पू० से २००० ई० पू०।
६. हड़प्पा सभ्यता - २७०० ई० पू० से २००० ई० पू०।
७. हड़प्पा, मोहनजोदड़ो तथा लोथल सभ्यता---२२००ई०पू०से १८००ई०पू०।
८. झूकर तथा झांगर सभ्यता--- १५०० ई० पू०।

उपरोक्त सभ्यताओं का नाम उन स्थानों के नाम पर दिया गया है जहाँ इस सभ्यता के चिन्ह पाये गये हैं। इन स्थलों की खुदाई में रोचक कलात्मक सामग्री प्राप्त हुई है जिसके आधार पर इस काल की चित्रकला के विषय में अनुमान लगाया जा सकता है।

कुयेटा सभ्यता की कला -- सर अयुरेल स्टीन को कुयेटा क्षेत्र में वजीरिस्तान तथा उत्तरी बलूचिस्तान की खुदाई में कुछ पकाई हुई मिट्टी के सर प्राप्त हुए थे। १९५०-५१ ई० के मध्य पुनः अमरीकी पुरातत्व विभाग तथा पाकिस्तानी पुरातत्व विभाग का एक सामूहिक दल प्राचीन सभ्यता के अध्ययन हेतु कुयेटापिशीन तथा झोब-लोरालाई क्षेत्र में गया। इस दल के लिए इस सभ्यता से सम्बन्धित पर्याप्त कला सामग्री प्राप्त हुई। अब इस क्षेत्र में उन्नीस स्थलों पर खुदाई के द्वारा इस सभ्यता के चिन्ह प्राप्त हुये हैं। सिन्धु सभ्यता से मिलती-जुलती ग्रामीण सभ्यता के सबसे पहले चिन्ह किला-गुल-मोहम्मद में कुयेटा सिबी के ४०० गज पश्चिम में प्राप्त हुये हैं।

यह मिट्टी के बर्तनों की सभ्यता से पहले के चिन्ह हैं। किवेग की खुदाई में खुरचने के औजार, सेतखली से बने प्याले, कन्नीनुमा आकार के छोटे यन्त्र प्राप्त हुए हैं। दमास्दात में एक निचले तल की कच्ची ईंटों से बने कमरों के अवशेष तथा कुछ मिट्टी की सिर रहित मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। यहाँ पर ऊपर के तल में ऐसी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जो झोब मूर्तियों से शैली में भिन्न हैं और इनके सिरों पर कानों तक चौड़े टायरा जैसे आभूषण बनाये गये हैं जिसमें माथे के ऊपर शंकु आकार के निकले हुए अलंकरण बनाए गए हैं। झोब में प्राप्त मूर्तियो के सर काले रंगे हुए हैं तथा सर पर सादा ढंग का टायरा (शृंगार पट्टी) बनाया गया है।

अमरी नाल सभ्यता की कला अमरी, गाजीशाह, पिन्डी, वही, लोहरी तथा शाहहसन की खुदाई में अनेक आभूषणों के खन्ड आदि प्राप्त हुए हैं।

झोब सभ्यता की कला— उत्तरी बलूचिस्तान में झोब नदी की घाटी में प्राप्त मिट्टी के बर्तन गहरे बैंगनी-लाल रंग के बनाए गए हैं। झोब में पकाई हुई मिट्टी की अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इन मूर्तियों के रूप में भारत की ठोस दार्ष्टिक कलाकृतियों के प्रारम्भिक उदाहरण प्राप्त होते हैं। यहाँ पर पशुओं तथा स्त्रियों की छोटी छोटी मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। झोब क्षेत्र के अन्तर्गत अनेक स्थानों पर प्राप्त कूब्बड़दार साड़ों की मूर्तियां प्रधान हैं, परन्तु यह मूर्तियां संख्या में कम हैं। पीरियानोघुन्डाई के एक मूर्तिखण्ड में घोड़े का अग्रभाग ही प्राप्त हुआ है। यहाँ पर प्राप्त साड़ों की मूर्तियां कुल्ली में प्राप्त सांड़ों की मूर्तियों के समान हैं परन्तु इन साड़ों के शारीरिक गठन में स्वस्थता है और इन आकृतियों में गठनशीलता लाने का अधिक प्रयास किया गया है। इन मूर्तियों की रचना में परिपक्व यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया गया है। पीरियानोघुन्डाई की एक सिर रहित सांड की मूर्ति अग्रभाग से पूंछ तक आठ इंच लम्बी है। इसके पैर बहुत छोटे हैं परन्तु उनकी बनावट में गठनशीलता है। इस मूर्ति की शारीरिक गठन स्वस्थ है।

झोब घाटी से प्राप्त स्त्री मूर्तियों की रचना-तकनीकी में पर्याप्त विकास दिखाई पड़ता है। इस प्रकार की मृण्य-मूर्तियाँ (पकाई गई मिट्टी की मूर्तियां) अधिकांश भग्न अवस्था में प्राप्त हैं। कुछ सुरक्षित उदाहरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि इन मूर्तियों को कमर से कुछ नीचे तक ही बनाया गया था क्योंकि इनका निचला भाग सपाट कटा हुआ है। अब तक जो मूर्तियां प्राप्त हुई हैं वह मूर्तियां हाथ रहित हैं। इन मूर्तियों में भद्दी गठन है परन्तु कुछ मूर्तियों के चेहरे की बनावट में सुधार दिखाई पड़ता है। पीरियानोघुन्डाई, कायु दानी तथा युगलघुन्डाई में इस प्रकार के उदाहरण प्राप्त होते हैं। इन मूर्तियों के माथे चिकने हैं, नाक उल्लू की चोंच जैसी है, आंख की पुतलियों के स्थान पर गहरे छेद हैं और ठोड़ी के ऊपर मुंह को एक छेद या दरार के रूप में बनाया गया है। इन मूर्तियों में छाती की बनावट में पूरी गोलाई हैं और स्तनों के अग्रभाग (चुचुक) यथार्थ ढंग से बनाये गये हैं। झोब की मूर्तियो में कुल्ली की मूर्तियों के समान सिर की पोषाकें अत्यधिक भारी हैं।

कुल्ली मेंही सभ्यता की कला—मकरान के तट-क्षेत्र में झोब की समकालीन सभ्यता के चिन्ह प्राप्त हुए हैं। कुल्ली क्षेत्र में पशु तथा स्त्रियों की अनेक मूर्तियां प्राप्त हुई हैं जो एक ही प्रकार की हैं। कुल्ली के कूब्बड़दार सांड़ों की आकृतियों में आकर्षण नहीं हैं क्योंकि धारियों के द्वारा रंगों से चित्रित इनके शरीरों के रंग धुंधले पड़ गये हैं। इन साड़ों के नेत्र तथा सींग के निचले भाग तथा गर्दन को भी रंगीन धारियों से सजाया गया है। पशुओं को यह रंगीन मूर्तियां नुनदारानाल के बर्तनों पर अंकित साडों की आकृतियों की याद दिलाती हैं। यह मूर्तियां बड़ी संख्या में एक परिसर में ही कुल्ली, शाहीटील, मेंही-बांध आदि स्थानों में प्राप्त हुई हैं। यह मूर्तियां एक परिसर में ही प्राप्त हुई हैं जिससे प्रतीत होता है कि इनको चढ़ावे के रूप में किसी पवित्र स्थान या मन्दिर में एकत्र करके रखा गया था। इस प्रकार यह मूर्तियां खिलौना मात्र नहीं हैं। यह मूर्तियां एक प्रकार की ही हैं जिससे प्रतीत होता है कि यह ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित साँड़ का ही एक रूप हैं जो प्राचीन काल में पूजे जाते थे। यह मूर्तियां दो इंच से चार इंच तक लम्बी हैं। इनके पैर लम्बे होते हैं और कूबड़ प्रधान हैं जिससे पशु आकृति की रचना शक्तिशाली प्रतीत होती है। सामान्यता अनेक अङ्गों को यथार्थ गठन प्रदान की गई है। बच्चों के खिलौनों के रूप में भी यह पशु आकृतियां काम में आती थीं क्योंकि मेंहीं-बाँध से प्राप्ति साँड की एक प्रतिमा के चारों पैरों में तथा कूबड़ में छेद बनाये गये हैं। इन छेदों में पकाई मिट्टी के बने पहिये किसी तीली के सहारे लगाये जाते थे, इन पहियों के उदाहरण अनेक अन्य स्थलों पर प्राप्त हुए हैं। कूब्बड़ में डोरी बाँध कर इस सांड़ को खींचा जाता था। कुल्ली से स्त्रियों की कुछ मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। इन मूर्तियों पर रंग के चिन्ह नहीं दिखाई पड़ते हैं। इन मूर्तियों में सरल ढंग से शारीरिक गठन तथा अंगों की रचना को केवल उंगलियों की सहायता से दर्शाया गया है। इन मूर्तियों के नेत्र, बाल, नाभि, छाती इत्यादि को अलग-अलग छोटी-छोटी गोलियों या बत्तियो से बनाया गया है। आभूषण तथा सर की पोशाकें भी इसी प्रकार बनाई गयी हैं और इन मूर्तियों में कमर तक ही शरीर बनाये गये हैं। इन मूर्तियों में चेहरे खुरदरे हैं और संकरे माथे तथा नोकीली नाकें हैं। नेत्रों के स्थान पर छोटी-छोटी गोलियां अन्दर छेदों में बिठा दी गयी हैं और मुँह नहीं बनाये गये हैं। छातियाँ अधिकांश आभूषणों से ढकी बनाई गयी हैं या उपयुक्त आकार की गोलियों से बनाई गयी हैं और हाथ घुमावदार हैं। एक मूर्ति में एक स्त्री दो बच्चों को भुजाओं में पकड़े दर्शायी गयी है। इन मूर्तियों में बालों की सज्जा सामान्यता ऊपर बंधे जूड़े के रूप में की गई है या कभी-कभी कन्धे पर लटके भारी बाल भी बनाये गये हैं और कानों में शंकुनुमा आभूषण तथा गर्दन में अंडाकार या गोल लटकनदार हार बनाये गए हैं या कभी-कभी मणिकाओं के चौड़े गुलूबन्द बनाये गये हैं।

मोहनजोदड़ो सभ्यता की कला—मोहनजोदड़ो में समाधियाँ, तालाब, स्नानागार तथा दोमंजिला मकानों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। यह नगर योजनाबद्ध ढंग से

बसाया गया था और सीधे मार्गों के दोनों ओर गहरी नालियां तथा प्रकाश स्तम्भ बनाये गये थे। इस नगर की समृद्धि कृषि तथा व्यापार पर निर्भर थी। मोहनजोदड़ो में सूती कपड़ों के टुकड़े, करवे, आभूषण जैसे – हार, अंगूठियां, छल्ले, पेटियां, कुन्डल तथा कड़े प्राप्त हुए है। यह आभूषण सोने, चांदी, हाथी-दांत, हड्डी पक्की मिट्टी काँसे, ताँबे के बने हैं। यहाँ युद्ध के हथियारों में तीर कमान, भाले, कुल्हाड़ियां, छुरे हंसिये, छेनियाँ, उस्तरे आदि प्राप्त हुए हैं जो काँसे या ताँबे के बने हैं। यहाँ पर मिट्टी को पकाकर बनाई गयी मुहरें भी प्राप्त हुई है जिन पर उभार कर बनायी गयी भैंसे, भेड़े, गैंडे, बृषभ, सुअर इत्यादि पशुओं की आकृतिओं के साथ लिपि चिन्ह भी अंकित हैं। यह मुहरें साधारणतया ३/४ तथा १ —१/४ इंच वर्गाकार हैं परन्तु कहीं-कहीं गोल या सिलेन्डर आकार की मुहरें भी प्राप्त हुई हैं।[1] इन पशुओं की गठन तथा रचना में यथार्थता है। इन मुहरों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि चित्रकला का इस क्षेत्र में पर्याप्त विकास हो चुका था। मुहरों के अतिरिक्त गुलदस्ते, शृंगार-मंजुषा, तश्तरियां कटोरे आदि प्राप्त हुए हैं। सिन्धु क्षेत्र में मिट्टी के बर्तन चाक पर बनाये जाते थे। इन बर्तनों को पकाकर लाल एवं काले रंग से रंगा जाता था। कुछ बर्तनों पर विविध रंगों का प्रयोग किया जाता था और बर्तन ओपे भी जाते थे। इस प्रकार के बर्तन तथा मुहरें दजला, फरात के क्षेत्र में लगभग १००० ई० पू० में बनायी जाने लगी थीं। मेसोपोटामियां में 'उर' नगर के अवशेष तथा मोहनजोदड़ो से प्राप्त कला सामग्री इस बात की द्योतक है कि भारत का सुमेर, मिश्र, फिलिस्तीन तथा ईरान आदि से घनिष्ट सम्बन्ध था। मोहनजोदड़ो में पक्की मिट्टी के रोचक खिलौने, प्राप्त हैं हुए जो मानव की उन्नत कला अभिरुचि के परिचायक हैं। इन खिलौनो में झुनझुने, सीटियां (पक्षी के रूप में) पुरुष तथा स्त्री आकृतियां, पहियों से युक्त चिड़ियां तथा रथ, आदि प्राप्त हुए हैं। सिन्धु सभ्यता में चित्रमय लिपि का विकास हो चुका था जिसमें ३९६ चिन्हों का प्रयोग अनुमानित है।

लोथल—लोथल सभ्यता मोहनजोदड़ो के अन्तर्गत ही आती है। पुरातत्व विभाग ने मोहनजोदड़ो से लगभग ६०० मील दक्षिण पूर्व में सूरत के समीप लोथल नामक स्थान में १९५३ ई० में उत्खनन के पश्चात् प्रागैतिहासिक अवशेष प्राप्त किये। यहां पर हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो जैसे ही मिट्टी के बर्तन, खिलौने, जानवरों की मूर्तियां, बिल्लौरी पत्थर की छुरी, मनके और तांबे की बनी सामग्री प्राप्त हुई है। यहां पर एक तांबे का बना हुआ हंस प्राप्त हुआ है जिससे ढलाई की उन्नत कला का ज्ञान होता है।

मोहनजोदड़ो में प्राप्त मूर्तियां—मोहनजोदड़ो में कुछ रोचक मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं। इन मूर्तियों में एक योगी की मूर्ति जिसके नेत्र समाधि अवस्था में नाक के अग्रभाग की ओर ध्यानस्थ हैं—एक पुजारी का सिर जिसमें भारी जबड़े, चौड़े

1. आर्ट आफ दी वर्ल्ड' इन्डिया —ले० हरमन गोएट्स, पृष्ठ ३०।

होठ और भद्दे तश्तरीनुमा कान हैं, तथा एक बैठी हुई सर रहित मूर्ति, कलारुचि की परिचायक है। यह मूर्तियां पत्थर की बनी हैं। मोहनजोदड़ों में दो तवंगी नृतिकाओं की कांस्य-प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं जिनकी ऊंचाई ९ से० मी है। इनमें से एक प्रतिमा में युवती के लम्बे हाथ तथा पैर अनुपात रहित हैं। बांई भुजा में यह युवती कोंहनी तक मोटे कड़े पहने है, इसका दाहिना हाथ कमर पर है और बांया पैर ताल देने की मुद्रा में मुड़ा हुआ है।

हड़प्पा सभ्यता की कला—हड़प्पा की खुदाई में जो तीन सहस्त्र वर्ष प्राचीन योजना बद्ध नगर, अनाज भंडार, स्नानागार तथा अन्य सामग्री प्राप्त हुई वह मोहनजोदड़ों से प्राप्त सामग्री के समान ही है। हड़प्पा में प्राप्त लाल पत्थर की बनी एक मनुष्य के धड़ की मूर्ति जो ३-३/४ इंच ऊंची है, जो कला आलोचकों के आश्चर्य का विषय है। इस मूर्ति को भली प्रकार ओपा गया था। इस मूर्ति में मांसिल पेशियों की गठन तथा यथार्थता दर्शनीय है। यह प्रतिमा राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में सुरक्षित है और इसके निर्माण का समय २५००-२००० ई० पू० के मध्य अनुमानित है। इस ही संग्रहालय में हड़प्पा से प्राप्त पक्की मिट्टी की एक मूर्ति है जिसमें मां के साथ जुड़वां बालकों को बनाया गया है। यह प्रतिमा अनुमानतः २५००-२००० ई० पू० की है। यहां पर एक काले रंग के पत्थर की प्रतिमा का भी धड़ मात्र प्राप्त हुआ है जो एक पुरुष-नृतक का है। यह नृतक अपके दाहिने पैर के बल पर खड़ा है और उसका बांया पैर नृत्य की मुद्रा में ऊपर उठा हुआ है। इस मूर्ति को 'नटराज' के आदि रूप का द्योतक माना गया है। इस मूर्ति की ऊंचाई ३-७/८ इंच है। हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो से केवल तीन मिट्टी की मुहरें मिली हैं जिनमें शिव का पशुओं के साथ अंकन किया गया है।[1] मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक मुहर पर पशुपति को पशुओं के साथ बनाया गया है। इस मुहर में सींगदार मुकट पहने त्रिनेत्रधारी शिव एक योगी के समान सिंहासन पर बैठे है। उनके चारों ओर कुछ पशु हैं जिनमें हाथी और चीता दाहिनी ओर, गैंडा और भैंसा बाई ओर, और सींगवाला हिरन सिंहासन के नीचे खड़ा है। शिव को पशुओं का देवता माना गया है, अतः इस मुहर पर शिव के 'पशुपति' रूप का अंकन मानना संगत है।

झूंकर तथा झांगर सभ्यता की कला—झूंकर सभ्यता के अवशेष मोहनजोदड़ो से अस्सी मील दक्षिण में नबाबशाह जिले के अन्तर्गत सिन्ध में चानूदड़ों में प्राप्त हुए है। यहां पर मिट्टी की अनेक मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। इन अवशेषों का परिचय १९३२ ई० में सर्वप्रथम श्री एन० जी० मजूमदार ने पुरातत्व-वेत्ताओं को कराया। इसी स्थल पर बाद में दूसरी जाति आ बसी जो भूरे रंग के मिट्टी के बर्तन बनाती थी। इस जाति की सभ्यता को झाँगर सभ्यता के नाम से पुकारा गया है। झाँगर में पकाई हुई

1. 'ए हिस्ट्री आफ फाइन आर्ट इन इन्डिया एण्ड सीलोन'—ले० विन्सेन्ट स्मिथ (तृतीय संस्करण), पृष्ठ XXII, भूमिका।

मिट्टी की अनेक रोचक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जिनसे प्रतीत होता है कि सिन्धु नदी के विस्तीर्ण क्षेत्र में रहने वाले लोग एक निजी सभ्यता का विकास कर चुके थे।

चित्रकला—मोहनजोदड़ो, हड़प्पा तथा लोथल नगरों के अवशेष मात्र रह जाने से चित्रकला का ठीक ज्ञान नहीं हो पाता। चित्रकला का जो भी ज्ञान प्राप्त होता है वह केवल विचित्र मृत्तिकापात्रों, खिपड़ों या बर्तनों पर बनी चित्रकारी से होता है। लोथल में एक खिपड़े पर बना हुआ घोड़ा, तथा एक कलश पर बनी हुई गौरैया तथा हिरन की चित्रित आकृत्तियाँ चित्रकारी के प्रचलन की द्योतक हैं। यहाँ पर प्राप्त एक मिट्टी के बर्तन पर साँप, मोर, बत्तख तथा ताड़ वृक्ष आदि की आकृतियाँ अंकित हैं। हड़प्पा के एक मृत्तिकापात्र के ढकने पर एक आलेखन में दो हिरन अंकित हैं। इस आलेख की पृष्ठभूमि काली है और लाल रंग से चित्रकारी की गई है। मोहनजोदड़ों तथा हड़प्पा में प्राप्त बर्तनों पर लोक-कला की चित्रकारी के नमूने ही प्राप्त हुये हैं जिनमें चित्रकला के प्रचलन यथा यथोचित उन्नत स्तर का अनुमान लगाया जा सकता है। मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, लोथल आदि स्थानों में अधिकांश ज्यामितिक अभिप्रायों में वर्गाकार खाने, परस्पर काटती रेखाओं, वृत्तों या पत्तियों, मछलियों, वृक्षों, पक्षियों (मोर) हिरन, बकरी, गीदड़ आदि के अभिप्राय लाल या काली मिट्टी के बर्तनों पर चित्रित हैं। मानवाकृतियों के चित्रों में मछुये या माता तथा बालक को सरल आकारों में बनाया गया है। यह चित्रकारी अधिकांश लाल, काले या सफेद रंग से की गई है।

इस क्षेत्र में मिट्टी के टिकरों पर या मुहरों पर रेखायें खोदकर (उत्कीर्ण करके) भी चित्र बनाते थे। इस प्रकार का चित्र-उदाहरण मोहन जोदड़ो से प्राप्त टिकरे में अंकित है। इस टिकरे पर एक नाव का चित्र उत्कीर्ण है, (देखिये रेखाचित्र १–'नाव' मोहनजोदड़ो) इस नाव के उत्कीर्ण चित्र का समय अनुमानतः ३०००
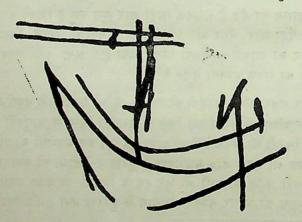
रेखाचित्र सं० १—'रेखा उत्कीर्ण चित्र'
(नाव मोहनजोदड़ो, ३००० ई० पू०)

ई० पू० है। यद्यपि इस क्षेत्र में चित्रकला के अल्प उदाहरण ही प्राप्त हैं परन्तु यहां पर प्राप्त मुहरों, मूर्तियों तथा अन्य सामग्री से ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस क्षेत्र की सभ्यता में चित्रकला का विशेष स्थान था।

वैदिककाल की भित्तिचित्रकला

युराल पर्वत के दक्षिण की ओर से तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के मध्य-आर्य जातियां युरोप, पश्चिमी एशिया तथा भारत की ओर देशान्तर निवास हेतु आयीं। इन जातियों ने एशिया तथा भारत पर अपना प्रभाव जमाना आरम्भ कर दिया। भारतीय-आर्य जाति ने ईसा से दो हजार वर्ष पूर्व इरानी-आर्य जाति से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और भारतीय-आर्य शाखा के लोग तुर्किस्तान (आधुनिक रूस) से अफगानिस्तान होकर भारत आ गये। भारतीय-आर्य शाखा युद्धप्रिय अनिकेत (खानाबदोश) जाति थी। यह लोग प्राचीर युक्त लकड़ी तथा मिट्टी के बने मकानों वाले गाँव में रहते थे। इस प्रकार सिन्धु क्षेत्र पर विजय प्राप्त कर और सिन्धु घाटी सभ्यता को समाप्त कर यह जातियां पूर्व की ओर बढ़ी और १४०० ई० पू० से १००० ई० पू० के मध्य सम्पूर्ण उत्तरी भारत पर इनका अधिकार हो गया।

इस काल का इतिहास अस्पष्ट है। अत: इस काल की चित्रकला की प्रगति का ज्ञान साहित्यिक रचनाओं जैसे- वेदों, महाभारत, रामायण या पुराणों में प्राप्त कला-प्रसगों से किया जा सकता है। गौतम बुद्ध का जन्म चौथी शताब्दी ईसा पूर्व माना जाता है। उनके धर्म प्रचार के साथ-साथ कला-विकास के बौद्ध साहित्य में उल्लेख प्राप्त होने लगते हैं। दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व तक वैदिक साहित्य की रचनायें समाप्त हो जाती है और उसका स्थान बौद्ध धर्म ले लेता है। इस समय की चित्रकला के प्रमाण उपलब्ध नहीं है और जो चित्र प्राप्त हैं वे साधारण स्तर के हैं। यह चित्र आज जोगीमारा की गुफाओं में ही प्राप्त हैं अन्यथा इस काल की चित्रकला का अनुमान लगाने के लिये साहित्यिक प्रसंगों पर निर्भर रहना पड़ता है।

राजवंशों द्वारा संरक्षित चित्रकला

भारतीय राजवंशों के संरक्षण में पल्लवित चित्रकला को बुद्ध के काल (५०० ई० पू०) से आरम्भ करना उचित है। रामायण, महाभारत, बौद्ध तथा जैन साहित्य तथा पुराणों में चित्रकला-विषयक सामग्री का व्यापक भंण्डार भरा पड़ा है। प्राचीन राजवंशों के राज्य में 'सरस्वती-भवन' और चित्रशालाएँ या नाट्यशालायें संरक्षित होती थीं। राज-दरबारों, अन्त:पुरों तथा राज कर्मचारियों में चित्रकला के लिए निष्ठा पायी जाती थी।

बुद्ध से अशोक तक (५००-२३२ ई० पू०)

बुद्ध के समय के अनेक गणतंत्रों के इतिहास का परिचय मिलता है। कपिल वस्तु के शाक्य, सुंभगिरि के मग्ग, अलकप्प के बुली, केशयुत के कालाम, रामगाँव के कोलिय, पावा के मल्ल, कुशीनारा के मल्ल, पिप्पलिवन के मौर्य, मिथिला के बिदेह

और बैशाली के लिच्छवी गणतंत्रीय राज्य थे। गौतम बुद्ध का जन्म शाक्यकुल में हुआ। उनके समय में कौशाम्बी (वत्स), अवन्ति कोशल तथा मगध शक्ति सम्पन्न राज्य थे।

मगध के राजवशं की स्थापना बृहद्रथ ने की। इस वंश का अन्त छठी शताब्दी ई० पू० में हुआ जबकि मगध पर हर्यककुल का बिम्बिसार (५४३-४१६ ई० पू०) राज्य कर रह था। हर्यकवंस के पश्चात मगध पर शिशुनाग वंश का अधिकार हो गया और उसके बाद ४०० ई० पूर्व में महापद्म नाम का एक सैनिक मगध के सिंहासन पर नन्दवंश की प्रतिष्ठा करने में सफल हुआ।

मौर्यवंश—चन्द्रवंश के उपरान्त मौर्यवंश का शासन हुआ (३७४-१९० ई०) मौर्यवंश में चन्द्रगुप्त (३२१-२९७ ई० पूर्व) और अशोक (२७२-२३२ ई० पूर्व) का नाम मुख्य है। अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार से विश्व ख्याति प्राप्ति की। अशोक के समय में स्थापत्य एवं शिल्प का विकास हुआ।

शुंग सातवाहन (१८७-७५ ई० पूर्व)

दूसरी शताब्दी ई० पूर्व के आरम्भ में मौर्य साम्राज्य की शक्ति समाप्त होने लगी और यवनों के आक्रमण ने मौर्य साम्राज्य को निर्बल कर दिया। इसी समय में शुंगवंश के अधिष्ठाता पुष्यमित्र ने मौर्य वंश का अन्त करके शुंगवंश की विजय पताका फहराई।

मौर्य सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए कला (स्थापत्य तथा शिल्प) का माध्यम अपनाया था। शुंगों के काल में यह परम्परा प्रचलित रही इसके साक्षी शुंगकालीन अर्धचित्र हैं। अजंता की शुंगकालीन गुफाओं में उस समय की त्रित्र-कला की उन्नत अवस्था का ज्ञान होता है।

हिन्दू यूनानी युग (२०६-१७५ ई० पूर्व)

भारत की उत्तरी पश्चिमी सीमा पर सिंध, पंजाब तथा गांधार के क्षेत्रों पर २०६-१७५ ई० पूर्व तक दिमित्रिय, युकेतिक और मिनेडर नामक यूनानी शासकों ने राज्य किया। इन शासकों ने भारतीय-यूनानी कला, साहित्य एवं संस्कृति को प्रोत्सा-हन प्रदान किया।

कुषाण वंश (प्रथम शताब्दी ई० पूर्व)

कुषाण राजवंश का संस्थापक कडफिसेस हुआ। उसने प्रथम शताब्दी ई० पूर्व तक राज्य किया। फिर कनिष्क शासक बना (५८ ई० पूर्व सिंहासन पर बैठा)। वह धार्मिक, विद्वत्प्रेमी तथा कालनुरागी शासक था। उसने कनिष्कपुर नगर बसाया और बौद्ध-बिहारों का निर्माण कराया। उसने धार्मिक सुधार किये जिसके फलस्रूप हीन-यान सम्प्रदाय के विरोध में महायान बौद्ध सम्प्रदाय का उदय हुआ। उसके काल में

हिन्दू-यूनानी कला 'गांधार शैली' का प्रचलन हुआ और यह शैली भारतीय रूप धारण करने लगी। कुषाणों के पश्चात् सातबाहनों ने (१००-२७५ ई०) तक दक्षिण में सत्ता प्राप्त की। इस युग में नवीन कला शैलियों का जन्म हुआ।

जोगीमारा की गुफा

जोगीमारा की गुफा मध्य प्रदेश की सरगुजा रियासत के अन्तर्गत स्थित थी। यह गुफा अमरनाभ नामक स्थान में नर्मदा के उद्गम पर स्थित है। अमरनाथ रामगढ़ की पहाड़ियों पर स्थित है और एक तीर्थ स्थान है। इस गुफा तक पहुँचने के लिये अभी पूर्ण सुविधा नहीं हैं और हाथी पर सवार होकर यात्रा करनी पड़ती है। इस गुफा के समीप ही सीताबोंगा या सीतालांगड़ा गुफा है जो एक प्रेक्षागृह थी। कहा जाता है कि इस गुफा के प्रेक्षागृह में जो नटी अभिनय करती थी जोगीमारा गुफा उसका ही निवास स्थान है। चित्रों के विषय देखने से ज्ञात होता है कि यह गुफा सम्भवतः वरुण देवता का मन्दिर थी और जैन धर्म का इसकी कला पर प्रभाव पड़ा था। इस गुफा में उत्कीर्ण लेखों के अध्ययन से यह अर्थ निकाला गया कि यह गुफा वरुण देवता का मन्दिर थी और एक देवदर्शनी या देवदासी देवता की सेवा में यहां रहती थी। डा० ब्लाख के अनुसार इस गुफा के लेख तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के हैं। यहाँ के चित्रों की शैली समकालीन भरहुत और सांची की मूर्तिकला से मिलती जुलती है, इस कारण इन चित्रों का सम्भावित समय दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व (मौर्य काल) है, परन्तु यह चित्र किसी प्रकार से प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के बाद के नहीं हैं। १९१४ ई० में स्व० असित कुमार हाल्दार तथा क्षेमेन्द्र नाथ गुप्त ने जोगीमारा के चित्रों का अध्ययन किया और इनके संबंध में विवरण प्रस्तुत किये।

इस गुफा के भितिचित्र ऐतिहासिक काल की भारतीय चित्रकला के प्राचीनतम उदाहरण हैं। सूक्ष्मता से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इन चित्रों को पुनः ऊपर से रंग कर सुधारने की निष्फल-चेष्टा की गई है। ऊपर से लगाये रंग तथा रेखायें अलग दिखाई पड़ती है। इस गुफा के चित्रों के विषय बहुत रोचक हैं। यह गुफा बहुत छोटी है। इसकी लम्बाई दस फुट और चौड़ाई तथा ऊंचाई छः-छः फुट है और छत को एक आदमी खड़ा होकर सरलता से छू सकता है, इस कारण बहुत से चित्र नष्ट हो गये हैं। यहां पर सर्वप्रथम छत पर पलास्तर चढ़ाकर विधिवत् भित्तिचित्रण प्रणाली में चित्र बनाये गये हैं। यह पर पशु-पक्षी, स्त्री पुरुष, मकान, तालाब, पुष्प आदि वस्तुओं का अंकन श्वेत, लाल तथा काले रंगों से किया गया है। इन चित्रों से उस समय की विकसित सभ्यता का ज्ञान होता है। कुछ विद्वानों ने इन चित्रों की परम्परा को ही अजंता की आरम्भिक भित्तिचित्रण शैली का प्रेरक माना है। यह गुफा-चित्र वैदिक काल के अन्तर्गत आ जाते हैं।

जोगीमारा गुफा के चित्र

स्व० असित कुमार हाल्दार ने इस गुफा में प्राप्त सात चित्रों के खण्डित अव-

शेषों का वर्णन दिया है।[1] कुछ लेखकों ने सातवें चित्र को दो भागों में बाँटा है। इस प्रकार उन्होंने ग्राठ चित्र माने हैं। यह चित्र ऐकेन्द्रिक वृत्तों में बनाये गये हैं। सर्व प्रथम भारतीय चित्रकला में जोगीमारा की गुफा में छतों पर बने चित्रों के उदाहरण प्राप्त होते हैं ग्रौर भित्तिचित्रों की निर्माण तकनीकी का श्रीगणेश या नवीन ग्रध्याय इसी गुफा में ग्रारम्भ होता है।

जोगीमारा के भित्तिचित्र

(१) इस दृश्य के कुछ ग्रादमियों की ग्राकृतियाँ, तथा हाथी ग्रंकित किये गये हैं। इस चित्र में नदी के जल का ग्रंकन लहरदार रेखाग्रों से किया गया है। इस जल में एक बड़ी सील मछली बनायी गयी है। कदाचित यह मछली नहीं मगर है ग्रौर यह चित्र गज-ग्रह की पौराणिक कथा से सम्बन्धित है।

(२) इस चित्र में कुछ व्यक्ति एक वृक्ष के नीचे बैठे विश्राम कर रहे हैं। इस वृक्ष में केवल तीन-चार डालियों में एक दो पत्तियां हैं जो लाल रंग से बनायी गयी हैं वृक्ष का तना मोटा तथा सरल है।

(३) इस चित्र में सफेद पृष्ठभूमि पर काली रेखाग्रों के द्वारा एक बाग का दृश्य ग्रंकित किया गया है। इस चित्र में लाल लिली (कुमुदिनी) के पुष्प बनाये गये हैं। एक युगल इन पुष्पों के ऊपर नृत्य कर रहा है। यह युगल लाल रंग से बनाया गया है।

(४) इस चित्र में गुड़िया जैसे बौने ग्राकार से ग्रनुपात रहित मनुष्य चित्रित हैं। इस चित्र में एक मनुष्य के सर पर चोंच बनायी गई है। बौनों के ग्रंकन की परम्परा भारतीय मूर्ति तथा चित्रकला में बहुत प्राचीन है।

(५) इस दृश्य में एक स्त्री लेटी है (सम्भवत: नृतकी है) ग्रौर उसके चारों ग्रोर गायन-वादन में रत कुछ ग्रन्य मानव ग्राकृतियां पाल्थी मारे बैठी बनायी गयी हैं। इन चित्र की रेखायें ग्रजंता के ग्रारम्भिक चित्रों के समान हैं।

(६) इस चित्र में प्राचीन ढंग के रथों जैसे चैत्यों का ग्रंकन दिखाई पड़ता है।

(७) इस दृश्य की ग्रीक रथों के समान भवन बनाये गये हैं। यह चित्र तथा इसके ग्रागे का ग्रधिकांश भाग नष्ट हो गया है ग्रत: ग्रधिक ग्रनुमान लगाना कठिन है।

डा० ब्लाख तथा विसेन्ट स्मिथ ने इन्हीं चित्रों का वर्णन भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया है। स्मिथ ने सम्पूर्ण चित्रों में से चार सबसे ग्रधिक सुरक्षित चित्रों का वर्णन दिया है जो निम्न प्रकार से है—

1. 'ग्रार्ट एण्ड ट्रेडीसन'—ले० ग्रसित कुमार हाल्दार ।
2. 'फाइन ग्रार्ट इन इण्डिया एन्ड सीलोन'—ले० विसेन्ट स्मिथ, पृष्ठ ८६।

(अ) केन्द्र में एक वृक्ष के नीचे पुरुषाकृति बैठी बनाई गई है, उसके साथ में नृतकियां तथा गवैये बांई ओर बैठे बनाये गये हैं। दाहिनी ओर एक जलूस बनाया गया है जिसमें एक ही हाथी है।

(ब) इस पैनल में कई पुरुषाकृतियां, एक रथ का पहिया या चक्र और ज्यामितिक अलंकरण अभिप्राय बनाये गये हैं।

(स) इस पैनल के आधे भाग में केवल अस्पष्ट पुष्पों, घोड़ों और वस्त्रधारी पुरुषों के चिन्ह हैं। पैनल के दूसरे आधे भाग में वृक्ष है जिस पर एक चिड़िया बैठी है और एक नग्न लड़का उसकी शाखाओं में है। इस पेड़ के चारों ओर अनेक नग्न आकृतियाँ जमा है जिनने बाल सर के बांई ओर कस कर गांठ में बंधे हुए बनाये गये हैं।

(द) इस पैनल के आधे भाग में ऊपर एक नग्न पुरुषाकृति पाल्थी मारे बैठी बनाई गई है और तीन वस्त्रधारी पुरुष खड़े हैं। इसी प्रकार की दो अन्य बैठी आकृतियां और एक ओर तीन खड़ी आकृतियां बनाई गयी हैं। नीचे की ओर एक मकान है जिसमें नाल-आकार की चैत्य जैसी खिडकी का प्रयोग है। इस मकान के सामने एक हाथी तथा तीन वस्त्रधारी पुरुष खड़े बनाये गये हैं। इस दल के पास तीन घोडों का रथ है जिसमें छत्र लगा है और दूसरा हाथी एक परिचारक सहित खड़ा है। इस पैनल के दूसरे आधे भाग में भी इसी प्रकार की आकृतियां हैं।[1]

जोगीमारा की गुफा में तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के और कुछ बाद के लेख हैं। अतः यह चित्र भी प्राचीन मानना चाहिए परन्तु इन चित्रों का समय पाश्चात्य विद्वानों ने प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व माना है। इस गुफा के चित्रों के आधार पर चित्रों का विषय डा० ब्लाख ने ग्रीक, श्री रायकृष्णदास ने जैन और स्व० असित-कुमार हाल्दर ने रायगढ़ के प्राचीन मन्दिरों में रहने वाली देव दासियों के विषयों से मिलते-जुलते माने हैं।

जोगीमार गुफा के चित्रों की विशेषताएं

इन चित्रों की बौनों जैसी आकृतियों की बनावट तथा शैली भरहुत शैली की मूर्तियों से मिलती-जुलती है। सांची की मूर्ति-शैली का इन चित्रों पर पर्याप्त प्रभाव है, इस कारण इनको स्मिथ ने प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व से पहले का माना है।

चित्रों को चूने से पुते सफेद धरातल पर बनाया गया है। इन चित्रों में काले 'हर्रा फल' से बने वनस्पतिक रंग तथा लाल, पीले एवं सफेद खनिज रंगों का प्रयोग है। इन चित्रों की सीमा रेखायें लाल रंग से बनाई गई हैं। आँखें सफेद तथा बाल काले रंग से बनाये गये हैं। चित्रों के विभाजन के लिये बनाये गये हाशिए में पीले रंग का प्रयोग है।

---

1. फाईन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सीलोन'—ले० विंसेन्ट स्मिथ, पृष्ठ ८६।

पूर्व बौद्धकाल

पूर्व बौद्धकाल में चित्रकला का विशेष विकास प्रमाणित नहीं है क्योंकि भगवान बुद्ध ने स्वयं अपने अनुयाईयों को चित्रकला की ओर प्रवृत न होने का उपदेश दिया। इस काल की चित्रकला के प्रमाण नहीं प्राप्त हैं, और केवल इस काल के बौद्ध साहित्य से ही चित्रकला के प्रचलन का ज्ञान होता है।

वैदिक तथा पूर्व-बौद्ध कालीन साहित्य में चित्रकला का उल्लेख

अनुमानतः जोगीमारा के अतिरिक्त और भी चट्टानें काट कर गुफा मन्दिरों का निर्माण किया गया होगा और इनको भित्तिचित्रों से सजाया गया होगा परन्तु भारतवर्ष की अत्यधिक वर्षामय जलवायु के कारण वह नष्ट हो गये होंगे। इस समय भवनों या मकानों के निर्माण में कच्ची ईटों तथा लकड़ी का प्रयोग किया जाता था जिसके कारण यह भवन शीघ्र नष्ट हो गये होंगे। ऐसा अनुमान है कि इन मकानों की दीवारों का धरातल पलास्तर से लेप दिया जाता था और प्रायः चित्रों से भित्तियों को सजाया जाता था, परन्तु इस समय के भवनों में स्थायत्व नहीं था, इस कारण इन भवनों में से किसी के भी अवशेष प्राप्त नहीं हो सके हैं, जिनसे चित्रकला का समुचित ज्ञान प्राप्त हो सके। इस समय की जोगीमारा गुफा की चित्रकारी के उदाहरणों से यह अनुमान होता है कि वह प्रागैतिहासिक पाषाण-युग की असंयत चित्रकला के समान ही अविकसित रूप में थी। दूसरी ओर कुछ ऐसे साहित्यिक प्रसंग प्राप्त होते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि ईसा से कई शताब्दी पूर्व ही भारतवर्ष में चित्रकला खूब विकसित हो चुकी थी। परन्तु रायगढ़ पर्वत की जोगीमारा गुफा की चित्रकला से इन लिखित प्रमाणों की पुष्टी नहीं होती क्योंकि इन चित्रों की कला साहित्य में वर्णित चित्रकला से सर्वथा निम्न कोटि की है। यह सम्भव हैं कि जोगीमारा गुफा के चित्र इस समय के प्राप्त साहित्य में वर्णित उच्च स्तर की चित्रकला की विशेषताओं के निकटवर्ती चिन्ह हों। अतः इस समय की चित्रकला का अध्ययन करने के लिए वैदिक साहित्य तथा प्राचीन बौद्ध साहित्य में प्राप्त चित्रकला सम्बन्धी उल्लेखों को देखा जाए। इस समय के ग्रन्थों तथा महाकाव्यों में स्थान-स्थान पर चित्रकला का उल्लेख आया है।

'चित्रलक्षण'—चित्रकला के जन्म के सम्बन्ध में भारतवर्ष में एक सुन्दर पौराणिक कथा परम्परागत रूप से प्रचलित है जिसका चित्रलक्षण नामक ग्रन्थ में संकलन किया गया है। यह ग्रन्थ तिब्बत से तंजूर ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्रकाशित किया गया है।[1] यह ग्रन्थ तीन अध्याय तक ही प्राप्त है। इसके अध्ययन से स्पष्ट

---

१. 'भारतीय चित्रकला'—ले० वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ ३८।

टिप्पणी—इस ग्रन्थ के संकलन का समय छठी शताब्दी ई० के आस-पास माना जाता है।

है कि यह अपूर्व रचना है । इस ग्रन्थ के मंगलाचरण में यह कथा बताई गयी है कि यह ग्रन्थ विश्वकर्मा तथा राजा नग्नजित् (गांधार-सीमा प्रान्त) द्वारा निर्दिष्ट चित्र-कला के लक्षणों का संग्रह है । इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय से ज्ञात होता है कि राजा नग्नजित् विश्वकर्मा का शिष्य था और ब्रह्मा के समक्ष जब इस राजा ने चित्रविद्या की दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की तो ब्रह्मा ने उसे विश्वकर्मा के पास भेज दिया । विश्वकर्मा ने उसको चित्रविद्या में प्रशिक्षित किया ।

चित्रकला की उत्पत्ति की कथा—इसी ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में चित्रकला की उत्पत्ति की कथा आती है—'पुराकाल में राजा भयजित् के राज्य में अकस्मात एक ब्राह्मणपुत्र की मृत्यु हो जाती है । पुत्रशोक से व्याकुल ब्राह्मण राजा के पास गया और उसने राजा को यह प्रताड़ना दी कि यदि वह क्षत्रिय है और धर्म तथा ब्राह्मण पर उस को विश्वास है तो वह उसके मृतपुत्र को जीवन दे । यह सुनकर धर्मात्मा राजा दुखी हुआ । उसने योगवल से यमराज को प्राप्त किया और मृत ब्राह्मण-पुत्र को जीवित करने की याचना की । प्रार्थना अस्वीकार होने पर यमराज से राजा का युद्ध हुआ और यमराज की पराजय हुई । अन्त में ब्रह्मा स्वयं प्रकट होते हैं और भयजित् से मृत पुत्र का चित्र अंकित करने का आदेश देते हैं । इस चित्र में ब्रह्मा ने जीवन संचार कर दिया और ब्रह्मा ने भयजित् से कहा 'तुमने नग्न प्रेतों पर विजय प्राप्त कर ली है अतः आज से तुम्हारा नाम नग्नजित् हुआ । तुम्हारी यह रचना सृष्टि का पहला चित्र है । मृत्यु लोक में इस कला के तुम पहले आचार्य माने जाओगे और तुम्हारी पूजा होगी ।'

'चित्रलक्षण' नामक ग्रन्थ में चित्रकला के तत्वों पर प्रकाश डाला गया है । विभिन्न आकृतियों के अनुपातों तथा रचना विधि की इस ग्रन्थ में पर्याप्त चर्चा की गई है ।

ऋग्वेद—ऋग्वेद में चमड़े पर बने अग्नि देवता के चित्र का उल्लेख आया है ।[1] इस चित्र को यज्ञ के समय लटकाया जाता था और यज्ञ की समाप्ति पर लपेट लिया जाता था । इसी ऋग्वेद में भृगु ऋषि के वंशजों को लकड़ी के काम में दक्ष बताया गया है । ऋग्वेद में यज्ञशालाओं के चारों ओर की चौखटों पर बनी स्त्रियों की आकृतियों का भी उल्लेख आया है । यह देवियां उषा तथा रात्रि की प्रतीक थीं ।

महाभारत (६०० ई० पू० से ५०० ई० पू०)—महाभारत में उषा-अनिरुद्ध की एक सुन्दर प्रेम-कथा के प्रसंग में चित्रकला का उल्लेख आया है । राजकुमारी उषा ने स्वप्न में एक सुन्दर युवती को अपने साथ वाटिका में बिहार करते देखा और वह उससे प्रेम करने लगी । अतः प्रातः जागकर राजकुमारी उषा युवराज की स्मृति में दुखी होकर एकान्त में चली गयी । जब उसकी परिचारिका 'चित्रलेखा'

1. ऋग्वेद—१ । १ । ४५ ।

(चित्रलेखा का अर्थ है एक चित्र) को इस घटना का ज्ञान हुआ हुआ तो उसने समस्त - देवताओं, महापुरुषों तथा उस समय के युवराजों के छवि-चित्र स्मृति के आधार पर बनाकर उषा के सम्मुख प्रस्तुत कर दिये। उषा ने स्वप्न में देखे राजकुमार का चित्र पहचान लिया। यह चित्र कृष्ण के प्रपौत्र अनिरुद्ध का था और इस प्रकार दुखी राजकुमारी यह व्यक्तिचित्र देखकर प्रसन्न हो उठी। इसी प्रकार की और भी कथायें हैं जिनमें स्मृति से व्यक्ति-चित्र बनाने की चर्चा आई है। लॉफिर (Laufer) का कहना है कि भारतवर्ष में चित्रकला का जन्म राजाओं के दरबारों में हुआ और पुजारियों के प्रभाव-स्वरूप नहीं।[1]

महाभारत में सत्यवान के द्वारा बाल-काल में एक घोड़े का भित्ति पर चित्र अंकित करने का प्रसंग आता है। पुन: महाभारत के सभापूर्व में धर्मराज युधिष्ठिर की सभा का रोचक वर्णन आया है। इस वर्णन से प्रतीत होता है कि स्थापत्य के साथ चित्रकला का भी विशेष स्थान था। इस सभाभवन की दीवारों पर चित्र अंकित थे। इस भवन में एक दीवार पर एक ऐसा चित्र अंकित किया गया था कि जिसमें एक सच्चा रहस्यमय दरवाजा खुला हुआ दिखाई पड़ता था। इस अनोखे भवन को मयसुर ने बनाया था।

रामायण (६०० ई० पू० से ५०० ई० पू०)—रामायण काल में चित्र, वास्तु एवं स्थापत्य कलाओं का पूर्ण विकास हो चुका था। महामुनि ने बालकाण्ड के छठे सर्ग में अयोध्या वर्णन के साथ अंगराग, केशसज्जा, स्त्रियों के कपोलों पर पत्रावली का शृंगार, राजमहलों, रथों तथा पशुओं की साज-सज्जा का जो उल्लेख दिया है, उससे समाज में प्रचलित कला के उच्च स्थान और व्यवहारिक रूप की प्रतिष्ठापना होती है। रामायण में राम का संगीत, वाद्य तथा चित्र आदि मनोरंजन-साधनों का ज्ञाता बताया है। अवश्मेघ यज्ञ के समय राम ने अपनी सहधर्मिणी सीता की स्वर्ण प्रतिमा का निर्माण कराया था। यह प्रतिमा मय नामक शिल्पी ने बनायी थी। रावण की लंकापुरी में सीता की खोज के समय हनुमान को एक चित्रदीर्घा तथा चित्रित क्रीड़ागृह देखने को मिले थे। रानी कैकेयी के चित्रित भवन की चर्चा से भी कला रुचि का ज्ञान होता है। वाली तथा रावण के शवों के लिये जो पालकियाँ बनवाई गयी थीं वह चित्रित की गयी थीं। रावण के पुष्पक-विमान को भी चित्र सज्जा से युक्त बताया गया है। इस युग में हाथियों के मस्तकों पर और सुन्दरियों के कपोलों पर चित्रकारी की जाती थी। राम के राजप्रसाद की दीवारों पर भित्ति-चित्रों की रचना की गयी थी।

अष्टाध्यायी—व्याकरण आचार्य पाणिनि (८०० ई० पू० से ५०० ई० पूर्व) की रचना अष्टाध्यायी में राज्यों के अंक और लक्षणों के प्रसंग में पशु, पक्षी, पुष्प,

1. 'इन्डियन पेन्टिङ्ग'—ले० परसी ब्राउन, पृष्ठ २०।

वृक्ष, पर्वत आदि के लक्षणों की चर्चा की गयी और उनकी अंकन विधि बताई गई है।

नाट्यशास्त्र— आचार्य भरत मुनि (प्रथम शताब्दी ई० पू०) के 'नाट्यशास्त्र' में निश्चित ही कलाओं के सम्बन्ध में पर्याप्त चर्चा की गई है। सर्वप्रथम कला शब्द का प्रयोग इसी ग्रन्थ में किया गया और रंगों की मिश्रण सम्बन्धी अनेक विधियों पर प्रकाश डाला गया है। रंगों द्वारा भावाभिव्यक्ति तथा रंगों के मन पर पड़ने वाले प्रभाव की इस ग्रन्थ में चर्चा की गई है। इस ग्रन्थ में लाल, पीले, तथा श्याम रंग को मूल माना गया है--इस नाट्यशास्त्र के अनुसार सफेद रंग के परस्पर योग से अनेक रंग बनते हैं।

मेघदूत तथा रघुवंश—महाकवि कालीदास (प्रथम शताब्दी ई० पू०) द्वारा रचित 'मेघदूत' नामक ग्रन्थ में विरहणी यक्षणी द्वारा अपने प्रवासी स्वामी यक्ष का चित्र बनाने की चर्चा आई है। कालीदास की रचनाओं से स्पष्ट है कि उस समय स्त्री तथा पुरुष दोनों चित्रकारी (चित्रकर्म) करते थे। उस समय चित्रों के द्वारा प्रेम संदेश भी भेजे जाते थे। समाज में देव-चित्र पूजित थे और विवाह सम्बन्धों के अवसर पर उनका विशेष स्थान था। राजाओं के महल तथा नागरिकों के आवास-गृह चित्रों से सुसज्जित रहते थे।

रघुवंश में अयोध्यानगरी के चित्रित राज-प्रसादों का इस प्रकार उल्लेख आया है—'वहाँ के प्रसादों में कमल-वन के मध्य क्रीड़ा करते हाथियों तथा हथनियों को चित्रित किया गया था। ये चित्र इतने सजीव थे कि कालरूपी सिंहों ने इनको असली हाथी समझ कर अपने नाखूनों से इनके वक्षस्थल विदीर्ण कर डाले।'

विनयपिटक—पाली भाषा के बौद्ध ग्रन्थ 'विनयपिटक' (४००ई०पू० से ३०० ई० पू०) में राजा पसेनिद के चित्रित रंग-महलों का वर्णन आया है। इन महलों में बड़े-बड़े चित्रकार भी थे, जो रंगीन आकृतियों तथा अलंकारिक आलेखनों से सुसज्जित थे। इनको देखने के लिए दर्शकों की भीड़ लगी रहती थी।

थेराथेरी गाथा (४०० ई० पू० से ३०० ई०पू०)—इस गाथा में राजा बिम्बसार (५४३-४१६ ई० पू०) के द्वारा राजा तिस्स को भगवान बुद्ध की जीवनी के आधार पर चित्रित एलबम (चित्राधार) भेंट करने प्रसंग का आया है।

भगवान बुद्ध के उपदेशों में भी इस प्रकार का उल्लेख आया है कि जब उन्होंने अपने अनुयाइयों को चित्रकला में न प्रवृत होने का उपदेश दिया तब उन्होंने चित्र रचना के सम्बन्ध में कुछ सीमायें निश्चित कर दी थीं जिनका भिक्षुगण अतिक्रमण न कर सकें। इससे प्रतीत होता है कि भगवान बुद्ध के छवि-चित्र उनके जीवनकाल में ही बनाये जाने लगे थे और चित्रकला का अत्यधिक प्रसार हो गया था।

दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के साहित्य से ज्ञात होता है कि उस समय समाज

का चित्र-कला से घनिष्ट सम्बन्ध था। वर या वधु की अनुपस्थिति में उनके चित्र बनाकर विवाह संस्कार सम्पन्न कर दिया जाता था। महाभाष्य में भी कृष्ण लीला के चित्रों का उल्लेख आया है।

उम्मग जातक—'उम्मग जातक' में भी चित्रों का यथोचित वर्णन है। इन चित्रों का उल्लेख सभामंडपों, राजप्रसादों एवं चित्रित सुरगों या चित्रागारों के सम्बन्ध में आया है। उम्मग जातक पें एक चित्रागार का वर्णन है जिसमें चतुर चितेरों ने इन्द्र, सुमेरू, चारों महाद्वीप, समुद्र, हिमालय, सूर्य, चारों दिग्पाल, सरोवर तथा सात भुवनों इत्यादि के चित्र बनाये थे, इस कारण यह गुफा देवताओं की सभा सुधर्मा के समान प्रतीत होती थी।

तारानाथ के उल्लेख—सोलहवीं शताब्दी के तिब्बती बौद्ध इतिहासकार लामा तारानाथ ने भारत के कला-कौशल को बहुत प्राचीन माना है और भगवान बुद्ध से पूर्व का बताया है। भगवान बुद्ध का जन्म ५५७ ई० पूर्व तथा मृत्यु का समय ४७७ ई० पूर्व माना जाता है। इस समय भित्ति-चित्रण-कला में विकास हुआ। इस कला को देवताओं की कला माना गया है। 'यक्ष' चित्र बनाया करते थे। यक्ष शब्द का साहित्यिक अर्थ है 'दिव्य व्यक्ति या आत्मा'। यह कलाकार दैवी प्रेरणा से प्रेरित थे और इन चित्रकारों को अशोक ने ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व अपने महलों के अलंकरण हेतु नियुक्त किया। बाद में २०० ई० पूर्व में नागार्जुन की अध्यक्षता में नागा चित्र कारों ने चित्र बनाये। यक्ष कलाकारों को देवता और नागा कलाकारों को अर्ध-मानव तथा अर्ध-देवता माना गया है। आज भी भारतवर्ष के कारीगर (शिल्पी) अपने आप को किसी न किसी देवता का वंशज मानते हैं। अधिकाँश उच्च स्तर के शिल्पी अपने लिये विश्वकर्मा की संतान मानते हैं।

वात्स्यायन का कामसूत्र—जिस समय भारतीय कला का सर्वाङ्गीण विकास हो रहा था उसी समय चित्रकला के 'षडाङ्ग भेद' का वात्स्यायन ने अपने अमूल्य ग्रन्थ 'कामसूत्र' में विवेचन किया। 'कामसूत्र' ६००-२०० ई० की रचना है। इसके तीसरे अध्याय में ६४ कलाओं का उल्लेख दिया गया है और आलेख (चित्रकला) के षड़ांगों पर प्रकाश डाला है। यह ६४ कलायें सभी नागरिकों को जानना चाहिये। इन कलाओं की सूची निम्न प्रकार है—

(१) संगीत, (२) वाद्य-वादन, (३) नृत्य, (४) चित्रकारी, (५) पत्तियों को काटकर आकृतियाँ बनाना या तिलक लगाने के लिये सांचे बनाना, (६) पूजन के लिए जौ, चावल तथा पुष्पों को सजाना, (७) कक्षों तथा भवनों को पुष्पों से सजाना, (८) दांत, वस्त्र और शरीर को रंगना, (९) फर्श की मणि-मोतियों से जटित करना, (१०) शैय्या सजाना, (११) पानी में ढोलक जैसी ध्वनि उत्पन्न करना, (१२) पानी की चोट मारना या पिचकारी चलाना, (१३) शत्रु का विनाश करने के लिये विभिन्न योग (१४) चढ़ाने तथा पहनाने के लिए पुष्प मालायें बनाना, (१५) शेखरक तथा

ग्रपीड़ ग्राभूषणों को यथा स्थान धारण करना, (१६) ग्रपने शरीर को पुष्पों तथा ग्रलंकारों से सुसज्जित करना, (१७) शंख, हाथी-दाँत ग्रादि के कर्ण-ग्राभूषण गढ़ना, (१८) सुगंधित धूप बनाना, (१९) ग्राभूषण तथा ग्रलंकार धारण करने की कला, (२०) जादू का खेल दिखाकर दृष्टि को भ्रम देना, (२१) बल-वीर्य वृद्धि के लिए ग्रौषधि निर्माण, (२२) हाथ की सफाई दिखाना, (२३) ग्रनोखे भोजन—शाक, रस, मिष्ठान ग्रादि बनाना, (२४) नाना प्रकार के पेय रस बनाना, (२५) सुई के कार्य में दक्षता, (२६) सूत कातना, (२७) वीणा डमरू ग्रादि वाद्यों को बजाना, (२८) पहेलियां पूछना, (२९) श्लोक पाठन की रीति, (३०) कठिन ग्रर्थ ग्रौर जटिल उच्चरण वाले वाक्यों का पाठन, (३१) ग्रन्थ का वाचन (३२) नाटकों तथा ग्राख्या-यिकायों (कहानियों) में निणपुता, (३३) समस्या पूर्ति, (३४) छोटे उद्योगों में निपु-णता, (३५) लकड़ी या धातु ग्रादि की वस्तु बनाना, (३६) बढ़ईगीरी, (३७) वस्तु विद्या, (३८) सिक्कों तथा रत्नों की परख, (३९) धातु मिश्रण तथा शोधन कला, (४०) मणि, स्फटिक ग्रादि रंगने की विधि का ज्ञान, (४१) वृक्ष तथा कृषि विद्या, (४२) मेढ़े, मुर्गे तथा तीतरों की लड़ाई कराने की विधि, (४३) शुकसारिका को बोलना सिखाना, (४४) शरीर दबाने का कौशल तथा केश मलना, (४५) ग्रक्षरों को संबद्ध करना, ग्रौर ग्रर्थ निकालना, (४६) सांकेतिक वाक्य रचना (४७) देश-विदेश की भाषाग्रों का ज्ञान, (४८) शकुनों का ज्ञान, (४९) पुष्पों की गाड़ी बनाना, (५०) कलें बनाना, (५१) स्मृति को प्रखर बनाने की कला, (५२) स्मृति-ध्यान सम्बन्धी कला, (५३) मन से श्लोकों तथा पदों की पूर्ति, (५४) कवय, (५५) कोष तथा छन्द ज्ञान, (५६) काव्य ग्रलंकार का ज्ञान, (५७) रूप ग्रौर बोली का छल, (५८) वस्त्रों से गुप्तांग को छिपाना, (५९) विशेष जुग्रा, (६०) पासों का खेल, (६१) बाल क्रीडा, (६२) विनयपूर्वक शिष्टाचार प्रदर्शित करना, (६३) शास्त्र-विद्या, (६४) व्यायाम, ग्राखेट ग्रादि की विद्याएं।

कामसूत्र के उपसंहार भाग में एक श्लोक से स्पष्ट है कि वात्स्यायन ने ग्रपने से पूर्व के शास्त्रों का संग्रह करके ग्रौर शास्त्रोक्त विद्याग्रों का प्रयोग का पालन करके बड़े यत्न से उनको सक्षेप में 'कामसूत्र' नामक ग्रन्थ में प्रस्तुत किया। इससे स्पष्ट है कि यह ६४ कलाग्रों की तालिका तथा चित्र रचना के सिद्धात उस समय के समाज में प्रचलित थे। जिन ग्रन्थों के ग्राधार पर 'कामसूत्र' की रचना की गई वे सब ही ग्राज लुप्त हो चुके हैं।

चित्रकला के छः ग्रंग -- जयपुर नरेश जयसिंह प्रथम की सभा के राज पुरोहित पण्डित यशोधरा ने ११ वीं शताब्दी में कामसूत्र की टीका 'जयमंगला' नाम से प्रस्तुत की। 'कामसूत्र' के प्रथम ग्रधिकरण के तीसरे ग्रध्याय की टीका करते हुए यशोधर ने ग्रालेख्य (चित्रकला) के छः ग्रंग बताये हैं जो निम्न हैं —

(१) रूप भेद —दृष्टि का ज्ञान)

(२) प्रमाण —(ठीक अनुपात, नाप तथा बनावट)
(३) भाव —(आकृतियों में दर्शक को चित्रकार के हृदय की भावना दिखाई दे)
(४) लावण्य योजना — (कलात्मकता तथा सौन्दर्य का समावेश)
(५) सादृश्य —(देखे हुए रूपों की समान आकृति)
(६) वर्णिका भंग —(रंगों तथा तूलिका के प्रयोग में कलात्मकता)

कामसूत्र में उपरोक्त छ: अंगों को निम्न श्लोक में प्रस्तुत किया गया है—

श्लोक—रूपभेदा: प्रमाणानि भाव, लावण्य, योजनम् ।
सादृश्यं वर्णिका भंग इति चित्र षड़ंगकम् ।। (कामसूत्र)

प्राचीन भारतीय कला में इन छः अंगों का पालन आवश्यक समझा जाता था। अजंता, बाघ आदि की चित्रकारी में चित्रकला के इन छः अंगों या षडांगों का पालन किया गया हैं। कला सिद्धान्तों के अनुसार षडांगो का ठीक प्रदर्शन किये बिना चित्र निर्जीव रहता है। इन छः अंगों का संक्षेप में विवेचन इस प्रकार है—

रूपभेद—प्रत्येक आकृति में ऐसी भिन्नता या चारित्रिक विशेषता प्रदर्शित होनी चाहिए कि जिससे अमुक आकृति को पहचाना जा सके। जिस विशेषता या गुण के द्वारा आकृति में सत्य की अभिव्यक्ति हो उसी गुण का नाम 'रूप' है। जैसे माता के रूप से माता और धाय-धाय के रूप से धाय-धाय का आभास हो तब ही रूप रचना सार्थक और सत्य होगी।

रूप का साक्षात्कार आत्मा तथा आंखों दोनों के द्वारा किया जा सकता है। चक्षुओं के द्वारा हम किसी वस्तु की लम्बाई, चौड़ाई, छोटापन, मोटापन पतलापन, सफेदी या कालेपन का ज्ञान प्राप्त करते हैं किन्तु उस वस्तु में निहित व्यापक सौन्दर्य को हम आत्मा के द्वारा ग्रहण कर सकते हैं। नेत्रों का सम्बन्ध प्रथम रूप से होने के पश्चात ही शनै: शनै: आत्मा का सम्बन्ध स्थापित होता है। भिन्न-भिन्न कलाकार रूप का साक्षात्कार अपनी-अपनी ज्ञान इन्द्रियों की शक्ति के आधार पर भिन्न-भिन्न प्रकार से करते हैं। इसीलिए एक ही वस्तु से कई कलाकारों के द्वारा बनाए हुए चित्र भिन्न आकार, प्रकार तथा अनुपात के होंगे।

किसी भी कृति की परख चाहे आंख से करें या मस्तिष्क द्वारा करें दोनों दशाओं में रूचि का होना आवश्यक है। जब हम किसी वस्तु या कृति को देखते है तो उसके रंग, अनुपात, आकार तथा प्रकार में हमारी रुचि विलीन हो जाती है तभी हम उस वस्तु का वास्तविक आनन्द ग्रहण करते हैं। इस रुचि के आधार पर ही हम रूप को शुभ या अशुभ रूप में ग्रहण करते हैं। किसी भी कलाकृति में रूपरेखा जितनी

सरल तथा स्वाभाविक होगी चित्र उतना ही उत्तम होगा। किसी भी कृति में यह गुण समाविष्ट होने पर भिन्न-भिन्न रुचि के मनुष्य आनन्द ग्रहण कर सकते हैं।

प्रमाण—प्रमाण का अर्थ है आकृतियों के अनुपात का ठीक ज्ञान। प्रमाण के अन्तर्गत आकृतियों के माप लम्बाई-चौड़ाई, सीमा, रचना, कद, कौंड़ा आदि आकृति का विवरण आ जाता हैं। प्रमाण के द्वारा मूल वस्तु का ज्ञान चित्र में भरा जा सकता हैं। अनुपात के उचित ज्ञान को 'प्रमा' के नाम से सम्बोधित किया गया है। किसी विशाल पर्वतमाला या सागरतट को किसी दीवार के धरातल पर अंकित करने से पहले पर्वत, आकाश, वृक्ष या सागर, नौका, तट आदि के लिए अनुपातानुसार छोटा करके यथास्थान अनुपात में रखना होगा। यही हमारी प्रमा शक्ति का कार्य माना गया है। प्रमा इस अनन्त सृष्टि या सीमित जगत को मापने, देखने, समझने के लिए हमारे अन्तःकरण का माप दण्ड है। प्रमा से न केवल निकट या दूरी का ज्ञान होता है बल्कि किसी वस्तु का कितना भाग चित्र में प्रस्तुत करें जिससे चित्र आकर्षक लगे इसका भी प्रमा ही निर्धारण करती है। प्रमा के द्वारा ही हम पुरुष तथा स्त्री अनुपात की विभिन्नता, पशु, पक्षी आदि की भिन्नता तथा भेदों को ग्रहण करते हैं। पुरुष तथा स्त्री की लम्बाई-चौड़ाई में भेद, उनके अंगों की रचना किस क्रम से होनी चाहिए अथवा देवताओं, राजाओं और साधारण मनुष्य के चित्रों के कद का क्या अनुपात है—ये सभी तत्व प्रमा के द्वारा ही निश्चित किए जाते हैं। चित्राचार्यों ने प्रमाण के आधार पर पाँच प्रकार के रूपों का वर्णन दिया है जो इस प्रकार है—

१. मानव—दस ताल (जैसे पाँडव, राम, कृष्ण, शिव आदि), २. भयानक—बारह तार (जैसे भैरव, वाराह, हयग्रीवा) ३. राक्षस—सोलह ताल (जैसे कंस, रावण), ४. कुमार—आठ ताल, जैसे वामन), ५. बाल—पाँच ताल (जैसे बाल-गोपाल)। इस नाप तोल में ताल को एक इकाई माना गया है। इसी आधार पर विभिन्न आकृतियों के अनेक प्रमाण बताए गए हैं।

(३) **भाव**—भाव का प्रदर्शन आकृति की भंगिमा से होता है। भारतीय काव्यशास्त्र में भाव के लिए काव्य रचना का मूल आधार मान गया है और भावों की महत्ता पर सूक्ष्मता से विचार किया गया है। भाव के उदय से ही शरीर तथा इन्द्रियों में विकार की स्थिति उत्पन्न होती है।[1] भाव दो प्रकार से प्रकट होता है—(१) प्रकट, तथा (२) प्रच्छन्न। प्रकट भावरूप का दर्शन हम नेत्रों के द्वारा कर सकते है परन्तु प्रच्छन्न रूप का अनुभव केवल मन के द्वारा कर सकते हैं। वर्षाकाल के काले बादलों तथा हरियाली का सौन्दर्य, माथों पर हाथों को रखकर बैठने में,

---

1. टिप्पणी—शरीरेनद्रियवर्गस्य विकारणां विधामकाः।
भाव विभावजनिताशिचतवृतय ईरिताः ॥
(शरीर में तथा इन्द्रियों में विकार की अवस्था भाव से उत्पन्न होती है।)

आंखों को दबा कर रोने में, अस्त-व्यस्त केशों के लहराने में, अधरों और नयनों की फड़कन में, झुके-झुके पलकों में, जो भाव प्रकट होते हैं उन्हें हम प्रकट रूप में आँखों से देख सकते हैं। किन्तु भाव के प्रच्छन्न रूप का आँखों को आभास नहीं होता, इसका ज्ञान अनुभव के द्वारा होता है। चित्र की ये अचित्रित बातें, जो नेत्र के द्वारा नहीं देखी जाती व्यंजना के द्वारा पहचानी जा सकती हैं। बाहर के रूप को रेखा, रंगों तथा आकारों के द्वारा प्रकट रूप में अंकित किया जा सकता है परन्तु भाव के व्यंग्य पक्ष को या उसके आन्तिरिक रूप को कलाकार रूप की ओट में अभिव्यक्त करता है। अकृति के शरीर की विगिन्न स्थितियों में परिवर्तन के द्वारा कलाकार अपने हृदय के भावों को प्रदर्शित करता आया है। परन्तु मन के अव्यक्त भावों को दिखाना बहुत कठिन होता है। उदाहरण में मान लीजिए कि हमें किसी भिखारी के कटोरे को दिखाना है तो केवल उसको पुराना दिखाकर ही आशय पूर्ण नहीं होता, इसलिए हमें एक भिखारी जैसे दुर्बल फटेहाल, हाथ फैलाए भिखारी को भी उसले साथ बनाना होगा, अन्यथा वह कटोरा गरीब, धनवान या सन्त का भी माना जा सकता हैं। भाव की ऐसी समस्या का समाधान व्यञ्जना शक्ति (Suggestion) से किया जाता है। ऐसी दशा में कलाकार चित्र की पृष्ठभूमि में ऐसे प्रतीकों या सहायक रूपों को संयोजित कर देता है जिससे अभीष्ट भाव का उदय हो।

(४) **लावण्य योजना**—रूप, प्रमाण तथा भाव के साथ चित्र में लावण्य का होना परम आवश्यक है। प्रमाण जिस प्रकार रूप को ठीक दिशा देता है उस प्रकार लावण्य को उत्कर्ष प्रदान करता है। भाव आन्तरिक सौन्दर्य का बोधक है और लावण्य वाह्य सौन्दर्य का प्रतीक है। भाव द्वारा कभी-कभी चित्र में कर्कशता का आभास होने लगता है किन्तु लावण्य योजना से वह आर्कषक बन जाता है। चित्र में रूप और प्रमाण की यथोचित उपयुक्त व्यवस्था होने पर भी लावण्य का समावेश किये बिना चित्र से सौन्दर्य की अभिव्यंजना नहीं होती। दूसरी ओर लावण्य का उदय मुख्यतया रूप, प्रभाव तथा भाव से ही होता है। जिस प्रकार एक कान्ति (लावण्य) रहित मोती की भंगिमा निष्प्रभ है उसी प्रकार रूप, प्रमाण तथा भाव से युक्त चित्र भी 'लावण्य' के बिना आकर्षण रहित है। लावण्य का ठीक संतुलन भी आवश्यक है।

(५) **सादृश्य**—किसी मूल पदार्थ या भाव को उसकी प्रतिकृति में मूल की समानता से दर्शित करना 'सादृश्य' है। चित्र सत्य पर आधारित हो या कल्पना पर इसमें चित्रित व्यक्ति या आकृति को दर्शक तुरन्त पहचान जाये तो सादृश्य सही है। जिस वस्तु को हम चित्र में अंकित करते हैं, उसके गुण अथवा दोष चित्र में समाविष्ट होना चाहिए। उदाहरणार्थ बुद्ध के चित्र में उनकी वह विशेषताएं होना चाहिए जो बुद्ध में प्राप्त थीं। यदि वह विशेषताएं चित्र में नहीं हैं तो चित्र को महावीर स्वामी का भी समझा जा सकता,है क्योंकि दोनों ने ही तपस्या की और दोनों का योगी रूप है। परन्तु इसके लिये बुद्ध को कटे केश, अहिंसा का संदेश देती मुद्रा

में तथा हाथ में भिक्षापात्र लिये ग्रंकित करना होगा। महावीर के चित्र में यह विशेषताएँ उपयुक्त नहीं। ग्रवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'किसी रूप के भाव को किसी दूसरे रूप से प्रकट कर देना सादृश्यता उत्पन्न करना' माना है।[1] यदि एक वस्तु से दूसरी वस्तु का भाव उत्पन्न होता है—या भिन्नता होते हुए भी यदि दोनों वस्तुग्रों में समानता है तो उनका ग्रपना-ग्रपना स्वभाव है। लहरदार ग्राकृति की समानता होने के कारण वेणी से सर्प का सादृश्य किया गया है परन्तु यह दोनों भिन्न हैं क्योंकि सर्प का धर्म है जमीन पर सरकना ग्रौर वेणी का धर्म है सर से लटकना। यदि जमीन पर वेणी पड़ी हो तो उसका धर्म सर्प का भय दिखाना नहीं है। सादृश्य ऐसा सच्चा तभी होगा जब जहांगीर के चित्र को दर्शक जहाँगीर का ही कहें ग्रौरंगजेब का नहीं। इस प्रकार चित्र को पहचानने में जब दर्शक भूल नहीं करता तो चित्र की शुद्धता सरहनीय है, जो सादृश्य के द्वारा ही प्राप्त है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के ग्रन्तर्गत चित्र-सूत्र नामक ग्रध्याय में सादृश्य को प्रमुख वस्तु माना गया है।—"चित्रे सादृश्यकरणम् प्रधानं परिकीर्तितम्।" (चित्रसूत्र)

(६) **वर्णिका भंग**—वर्णिका का ग्रर्थ है कलात्मक ढंग से नाना रंगों तथा तूलिका का प्रयोग। किस प्रकार के चित्र के लिये किस प्रकार के वर्णों का प्रयोग करना चाहिए तथा किस रंग के साथ कौन सा रंग ग्राना चाहिए ये सभी समस्याएं वर्णिकाभंग के ग्रन्तर्गत ग्राती हैं रंग की विभन्नता से वस्तुग्रों का ग्रस्तित्व ही प्रदर्शित नहीं होता बल्कि उनका ग्रन्तर भी ग्रभिव्यक्त होता है बिना वर्ण साधना के उपरोक्त प्रथम पांच ग्रंगों का कोई दृष्टव्य ग्रस्तित्व नहीं रहता बल्कि उनका स्थान केवल मन तक सीमित रह जाता है। इस प्रकार उपरोक्त पांच कला ग्रंगों को वर्णविधि तथा तूलिका ही साकार रूप प्रदान करती हैं। यद्यपि वर्ण पांच माने गये हैं परन्तु इनके सम्मिश्रण से सैकड़ों सम्मिश्रित वर्ण उत्पन्न होते हैं। पशु, पक्षी, मानवाकृति ग्रादि में किस प्रकार के रंगों का प्रयोग किया जाये चित्रकार के लिये यह जानना परमावश्यक है।

वर्ण ज्ञानं नास्ति किं तस्य जपपूजनैः।

वर्णिका भंग की पूर्णता प्राप्त करने के लिए लघुता, क्षिप्रता ग्रौर हस्तलाघव ग्रौर वर्ण के कौशल की ग्रावश्यकता है।[2] यदि किसी पुष्प का चित्र बनाना है तो उससे फूलों का रंग ही नहीं सुगन्ध की भावना का भी उदय होना चाहिए। वात्स्यायन ने यह भी उल्लेख किया है कि नागर के ग्रावास कक्ष में पलंग (सेज) के सिराहने खूंटी पर वीणा तथा चित्र-रचना का सामान टंगा होना चाहिए प्रेमिका को वश में करने का एक उपाय बताते हुए यह भी कहा गया है कि जहाँ उसका घूमना फिरना हो वहां उसके चित्र के साथ नायक का चित्र बना कर रख देना चाहिए।

1. 'भारत शिल्प के षडंग'—ठाकुर ग्रवनीन्द्रनाथ (ग्रनुवादक—डा० महादेव साह)।
2. 'भारतीय चित्रकला'—ले० वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ ५३।

चित्रकर्म के जिन छः अंगों का ऊपर विवेचन किया गया, वस्तुतः वे 'भारतीय शिल्प' के छः अंग हैं। शिल्प शब्द का अर्थ व्यापक है और चित्रकला भी एक शिल्प है। बाद में 'शिल्प शब्द का अर्थ 'कला' से लिया जाने लगा। अन्ततः शिल्प, स्थापत्य और चित्र, ये कला के तीन भेद माने जाने लगे।

बौद्धकाल

बौद्धकाल की चित्रकला
(५० ई० से ७०० ईसवी तक)

ईसवी शताब्दी के उदय के साथ 'प्राचीन काल' की भारतीय कला के इतिहास में स्वर्णयुग प्रस्फुटित होता दिखाई पड़ता है। इस समय बौद्ध धर्म अपना प्रभाव सम्पूर्ण देश पर स्थापित कर चुका था और व्यापक रूप से देश की जनता बौद्ध धर्म ग्रहण कर रही थी। बौद्ध धर्म की यह उन्नति और व्यापकता सातवीं ईसवी शताब्दी तक भली प्रकार चलती रही। इस समय तक ब्राह्मण धर्म पुन: उन्नति को प्राप्त नहीं कर पाया। इस समय भारतवर्ष पूर्वी देशों में एक अग्रगण्य और समृद्धशाली देश था और उसके ज्ञान तथा विज्ञान की ज्योति सम्पूर्ण एशिया को प्रकाशित कर रही थी समस्त एशियाई देश धार्मिक प्रेरणा और ज्ञान प्राप्ति हेतु बौद्ध-भारत की ओर दृष्टि लगाये हुए थे। इस समय भारतवर्ष में पवित्र तीर्थ कौशल के दर्शन हेतु दूर-दूर से असंख्य पर्यटक आते थे और भगवान बुद्ध के उपदेश समस्त पूर्वी-देशों में अपनाये जा रहे थे। बौद्ध धर्म की सहिष्णुता और उदारता के कारण भारत को ख्याति प्राप्त हो रही थी। भारतवर्ष का यह स्वर्णयुग था। इस समय भारतीय संस्कृति को एक नवल चेतना प्राप्त हुई और देश के समस्त भागों में ज्ञान तथा दर्शन का विकास हुआ, किन्तु बौद्ध धर्म का प्रभाव संस्कृति के किसी भी अन्य पक्ष पर उतना ही गहरा नहीं दिखायी पड़ता है जितना चित्रकला पर दिखाई पड़ता है। बौद्ध धर्म का पूर्वी देशों जैसे श्रीलंका, जावा, श्याम, ब्रह्मा, नेपाल, खोतना, तिब्बत, जापान और चीन की कला पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ा। इन सब देशों की चित्रकला, मूर्तिकला एवं वास्तुकला के अवशेष इस बात का प्रमाण हैं।

तारानाथ, जो सोलहवीं शताब्दी का तिब्बती इतिहासकार था, ने यह उल्लेख दिया है कि जहां-जहां बौद्ध धर्म फैला वहां-वहां दक्ष चित्रकार पाये गये। यह बात

विशेष रूप से भारतवर्ष की चित्रकला देखी जा सकती है। यद्यपि बहुत-सी सुन्दर कला कृतियां काल के गाल में समा गई हैं फिर भी बौद्ध कलाकारों की समुचित कृतियां कलाकारों की निपुणता, कारीगरी तथा दक्षता की गाथा को छिपाये आज भी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में प्राप्त हैं। इन्हीं कला दक्ष बौद्ध शिल्पियों ने चित्रकला की एक विशेष शैली स्थापित की।

इस कला शैली का विकास और जन्म बहुत स्वाभाविक ढंग से हुआ। बौद्ध-धर्म विशेष रूप में चित्रात्मक है।

आरम्भिक समय में बौद्ध धर्म की हीनयान शाखा बलवती थी । 'हीनयान' (संकरा पंथ या प्राचीन थेरवादी धर्म) बौद्ध धर्म के अन्तर्गत लगभग २०० ई० पू० तक महात्माबुद्ध की छवियों या मूर्तियों का निर्माण नहीं किया गया। अतः धर्म प्रचार या बुद्ध के अस्तित्व को दर्शित करने के लिए उनके प्रतीत रूप से छत्र, मुकुट (पगड़ी) चरण-पादुका, बौद्ध-वृक्ष, धर्म-चक्र या सिंहासन आदि के अंकन की प्रथा प्रचलित हो गई थी किन्तु भगवान बुद्ध की छवि अंकित नहीं की गई।

गाँधार शैली

गान्धार शैली में बुद्ध की छवि का प्रचलन

कुषाण राज्य में कनिष्क के सम्राट बनते ही महायान (विस्तीर्ण पंथ या विकासवादी पंथ) बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। इसके फलस्वरूप भगवान बुद्ध की मूर्ति या चित्र के रूप में छवियां अंकित की जाने लगीं और बुद्ध के अंकन पर कोई धार्मिक प्रतिबन्ध न रहा। कनिष्क काल में बुद्ध की मूर्तियां बनवाई गई। इन मूर्तियों की शैली यूनानी अधिक थी। इस प्रकार की मूर्तियां पेशावर (पुरूपुर), रावलपिंडी, तक्षशिला आदि क्षेत्र में बनाई गई। यह क्षेत्र गाँधार राज्य की सीमा के अन्तर्गत थे, अतः इस शैली को गांधार शैली के नाम से पुकारा गया है। इन मूर्तियों का विषय भारतीय-बौद्ध हैं परन्तु शैली पर यूनानी तथा रोमन छाप है। इन कलाकारों ने बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित कथाओं तथा जातक कथाओं आदि पर आधारित मूर्तियां बनाई। इन मूर्तियों में भगवान बुद्ध की मुद्रायें भारतीय हैं जैसे अभय-मुद्रा, ज्ञान मुद्रा ध्यान मुद्रा में बुद्ध या धर्म चक्र प्रवतन मुद्रा आदि। किन्तु इन मूर्तियों में वस्त्र वेश-भूषा तथा अलंकरण विदेशी हैं। भगवान बुद्ध ने तपस्या से पूर्व अपने बाल काट दिए थे, परन्तु गांधार शैली के विदेशी कलाकारों ने तपस्या में लीन बुद्ध की प्रतिमा में घुघंराले केश दिखाए हैं। इन मूर्तियों में आध्यात्मिकता की भावना नहीं दिखाई पड़ती मुख-मुद्रायें या तो पर्याप्त कठोर हैं या बहुत माधुर्य युक्त। इस कला शैली के माध्यम से उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश में बौद्ध धर्म का व्यापक रूप से प्रचार हुआ। अनेक विद्वानों का मत है कि गान्धार मूर्तिशैली चित्रकला से प्रेरित होकर ही जन्मी। तिब्बती अनुवाद के रूप में जो 'चित्रलक्षणा' नामक ग्रन्थ प्राप्त हुआ है,

(पहले अध्याय में उल्लेख दिया जा चुका है) उसका रचियता गान्धार का राजा भयजित् (नग्नजित्) ही माना जाता है। 'शतपथ' तथा 'महाभारत' में ऐसे प्रसंग आये हैं जिससे उसको गान्धार-शासक माना गया हैं। श्री गैरोला के अनुसार गान्धार कला के जो लक्षण हैं वह 'चित्रलक्षणा' के संविधानों पर आधारित हैं। इस शैली का प्रसार मध्य-एशिया तक हुआ। गुप्तवंश के उदय से भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग का उदय हुआ।

गुप्तवंश (२७५-५२० ई०)—गुप्तवंश की स्थापना श्री गुप्त ने की जिसका काल २७५-३०० ई० के मध्य निश्चित किया गया है। उसके पश्चात् उसका पुत्र घटोत्कच गुप्त और उसके उपरान्त चन्द्रगुप्त प्रथम शासक बना। चन्द्रगुप्त ने 'गुप्त सम्वत्' चलाया जिसका श्री गणेश २६ फरवरी ३२० ई० में हुआ। उसके पश्चात् विजयी समुद्रगुप्त एवं रामगुप्त के बाद चन्द्रगुप्त द्वितीय (३७५-४१४ ई०) गुप्त राज्य का शासक बना रहा। उसके बाद कुमारगुप्त, पुरूगुप्त, नृसिंह गुप्त, बालादित्य, कुमारगुप्त द्वितीय, बुद्धगुप्त और मानुगुप्त के काल तक लगभग ५१० ई० तक गुप्त शासकों की परम्परा बनी रही। यह शासक हिन्दू धर्म को मानते थे। परन्तु बौद्ध धर्म के लिए उदार थे।

गुप्त सम्राट साहित्य प्रेमी, कला तथा शिल्पानुरागी सम्राट थे तथा वे स्वयं कलाओं में भी निपुण थे। समुद्रगुप्त स्वयं एक वीणावादक था जिसकी प्रतीक उसकी सिक्कों पर अंकित छवि हैं। वास्तु तथा शिल्प के क्षेत्र में गुप्त-युग बहुत महान था। झांसी के देवगढ़ मन्दिर एवं कानपुर के भीतर गाँव मंदिरों की मृण्मूर्तियाँ इस युग के उन्नत शिल्प का प्रमाण हैं। इस युग की कला शास्त्रीय विधान पर आधारित है। अजंता की श्रेष्ठ कृतियाँ इस काल में बनाई गई।

बौद्ध कला का प्रचार

बौद्ध धर्म का प्रचार तूलिका की साधना के आधार पर ही अधिक हुआ, लेख या लेखनी का महत्व बाद में आया। इस धर्म की मूल परम्परायें चित्रात्मक हैं। जैसे-जैसे जनता में बौद्ध धर्म की जिज्ञासा बड़ती गई, वैसे-वैसे बौद्ध श्रमणों ने कला को धर्म प्रचार हेतु अपनाया। बौद्ध भिक्षुओं के दल दूर स्थानों में धर्म प्रचार के लिए गए। उन्होंने भगवान् बुद्ध के उपदेशों का प्रचार किया और चित्र कला को धर्म प्रचार का माध्यम बनाया। लम्बे-लम्बे पटचित्रों को जिन पर भगवान् बुद्ध की जीवनी और उपदेश अंकित रहते थे, बौद्ध साधु सुगमता से लम्बी यात्रा में मोड़कर ले जा सकते थे, इस कारण तिब्बत, चीन तथा जापान में गौतम बुद्ध के धर्म, जीवन तथा ज्ञान का प्रसार करने के लिए भिक्षुओं द्वारा पटचित्र बहुत अधिक प्रयोग किये गए। तिब्बत तथा नेपाल के मंदिरों में प्राप्त थानका नामक चित्रित झन्डे पटचित्र का ही एक रूप हैं। पटचित्र से साधारण जनता के लिए धर्म ज्ञान सुलभ हो गया जो किसी प्रकार भी लेखन लिपि के द्वारा सुलभ और लोकप्रिय नहीं हो सकता था। कला की सांकेतिक

एवं रूप प्रधान भाषा विभिन्न जातियों के लोगों से आदान-प्रदान का एक स्वाभाविक साधन थी। इस समय और दूसरे प्रचार साधन सम्भव भी नहीं थे।

चीन देश में बौद्ध धर्म के प्रति अत्यधिक श्रद्धा, आस्था, आदर, तथा सम्मान की भावना उत्पन्न हुई और ६७ ईसवी के पश्चात् एक भारतीय भिक्षु कश्यप भादुङ्ग चीन के सम्राट मिङ्गटी की प्रार्थना पर सुदूर पूर्व तक गया। उसके साथ में बहुत सी कलाकृतियाँ थीं जिनमें चित्र भी थे। इस समय से सातवी शताब्दी तक कलाकार पुजारियों के निरन्तर ही अनेक दल एक स्रोत के समान भारत से चीन की ओर पहुचे जिनसे सम्पूर्ण मध्य-एशिया में बौद्ध धर्म तथा कला का विस्तार हुआ। ऐसे उल्लेख भी उपलब्ध हैं कि इनमें से कुछ भिक्षु चीन में रहने लगे और उन्होंने वहाँ पर भित्ति-चित्रों का निर्माण किया। सुदूर पूर्व के देश जापान पर भी इस आन्दोलन का गहरा प्रभाव पड़ा। जापान के 'नारा' सम्राटों के समय में सातवीं शताब्दी में बौद्ध-भावना का जापान की कला में भव्य रूप उमड़ पड़ा, जापान के इन चित्रों की विशेषताओं को देखकर यह संदिग्ध सा लगता है कि यह कलाकृतियाँ यहां के स्थानीय कलाकारों की बनाई हुई हैं। यह कृतियाँ चीनी कलाकारों की बनाई हुई प्रतीत होती हैं। इस प्रकार की विशेषतायें अपने उत्कृष्ट रूप में अजन्ता के भित्तिचित्रों में विद्यमान हैं। होरियोंजी मन्दिर के भित्तिचित्र आठवीं ईसवी शताब्दी के हैं। वेनियन के अनुसार यह चित्र शैली तथा शिल्प में भारतीय चित्र कला की विशेषताओं के समान हैं। भाव-चित्रण की विशेषता तथा प्रवाहपूर्ण सीमा रेखाओं की सशक्त योजना को देखकर अजन्ता के भव्य चित्रों की याद आ जाती है। यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये चित्र अजन्ता की परम्परा पर ही बनाये गए हैं क्योंकि उस समय जापान और भारतवर्ष में स्वतन्त्र रूप से आदान-प्रदान होता था। पन्द्रहवीं शताब्दी ईसा पश्चात् के अन्त में भी इस प्रकार का एक क्षीण प्रभाव जापान के तोषा स्कूल के चित्रों में परिलक्षित्त होता है। इन देशो की कला में भारतवर्ष की चित्रकला के षडांगों का प्रचलन भी कुछ परिवर्तित अवस्था में प्राप्त होता है।

दूसरी ओर ऐसे उदाहरण प्राप्त है' जिनसे ज्ञात होता है कि भारतवर्ष का आध्यात्मिक और कलात्मक वातावरण दूसरे देशों के स्नातकों को आकर्षित कर रहा था। ये लोग यहाँ पर बौद्ध साहित्य तथा कला को ग्रहण करने के लिये भारत वर्ष में आते थे। पांचवी शताब्दी में फाहियान और सातवीं में ह्वेनसाङ्ग भारतवर्ष में पर्यटन करने और बौद्ध धर्म का ज्ञान प्राप्त करने आये। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से चीनी यात्री भारत आये जिनमें से कुछ कलाकार थे जो भारतवर्ष के चित्रकारों से चित्रकला की दीक्षा ग्रहण करके पुनः स्वदेश (चीन) लौटे। भारत का दूसरे देशों से सम्बन्ध इस बात का द्योतक है कि भारतवर्ष की चित्रकला, जिसका विकास प्रथम शताब्दी ईसवी में हुआ था, का प्रभाव सुदूर पूर्वी तथा उत्तरी देशों पर पड़ रहा था।

समय के क्रूर प्रहारों से अगणित कलाकृतियों की क्षति या हानि हुई है फिर भी भारतवर्ष में इस समय की भित्तिचित्रकला के उदाहरण प्राप्त हुये हैं। इन चित्रों में बौद्धकाल की समस्त विशेषतायें हैं और इस काल को एक रीतिवादी संस्थान माना जा सकता है।

जिस प्रकार भारत बौद्ध धर्म के प्रवर्तक भगवान् बुद्ध की जन्मभूमि है उसी प्रकार यह भी निश्चित है कि भारतवर्ष बौद्ध धर्म से सम्बन्धित चित्रकला का भी उद्गम स्थल है। बौद्ध मत के अनुयाइयों तथा चैत्यों के प्रबन्धकों ने श्रेष्ठ कलाकारों को संरक्षण प्रदान किया। अजन्ता की भव्य चित्रकारी में इस कला की उन्नति तथा विकास की क्रमिक प्रगति स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इन चित्रावलियों में इस काल की आरम्भिक और अन्तिम दोनों चरणों की कला दिखाई पड़ती है। श्रीलंका में सिघिरिया की गुफाओं में भी इस कला शैली का परिपक्व रूप दिखाई पड़ता है। भारत में बाघ, बादामी तथा सित्तनवासल के चित्रों में भी अजन्ता की ही रेखा चातुरी का प्रभाव है, यद्यपि इन गुफाओं के चित्रों की तकनीकी आदि कुछ बातों में अजन्ता से अधिक समानता नहीं दिखाई पड़ती है। कदाचित स्थानान्तर, भिन्न प्रकार का संरक्षण, जलवायु तथा वातावरण की भिन्नता के कारण प्रविधि की यह असमानता दिखाई पड़ती है। विशेष रूप मे अजन्ता की बौद्धकला की सर्वोत्तम चित्रकृतियों की भाव तथा रूप की सुन्दरता और विशेषताओं को देखकर दर्शक चकित रह जाते हैं।

अजन्ता की गुफाएं

सुन्दर रूप और कल्पना की मृदु मुस्कान, करुणा और शाँती के आँचल से आवृत अजन्ता की कलाकृतियां अपने अवगुन्ठन में न जाने कितनी सरस भावनाओं और कलाकारों की अन्तर-अनुभूतियों की उपलब्धियाँ छिपाये अपने अस्तित्व से प्राचीन भारतीय कला - इतिहास को स्वर्ण पृष्ठिका लगाये हुये अपने मूक रूपों से चिरशान्ति और आत्मा के अमरत्व का संदेश दे रही हैं। अजन्ता के तीस प्राचीन गुफा मन्दिर पहाड़ियों को काट कर बनाये गये हैं। अजन्ता बम्बई राज्य में औरंगाबाद जिले में स्थित है। अजन्ता तक पहुंचने के लिये जलगाँव से फरदापुर ग्राम होते हुये जाना पड़ता है। यहीं पर अजन्ता से दो मील की दूरी पर 'अजिण्ठा' नाम का ग्राम है जिसका मूल उच्चारण 'अजिस्ठा' है। इस ग्राम के नाम पर ही गुफाओं का नाम अजन्ता पड़ा।

ये गुफायें सेन्ट्रल रेलवे के स्टेशन औरंगाबाद से लगभग ८५ मील (१०२ कि० मी०) पर स्थित हैं और मोटर बस के द्वारा अजन्ता तक आने जाने की अच्छी व्यवस्था है। सेन्ट्रल रेलवे के पहूर और जलगाँव स्टेशनों से भी बस द्वारा अजन्ता पहुंचा जा सकता है। जलगांव तथा अजिण्ठा दोनों ही स्थानों पर दर्शनार्थियों के ठहरने के लिए विश्रामग्रह बना हुआ है। अब मोटर बस के द्वारा आने जाने की पर्याप्त अच्छी व्यवस्था है। जलगाँव से अजन्ता तक जाने वाले मार्ग पर ही पहूर तथा फरादापुर गांव भी स्थित हैं।

अजंता की गुफायें हरिश्रृंगार से आच्छाँदित मनोरम नीरव एकाकी घाटी में स्थित हैं। यहाँ पर पक्षियों के वृन्द प्रातः तथा सन्ध्या के समय अपने सुरीले, मधुर कलरव से एक संगीत की लय छेड़ देते हैं। इस घाटी में सनपुड़ा की पहाड़ियों को काटती बघोरा नदी घूमाव लेती हुई कल-कल निनाद से प्रवाहित होती है। इस नदी के घुमावों से घाटी का रूप अर्धचन्द्राकर के समान बन गया है और इसके बाई ओर या उत्तर की ओर एक मोड़ पर लगभग २५० फुट ऊंची एक पहाड़ी सीधी खड़ी है। इस पहाड़ी में एक अर्धचन्द्राकार पंक्ति में ये गुफायें काट कर बनाई गई हैं। इस पहाड़ी के उत्तर की ओर से एक प्रपात निनाद करता प्रवाहित होता है। ये तीस गुफायें पूर्व से पश्चिम की ओर लगभग ६०० गज की लम्बाई में बनाई गई है। वर्षा आगमन के साथ यह सारी घाटी शश्यश्यामल वृक्षों से आच्छादित हो जाती है। पुष्पित हरिश्रृंगार तथा अनेक सुगन्धित पुष्पों की सुरभि से यह घाटी महक जाती है, तब शाल और सागौन के वृक्ष प्रहरी के समान किसी के आगमन की मौन प्रतीक्षा में खड़े रहते हैं।

इस शान्ति और नीरवता के वातावरण को देखकर ही बौद्ध भिक्षुओं ने अपनी कला साधना के लिये यह स्थान उपयुक्त समझा होगा। वैसे तो अजंता से गुफा-मन्दिर और उनके मूर्तियों से सुसज्जित प्रवेश द्वार ही पर्याप्त आश्चर्यजनक हैं, परन्तु इन गुफाओं के आकर्षण का मुख्य कारण इनकी भीतरी दीवारों पर की गई भित्ति-चित्रकारी है, जो पर्याप्त नष्ट हो जाने पर भी चमकदार दिखाई पड़ती हैं। अजंता की प्रत्येक गुफा में मूर्तियाँ, स्तम्भ तथा द्वार काटकर भित्तियों पर चित्रकारी की गई है। इस प्रकार अजंता की गुफायें वस्तुकला, मूर्तिकला तथा चित्रकला का उत्तम संगम हैं।

अजंता की खोज, प्रतिकृतियां तथा प्रचार

मुगल काल के कुछ ऐसे लेख प्राप्त होते हैं जिनसे पता लगता है कि मुगल सेनायें दक्षिण की ओर अजंता की घाटी मे होकर जाती थीं। लेकिन सैकड़ों वर्षों तक जंगलों में छुपी ये अज्ञात गुफायें जंगली पशुओं, चमगादड़ों आदि पक्षियों का घर बनी रहीं और १८१९ ईसवी में यूरोप के लोगों को सर्वप्रथम इन गुफाओं का ज्ञान हुआ। उनको यह ज्ञान मद्रास रेजीमेन्ट के कुछ सैनिकों से हुआ जो इस घाटी में विद्रोहियों को दबाने के लिये गये थे। एक सैनिक लोमड़ी का पीछा करते हुए अजंता की एक गुफा में पहुंचा और उसने चित्र देखे। इन चित्रों की सूचना उसने अपने कमान्डेन्ट को दी। यह सूचना पाकर एक कम्पनी अधिकारी अंग्रेज विलियम एर्स्किन ने एक लेख तैयार किया और उसे 'बाम्बे लिटरेरी सोसाइटी' में पढ़ा। इसके पश्चात् १८२४ ई० में लेफ्टीनेन्ट जेम्स ई० अलेक्जेन्डर ने इन गुफाओं को देखा और उन्होंने रायल सोसाइटी-लन्दन को इनका परिचय भेजा। परन्तु फिर भी १८४३ ईसवी तक इन गुफाओं की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। इस समय १८४३ ई० में चार वर्ष अजंता का निरीक्षण तथा अध्ययन करके मिस्टर जेम्स फरगुसन ने इन गुफाओं का

विवरण कम्पनी को दिया और ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के निर्देशकों से उन्होंने जनता के व्यय पर इन चित्रों की अनुकृतियाँ तैयार कराने का आग्रह किया। तब ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के निवेदन पर इंगलैंड की सरकार ने एक कुशल चित्राकार मेजर रावर्ट गिल को १८४७ ई० में अजंता के चित्रों की अनुकृतियां बनाने के लिये भारत भेजा। १८५७ ईसवी के विद्रोह की चिंगारी के भड़कते ही मेजर गिल ने चित्रों की अनुकृतियां बनाने का काम छोड़ दिया। इस समय तक ३० या अधिक चित्रों की अनुकृतियां बन कर तैयार हो चुकी थीं, यह अनुकृति-चित्र मेजर गिल ने स्वदेश (इगलैण्ड) भेज दिये जो १८६६ ईसवी की क्रायस्टल पैलेस की प्रदर्शनी में प्रदर्शित किये गये। परन्तु इस भवन (पैलेस) में आग लग जाने के कारण यह अनुकृतियाँ जल कर समाप्त हो गई। इस प्रकार केवल पाँच अनुकृति-चित्र जो मेजर गिल ने बाद में बनाये थे, शेष रह गये। मेजर गिल के द्वारा बनाये गये अजंता के सारे अनुकृति-चित्र अप्राप्य हैं। इन चित्रों के कुछ छोटे-छोटे इनग्रेविङ्गज प्रिन्ट 'मिसेज इस्पियर' की 'एन्सेन्ट इण्डिया' नामक पुस्तक में प्रकाशित हैं।[1] तत्पश्चात् १८७२ ईसवी से १८८५ ईसवी के मध्य बम्बई आर्ट स्कूल के प्रिंसिपल मिस्टर ग्रिफिथ्स तथा उनके शिष्यों ने सुन्दर प्रतिकृतियाँ बनाई जो १८८५ ई० में 'विक्टोरिया एण्ड अलवर्ट म्युजियम' —साउथ केंसिग्टन में प्रदर्शित की गई, परन्तु इस भवन में अग्नि लग जाने से जल कर नष्ट हो गई। ग्रिफिथ्स फिर भारत आये और उन्होंने फिर चित्रों की अनुकृतियां बनाई जो दो जिल्दों में 'दी पेंटिंग्स आफ बुद्धिस्ट केव टेम्पिल्स आफ अजंता, खान देश, इण्डिया शीर्षक से १८९६ में प्रकाशित हो चुकी हैं। 'इण्डिया आफिस' लन्दन में फोटोग्राफों का एक सुन्दर संग्रह भी है जो डा० बर्गस ने तैयार किया था।

इस प्रकार क्रायस्टल पैलेस के अग्नि काण्ड ने ही इन चित्रों की प्रतिलिपियों को नष्ट नहीं किया, बल्कि साउथ केंसिग्टन म्युजियम के अग्नि कान्ड में ग्रिफिथ्स के द्वारा बनाई गई कई प्रतिकृतियां स्वाहा हो गयी। इस अग्नि काण्ड से बची लगभग एक सौ से अधिक प्रतिकृतियां 'इण्डियन सेक्शन आफ विक्टोरिया एण्ड अलवर्ट म्युजियम' — साउथ केंसिग्टन, में सुरक्षित हैं, परन्तु इनमें से कई चित्र नष्ट हो चुके है

१९०९ ई०—१९११ ई० में लेडी हैरिंघम भारत आयीं और उन्होंने स्व० नन्दलाल बसु, स्व० असित कुमार हाल्दर, बेंकटप्पा एवं एस० एन० गुप्ता तथा कु० लार्चर तथा ल्यूक भारतीय कलाकारों के द्वारा पुनः अजंता के चित्रों की अनुकृतियां तैयार कराई जो १९१५ ई० में लन्दन से प्रकाशित हुई। उन्होंने हैदराबाद राज्य के निजाम से भी सहायता मांगी जिसके परिणामस्वरुप सैयद अहमद वहाँ के अध्यक्ष नियुक्त किये गये। सैयद अहमद ने फिर से चित्रों की प्रतिकृतियां तैयार कराइ। इन चित्रों की रंगीन फोटो प्रतिकृतियों का एक संग्रह जी० यजदानी ने तैयार किया जिसको निजाम सरकार के पुरात्व विभाग ने चार जिल्दों में प्रकाशित किया। स्वतन्त्रता के पश्चात्

1. 'फाईन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सीलोन'—ले० विन्सेंट स्मिथ, पृष्ठ ८८।

ललित कला अकादमी (दिल्ली) ने यहाँ के चित्रों के रंगीन फोटोग्राफों के प्रिन्ट का एक छोटा पोर्टफोलियो तैयार कराया जो कला प्रेमियों तक अजंता के चित्रों की छवि पहुंचाने मे सहायक सिद्ध हुआ।

१९५४ ई० में यूनेस्को के द्वारा भी न्यूयार्क से अजंता के रंगीन चित्रों का एक संग्रह 'पेंटिंग्स आफ अजन्ता केव्ज' के नाम से प्रकाशित हुआ।

अजन्ता के चित्रों की सुरक्षा

अजन्ता के चित्रों की प्रख्याति ही अजन्ता के चित्रों के लिये घातक सिद्ध हुई। कुछ समय तक हैदराबाद राज्य के निजाम ने अजन्ता की सुरक्षा में रुचि नहीं दिखाई। वास्तव में उनके निम्न अधिकारियों ने अजन्ता के लिए बहुत क्षति पहुंचाई। निजाम द्वारा नियुक्त अजन्ता का सुरक्षण पदाधिकारी अजन्ता के प्रख्यात भित्ति-चित्रो में से उत्तम आकृतियों के सर के भाग का पलास्तर-खन्ड दीवार से काट-काट कर दर्शकों को धन के लोभ में भेंट कर देता था। यह बात और भी लज्जा जनक है कि डा० बर्ड, जो बम्बई के पुरातत्वेत्ता थे, ने भी यह अपराध इस लोभ से किया कि वह बम्बई संग्रहालय को इस प्रकार लाभान्वित कर सकें।[1] इसके अतिरिक्त दूसरी क्षति धुएं तथा पक्षियों के लगातार इन गुफाओं में घोंसले बनाने के कारण हुई। हिन्दू साधू इन गुफाओं में तीर्थ यात्रा करते समय विश्राम करते थे और उन्होंने खाना बनाने के लिये आग जलाकर धुआं आदि करके इन गुफाओं को बहुत अधिक धुंधला और काला कर दिया है। १९०३ ई० तथा १९०४ ई० में विशेष गुफाओं में चित्रों के सामने जाली लगवा दी गयी, जिससे दर्शक चित्रों पर अपना नाम लिखकर नष्ट न कर सके, और यहाँ पर यथोचित सफाई भी करा दी गई।

पुरातत्व विभाग ने अजन्ता के चित्रों के संरक्षण हेतु एक विस्तृत योजना प्रस्तुत की और इटली से भित्ति-चित्रों के विशेषज्ञों को चित्रों की सफाई तथा सुरक्षण हेतु बुलाया गया। इन विशेषज्ञों ने १९२०-१९२२ ई० तक इन चित्रों को रासायनिक उपचार से साफ किया और जहां-जहां पलास्तर में दर्जे पड़ गई थी उनमें पलास्तर आफ पेरिस आदि भर दिया, जिससे पलास्तर-खण्ड दीवार से न गिर जाय। १९०८ ई० में अजन्ता में एक क्युरेट की नियुक्ति हो गई थी। इन चित्रों की ठीक प्रतिलिपियां बनाई जा चुकी हैं तथा फोटोग्राफ लिये जा चुके हैं। अजन्ता के चित्र अब बहुत खण्डित हो चुके है फिर भी भारतवर्ष की छः सौ वर्ष की कला साधना के अवशेष अजन्ता में अभी चित्रों के रूप में सुरक्षित हैं। १९५३ ई० से भारत सरकार के पुरातत्व विभाग ने इन गुफा-चित्रों के संरक्षण का कार्य भार अपने हाथों में संभाल लिया है।

1. 'फाइन आर्ट इन इन्डिया एण्ड सीलोन'—ले० विन्सेंट स्मिथ, पृष्ठ ८८।

गुफाओं का गणना-क्रम तथा सुरक्षित चित्र

इन गुफाओं की गणना पूर्व से पश्चिम की ओर की गई है और सभी विद्वान इस गणना क्रम से सहमत हैं। इन गुफाओं में नवीं, दसवीं, उन्नीसवीं, छब्बीसवीं तथा तीसवीं गुफायें पूजा के स्थान अर्थात् चैत्य-गुफायें हैं। शेष गुफायें साधुओं के रहने का स्थान अर्थात् बिहार गुफायें हैं। इनमें में कुछ गुफायें कभी पूर्ण नहीं हो सकीं। इन गुफाओं में वास्तुकला का इतना विकसित रूप दिखाई पड़ता है कि इनको गुफा कहकर पुकारना उपयुक्त नहीं है, अतः इनको गुफा मन्दिर मानना उचित होगा।

१८७९ ई० में जिन सोलह गुफाओं में चित्र शेष रह गये थे—उनमें पहली, दूसरी, चौथी, सातवीं, नवीं, दसवीं, ग्यारहवी, पन्द्रहवीं, सोलहवीं, सत्रहवीं, अठारहवीं, उन्नीसवीं, बीसवीं, इक्कीसवीं, बाईसवी, तथा छब्बीसवीं गुफायें ही न्यूनाधिक चित्र अवशेषों से अलंकृत थीं। १९१० ई० तक विशेष महत्वपूर्ण चित्रों के अवशेष पहली, दूसरी, नवीं दसवीं, ग्यारहवीं, सोलहवीं, सत्रहवीं, उन्नीसवीं तथा इक्कीसवीं गुफाओं में ही शेष रह गये थे। इन नौ गुफाओं में से सत्रहवीं गुफा में ही सबसे अधिक समुचित चित्र प्राप्त हैं।

गुफाओं का रचना काल

अनुमानतः तेरहवीं गुफा (२०० ई० पू०) सबसे प्राचीन है। इसकी दीवारों पर चमकदार मौर्य कालीन पालिस है। प्राचीन गुफाओं में आठवीं, बारहवीं तथा तेरहवीं में चित्र नहीं है, आठवीं, नवीं तथा ग्यारहवीं गुफायें सम्भवतः २०० ई० पूर्व से परवर्ती है क्योंकि इनमें कुछ मूर्तियां भी हैं। आठवीं से तेरहवीं गुफा तक की छः गुफायें प्रारम्भिक हीनयान बौद्ध धर्म से सम्बन्धित है और अनुमानतः २०० ई० पूर्व तथा १५० ई०से कुछ बाद तक लगभग ३५० वर्षों के काल में अनुमानतः तैयार की गई हैं। शेष सारी गुफायें महायान बौद्ध - धर्म से सम्बन्धित हैं। छठीं तथा सातवीं गुफायें ४५० ई० से ५०० ईसवी के मध्य की है। शेष गुफायें अर्थात् पन्द्रहवीं से बाईसवीं, इक्कीसवीं तथा उन्नीसवीं और पहली से पांचवीं तक की गुफायें ५०० ई० तक बनी हैं।[1] कई गुफाओं को अधूरा छोड़ दिया गया है। पहली गुफा फर्गुसन के अनुसार सबसे बाद में चित्रित की गई।

भित्तिचित्रों का कालक्रम

इन गुफाओं में बने चित्र उसी समय के नहीं हैं जिस समय इन गुफाओं का निर्माण हुआ सबसे प्राचीन चित्र निश्चित रूप से नवीं तथा दसवीं गुफा में हैं। इन गुफाओं के चित्रां में से कुछ पुनः बाद में ऊपर से बनाए गये चित्रो से ढक गये

1. 'फाइन आर्ट इन इन्डिया एण्ड सीलोन'—ले० विन्सेंट स्मिथ, पृष्ठ ८७।

हैं। इन आरम्भिक चित्रों की शैली में सांची की शिल्प-शैली से इतनी समानता है कि उनको निश्चित रूप से इसी समय का माना जा सकता है। यह गुफायें दक्षिण के आन्ध्र राजाओं के संरक्षण में चित्रित की गईं। यद्यपि यह राजा बौद्ध-धर्म के अनुयाई नहीं थे परन्तु वे बौद्ध-धर्म के प्रचार में कोई अवरोध उत्पन्न नहीं करते थे। इसके पश्चात ऐसा प्रतीत होता है कि कई सौ वर्षों तक अजन्ता में चित्र नहीं बनाये गए।

अजन्ता में अधिकांश चित्र निःसदेह चालुक्य राजाओं (५५०-६४२ ईसवी) तथा बरार के वाकाटक राजाओं के समय में बनाये गए। सोलहवीं गुफा में एक वाकाटक लेख भी है। इसके पश्चात पल्लव राजाओं के शासन काल में चित्रकारी का कार्य रुक गया, क्योंकि यह राजा शैव थे। मालवा राज्य की बाघ गुफाओं के चित्र पांचवीं शताब्दी में बनाये जा चुके थे। अजन्ता की कुछ परवर्तीकाल की मूर्तियों और एलोरा की आरम्भिक मूर्तियों में बहुत समानता है। चित्रित गुफाओं में से केवल निम्न गुफाओं की चित्रकारी महत्वपूर्ण है। इन गुफाओं की चित्रकारी के काल क्रम के सम्बन्ध में सभी विद्वान प्रायः एकमत हैं।

गुफा संख्या ६ तथा १०—२०० ई० पू० से ३०० ई० तक।
गुफा संख्या ६ तथा १० के स्तम्भ— ३५० ई० से ४०० ई० तक।
गुफा संख्या १६ तथा १७—३५० ई० से ५०० ई० तक। (गुफा संख्या ४, ६, ११ तथा १५ भी इसी काल में चित्रित हैं।)
गुफा संख्या १ तथा २— ५०० ई० ६२८ ई० तक।

आधुनिक समय में भित्तिचित्रण और तत्सम्बन्धी रंग बनाने की विधि

ग्रिफिथ्स महोदय के अनुसार अजन्ता तथा अन्य गुफाओं में भित्तिचित्रण की परम्परा वास्तव में टेम्परा तथा फ्रेस्को विधि का सम्मिश्रण है।[1] भारतवर्ष के चूने में सोखने की शक्ति कुछ अधिक है अतः चूने के पलास्तर को बहुत समय तक पानी में भिगो कर रखा जा सकता है, परन्तु यूरोप के चूने में इतनी अधिक सोखने की शक्ति नहीं है। यूरोप में नमी रखने के लिए भीगे कपड़े को पलास्तर पर डालने की पद्धति अपरिचित और अप्रचलित रही। इस प्रकार नमी के कारण रंग पलास्तर में बैठ जाते हैं और अधिक स्थाई हो जाते हैं साथ ही इन पर सीलन का प्रभाव भी कोई हानिकारक प्रभाव नहीं डाल पाता। भित्तिचित्रण की कला भारतवर्ष में अजन्ता से आरम्भ हुई और आज तक मकानों, मन्दिरों, भवनों आदि के अलंकरण में प्रयोग की जाती है।

आजकल भित्तिचित्र बनाने के लिए दीवार पर आधे इन्च मोटे चूने के पलास्तर की तह लगा दी जाती है और एक दिन तक उसको उसी अवस्था में छोड़ दिया जाता है। यदि दूसरे दिन धरातल अधिक सख्त हो जाता है तो नमी लगा दी जाती है

1. 'फाइन आर्ट इन इन्डिया एन्ड सीलोन'—ले० बिन्सेंट स्मिथ, पृष्ठ ८६।

और उसके पश्चात एक दाँतदार थपनी या तिकोनी लकड़ी से धरातल को खुरदरा तथा ठोस बनने के लिए पलास्तर को पीटा जाता है और उसके पश्चात ऊपर से सफेद पलास्तर की एक पतली तह कूंची से पोत दी जाती है और उसको दूसरे दिन तक नम रखा जाता है। यदि चित्र बहुत चिकना और विवरण युक्त बनाना है तो धरातल को कन्नी से ओप कर चिकना कर लिया जाता है। इस पर ही सबसे पहले आलेखन की रेखायें चरवे के द्वारा या हाथ से बना दी जाती हैं। पहले चित्र की सीमा रेखा भूरे या काले रंग से बना दी जाती है और फिर सपाट स्थाई रंग से चित्रों को भर दिया जाता है। तदोपरान्त विवरण डाल दिए जाते हैं। यह पद्धति बाघ के कुछ चित्रों में दिखाई पड़ती है, परन्तु चूने के पलास्तर की तह पतली है।

रंगों को चावल के मांढ या असली के पानी में गुड़ के साथ मिलाकर तैयार किया जाता है। इन रंगों को केवल पानी में ही घोलते हैं। जब चित्र बनकर पूर्ण हो जाता है तो उसको भीगे तौलिये या कपड़े से नम रखा जाता है फिर चित्र को सुखाकर लगभग १ मास पश्चात् ओपा जाता है।

अजन्ता में भित्तिचित्रण विधि

अजन्ता के चित्रों का धरातल तैयार करने के लिये पहले पलास्तर की पर्त में चूना, खड़िया, गोबर, बारीक बजरी का गारा गुफा की खुरदरी दीवार पर लगा दिया जाता था। इस गारे को कई दिन तक अलसी के पानी में भिगोकर फूलने दिया जाता था। इसमें उर्द की दाल का पानी भी डाला जाता था। कभी-कभी विशेष रूप से छत के गारे में धान की भूसी भी मिलाई जाती थी। पलास्तर की पहली तह पौन इंच से लेकर एक इंच तक मोटी होती थी। इसके ऊपर अन्डे के छिलके की मोटाई के बराबर सफेद पलास्तर का लेप चढ़ा दिया जाता था। इस पलास्तर का लेप स्तम्भों, पत्थर पर उरेही हुई आलेखनों तथा मूर्तियों आदि पर भी कर दिया जाता था। परन्तु अधिक बारीकी से कटी हुई मूर्तियों आदि में इसका प्रयोग नहीं है बल्कि मिट्टी के पलास्तर का प्रयोग है। इस प्रकार प्रत्येक गुफा पलास्तर से ओपी जाती थी और चित्रित की जाती थी। यह पलास्तर ज्वालामुखी गुफाओं की चट्टानी दीवारों के छेदों को भली प्रकार भर देता था और उसके छेदों में बैठ जाता था।

इटली के भित्तिचित्रों में अजन्ता की भित्तिचित्रण प्रणाली नहीं दिखाई पड़ती, परन्तु मिस्र के भित्तिचित्रों से साम्य प्रतीत होता है क्योंकि वहाँ खड़िया के साथ भूसा भी मिलाकर पहला पलास्तर लगाया जाता था। इस पलास्तर के ऊपर से सफेद पलास्तर को पोत दिया जाता था। श्री हेविल का मत है कि अजन्ता में चित्र पूर्ण हो जाने पर जब सूख जाते थे तो चित्र में अत्यधिक प्रकाश को उभारने के लिये टेम्परा (चिपकने पदार्थों के साथ मिले रंग) सफेद मिश्रित गाढ़े रंग लगाये जाते थे।[1]

1. 'फाइन आर्ट इन इन्डिया एन्ड सीलोन'—ले० विन्सेंट स्मिथ, पृष्ठ ६०।

लेडी हैरिङ्गम के मतानुसार सफेद पलास्तर पर पूर्ण विवरण सहित लाल रेखांकन करने के पश्चात् एक ही पतले गन्दे हरे रंग—टेरावर्ट (गन्दा सब्ज रंग—खनिज रंग) से कहीं-कहीं लाल रंग झलकता छोड़कर बल ('टोन') लगा दिये जाते थे और फिर स्थानीय रंग लगाये जाते थे। बाद में काले तथा भूरे रंगों से निश्चित सीमा-रेखायें बना दी जाती थीं। परन्तु बाद में आवश्यकता के अनुसार छाया का भी प्रयोग किया जाता था। गोलाई लाने के लिये यथार्थ छाया तथा प्रकाश का प्रयोग नहीं किया जाता था, परन्तु विरोधी, स्थानीय रंगों या काले सफेद रंगों के प्रयोग द्वारा आकृति को निश्चित रूप प्रदान किया जाता था। परन्तु ग्रिफिथ्स महोदय ने चित्र के रेखांकन में केवल लाल रंग के प्रयोग के द्वारा रेखांकन करने की पद्धति का ही वर्णन दिया है। चित्र में आवश्यकतानुसार छाया का प्रयोग किया जाता था, जैसे ठुड्डी के नीचे गहरे रंग का बहुधा वास (Wash) लगाकर गोलाई को उभारा जाता था।

अजन्ता के भित्तिचित्रों के रंग

भित्तिचित्रण में गिने चुने खनिज रंगों का ही प्रयोग होता है ताकि वे चूने के क्षारात्मक प्रभाव से अपने अस्तित्व को न खो बैठें। अजन्ता तथा बाघ में जिन रंगों का स्वतन्त्रता से प्रयोग किया गया है उनमें सफेद, लाल, पीले और विभिन्न भूरे रंग हैं। इसके अतिरिक्त एक गन्दे हरे (संग सब्ज या टेरावर्ट) और नीले (लेपिसलाजुली) रंग का प्रयोग है। सफेद रंग प्रायः अपारदर्शी है और चूने या खड़िया से बनाया गया है। लाल तथा भूरे रंग लोहे के खनिज रंग हैं। हरा रंग एक स्थानीय पत्थर से बनाया गया है जो ताँबे का खनिज रंग है जिसे टेरावर्ट (संग सब्ज) कहते हैं। अजन्ता के परवर्ती चित्रों में लेपिसलाजुली रंग (नीले रंग) का भी प्रयोग है। यह रंग एक बहुमूल्य खनिज-पत्थर से बनाया जाता था और इस रंग को फारस तथा बदख्शां से आयात किया जाता था। शेष रंग स्थानीय हैं। प्राचीन चित्रों में जैसे जोगीमारा और पांचवीं शताब्दी के सिगिरिया गुफाओं के चित्रों में नीला रंग बिल्कुल भी प्रयोग नहीं किया गया है। छठीं शताब्दी से अजन्ता की दूसरी गुफा में लेपिसला-जुली रंग (नीले रंग) का प्रयोग दिखाई पड़ता है। अजन्ता की गुफाओं की चित्रकारी में लाल तथा पीले रंग का अत्यधिक प्रयोग है। अनुमान है कि अजन्ता के चित्रकारों ने संखिया के भस्म से बने पीले रंग का प्रयोग भी किया है।

अजन्ता की गुफाओं के चित्रों का विषय

अलंकारिक आलेखनों को छोड़कर अजन्ता के अधिकांश चित्रों का विषय बौद्ध-धर्म से सम्बन्धित है। इन चित्रों में बुद्ध के विभिन्न चित्र और पवित्र धर्म चिन्ह सम्मिलित है साथ ही बुद्ध की जन्म-जन्मांतर की जीवन-कथायें तथा जातक-कथायें इन गुफाओं की चित्रकारी का प्रधान विषय हैं। जातक कथाओं के अन्तर्गत बुद्ध के

अनेकों जन्मों की कथायें हैं जिनका चित्रकार ने सुन्दरता से अंकन किया है। यह जातक कथाओं के ही चित्र हैं, यह बात दो आधारों पर ही कही जा सकती है— प्रथम इन चित्रों पर जातक कथा का नाम लिखा है परन्तु चित्रों के नष्ट हो जाने से चित्र को पहचानने में असुविधा होती है, दूसरे दसवीं गुफा में षड़दन्त हाथी की जातक कथा तथा अन्य जातक कथाओं को उनके घटनाक्रम के अंकन एवं विशेषताओं के कारण पहचाना जा सकता है।

अजन्ता की गुफाओं की चित्रकारी

अजन्ता की गुफाओं में आरम्भिक चित्रकारी नवीं गुफा तथा दसवीं गुफा में प्राप्त है। इन गुफाओं के चित्र बहुत अधिक क्षतिग्रस्त हो चुके हैं। यह चित्र साँची तथा भरहुत की शिल्प-शैली से विशेष समानता रखते हैं। अत: इन चित्रों के समय का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है। परसी ब्राउन महोदय ने नवीं तथा दसवीं गुफा के चित्रों को १०० ई० पूर्व का माना है और इन गुफाओं के स्तम्भों पर बने चित्रों को ३५० ई० का माना है। दसवीं गुफा में एक ब्राह्मीलिपि का लेख है जिसके अनुसार विन्सेंट स्मिथ ने नवीं तथा दसवीं गुफा के चित्रों को दूसरी शताब्दी ई० पूर्व से १५० ई० तक माना है।[1] इन दोनों गुफाओं के चित्रों की शैलियों में बहुत साम्य है, अत: इन दोनों के चित्रों को समकालीन माना गया है। तत्कालीन वास्तु तथा मूर्तियों से भी इन चित्रों में विशेष समानता है।

नवीं गुफा के चित्र—इस गुफा में ग्रिफिथ्स महोदय ने एक दीवार से पलास्तर का एक बड़ा खण्ड (पपड़ा) छुड़ाकर उनके नीचे एक चित्र खोजा, जो चट्टान पर पोर्सलीन के समान चमकदार पलास्तर चढ़ाकर उसके ऊपर से बनाया गया था। यह नीचे वाला चित्र एक बैठी हुई स्त्री का है। इस गुफा का यह प्राचीन चित्र है, क्योंकि बाद में कई पुराने चित्रों को ढककर ऊपर से चित्रकारी की गयी है। नवीं गुफा में कुछ चित्र 'गुप्तकाल' के भी हैं।

इस गुफा में चित्रित स्तूप की ओर ज़ाते पुजारियों के दल में तत्कालीन वास्तु तथा मूर्ति-कला से बहुत समानता है। इस चित्र में प्रयुक्त अर्धवृत्ताकार स्तूप, तोरण द्वार, पुरुषों के मुरेठे जिनमें लट्टूनुमा बड़ा मोती आगे माथे पर निकला है, तत्कालीन प्रस्तर उरेहन में भी प्रचलित थे। इस चित्र में पुरुषों के वर्गाकार चेहरे, बड़े-बड़े मोतियों की मालायें, भारी आभूषण उस समय की आन्ध्र प्रदेश की मूर्तियों की याद दिलाते हैं। इन आकृतियों में लटकते हुए कमर-बन्द तथा निकले हुए पेट दर्शनीय हैं। गुफा में प्रवेश करते ही बाईं ओर जो लेख हैं, वे अनुमानत: ईसा पूर्व के हैं। इन चित्रों की अपनी विशेषतायें हैं, जो इनको गुप्तकालीन चित्रों से पृथक कर देती हैं। उदाहरणार्थ इन चित्रों में कुल चार रंगों का प्रयोग है। यह रंग काले, पीले,

1. 'फाइन आर्ट इन इन्डिया एण्ड सीलोन'—ले० विन्सेंट स्मिथ, पृष्ठ ८७।

हरे तथा हिरौंजी के रंग हैं। सभी चेहरे तथा मुद्रायें एक प्रकार की हैं। आंखें भावरहित हैं और आकृतियों की हस्त मुद्रायें शिथिल हैं। नवीं गुफा में इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के वृक्षों तथा फलों का अंकन किया गया है। जिसमें चित्रकार ने अपनी निरीक्षण शक्ति का परिचय दिया है। यहाँ स्तम्भों पर बुद्ध आकृतियाँ चित्रित हैं और भित्तियों पर चरवाहों के दृश्य भी बनाये गये हैं।

दसवीं गुफा के चित्र—इस गुफा की दाहिनी भित्ति पर आज से लगभग अस्सी वर्ष पूर्व अधिक चित्र थे। यह चित्र प्रारम्भिक शैली के थे। इनमें विशेष रूप से शक्तिशाली स्वतन्त्र रेखाओं से हाथियों का अंकन किया गया था। इस चित्रावली में छःदन्त जातक की कथा चित्रित है जिसमें चित्रकार ने घने जंगल का अंकन सुन्दरता से किया है और नाना प्रकार के वृक्ष जैसे बरगद, गूलर तथा आम चित्रित किये गये हैं। इस जंगल में हाथियों को जलक्रीड़ा में मग्न अंकित किया गया है। इनमें छःदन्त हस्ति अपनी हथनियों को सूंड से कमल पुष्प देते या कहीं पर अपने लिए अजगर से बचाते चित्रित किया गया है।

दूसरी ओर जंगल में व्याघ्र प्रवेश करते हैं और छःदन्त रूपी बोधिसत्व स्वयं उनके आगे समर्पण कर देते हैं। अन्तिम दृश्य में व्याघ्र काशीराज के अन्तःपुर में पहुंचते हैं। काशीराज की रानी सुभद्रा पूर्वजन्म में छःदन्त गज की हथनी थी, अतः डाहवश वह छःदन्त गजराज के दांतों को काटकर लाने की आज्ञा देती है और कटे दाँतों को कहारों के कन्धों पर बहंगियों पर लदा देखकर मूर्छित हो जाती है, राजा सहारा देता है—चार दासियां जो पीछे खड़ी हैं घबराई हैं—एक दासी सहारा देने को बढ़ रही है। यह चित्र कलाकार ने बड़ी सुन्दरता से अंकित किया है। परन्तु इस चित्र का पर्याप्त भाग दर्शकों ने अपना नाम लिख-लिखकर खुरच डाला है।

बांईं भित्ति पर एक जासूस का चित्रण है इसमें आगे पैदल, सशस्त्र घुड़सवार और पीछे स्त्रियों के दलों का तीव्र गति से आगे बढ़ते हुए अंकन है, इसमें राजा आठ स्त्रियों के बीच में है। इस चित्र की योजना बहुत सुगठित है, और कुछ आकृतियों को संतोषजनक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। इस चित्र में हस्त मुद्राओं और भुजाओं का चित्रण स्वाभाविक तथा गोलाई युक्त है।

इस गुफा में ही श्याम जातक का चित्र है। श्याम जातक तीसरी शताब्दी में चित्रित किया गया है। इस चित्र में अन्धे माता पिता की सेवा करने वाले एक काले वर्ण के युवक 'श्याम' को काशीराज के द्वारा तीर से मार देने की कथा आती है। कन्धे पर घड़ा लिये श्याम की आकृति सुन्दर है और माता पिता की आकृति में वेदना है। भागते हुए हिरणों का अंकन भी मार्मिक है।

इस गुफा के स्तम्भों पर बुद्ध चित्र जो खड़ी मुद्रा में बनाये गये हैं उनके कपड़ों तथा सर के पीछे प्रकाश पुंज (तेज मण्डल) में गान्धार शैली का प्रभाव है। विन्सेंट स्मिथ के अनुसार ये चित्र अनुमानतः पाचवीं शताब्दी या बाद के हैं।

सोलहवीं गुफा के चित्र—इस सम्पूर्ण गुफा के गर्भ में आज से लगभग अस्सी वर्ष पूर्व अधिक चित्र थे, परन्तु अब बहुत से चित्र नष्ट हो चुके हैं। ग्रिफिथ्स महोदय ने इस गुफा के एक मुख्य चित्र 'बुद्ध-उपदेश', को प्रकाशित किया है। इसी विषय का एक दूसरा चित्र इस गुफा में है। इस चित्र में भगवान बुद्ध की मुखाकृति नष्ट हो चुकी है, परन्तु उनके भक्तों की आकृतियों को कम क्षति पहुची है। भक्तों में एकाग्र चित्रता और भक्तिमय नम्र दृष्टि दिखाने में कलाकार को अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई है।

सोलहवीं गुफा की दाहिनी भित्ति पर सुजाता की कहानी है। इसमें गौओं का चित्रण सुन्दर है और भवन में गुप्त कालीन प्रस्तर शिल्प जैसी ज्यामितिक तरह से जालियां काटी गई हैं।

इस गुफा की बांई भित्ति पर उन चार दृश्यों (वृद्ध पुरुष, शव, वृषभ ताड़न, तथा वैरागी) का चित्रण है जिन्हें देखकर भगवान बुद्ध को वैराग्य उत्पन्न हुआ था। इसी गुफा में एक स्थान पर माया देवी के स्वप्न का दृश्य भी अंकित है। इस चित्र की पृष्ठभूमि वाले भाग में हाथी के दो दांत भी अंकित थे, परन्तु अब इस चित्र में माया देवी की आकृति के केवल पैर ही शेष बचे हैं। ग्रिफिथ्स महोदय ने जिस समय इस चित्र को देखा था, तो उस समय बुद्ध की आकृति को छोड़कर शेष भाग सुरक्षित था। इसी चित्र में एक ओर महाराज शुद्धोधन तथा मायादेवी स्वप्न की चर्चा करते सोच-विचार में लीन दर्शाये गये हैं। माया देवी के चारों ओर दासियां अत्यन्त सुन्दर मुद्राओं में बैठी हुई हैं, परन्तु उनकी आंखों के चित्रण में निर्बलता दृष्टिगोचर होती है। इस गुफा में ऊपर की ओर बुद्धजन्म से सम्बन्धित कथाओं में बुद्ध के जन्म के पश्चात् उनके सात कदम चलने वाली कथा को सात पद चिन्ह बनाकर प्रतीकात्मक ढंग से दिखाया गया है साथ ही भगवान बुद्ध को भी बालक के रूप में इस कथा में चित्रित किया गया है। यहाँ पर लुम्बनी वाटिका के दृश्य भी सुन्दरता से बनाये गये हैं। इन कथाओं के अतिरिक्त भगवान बुद्ध की पाठशाला के चित्र अंकित हैं जिनमें बालकों की मनोरम क्रीड़ाए अंकित की गई हैं।

सोलहवीं गुफा में एक सबसे उत्कृष्ट चित्र है जो 'मरती राजकुमारी' के नाम से विख्यात है। इस चित्र की डा० वर्गस तथा श्री फर्गुसन ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इस चित्र में एक कुलीन महिला ऊंचे आसन पर लेटी है और उसके पीछे एक दासी उसको सहारा देकर ऊपर उठाये है। पीछे खड़ी एक अन्य दासी अपनी छाती पर हाथ रक्खे है और इस महिला की ओर देख रही है। दूसरी दासी पंखा झल रही है—सफेद टोपी लगाये एक वृद्ध पुरुष दरवाजे पर खड़ा है और दूसरा एक खम्भे के के पास बैठा है—सामने की ओर दो स्त्रियां बैठी हैं। दूसरे प्रकोष्ठ में दो स्त्रियां हैं जिनमें से एक पारसी टोपी पहने है और हाथ में कलश लिए है जिस पर जलपात्र ढका हुआ है। दूसरी युवती के बाल नीग्रो जैसे हैं और वह कुछ मांग रही है। दूसरी

और दो परिचारिकायें एक अलग प्रकोष्ठ में बैठी हैं। इस मरणासन्न कुलीन महिला का सिर गिर रहा है, आंखें बन्द हैं और प्रत्यंग मरण-पीड़ा से विक्षिप्त हैं। एक परिचायिका इस महिला की नाड़ी देख रही है, उसके चेहरे पर मृत्यु के आतंक की एक विषादमय छाया है। पंखा झलने वाली स्त्री तथा दो पुरुषों की मुखाकृति पर भी दुःख का भाव है। फर्श पर नीचे बैठे हुए सम्बन्धियों ने जैसे जीवन की आशा ही त्याग दी हो और उन्होंने रुदन आरम्भ कर दिया है। इस दल में एक स्त्री अपना मुख छिपाये रो रही है।

दया और करुणा के भाव को उद्दीप्त करने के दृष्टिकोण से यह चित्र एक सफल अभिव्यक्ति है। 'यूरोप में वेनिस के कलाकारों ने विविध वर्णों का उत्तम विधान प्रस्तुत किया है, और फ्लोरेन्स के कलाकारों ने कितना ही शक्तिपूर्ण रेखांकन करके चित्र बनाये हों, 'परन्तु वे', फर्गुसन के मतानुसार 'भावों की इतनी मार्मिक और सशक्त अभिव्यक्ति की सफलता को प्राप्त नहीं कर सके हैं।'

सत्रहवीं गुफा के चित्र—सत्रहवीं गुफा के चित्र सोलहवीं गुफा के चित्रों के बाद के हैं परन्तु यह चित्र पहले से अधिक खराब अवस्था में हैं। डा० वर्गस ने इस गुफा में लगभग ३१ दृश्यों का वर्णन दिया है परन्तु अब बहुत कम चित्र प्राप्त हैं।

इस गुफा में घुसते ही बाहरी बरामदे की दीवार पर सुन्दर चित्र थे जो नष्ट हो चुके हैं। द्वार के दोनों ओर किसी समय बोधिसत्व के चित्र बने रहे होंगे परन्तु अब इनके केवल मुकुट मात्र ही रह गये हैं। इस गुफा की छत में सुन्दर आलेखन बनाये गये हैं।

इस गुफा के अन्दर अनेक सुन्दर चित्र हैं जिसमें नलगिरि नामक हाथी के आक्रमण के भी कई दृश्य हैं, किन्तु इन चित्रों के रंग फीके पड़ गये हैं और कई अंश पलास्तर के साथ गिर गये हैं। यहीं पर एक षडरचक्र का भी आलेखन किया गया है। इस चक्र के केन्द्र में अनेक प्रकार की आकृतियां हैं। इस चित्र में कई दृश्य,— जैसे बाजार, उद्यान, गोष्ठी, आदि के दृश्य, हैं। इस चक्र को एक व्यक्ति हाथ फैलाकर पकड़े हुए है, सम्भवतः यह कोई दार्शनिक तत्व अंकित किया गया है। इसके किनारे सर्पाकार नदी का बाढ़ युक्त प्रवाह है जिसके भय से लोग भाग रहे हैं। अधिकांश विद्वानों ने इसे संसृति का चित्र माना है। इस प्रकार के चित्रों के अंकन की परम्परा तिब्बत में भी दिखाई पड़ती है। इसी गफा में अनेक महत्वपूर्ण जातक कथाओं के चित्र अंकित हैं जिनमें छःदन्त जातक, महाहंस जातक, श्याम जातक, सुसोम जातक, महिष जातक, सिंहलावदान, शिविजातक, मृगजातक आदि हैं। इसी गुफा में मातृ-पोषक जातक की कथा भी सुन्दरता से अंकित की गई है। मातृपोषक जातक की कथा इस प्रकार है—'एक बार बुद्धदेव श्वेत हाथी के रूप में अवतीर्ण हुए थे, उनको पकड़ कर काशीराज के पास लाया गया परन्तु यहाँ उन्होंने अपनी माँ के वियोग में दाना-पानी छोड़ दिया काशीराज को जब यह ज्ञात हुआ तब उन्होंने श्वेत हाथी को

पुनः जंगल भेज दिया।' इस जातक कथा के अंकन में चित्रकार ने मां से पुनः मिलन की दशा को बड़ी मार्मिक दृष्टि से अंकित किया है। इस जातक कथा के अन्तिम दृश्य में श्वेत गज अपनी सूंड़ से अपनी अन्धी मां को सहलाते हुए दिखाया गया है।

इस गुफा में 'मार-विजय' का भव्य चित्र अंकित है। इस दूसरे चित्र में भगवान बुद्ध धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा में ध्यानमग्न हैं और चारों ओर उनके भक्तजन एकत्र हैं। यह भक्त वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हैं और अनुमानतः अभिजात वर्ग के हैं। कुछ व्यक्ति हाथी पर बैठे हैं। यहां पर बोधिसत्व की पृष्ठभूमि में एक पर्वत के अन्तर्गत दर्पण में सखियों सहित मुख देखती हुई एक स्त्री का चित्र अपने अनुपम सौन्दर्य के लिए विख्यात है।

यहीं पर वेस्सान्तर जातक की मार्मिक कथा का दृश्य भी चित्रित है। इस चित्र में बोधिसत्व राजा भावपूर्ण हस्तमुद्रा धारण किये आसान पर बैठा है, सामने एक भिक्षुक अपने कुरूप दाँत निकाले कुछ भिक्षा याचना कर रहा है। उसकी याचना से सारा राज परिवार चकित है। राजा के पीछे बैठी स्त्रियां चिन्तित हैं। भिक्षु राजा की दानशीलता का यश सुनकर एक यज्ञ में बलि के लिए उसके राजकुमार पुत्र को भिक्षा में प्राप्त करने आया है,— राजकुमार तैयार है। पीछे एक सेवक पात्र में जल ले आया है जिससे यह प्रतीत होता है कि राजा ने इस महादान का सकल्प कर लिया है। इस चित्र में हस्त-मुद्रायें तथा नेत्रों के भाव उल्लेखनीय हैं। चित्र की रेखायें भी सुडौल तथा शक्तिशाली हैं,— विशेष रूप से भिक्षु के कुरूप चेहरे, गजे सर, पोपले मुंह से बाहर निकले दांत, गाल की उठी हड्डी, भारी ठुड्डी आदि के अंकन में कलाकार ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है।

यहाँ पर एक बहुत ही महत्वपूर्ण चित्र अंकित है जिसमें कई सौ चेहरों का अंकन किया गया है। इस चित्र में सुन्दरियों के दलों, सवारियों, राज्याभिषेक आदि पक्षों का बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है। इसी चित्र में डांकिनियों का युद्ध भी विशेष महत्व का है। अजन्ता के चित्रकार ने सुन्दरता में ही रुचि प्रदर्शित नहीं की है बल्कि कुरूप तथा भयानक रूपों के अंकन में भी पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

इस गुफा में ही 'राहुल-समर्पण' नामक भव्य चित्र अंकित है। इस चित्र में बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात यशोधरा से मिलन दिखाया गया है— बुद्धदेव ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् कपिलवस्तु पधारते हैं। वे यशोधरा के द्वार पर याचक के रूप में आते हैं। यशोधरा भिक्षा में अपने जीवन आराध्य देव को पुत्र राहुल जैसी एक मात्र निधि से बढ़कर क्या दे सकती थी? यशोधरा भगवान के सम्मुख राहुल को समर्पित कर देती है। यहां पर भगवान बुद्ध को अन्य आकृतियों से बड़ा बनाया गया है। इसका कारण यह है कि भगवान बुद्ध साधारण मानव से महान् थे। अतः उन जैसी महान् आत्मा को विशाल रूप देकर उनकी महानता को स्थापित किया गया है। इसी गुफा में सिंहलावदान में सिंहल के यात्रियों का समुद्र में पोत टूट जाने पर राक्षस जाति के

लोगों से युद्ध का दृश्य सुन्दर ढंग से दिखाया गया है। इसमें युद्ध की गति, योद्धाओं की भंगिमायें तथा अस्त्र-शस्त्र सुन्दर हैं।

इसी गुफा का एक अन्य चित्र जिसकी कथा 'महाहंस जातक' पर आधारित है, अपने अनुपन वर्ण-विधान के कारण अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुका है। इस चित्र की कथा इस प्रकार है—'भगवान बुद्ध एक जन्म में स्वर्ण हंस के रूप में अवतीर्ण हुये। इसी समय काशीराज की रानी खेम ने स्वप्न में स्वर्ण हस देखे, इस कारण राजाज्ञा से बहेलियों ने स्वर्ण-हंस रूपी बुद्ध और सुमुख हंस को पकड़कर काशीराज की सेवा मं ला प्रस्तुत किया काशीराज की सभा में स्वर्ण-हस राजा को उपदेश देता है और काशीराज भगवान बुद्ध को सिहासन पर बैठाते है और उनसे उपदेश ग्रहण करते हैं। काशीराज सुमुख हंस सहित भगवान बुद्ध को छोड़ देते हैं। यहाँ से वे चित्रकूट की ओर चल देते हैं।' बुद्ध ने इस जातक कथा में बताया कि "पूर्वजन्म में बेहेलिया चन्ना रानी खेम धाया खेम' सुमुख आनन्द और काशीराज सरिपुत्र हुये और स्वर्ण-हंस स्वयं मैं था।" इस चित्र में राजा सिहासन पर विराजमान है, पीछे चमरधारी परिचारिकायें हैं—एक परिचारिका के हाथ में छत्र है' एक परिचारक का रंग नीग्रो जैसा है, राजा के नीचे पैरों के समीप बहेलिया बैठा हुआ है। उसके शरीर का रंग गहरा लाल है। मध्य में हंस एक सिहासन पर विराजमान है। हंसों के ऊपर राजा ने सम्मान सूचक छत्र लगवा दिया है। पृष्ठभूमि में आलेखनों से युक्त कनात खड़ी है. चित्र के अग्रभाग में एक झील है। जिसमें गुलाबी कमल, अनेक जल-पुष्प तथा जल-पक्षी हैं। इस चित्र में अजन्ता की कला का वर्ण-विधान सर्वोच्चा शिखर पर पहुंच गया है। लाल, सफेद तथा गहरे हरे रगों का संतुलन उल्लेखनीय है

उन्नीसवी गुफा के चित्र—यह गुफा चैत्य गृह है। इसमें पत्थर को काटकर अधिक अलंकरण किया गया है। चित्रों में गौतम बुद्ध के चित्र और सामने की ओर छत के आलेखन सुन्दर है।

छठी गुफा के चित्र—उन्नीसवीं गुफा के समान ही छठी गुफा में भी कुछ चित्र प्राप्त हैं। इनमें केश संस्कार से युक्त एक सुन्दरी तथा द्वारपालों के कुछ चित्र किसी कुशल चितेरे के बनाये हुये हैं।

ग्यारहवीं गुफा के चित्र—यहां पर हस्ति जातक की कथा तथा नन्द की कथा और उसकी विरह व्याकुल रानी के सुन्दर चित्र हैं। एक चित्र में एक बाँध के किनारे कुछ बालक और स्त्रियाँ सरोवर में स्नान कर रही है। इस चित्र में एक राक्षस भी है परन्तु इस चित्र की आकृतियों की लिखाई में निर्बलता है।

पहली और दूसरी गुफाओं के चित्र सबसे बाद में बनाये गये हैं। दूसरी गुफा में अकेली आकृतियां सुन्दरता से बनाई गई हैं साथ ही कलाकार ने जटिल अंङ्ग भङ्गिमाओं और मुद्राओं को अङ्कित करने का प्रयास किया है।

पहली गुफा के चित्र—इस गुफा में कई सुन्दर कथाओं तथा दृश्यों का अङ्कन मिलता है छतों पर सुन्दर अलंकरण किये गये हैं। (देखिये रेखाचित्र—अलंकरण

अभिप्राय) इस गुफा में शिविजातक की कथा, विरहणी, नागराज सभा का दृश्य, शंखपाल जातक, मारविजय तथा पुलकेशिन की सभा का दृश्य विशेष उल्लेखनीय चित्र

रेखाचित्र सं० २
अलंकरण अभिप्राय (अजन्ता गुफा—१, छत्त)

है। शिविजातक की कथा का रूप पौराणिक है। इस चित्र चेहरे लम्बे तथा आलेखन मध्यकालीन हैं। चित्र की लिखाई मोटी-मोटी रेखाओं से की गई है जिससे हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि यह गुफा बाद में चित्रित की गई होगी। यहां पर विरह पीड़ा से विह्वल एक सुन्दरी का चित्र है। इस सुन्दरी की विरह वेदना की कहानी कई सखियां जान गई हैं, और उसकी व्यथा को दूर करने का प्रयत्न कर रही है। इस चित्र में सजीवता है और आकृतियों की हस्त मुद्राओं तथा बालों के श्रृंगार के आलेखन में कोमलता है, किन्तु आकृतियों की शारीरिक रचना में भारीपन है। कटिभाग अति क्षीण है तथा कहीं-कही दोनों भृकुटियों को एक ही रेखा से बनाया गया है।

रेखाचित्र सं० ३
अलंकरण अभिप्राय

इस गुफा में ही बाईं भित्ति पर नागराज सभा का चित्र अंङ्कित है। इस सभा में नृत्य का अंङ्कन है और दरबारी चहल-पहल एवं राजसी ठाठ-बाठ सुन्दरता से दिखाया गया है। राजदम्पति के पीछे चमरधारिणी बड़ी ही मनोरम मुद्रा में अंङ्कित की गई है।

रेखाचित्र सं० ४

अलंकरण अभिप्राय

मार-विजय के चित्रण में चित्रकार ने अपनी पूर्ण योग्यता का परिचय दिया है। यह चित्र पर्याप्त नष्ट हो चुका है। जब भगवान बुद्ध बोधित्व प्राप्ति के समीप पहुंच गये थे तो कामदेव ने तप डिगाने के लिये आक्रमण किया यही घटना लेकर यह चित्र बनाया गया है। इस दृश्य में अनेक कामुकतापूर्ण, भयंकर एवं क्रूर आकृतियां उपस्थित की गयी है। एक ओर तपस्वी रूप में ध्यान मग्न बैठे हुये बुद्ध को एक लाल बौना आँखें फाड़कर देखते हुये डराने का प्रयत्न कर रहा है, एक भयानक आकृति तलवार चला रही है और इसी प्रकार की नाना आकृतियां बुद्ध को आतंकित कर तप से डिगाने का यत्न कर रही है।

एक दृश्य में चालुक्य सम्राट पुलकेशिन द्वितीय की राजसभा में आए फारस के बादशाह खुसरो परवेज के राजदूत को चित्रित किया गया है। इस चित्र से भारत तथा फारस के मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का ज्ञान होता हैं। इसी गुफा में 'चम्पेय जातक' की कथा का अङ्कन भी है। बुद्ध एक जन्म में नागराज थे। वे पकड़ कर काशीराज की सभा में लाये जाते है। यहाँ पर वे काशीराज को उपदेश देते है। राजा नागराज को सिंहासन पर बिठाता है और महिलाएं तथा राज-परिवार के सदस्य उनको चारों ओर से घेरे खड़े हुये अंकित किये गये है।

इसी गुफा में बज्रपाणि तथा पद्मपाणि बोधिसत्व के उत्कृष्ट चित्र अंङ्कित हैं (देखिये रेखाचित्र—बोधित्सव पद्मपाणि तथा बोधिसत्व वज्रपाणि)। असीम दया

तथा करुणा के भावों ने इन चित्रों को विश्व-विख्यात कर दिया है। पद्मपाणि-बुद्ध के

रेखाचित्र सं० ५
अलंकरण अभिप्राय

रेखाचित्र सं० ६
"बोधिसत्व पद्मपाणि" (अजन्ता गुफा-१, सातवीं शताब्दी)

रेखाचित्र सं० ७

बोधिसत्व वज्रपाणि (अजन्ता भित्तिचित्र, सातवीं शताब्दी)
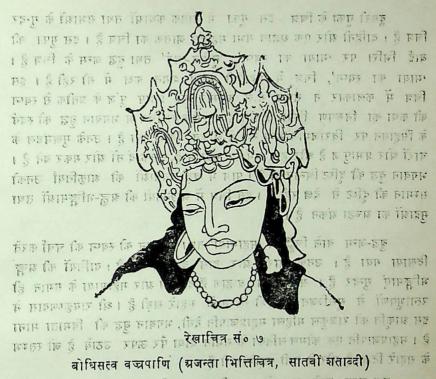
चित्र में बुद्ध भगवान की आकृति ५' ६$\frac{1}{2}$" × २" ५$\frac{1}{2}$" के विस्तार में पर्याप्त बडी बनाई गई है। चित्र की रेखाओं में प्रवाह और शक्ति है। बुद्ध के दोनों ओर गण बताये गये हैं और भगवान बुद्ध लम्बी मालाओं से सुसज्जित हैं। बुद्ध के एक ओर राजकुमारी का चित्र है जिसे काली राजकुमारी के नाम से ही पाश्चात्य लेखकों ने सम्बोधित किया है। परन्तु श्री रायकृष्ण दास का मत है कि सिन्दूर से चित्रांकन होने के कारण रंग काले पड़ गये हैं। उनके अनुसार चट्टानों में गन्धक का अंश रहा होगा जो जल में घुल कर वर्षाकाल में चित्र के ऊपर चट्टानों से बहकर आया होगा और चित्र पर अपना प्रभाव डालता रहा होगा। इस कारण गंधक के प्रभाव से सिन्दूर का रंग काला पड़ गया है।

इस गुफा में कलाकार ने एक ब्रेकिट के ऊपरी भाग पर साँडों की लड़ाई का सुन्दरता से अंकन किया है। इस चित्र में अत्यधिक गति, बल और सुडौलता है। इस चित्र से ज्ञात होता है कि अजन्ता के कलाकार के पशुओं का अच्छा ज्ञान था। बिन्सेंट स्मिथ के अनुसार इस गुफा की छत के आलेखन सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बताये गये थे। छत के यह आलेखन पूर्ण विवरण सहित लिखे गये हैं। (देखिये-रेखाचित्र—अलंकरण अभिप्राय।)

दूसरी गुफा के चित्र—इस गुफा में जातक कथाओं तथा सभाओं के सुन्दर चित्र हैं। दाहिनी ओर एक अज्ञात सभा महाहंस जातक का चित्र है। इस गुफा की बाईं भित्ति पर 'माया का स्वप्न', 'तृषित-स्वर्ग' तथा बुद्ध जन्म के चित्र हैं। 'माया का स्वप्न', चित्र में महादेवी माया शयन कक्ष में सो रही है। इस चित्र में कलाकार ने सफेद गोल आकार या प्रताप पुंज के प्रतीक से स्वप्न की कथा का निरूपण किया है। तृषित स्वर्ग वाले चित्र में भगवान बुद्ध को स्वर्ग के सिंहासन पर विराजमान भव्य रूप में अंकित किया गया है। उनके मुखमंडल के चारों ओर प्रभापुंज है और हाथ धर्मचक्र मुद्रा में हैं, उनके दोनों ओर मकर बने हैं। भगवान बुद्ध की दृष्टि चिन्तनपूर्ण है। पास में खड़े देवताओं की आकृतियाँ उनको सम्मान की दृष्टि से देख रही है। इस चित्र में आकृतियों की अङ्ग-भङ्गिमाओं तथा मुद्राओं का अच्छा अंकन है।

बुद्ध-जन्म वाले चि में 'महामाया' तथा शुद्धोधन को स्वप्न की चर्चा करते दिखाया गया है। उनके चारों ओर दास दासियां खड़े हैं। दासियों की अङ्ग भङ्गिमाएं सुन्दर हैं। सामने दो ब्राह्मण हैं दाहिनी ओर महामाया के समान ही रत्नाभूषणों से सुसज्जित एक स्त्री स्तम्भ के सहारे खड़ी है। श्री रायकृष्णदास ने इस आकृति को राजकुल महिला महाप्रजापति देवी, भगवान बुद्ध की विमाता माना है। महाप्रजापति एक कोमल लतिका के समान बांया पैर ऊपर उठाये है जो स्तम्भ के सहारे टिका है और वे उसी सहारे खड़ी हैं।

बुद्ध जन्म वाले दृश्य में शाल की डाल पकड़े महामाया उपवन में खड़ी हैं, उपवन के बाहर भिखारी हैं। इस चित्र में इन्द्र चौकोर टोपी लगाये हैं और तीन नेत्रों से युक्त दर्शाया गया है।

इसी गुफा में एक वैराग्य सूचक साधू का चित्र है परन्तु कुछ लेखकों ने इसे सर्वनाश सूचक साधू या राजदूत माना है। यह बृद्ध साधु एक लकड़ी के सहारे खड़ा है और एक हाथ की मुद्रा से 'सब कुछ मिथ्या है' के सन्देश (भाव) को अभिव्यक्त कर रहा है। उसके नेत्रों तथा चेहरे में भी यही भाव हैं।

इसी गुफा में 'विदुर पंडित जातक' और 'झूला-झूलती राजकुमारी' के चित्र हैं। यह झूला-झूलती राजकुमारी मदमाते यौवन के प्रतीक झूले पर झूल रही है। यहाँ पर एक और सुन्दर चित्र हैं जिसमें शान्तिवादिन मुनि की कथा का अंकन हैं। एक जन्म में भगवान बुद्ध शान्तिवादिन मुनि के रूप में अवतीर्ण हुये और काशीराज के अन्तःपुर की सब स्त्रियां उनके उपदेश सुनने गईं। इस पर राजा ने उसके वध की आज्ञा दे दी। इस चित्र में राजा खड्ग लिये सिंहासन पर बैठा है, उसके पैरों पर गिरी कोमलाङ्गी सुन्दरियां भय से कांप रही हैं, तो कुछ भागना चाहती है और कुछ मुँह छिपाये चिन्तामग्न हैं। चित्र में सर्वप्रथम भय का भाव है (देखिये रेखाचित्र—राजा के चरणों पर नृतकी)।

रेखाचित्र सं० ८
राजा के चरणों पर नृतकी
(अजन्ता गुफा नं० २ सातवीं शताब्दी)

रेखाचित्र सं० ९
युगल रानियां (अजन्ता गुफा)

रेखाचित्र सं० १०

अप्सरा (अजन्ता गुफा-१७, पांचवीं शताब्दी)

बाघ गुफाएं

बाघ गुफाओं की स्थिति—बाघ गुफायें प्राचीन ग्वालियर राज्य में विन्ध्यचल पर्वत श्रेणी में स्थित थीं। परन्तु अब यह गुफायें मध्यप्रदेश के अन्तर्गत आ गयी हैं। १८१८ ई० में सर्वप्रथम इन गुफाओं का परिचय तथा विवरण लेफ्टीनेन्ट डेन्जफील्ड ने बम्बई से प्रकाशित किया। इन गुफाओं के चित्रों का १९०७-८ ई० में कर्नल सी० ई० लुआर्ड ने निरीक्षण किया और पुनः यह चित्र संसार के समक्ष आये। इन गुफाओं तक पहुंचने के लिये पहले महो रेलवे स्टेशन तक रेलगाड़ी से जाना पड़ता है और फिर महो से धारमार्ग के द्वारा बाघ कस्वे तक मोटर से ८७ मील का मार्ग पार करना पड़ता है। यद्यपि बाघ कस्वे में ठहरने के लिये विश्रामगृह हैं, परन्तु शेष सुविधाओं के लिये पर्यटकों को अपनी व्यवस्था करनी पड़ती है। बाघ कस्वे से यह गुफायें दो या तीन मील की दूरी पर स्थित है। वर्षा-ऋतु में बाघ नदी में बाढ़ के कारण आने-जाने में असुविधा उत्पन्न हो जाती है, वैसे महो से पयटकों के लिये टैक्सी तथा मोटरों की सुविधा प्राप्त हो जाती है।

बाघ का परिचय तथा गुफाएं—बाघ की गुफाओं का नाम निकट में स्थित गांव 'बाघ' के नाम पर पड़ा है। बाघ गुफाओं को स्थानीय लोग पंच-पांडव गुफाओं के नाम से पुकारते हैं। यह गुफायें विन्ध्याचल पर्वत के दक्षिणी ढाल पर बाघ नदी के किनारे स्थित हैं। जिस क्षेत्र में यह गुफायें काटी गई हैं वह बाघ नदी से १५० फुट ऊंचा है, परन्तु इस क्षेत्र में रेतीली चट्टानें होने के कारण गुफाओं के निर्माण में बहुत असुविधा हुई। यहां पर कुल नौ गुफायें हैं जिसके सम्मुख भाग की लम्बाई ७५० फुट है। पहली गुफा 'गृह' है जिसका क्षेत्रफल २३ × १४ फुट है। यह गुफा कमरे के समान है जिसमें चार स्तम्भ हैं। इस गुफा का बाहरी बरामदा गिर चुका है और गुफा की दशा खराब है। दूसरी गुफा 'पांडवों की गुफा' है। इस गुफा की दशा अच्छी है यद्यपि धुयें तथा चिमागदड़ों के कारण चित्र धूमिल पड़ गये है। यह गुफा एक वर्गाकार चैत्य है जिसके तीन ओर छोटी-छोटी कोठरियां काट कर बनाई गयी है। बाहरी की ओर स्तम्भों पर आधारित बरामदा हैं और पीछे एक स्तूपदार चैत्य या गर्भभाग है। तीसरी गुफा का स्थानीय नाम 'हाथी-खाना' या 'हस्तिखाना' है। यह भी सम्भवतः आवास के लिये बनाई गई होगी क्योंकि इस गुफा को कोठरियों को टेम्परा चित्रों से सुसज्जित किया गया है। इस गुफा का बाहरी बरामदा गिर चुका है। इस गुफा में दो मंडप (हाल) हैं। इस गुफा की दीवारों पर बुद्ध पूजा के चित्र बने हैं जिनसे अनुमान होता है कि यह गुफा चैत्यगृह थी चौथी गुफा 'रंगमहल' है और इसमें अब भी सुन्दर चित्रों के अवशेष सुरक्षित हैं तीसरी और चौथी गुफा के मध्य २५० फुट खुरदरी चट्टानें है परन्तु चौथी गुफा पाँचवी से तथा पांचवी गुफा छठी गुफा से भीतर द्वार से सम्बन्धित हैं। चौथी गुफा के मध्य का मण्डप ८४ फुट लम्बा है। यहां पर दरवाजों पर ब्रैकिटों में जो मूर्तियां है

वह सांची की शैली से समानता रखती हैं। पाँचवी गुफा ९५ × ४४ फुट क्षेत्रफल की गुफा है जिसमें दोनों ओर स्तम्भों की पंक्तियां हैं। इस गुफा में छतों, स्तम्भों तथा दीवारों पर टेम्परा चित्र बने हैं। छठी गुफा ४६ फुट का एक वर्गाकार मंडप (हाल) है जिसके साथ पांच कोठरियाँ भी काटी गयी हैं। चौथी तथा पांचवी गुफा के सम्मुख २२० फुट का बरामदा है जो अब गिर चुका हैं। इस बरामदे के पीछे की दीवार पर ऊपरी भाग में ही चित्रों के समुचित अवशेष रह गए हैं। सातवीं, आठवीं तथा नवीं तीनों गुफाओं के विषय में बहुत कम ज्ञान हो पाता है क्योंकि इन गुफाओं की छतें गिर चुकी हैं और चट्टानों तथा पत्थरों से दरवाजे बन्द हो जाने के कारण भीतर प्रवेश करने का मार्ग अवरुद्ध हो गया है।

गुफाओं का समय— इन गुफाओं में कोई भी ऐसा लेख नहीं मिलता जिनसे इन महत्वपूर्ण कला-मन्दिरों की गौरव गाथा का ज्ञान हो। यहाँ की चट्टानें भी इस योग्य नहीं हैं कि उन पर लेख उत्कीर्ण किये जा सके। प्रस्तर अलकरण तथा मूर्तियों के निर्माण के लिये भी यह चट्टाने उपयुक्त नहीं थीं। अतः अलकरण के अभाव को पूरा करने के लिये चित्रकला का प्रयोग ही किया गया है। इस प्रकार चित्रित प्रमाण ही लेखों का कार्य करते है। परन्तु दुर्भाग्यवश यह प्रमाण भी अधिकांश नष्ट हो गये हैं, केवल एक स्थान पर अक्षर 'क' हिरौंजी के रंग में लिखा रह गया है। श्री एम० बी० गेरडे के अनुसार प्राचीन लिपि में 'क' छठीं-सातवीं शताब्दी के प्रसंग में आया है और उनके अनुसार यही इन गुफाओं का समय माना गया है।[1] स्मिथ महोदय ने इन गुफाओं की चित्रकारी का समय ६२६-६२८ ई०में माना है और इनकाअजन्ता की पहली तथा दूसरी गुफा कीं चित्रकारी का समकालीन बताया है परन्तु १९२९ ई० में पुरातत्व विभाग की ओर से इन गुफाओं की सफाई तथा जीर्णोद्वार करते समय दूसरी गुफा में महाराज सुबन्धु का ताम्रपत्र मिला जिससे इन गुफाओं के निर्माण का ठीक समय निश्चित हो जाता है।

इस ताम्रपत्र पर उततीर्ण लेख के अनुसार में माहिष्मती के महाराज सुबुन्धु ने भगवान बुद्ध के गन्धधूप, माल्यावलि' सूत्र पूजा आदि की योजना के लिए, भग्न, स्फुटित के संस्करण के लिए तथा आर्य भिक्षु संघ के चारों दिशाओं से आकर ठहरने पर उनके चीवर पिन्ड पालग्लान प्रत्यय 'शय्यासन भैषज्य' के लिए 'दासिलकपल्ली' नामक ग्राम दान में दिया है।' इस ताम्रपत्र की चौथी पांचवीं पंक्ति से यह ज्ञान होता है कि यह दान 'कलयन' (बाघ) नामक बिहार को दिया गया। 'दासिलक-पल्ली' ग्राम का अब कोई चिन्ह प्राप्त नहीं है।

इस अभिलेख के अनुसार विद्वानों का अनुमान है कि बाघ की गुफायें -कलयन' या 'कलायन' के नाम से पुकारी जाती थीं। इतिहासकारों ने महाराज सुबुन्धु का

---

[1] '[illegible] इन दी ग्वालियर स्टेट'—इण्डिया सोसायटी।

समय ४१६-४६६ ई० के मध्य माना है । इस प्रकार इस ताम्रपत्र से ऐसा ज्ञात होता है कि यह गुफायें महाराज सुबन्ध के समय में बनकर तैयार हो गई थीं ग्रोर इस प्रकार इनका निर्माणकाल चौथी पांचवीं शताब्दी माना जा सकता है ।

गुफाओं की खोज तथा सुरक्षा- ग्राधुनिक समय में इन गुफाओं की खोज १८१८ ई० में लेफ्टीनेन्ट डेंजर फील्ड नामक वास्तु-कला के विद्वान ने की, और फिर कई विद्वानों ने बाघ के सम्बन्ध में लेख लिखे । इनमें डब्ल्यू इरिस्किनी, ई० इम्पे, कर्नल सी० ई० लुग्राडं, स्व० ग्रसित कुमार हाल्दर तथा श्री मुकुलचन्द्र डे, ने बाघ गुफाओं पर लेख प्रकाशित किये ।

सरकार ने ग्वालियर राज्य में पुरातत्व विभाग की स्थापना के पश्चात् ही इन गुफाओं की समुचित सुरक्षा का प्रबन्ध कर दिया । सुरक्षा के लिए कई खिड़कियों तथा द्वारों को बन्द कर दिया गया और गुफाओं की सफाई कराई गई । इन चित्रों की अनुकृतियां बनाने के लिए देश के प्रसिद्ध कलाकारों को अनुकृति चित्र बनाने का कार्य सौंपा गया । इन कलाकारों में स्व० नन्दलाल बसु, स्व० ग्रसित कुमार हाल्दर तथा श्री सुरेन्द्रनाथ कर (कलकत्ता), श्री ए० बी० भोंसले तथा बी० ए० ग्रापटे (बम्बई), श्री एम० यस० भांड तथा श्री बी० वी० जगतप (ग्वालियर) थे । इनकी बनाई बाघ के चित्रों की प्रतिलिपियां ग्राज ग्वालियर दुर्ग के गूजरी महल की एक बारहदरी में सुरक्षित हैं । इसके पश्चात् ग्रारमीनियन चित्रकार सरकिस कचडोरियन ने भी बाघ के चित्रों की अनुकृतियाँ तैयार कीं ।[1]

बाघ गुफाओं के चित्र

बाघ गुफाओं के सबसे अच्छे चित्र चौथी और पाँचवीं गुफा के बाहरी बरामदे की भीतरी दीवार या गुफाओं के सामने की दीवार पर ऊपर के भाग में सुरक्षित थे । परन्तु बरामदे की छत गिर जाने से पर्याप्त चित्र नष्ट हो गये हैं । इसके अतिरिक्त दर्शकों ने नाम लिख-लिख कर भी चित्रों को क्षति पहुंचाई है ।

पहला दृश्य—अधिकांश चित्र चौथी गुफा के सम्मुख भाग में प्राप्त हैं । इन चित्रों का सिंहावलोकन नितान्त दक्षिणी छोर से चौथी गुफा के द्वार से आरम्भ करेंगे ।[2] इस द्वार के ऊपर दो दृश्य अंकित हैं । पहले दृश्य में दो स्त्रियां एक छज्जे पर बैठी हैं जिसमें से एक शोकाकुल है, और अपने दाहिने हाथ में लगे वस्त्र से अपने मुंह को छिपाए है । उसका बांया हाथ किसी बात को व्यक्त करने की मुद्रा में फैला है । दूसरी स्त्री समवेदना और सहानुभूति में उसकी करुण-कहानी सुन रही है । इस छज्जे की छत पर नीले कबूतरों की जोड़ी बनाई गई है जो किसी प्रणय

---

1. 'भारतीय चित्रकला'—ले० बाचस्पति गैरोला, पृष्ठ १२१ ।
2. **टिप्पणी**—अधिकांश हिन्दी लेखकों ने इन चित्रों को त्रुटि से गुफाओं के भीतर बताया है और इन चित्रों की संख्या को गुफा की संख्या माना है ।

प्रसंग का प्रतीक है। सम्भवतः यह किसी विरहणी का चित्र है। इस विरहाकुल स्त्री के चित्र को कुछ विद्वानों ने बुद्ध के विरह में व्याकुल यशोधरा का चित्र बताया है।

दूसरा दृश्य—दूसरे दृश्य में चार गहरे वर्ण के आभूषणधारी पुरुष किसी गम्भीर वार्ता में निमग्न हैं। यह सब पुरुष आकृतियां पाल्थी बांधे नीली तथा पीली आसनियों पर विराजमान हैं। इन आकृतियों की पृष्ठभूमि मे उद्यान का आभास होता है।

तीसरा दृश्य—तीसरे दृश्य में स्पष्ट रूप में आकृतियों के दो समूह हैं जो एक के ऊपर एक बनाये गये हैं परन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह एक ही प्रसंग के चित्र हैं या एक ही दृश्य की घटना हैं। ऊपर वाले भाग में छः पुरुष आकृतियां है, ये आकृतियां हवा में उड़ रही हैं और बादलों से आच्छादित हैं। नीचे

रेखाचित्र सं० ११
गायक दल (भित्तिचित्र)
(बाघ गुफा नं० ४, पांचवीं शताब्दी)

वाले भाग में केवल पांच सर शेष बचे हैं जो स्पष्ट रूप से गायिकाओं के चित्र हैं क्योंकि बीच वाली स्त्री के हाथ में बाद्य यंत्र है। इन स्त्रियों के केश जूड़े में बंधे हैं। इस चित्र में नीले रंग से जड़ाऊ आभूषण बनाए गये हैं। यह नीला रंग लेपिसलाजुली है जिसका प्रयोग अजन्ता के चित्रों में भी किया गया है। इस रंग को उस समय फारस से आयात किया जाता था।

चौथा दृश्य— चौथे चित्र में स्त्री गायिकाओं के दो दलों को चित्रित किया गया है। यह चित्र बाघ के समस्त चित्रों में अपनी मंडलाकार व्यवस्था, लय तथा सुन्दरता के कारण प्रसिद्ध हो चुका है। पहले दल में सात स्त्रियां एक अन्य आठवीं नृतकी स्त्री को चारों ओर से घेरे खड़ी हैं। नृत्य करने वाली स्त्री पूरी आस्तीन का चुस्त कुर्ता पहने है जो घुटने तक नीचा है, तीन स्त्रियां डन्डे बजा रही हैं, एक मृदङ्ग बजा रही है, और शेष तीन मजीरे (ताल) बजा रही हैं। यह स्त्रियां उरोजों पर या तो आस्तीन दार चोली पहने है या ऊपर भाग में अर्धनग्न हैं।

दूसरे दल में एक नृतकी को घेरे छः स्त्री गायिकायें मंडलाकार रूप में खड़ी हैं, नृतकी के बाल कन्धों पर लहरा रहे हैं। वह चुस्त कुर्ता तथा पतला पजामा पहने है। शेष छः गायिकाओं में से एक मृदङ्ग बजा रही है, दो छोटे-छोटे मंजीरे बजा रही हैं, और शेष तीन डन्डे बजा रही हैं। इनकी वेश-भूषा पहले वाली गायिकाओं के दल के समान ही है। इस चित्र में कुछ लेख दिया गया था परन्तु अब केवल 'क' स्पष्ट है। (देखिये रेखा चित्र—गायक दल)

पांचवां दृश्य—पांचवे चित्र में कम से कम सत्रह घुड़सवारों का एक दृश्य अंकित है। यह घुड़सवार बाईं ओर जा रहे हैं। पोशाकों की तड़क-भड़क, घोड़ों की गति तथा राजकीय चिन्ह इत्यादि के कारण यह किसी राजा का दल या जलूस प्रतीत होता है। घोड़ों का अंकन सुन्दरता से किया गया है। इस दल के चित्र में समस्त सवार चुस्त बाने के समान पोशाक पहने दर्शाये गये हैं और उनके सर के पिछले भाग पर पीली या सफेद रंग की पगड़ी लगी है।

छठा दृश्य — छठे दृश्यों में एक हाथियों का जलूस दिखाया गया है। इस दल में छः हाथी और तीन घुड़सवार हैं, परन्तु घुड़सवारों में से अब केवल एक ही स्पष्ट है। छठा दृश्य तोरण के द्वारा सातवें दृश्य से अलग हो जाता है। इस चित्र में एक व्यक्ति हाथी पर हाथ में कमल पुष्प धारण किये बैठा है, इसके सर पर छत्र लगा है तथा पीछे एक अंगरक्षक चंवर झल रहा है।

सातवां दृश्य—सातवां दृश्य छटे दृश्य के विरोध में दूसरी ओर बनाया गया है। इसमें चार हाथी और तीन घुड़सवार अपने गन्तव्य स्थान तक आ गये हैं। हाथी विश्राम करने के लिए बैठ गये हैं। यहाँ पर दो पैदल आदमी हैं जिनके हाथ में तलवारें और भाले हैं। इन सब का ध्यान सामने के भवन पर केन्द्रित है। निकट ही

ग्राम वृक्ष से नीला कपड़ा लटका है और नीचे जलपात्र तथा धर्मचक्र दर्शाये गये हैं। निकट ही एक केले का वृक्ष है जिसके नीचे बुद्ध बैठे हैं और एक शिष्य को उपदेश दे रहे अंकित हैं।

चौथी गुफा के उत्तर की ओर भी कुछ चित्र अवशेष हैं जो अधिक स्पष्ट नहीं हैं। छठी गुफा में गौतम बुद्ध के अनेक चित्र हैं, जिसमें 'उषनिश-बुद्ध' का सुन्दर चित्र अवशेष मात्र रह गया है। इसी प्रकार इस गुफा की पाँचों भीतरी कोठरियाँ भी चित्रों से सजी हुई थीं। इन चित्रों की आकृतियाँ, भङ्गिमायें, अलंकरण तथा शैली अजंता के समान है, अतः इन चित्रों को अजंता शैली का माना गया है। आकृतियों के चुस्त कपड़े तथा शृंङ्गार गुप्तकालीन मूर्तियों की याद दिलाते हैं।

बाघ गुफाओं में काले, सफेद तथा हिरौंजी के रंग के प्रयोग से उत्तम आलेख बनाये गये हैं, जो लय तथा आकारों की पूर्णता में अजंता को मात करते हैं। इन आलेखों में मनमुग्धकारी पक्षी, शुक, सारिका, कुक्कुट, हस, कोयल, मोर, सारस चकोर तथा बत्तख आदि का कमल, कमलनाल, लताओं तथा पुष्पों के बीच बीच में अंकन किया गया है। रंगीन चित्रों में नीले, लाल और पीले विरोधी रंगों का प्रयोग किया गया है। रंगों की यहाँ दो शैलियाँ हैं जो सम्भवतः दो भिन्न भिन्न काल-क्रमों की परिचायक हैं।

बादामी की गुफायें

वात्यपिपुरम् (Vatapipuram) नामक स्थान का आधुनिक नाम बादामी है। बादामी की गुफायें बीजापुर जिले के अन्तर्गत आईहोल के निकट महाराष्ट प्रान्त में स्थित हैं। वात्यपिपुरम पर्वतों के बीच सुरक्षित रूप से बसा हुआ था और अपने तालाबों, मन्दिरों तथा झीलों के कारण किसी समय एक सुन्दर नगर रहा होगा। परन्तु आज यह सभी काल के आघातों से नष्ट हो चुके हैं। बादामी के मध्य में एक अभिलेख उत्कीर्ण है जो पल्लव राजा नरसिंह वर्मन का है। इस लेख के अनुसार इस पल्लव-वंशीय राजा नरसिंह वर्मन ने महान चालुक्य राजा पुलकेशिन द्वितीय की राजधानी बादामी को ध्वस्त कर दिया था। बादामी के चार गुफा मन्दिरों में शिल्प तथा चित्रकला के उत्तम उदाहरण सुरक्षित हैं।

दक्षिण में बाकाटक वंश के पश्चात चालुक्य वंश का उदय हुआ था। चालुक्य वंश में पुलकेशिन का पुत्र कीर्तिवर्मन और कीर्तिवर्मन का पुत्र पुलकेशिन द्वितीय प्रतापी राजा हुए। मंगलेश राजा कीर्तिवर्मन का छोटा भाई था, और पुलकेशिन द्वितीय के पश्चात् चालुक्य साम्राज्य का शासक बना। वह भवन कला प्रेमी शासक था। उसके राज्यकाल में बादामी की चौथी गुफा बनकर पूर्ण हुई। बादामी की चौथी गुफा (मुख्य-मंडप) शिल्प-सज्जा, चित्रकारी तथा वास्तु के दृष्टिकोण से श्रेष्ठ है। इस गुफा में मंगलेश के शासनकाल के बाहरवें वर्ष का एक लेख प्राप्त है, जिसका समय शाका ५०० अर्थात् ५७८-५७९ ई०-इस अभिलेख में बादामी की

इस गुफा के निर्माण विषयक पर्याप्त सूचना दी गई है। इस लेख के अनुसार-विष्णु की प्रतिमा इस मुख्य-मंडप (चौथी गुफा) में स्थापित की गई और मन्दिर में पूजा पाठ के लिये अनुदान स्वरूप लन्जीसवाड़ा' नामक ग्राम की जागीर इस मन्दिर के प्रबन्ध के लिये बाँधी गई थी। इस लेख के अनुसार यह गुफा मंगलेश ने बनवाई थी। बराह पैनल के समीप उत्कीर्ण इस लेख में इस प्रकार का संकेत है कि दर्शकों को मंगलेश की कला का रसास्वादन करने के लिये गुफा की छत, दीवारों तथा मूर्तियों की ओर देखना चाहिये।

अजन्ता में उत्कीर्ण लेखों से स्पष्ट है कि अजन्ता के चित्र बाकाटक राजाओं ने बनवाये। इसी प्रकार बादामी के अलंकरण सम्बन्धी अभिलेखों से स्पष्ट है कि— 'मंगलेश के दरबारी चित्रकारों ने अपने से पूर्व के बाकाटक कलाकारों की शैली को अपनाया।'

बादामी के चित्रों की खोज का श्रेय स्टेला क्रैमरिश को है। पहले बर्गीज तथा बनर्जी ने इस गुफा के बाहरी भाग में चित्रों के धुंधले चिन्ह पाये थे। बादामी गुफा के चित्र ब्राह्मण मन्दिरों के सबसे पहले चित्र उदाहरण माने जा सकते हैं। बादामी की इस गुफा में जो भव्य शिल्प तथा चित्रकारी के नमूने प्राप्त हैं उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि मंगलेश ने चित्रकारों को आश्रय दिया। सर्वप्रथम स्टैला क्रैमरिश ने इन चित्रों का अध्ययन किया और उन्होंने इनको शिवविवाह से सम्बन्धित दृश्य बताया।[1] यह चित्र बहुत खराब अवस्था में है। श्री कार्ल खण्डालावाला ने १९३८ ई० में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'इन्डियन स्कलपचर एण्ड पेन्टिंग', (बम्बई) में बादामी का एक रंगीन चित्र प्रकाशित किया।

बादामी के भित्तिचित्रों की प्रतिकृतियाँ ललित कला अकादमी के निमंत्रण पर भारत के प्रसिद्ध चित्रकार स्व० जे० एन० अहिवासी तथा उनके सहायकों ने तैयार की। यह कार्य श्री कार्ल खण्डालावाला तथा श्री के० हैब्बर की देख-रेख में किया गया। यह प्रतिकृतियाँ राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली ने ललित कला अकादमी से प्रदर्शन हेतु मंगवाई और यहाँ वह जनता के किये प्रदर्शित की गई।

बादामी के मुख्य-मंडप की छत पर पैनलों के चार दृश्य बनाए गए हैं। इनमें से प्रथम दो ५'×५' आकार के हैं परन्तु दूसरे दो पैनल १', ५¾"×१', १०" आकार के हैं।

प्रथम दृश्य—यह दृश्य शिव-विवाह पर आधारित है। इस चित्र में एक विशाल महल के अन्तर्गत इन्द्र की सभा वैयजन्ता या देवताओं की सभा सुधर्मा का अंकन हैं। इस चित्र में इन्द्र की मुख्य आकृति नीलमायुक्त हरे वर्ण की है और अपना

1. 'पेंटिंग्स एट बादामी' जनरल आफ दी इन्डियन सोसाइटी आफ ओरियन्टल आर्ट—ले० स्टैला क्रैमरिश, पृष्ठ ५७-६१।

एक पैर आसन पर रखे है तथा दूसरा पैर पदपीठा पर रखे आसीन है। इस आकृति का सिर नष्ट हो गया है। इसके दाहिने हाथ की उंगलियां कत्तकामुख मुद्रा में और बायें हाथ की उंगलियां शिखरहस्त मुद्रा में बनाई गई हैं। इस आकृति की गरदन में कम्बुकन्ठा, तथा कन्धे पर मोतियों की लड़ियों से बना यज्ञोपवीत सुशोभित दर्शाया गया है। इस आकृति के बायें कान का एक पत्राकार कुण्डल शेष रह गया है। इस आसनासीन आकृति के नीचे अनेक आकृतियां बैठी हैं। इन्द्र के पीछे पांच चामर-धारणियों के दल में केवल एक जटाधारी पुरुष आकृति है, शेष सब स्त्रियां हैं। इस दल के ऊपर स्तम्भों पर आधारित दीर्घा में देवतागण राजसी ढंग से बैठे हैं। इस मुख्य आकृति से बाई ओर चित्र में नृतन-मंडली अंकित की गई है। इनमें दो नृत्य करती हुई आकृतियां बड़ी गतिपूर्ण मुद्रा मे अंकित की गयी हैं। इनमें से पुरुष नृतक का मुख दर्शको की ओर है। यह नृतक चतुरा मुद्रा में नृत्य कर रहा है और उसका बायां हाथ दण्डहस्त मुद्रा में है और दाहिनी हाथ कत्तकामुखमुद्रा में उठा है। स्त्री नृतकी, जो नृतक के सम्मुख है, का दाहिना हाथ दण्डहस्त मुद्रा और बायां हाथ कत्तकमुख हस्त मुद्रा में है। पुरुष नृतक के बाल जटाजूट आकार के हैं, उसके कानों में पत्र-कुण्डल हैं और प्रचलित आभूषण तथा वस्त्र-माला, अनन्त, कड़े तथा घुटनों तक धोती (आन्घ्रा-धोती) पहने है। स्त्री नृतकी का वर्ण गहरा नीलभायुक्त है। उसके बाल एक भव्य पगड़ीनुमा जूड़े में बंधे हैं, उसके कानों में पत्रकुंडल, भुजाओं पर अनन्त हैं। इन नृतकों के समीप वाद्य-मंडली अनेक प्रकार के वाद्य यंत्र बजा रही है। इस वाद्य मंडली में सब स्त्रियां हैं। इनमें दो बांसुरी वादक हैं, एक ढोलक तथा एक अंक्य-मृदंग बजाती आकृति है तथा एक ताल (मंजीरा) बजाती स्त्री आकृति है। इस चित्र में अनुमानतः स्त्री नृतकी उर्वशी अप्सरा है जिसके सम्मुख काली पुरुष आकृति स्वयं तांडू की आकृति है जो इन्द्र के सम्मुख अप्सरा के नृत्य-कौशल का प्रदर्शन कर रहे हैं। कुछ दर्शक इस रगारंग कार्यक्रम को ऊपर झरोखों में से देख रहे हैं।

दूसरा दृश्य दूसरा दृश्य एक राजमहल के कक्ष का है। इस दृश्य में राजसी युगल का अंकन है। राजसी पुरुष महाराजलीला मुद्रा में अपना दाहिना पैर पदपीठा पर, तथा बायां पैर आसन पर रखे आसन पर विराजमान हैं। उसका बायां हाथ घुटने पर है और दाहिना हाथ त्रिपताका मुद्रा में है। उसके सर पर ऊंचा मुकुट है तथा सामान्य आभूषण पहने है। यज्ञोपवीत उसके दाहिने कन्धे से लहरा कर लटक रहा है। उसके दाहिनी ओर मुकुट धारण किये अनेक युवराज धरती पर बैठे इस भव्य राजसी पुरुष के आदेश की प्रतीक्षा कर रहे है, परन्तु अधिकांश आकृतियां अस्पष्ट हैं और नष्ट हो चुके हैं। इन आकृतियों के छोर पर एक स्त्री प्रतिहारी की आकृति है जो नीचे शरीर में टखनों तक अपारदीना जैसा वस्त्र पहने है और हाथ में दण्ड धारण किये है। इस राजसी आकृति के बाईं ओर प्रसाधिकायें या परिचारिकायें रानी की सेवा में खड़ी हैं, रानी के पास ही राजकुमार भी चित्रित है।

यह रानी एक नीचे आयाताकार पीठ वाले आसन पर बैठी है, जिसमें तकिये लगे हैं। इस रानी की सेवा में राजा के समान चामरधारिणियां खड़ी हैं जिनके केश खुले (धामिला) या जटा रूप में बनाये गये हैं। इनमें से एक के हाथ में दण्ड है। रानी की मुद्रा मनोरम है। उसका दाहिना पैर पदपीठा पर है और बायां पैर मुड़ा हुआ है और आसन पर रखा है। उसका दाहिना हाथ आसन पर है, परन्तु बायां हाथ सोचिमुद्रा में है। उसके कानों से पत्र-कुंडल लटक रहे हैं। उसकी भुजाओं में अनन्त तथा भुजबन्द हैं और वह ग्रीवा में मालाएं पहने है। उसके बाल धमीला प्रकार के हैं और लहराते चिकुर उसके माथे पर बनाए गए हैं। वह कमर से नीचे जांघों पर धारीदार अर्धरूका पहने है। इस चित्र में यह लाल रग का स्वस्थ राजसी पुरुष पल्लव नरेश कीर्तिवर्मन है जिसकी रानी के साथ चित्रित किया गया है। रानी का वर्ण गौर है। इन दोनों के नीचे तीन सेनानायक बैठे हैं जिनमें से एक गौर, एक ताम्र तथा एक हरे वर्ण का है। ऐसा विचार किया जाता है कि मंगलेश ने अपने भाई राजा कीर्तिवर्मन, जिसको वह बहुत प्रेम करता था की स्मृति में यह चित्र बनवाया।[1] सम्भवतः यह राजा कीर्तिवर्मन् के परिवार का चित्र है।

तीसरा तथा चौथा दृश्य—बादामी के इन दो खण्डित दृश्यों में युगल विद्याधर बादलों में उड़ते हुए बनाए गये हैं। तीसरे दृश्य में विद्याधर तथा विद्याधरी अपने-अपने हाथ एक दूसरे के गले में डाले हैं और उनके सर पर मुकुट हैं। विद्याधरी के बाल धमीला ढंग में बंधे हैं और उसका रंग गहरा है परन्तु विद्याधर का वर्ण गौर है।

दूसरे युगल में आकृतियां अधिक सुन्दर हैं। इस चित्र में विद्याधर कानों में कुण्डल पहने हैं परन्तु विद्याधरी के कान में कुण्डल नहीं हैं। विद्याधर का केश-विन्यान जटा-ढंग का है, और कलम पुष्प से युक्त है। विद्याधरी वीणा बजा रही है। इस दृश्य में पुरुष आकृति गहरे नीलमायुक्त हरे वर्ण की तथा स्त्री आकृति गौर वर्ण की है।

सित्तन्नवासल की गुफा

यह गुफा दक्षिण तामिलनाडू राज्य के अन्तर्गत तंजौर के निकट पद्दूकोट्टाई से उत्तर-पश्चिम की ओर नौ मील की दूरी पर कृष्णानदी के तट पर सित्तन्नवासल में स्थित है। यह स्थान पल्लव-राज्य के मध्य में स्थित था और सम्भवतः इन चित्रों को पल्लव वंश के महान् शासक राजा महेन्द्र वर्मा (६०० ई० से ६२५ ई०) ने बनवाया था।

सित्तन्नवासल की गुफा को सर्वप्रथम टी० ए० गोपीनाथ राव ने देखा और उन्होंने इन चित्रों को उतना ही प्राचीन माना जितनी प्राचीन यह गुफा है।

सित्तन्नवासल के चित्र— सित्तन्नवासल गुफा जैन मन्दिर है। यह मंदिर चट्टान को काटकर बनाया गया है। पहले यह गुफा-मन्दिर पूर्णतया चित्रों से अलंकृत था,

1. 'वेस्टर्न चालुक्य पेंटिंग्स एट बादामी', ललित कला—सं० ५, अप्रैल १९५९—लेखक सी० शिवराममूर्ति, पृष्ठ ५६।

परन्तु अब चित्र केवल छत तथा स्तम्भों के ऊपरी भागों में शेष रह गये हैं। यहाँ पर भारी ओसरे (बरामदे) की छत्त में एक कमलबन का आलेखन है। इस भित्ति-चित्र में एक सरोवर का दृश्य है जिसमें कमल पुष्प खिले हैं। इस सरोवर के बीच में एक मछली, हाथी, हंस, भैंसे तथा तीन दिव्य आकृतियां हैं। यह तीनों दिव्य व्यक्ति हाथों में कमल धारण किये हैं। इन तीनों आकृतियों में से दो का गहरा लाल रग हैं और एक का तेज पीला रंग है। इनकी मुद्राये और अङ्ग-भङ्गिमायें सुन्दर हैं। चित्र-कार ने रंगों का विधान सुकोमल, सुन्दर और सरल किया है। गोलाई लाने के लिए सुकोमल छाया का प्रयोग भी किया गया है। स्तम्भों पर नृत्य करती हुई बालाओं, तथा कमल पुष्पों के आलेखन बने हैं। एक स्थान पर एक कुलीन पुरुष का चित्र है। उसके बायें कन्धे के पीछे प्रफुल्ल मुखमुद्रा वाली एक महिला की आकृति बनाई गई है। अनुमानतः यह राजा महेंन्द्र और उसकी रानी के चित्र हैं। यहाँ पर 'अर्धनारी-श्वर' का एक उत्कृष्ट चित्र अंकित हैं। इस चित्र में महादेव को शक्तिशाली रेखाओं से अंकित किया गया है और चित्र की शैली अजन्ता तथा बाघ की चित्र शैली के समान है। महादेव इस चित्र में जटाओं के मुकुट का जूड़ा लगाये हैं और कानों में पत्र-कुण्डल पहने हैं, उनके नेत्रों में दिव्त ज्योति और शक्ति है।

एक अन्य आकृति जिसकी ग्रीवा मोटी है अनुमानतः एक गन्धर्व का चित्र है। उसके हाथ में कमल है। इस आकृति के नेत्र, अङ्ग-भङ्गिमायें तथा हस्त-मुद्रायें कलाकार
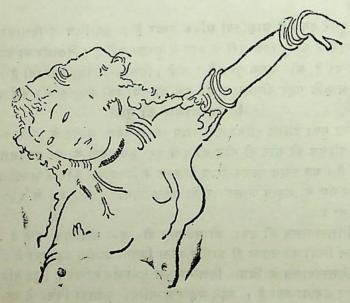
रेखाचित्र सं० १२
अप्सरा (भित्ति-चित्र) सित्तन्नवासल गुफा
सातवीं शताब्दी

की शिल्प-कुशलता की द्योतक हैं। यहाँ पर नर्तकियों के भी अनेक सुन्दर चित्र अंकित हैं। स्तम्भ पर बने एक चित्र में नृत्य की लय में मग्न एक नृताङ्गना अप्सरा का चित्रण किया गया है। इस चित्र में नृतकी अप्सरा की गति में और वर्ण सम्बन्धी योजना में उत्तम कलात्मक दृष्टिकोण है। इस अप्सरा की ग्रीवा, भुजाओं, कानों आदि में रत्न-जटित सुन्दर आभूषण चित्रित हैं। इस सौन्दर्य की साक्षात मूर्ति के समान अप्सरा का पांडु-वर्णी शरीर कांतिवान आभा से जगमगा रहा है (देखिये रेखा-चित्र- अप्सरा सित्तन्नवासल)। सित्तन्नवासल गुफाओं के चित्रों की शैली अजन्ता के समान ही है। इस प्रकार की चित्र शैली अजन्ता की सर्वश्रेष्ठ चित्रकारी के समय में ही दिखाई पड़ती है। अतः इन गुफाओं के चित्रों की शैली को अजन्ता की परिपक्व शैली का रूप माना जाता है।

सिगिरिया की गुफाएं

भारतीय बौद्ध-भिक्षु बौद्ध-धर्म के प्रचार हेतु सुदूर पूर्वी तथा दक्षिणी देशों की ओर गए और उनके साथ ही भारतीय-चित्रकारी, धम तथा दर्शन आदि भी उन देशों में पहुंचा। श्री लंका में भी इसी प्रकार भारत की अजन्ता शैली की चित्रकला इन्हीं धर्म-प्रचारकों के साथ पहुची। श्रीलंका में सिगिरिया या सिहगिरिया नामक गुफाओं में अजन्ता की चित्र-शैली के दर्शन होते हैं।

सिगिरिया गुफाओं का समय– अजन्ता और बाघ की गुफाओं को देखकर ऐस प्रतीत होता है कि यथा समय पर समुचित सुरक्षण की शीघ्र व्यवस्था न होने के कारण उनके चित्र नष्ट हो गए, परन्तु श्रीलंका-द्वीप की सरकार ने सिगिरिया गुफाओं की चित्रकारी की देख-रेख ठीक प्रकार की और तुरन्त सुरक्षण की व्यवस्था जुटाई। इस प्रकार यह बहुमूल्य चित्र नष्ट होने से बच गए।

ये गुफायें कोलम्बो से लगभग १०० मील की दूरी पर स्थित सिंहगिरि कस्बे के समीप जंगल में एक एकाकी छः सौ फुट ऊंची पहाड़ी, जो मीनार के समान खड़ी है, की तलहटी के उथले भाग में हैं। यह पहाड़ी खुले सघन जगली प्रदेश में खड़ी हैं। इसके समीप दो में चित्रत खोहें हैं। यह चित्र राजा कश्यप के समय के माने जाते हैं। राजा कश्यप का राज्यकाल ४७९ ई० से ४९७ ई० तक माना जाता है। श्रीलंका की सरकार ने १८९५ ई० में श्री एच० सी० पीवेल (पुरातत्व विभाग) के कमिश्नर के निर्देशन में सिगिरिया गुफाओं के जीर्णोद्धार तथा सुरक्षा की व्यवस्था प्रारम्भ कराई। इस योजना के अधीन चित्रों के ऊपर तार की जाली लगाकर उनको सुरक्षित कर दिया गया। यहां पर जो दो असंयत प्राकृतिक लोहे चट्टानों में है, अधिकांश चि इन्हीं की दो गुफाओं में सुरक्षित हैं। इन दोनों खोहों में कुल छः गुफाएं हैं, परन्तु चित्र अवशेष केवल चार प्राप्त हैं, जिनमें से समुचित और महत्वपूर्ण चित्र केवल उपरोक्त दो गुफाओं में शेष रह गये हैं। इन गुफाओं को विन्सेंट स्मिथ ने 'ए'

तथा 'बी' के नाम से सम्बोधित किया है। वास्तव में दो प्राकृतिक कक्षों से एक गुफा बन जाती है जो ६७$\frac{1}{2}$ फुट लम्बी है और दो भागों में एक टेढ़े-मेढ़े चट्टानी किनारे से विभाजित है। इस प्रकार प्रथम कक्ष 'ए' २६$\frac{1}{4}$ फुट और द्वितीय कक्ष 'बी' ४१$\frac{1}{2}$ फुट लम्बा है।

यहां पर कुल २१ स्त्रियों के चित्र हैं। यहां कुल २२ आकृतियों में से पांच के चित्र 'ए' गुफा में और सत्रह चित्र 'बी' गुफा में सुरक्षित हैं। यह चित्र मानवाकार या कुछ छोटे हैं।

१८८९ ई० में श्री ए० मरे ने कठिन परिश्रम के द्वारा तेरह आकृतियों की पेस्टिल रंगों तथा रंगीन छाया चित्रों के द्वारा प्रतिलिपियां तैयार कीं जो कोलम्बो संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

सन् १९६७ ई० में १४ अक्तूबर की रात को कुछ अवांछनीय तत्वों ने इन चित्रकृतियों को नष्ट किया और बहुत हानि पहुचाई। एक चित्र तो दीवार पर से उखाड़ कर ही नष्ट कर दिया।

चित्रिण-विधि तथा शैली—चित्रों की लिखाई सावधानी से तैयार किये गये धरातल पर की गई है। यहाँ धरातल का पलास्तर लगभग ३/४ या १/२ इन्च मोटा हैं और अच्छे चूने से तैयार किया गया है। इस पलास्तर में खड़िया-मिट्टी (Kaolin) तथा चावल की भूसी और कदाचित नारियल की जूट को मिलाया गया है। श्री बेल का मत है कि—यह चित्र सूखे धरातल पर टेम्परा रगों में बनाये गये हैं, परन्तु अजन्ता की शैली से अधिक भिन्न नहीं हैं।' यहाँ पर चित्रकार ने केवल तीन रगों—लाल, पीले तथा हरे तक सीमित रहा है। नीले रंग का प्रयोग यहां नही दिखाई पड़ता।

सिगिरिया के चित्र—एक चित्र में एक जलूस का दृश्य है जिसमें कुलीन महिलायें हाथों में पुष्प लिये परिचारिकाओं सहित बौद्ध-मठ की ओर पूजा करने जा रही हैं। सारी स्त्रियां कमर के नीचे वस्त्रों को धारण किये हैं और कुछ स्त्रियों ने ऊपर कोहनी तक आस्तीनदार चोली पहन रक्खी है। कुछ स्त्रियां अर्धनग्न भी हैं।

इन कुलीन महिलाओं का चित्रण पीले या नारंगी रग से किया गया है। परन्तु दासियों का गहरा वर्ण हरितमा युक्त है। समस्त स्त्रियां आभूषणों तथा अलंकरणों से सुसज्जित हैं। इन चित्रों के नीचे की ओर बादल बनाए गये हैं, परन्तु श्री बेल का कहना है कि—'नीचे के भाग में चट्टानें टेढ़ी मेढ़ी तथा खुरदरी हैं, जिन पर चित्रकार आकृतियों के पैर नहीं बना सकता था, इस कारण बादल बनाए गए हैं। परन्तु यह बात संगत प्रतीत नहीं होती, वास्तव में इन आकृतियों को दिव्य और भव्य रूप प्रदान करने के लिए इनको बादलों के मध्य बनाकर भव्य रूप प्रदान किया गया है। भारतीय पद्धति के समान ही चित्र की सीमा रेखा लाल या काले रंग से की गई है और सपाट रंग का प्रयोग किया गया है। एक अपूर्णचित्र उदाहरण से ऐसा प्रतीत

होता है कि सीमारेखा के आधार पर ही पूर्णतया रंगों का प्रयोग नहीं किया जाता था।

यह कृतियाँ राजा कश्यप की समकालीन हैं, इस कारण इनका समय पांचवी शताब्दी ईसवी माना जाता है। अतः यह चित्र अजन्ता के समकालीन ठहरते हैं। अजन्ता की दूसरी गुफा की एक महिला आकृति, जो कमल पुष्प लिए हुए है, सिगिरिया के एक महिला चित्र से बहुत मिलती-जुलती है।

श्रीलंका द्वीप में भित्तिचित्रों के कई अन्य प्राचीन उदाहरण भी प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार के विशेष उदाहरण अनुरुद्धपुर में प्राप्त हुए हैं। यहां के चित्रों की शैली भी अजन्ता पर आधारित है परन्तु यहाँ पर सफेद, लाल, पीले और नीले रंग का प्रयोग भी किया गया है।

अजन्ता तथा अन्य गुफाओं के चित्रों की शैली—अजन्ता के भित्तिचित्रों की शैली बाघ, बादामी, सित्तन्नवासल तथा सिगिरिया के चित्रों में अपने भव्य रूप में दिखाई पड़ती है। इस प्रकार यह चित्रण-शैली व्यापक रूप से प्रचलित हुई। अनेक विद्वानों ने अजन्ता शैली को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा है। पारसी ब्राउन ने अजन्ता शैली को बौद्ध धर्म से अत्यधिक सम्बन्धित होने के कारण बौद्ध कला के नाम से पुकारा है। रायकृष्ण दास ने गुप्त राजाओं के भारी प्रभाव के कारण इस कला-शैली को गुप्तकला के नाम से पुकारा है।

अजन्ता शैली की विशेषतायें— अजन्ता की गुफाओं जैसी चित्रकला यद्यपि अनेक गुफाओं से प्राप्त हुई है परन्तु इस शैली का सर्वाधिक परिमार्जित और पूर्ण विकसित रूप अजन्ता की गुफाओं से ही प्राप्त हुआ है। अतः अजन्ता के चित्रों को ही इस शैली का प्रतिनिधि मानकर शैलीगत विशेषताओं का अध्ययन करना अधिक उपयुक्त होगा।

चित्रों का विषय— यद्यपि अजन्ता तथा बाघ के चित्रों में भगवान बुद्ध का अंकन है परन्तु बादामी तथा सित्तन्नवासल की गुफाओं में क्रमशः ब्राह्मण था जैन धर्म से सम्बन्धित देवी देवताओं का अंकन किया गया है। इस प्रकार यह शैली एक धर्म विशेष तक सीमित नहीं रही बल्कि विभिन्न समुदायों की कला के रूप में व्यापक रूप धारण कर गई। यद्यपि इस शैली के विषय धार्मिक हैं, परन्तु फिर भी चित्रकार ने जीवन और संसार में रुचि प्रदर्शित की। अजन्ता के चित्रों में झूला झूलती युवती, मरती राजकुमारी तथा नृत्य करती बालाओं का अंकन ही नहीं वरन कई अन्य साँसारिक पक्षों का अंकन हुआ है। इसी प्रकार बादामी तथा सित्तन्नवासल में भी 'विरहणी' तथा 'नृतकी' आदि का अंकन है। धार्मिक विषयों के साथ चित्रकार श्रृंङ्गार तथा जन जीवन सम्बन्धी विषयों की उपेक्षा नहीं कर सका है और इस आधार पर यह शैली धर्म निर्पेक्ष है (देखिए रेखाचित्र—'गंधर्व युगल')।

गंधर्व युगल
रेखाचित्र सं० १३
(अजंता गुफा नं० १, सातवीं शताब्दी)

जातक कथाएँ—जातक कथाओं का अर्थ है पूर्वजन्म की कथाएँ। यह जातक कथाएँ भगवान बुद्ध के जन्म-जन्मान्तर की कथाएँ हैं, जिनको उन्होंने स्वयं अपने उपदेशों में सुनाया और बताया कि कई जन्मों से वह इसी प्रकार अनेक रूपों में अवतीर्ण होते आ रहे हैं। यद्यपि अजन्ता में जीवन तथा धर्म दोनों से सम्बन्धित चित्र हैं परन्तु फिर विशेष रूप से जातक कथाओं या भगवान बुद्ध के जीवन की कथाओं का अंकन है। अतः अजन्ता चित्रावली को बुद्ध के प्रति समर्पण मानना उपयुक्त होगा।

चित्रों की विशालता और योजना—अजन्ता की गुफाओं के चित्रों ने या अन्य गुफाओं के चित्रों ने आज अपनी विशालता और सुन्दर योजनाओं के कारण समस्त संसार का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया है। अधिकांश चित्र मानवाकार या कुछ छोटे हैं परन्तु चित्र के मुख्य व्यक्ति को कुछ बड़ा बनाया गया है। इस प्रकार चित्र का प्रमुख व्यक्ति या चित्र का नायक कुछ बड़े आकार का होने के कारण सरलता से पहचाना जा सकता है। चित्रों की योजना सुन्दर और सुव्यवस्थित है। चित्रों के चारों ओर आलेखन बनाकर योजना को अधिक पुष्ट बना दिया गया है। प्रमुख घटना को चित्र योजना में ऐसा स्थान दिया गया है कि दर्शक की दृष्टि सर्वप्रथम चित्र योजना के गर्भभाग पर पड़ती है (देखिए रेखाचित्र संख्या ८)। यद्यपि चित्रों की योजनाएँ अलंकारपूर्ण, सरल और ज्यामितिक योजना पर आधारित हैं, फिर भी चित्र के प्रमुख व्यक्ति को ऐसे स्थान पर संजोया गया है कि दर्शक की दृष्टि

सर्वप्रथम चित्र के मुख्य व्यक्ति पर ही पड़े । इस प्रकार इस शैली में 'दृष्टि के केन्द्रत्व' के सिद्धान्त का सुन्दरता से पालन किया है। चित्र की गौण कथाओं या पात्रों को उनके प्रसंगानुकूल स्थानों पर रखा गया है। अजन्ता के चित्रकार ने संयोजन सम्बन्धी सिद्धान्तों का कुशलता से पालन किया है और उन्होंने अपने चित्रों की योजनाओं में जीवन डाल दिया है। प्रायः महात्मा बुद्ध की विशाल सक्रिय आकृति को केन्द्र बिन्दु मानकर उसके चारों ओर सहायक आकृति-समूहों की रचना की गई है।

छत्तों के आलेखन— इस समय जब आधुनिक यूरोप के देशों में चित्रकला का विकास भी नहीं हुआ था, हमारे देश में चित्रकला विकास के उच्चतम शिखर पर पहुँच गयी थी। भारत में भित्तियों के अलंकरण तक ही चित्रकला सीमित नहीं रही वरन् छत्तों पर भी चित्रकारी करने की परम्परा प्रारम्भ हो गई थी। यों तो सर्वप्रथम जोगीमारा की छत्त पर भी चित्रकारी का काम किया गया था परन्तु विधिवत रूप से सर्वप्रथम अजन्ता में छत्तों पर चित्रकारी की गई। चित्रकारों ने छत्तों पर जलचरों, पक्षियों और कमल लताओं के सुन्दर आलेखनों का अंकन किया है (देखिए रेखा-चित्र—'अलंकरण अभिप्राय')। इन पक्षियों तथा जलचरों के अतिरिक्त गंधर्व तथा विद्याधर युगल भी बादलों के बीच-बीच बनाए गए हैं। छत्तों पर जिस पलास्तर का प्रयोग किया गया है उसमें धान की भूसी का प्रयोग किया गया है जिससे यह पलास्तर छत्तों पर ठीक प्रकार चिपक गया हैं। अजन्ता में चित्रों के पलास्तर बनाने की विधि का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। छत्तों पर आलेखन बनाना भित्ति पर चित्र बनाने से अधिक कठिन कार्य था क्योंकि छत्तों पर अलंकरण करने के लिए चित्रकारों को मचान बनाकर, मचान पर पीठ के बल लेटकर काम करना पड़ता था। इन आलेखनों में इतनी पूर्णता और सुन्दरता है कि चित्रकार की कठिन स्थिति और असहाय अवस्था का ज्ञान तक ही नहीं होने पाता है।

आलेखन— यदि अजन्ता को आलेखनों की खान कहा जाय तो अनुचित न होगा। अजन्ता के समान बाघ गुफाओं में भी आलेखनों का अत्यधिक महत्त्व हैं और किसी सीमा तक बाघ के आलेखन अजन्ता को मात कर गए हैं। रिक्त स्थानों, वस्त्रों, मकानों, मुकुटों, आभूषणों आदि में आवश्यकतानुसार आलेखन बनाए गये हैं। इन आलेखनों में चित्रकार ने हाथी, बन्दर, बृषभ, मीन, मकर, मृग, महिष, हंस, तोता, बत्तख, कमल, कुमुद आदि सुन्दर पशु-पक्षियों, पुष्पों तथा लताओं का प्रयोग किया है। यह आलेखन, बलवती रेखा के अनन्त प्रवाह, गति सतुलित योजना और छन्द-मय अभिप्रायों की लयात्मक पुनरावृत्ति के कारण शक्तिशाली बन गये हैं। आलेखनों के सुन्दर उदाहरण अजन्ता की पहली गुफा में प्राप्त हैं। इन आलेखनों का समय सातवीं शताब्दी का मध्य माना जा सकता है (देखिये रेखाचित्र— 'अलंकरण अभि-प्राय')। इन आलेखनों को काली तथा लाल (हिरौंजी की) पृष्ठभूमि पर पहले सफेद

रंग से बनाया गया है, उसके पश्चात पारदर्शी रंगों का प्रयोग किया गया है। बाघ गुफाओं में यह आलेखन काले तथा लाल रंग से ही बनाए गए हैं। यह आलेखन अलंकारिक हैं परन्तु इनमें संगीत की लय और नृत्यु की गति विद्यमान है। इन आलेखनों में लम्बी अटूट प्रवाहपूर्ण रेखाओं का प्रयोग है। इन आलेखनों में व्यवस्था सुन्दर है और कहीं भी आवश्यकता से अधिक स्थान खाली नहीं छोड़ा गया है और उचित अन्तराल-व्यवस्था करने के कारण यह आलेखन संतुलनपूर्ण, ठोस और प्रभावशाली हैं।

अलंकारिकता—पूर्वी देशों की चित्रकला अलंकारिक मानी गई है, जबकि पाश्चात्य देशों ने यथार्थता को अपनी कला का उद्‌देश्य माना। इस प्रकार एशिया की अधिकांश कला अलंकारिक और आध्यात्मिक बन गई। भारतवर्ष में विकसित अजन्ता की कला विशेष रूप से अलंकारिकता और आध्यात्मवाद के कारण सम्पूर्ण एशिया की एक उत्कृष्ट कला बन गई। अजन्ता की चित्रकारी से अलंकारिकता का चरम विकास दिखाई पड़ता है। इस अलंकारिकता को प्राप्त करने के लिए चित्रकार ने ज्यामितीय आकारों की सहायता ग्रहण की है। ज्यामितीय आकारों के संयोग से चित्रकार ने यथार्थ को एक आदर्श और काल्पनिक रूप प्रदान किया है। इस प्रकार यथार्थ और ज्यामितीय गोलाई युक्त आकारों के सम्मिश्रण से मौलिक तथा अलंकारिक रूपों का सृजन करना कलाकारों की एक महान विशेषता है। दूसरी ओर अजन्ता के कलाकारों ने आकृतियों को सरलतम रूपों में बाँधने की सफल चेष्टा की है। सरल तथा अलंकारिक आलेखनों में कलाकारों ने अपनी कल्पना तथा भावना की मधुर और शृंगारमय लड़ी को जोड़ दिया है। अतएव इस शैली का अलंकारिक पक्ष निर्जीव नहीं होने पाया है वरन उसमें भावना, आत्मा और नैसर्गिक कल्पना का उज्ज्वल रूप दिखाई पड़ता है।

रेखा—भारतवर्ष तथा अन्य पूर्वी देशों की अलंकारिक चित्रकला ने विशेष रूप से रेखा को ही ग्रहण किया है किन्तु रेखा के सर्वोत्तम उदाहरण अजन्ता की कला में ही प्राप्त होते हैं। चित्रकार ने निपुणता के साथ आवश्यकतानुसार अपनी रेखा को कोमल, कठोर, पतला या मोटा बनाया है। इस शैली में गोलाई या डील-डौल को ही रेखा के द्वारा प्राप्त नहीं किया गया है, बल्कि स्थितिजन्य लघुता, बल, उभार, अलंकरण तथा कई अन्य विशेषताओं को रेखा द्वारा प्राप्त किया गया है। मानव के भिन्न-भिन्न रूपों, चरित्रों तथा भावों को रेखा के द्वारा ही सफलता से अभिव्यक्त किया गया है। इस प्रकार की भावाभिव्यंजक रेखा के उदाहरण अजन्ता की पहली गुफा के 'अवलोकेतेश्वर' चित्र में प्राप्त हैं इस चित्र में सिद्धार्थ की मुखमुद्रा में दुःख, चिन्तन तथा शोक का भाव केवल एक रेखा से ही अंकित कर दिया गया है। अजन्ता में लगभग बीस प्रकार की रेखा शैलियाँ मिलती हैं। इसी कारण परसी ब्राउन ने पूर्वी देशों की चित्रकला को विशेष रूप से रेखा की चित्रकला माना है। जबकि पाश्चात्य-

कला छाया-प्रकाश प्रधान है। इस शैली में अधिकांश रेखायें अटूट, प्रवाहमय और भावप्रण हैं। भारतीय रेखा चीन की कोणदार सपाट रेखा से भिन्न है। कभी-कभी अजन्ता के कलाकार ने आकृतियों की दोनों भृकुटियों को एक ही अटूट रेखा से बना दिया हैं (देखिए रेखाचित्र—'बोधिसत्व पद्मपाणि')।

सरलता· अजन्ता के चित्र सरल रूपों (आकारों), सपाट रंगों और सरल रेखाओं पर आधारित हैं। सरल आकारों में गोलाई या डौल लाने का क्षीण प्रयास किया गया है। बाल, कपड़ों की सिलवटें, आभूषण आदि सभी को चित्रकार ने सरलतम रेखाओं में बाँधने की चेष्टा की है। चित्रों की योजना सरल होते हुए भी प्रभावपूर्ण और चित्ताकर्षक है। कभी-कभी दोनों भृकुटियों को एक ही सरल रेखा से अंकित किया गया है। जिस प्रकार चेहरे की बाहरी सीमा सरल ढंग बनाई गई है उसी प्रकार विविध आकृतियों को सरल रूप और सपाट आकार प्रदान किया गया है। यह सीमा रेखाएँ गोलाई युक्त हैं और कम श्रम से बनाई गई हैं। (देखिये रेखाचित्र—'पद्मपाणि')।

हस्तमुद्रायें तथा अंग भंगिमाएँ— हस्त-मुद्राओं तथा अंग-भगिमाओं के कौशल से अजन्ता के कलाकार ने चित्रों में अपनी समस्त भावनायें ऐसे सजीव ढंग से डाल दी हैं कि यह मूक चित्र भी बोलने से लगे हैं। कलाकार ने समकालीन नृत्यकला की प्रचलित हस्त मुद्राओं का प्रयोग किया जिनमें अत्यधिक नाटकीयता और लाक्षणिकता है। वास्तव में चित्रकार ने बुद्ध तथा अन्य देवी देवताओं को नैसर्गिक रूप प्रदान करने के लिए नृत्य की मुद्राओं को अधिक उपयुक्त समझा क्योंकि इन मुद्राओं से भव्यता और भावाभिव्यक्ति में अपूर्व शक्ति आ गई है। इसके परिणाम स्वरूप समस्त पात्रों में वह दिव्य रूप प्रतिबिम्बित होने लगा जिसकी आवश्यकता थी। साधारण मनुष्य और महान् आत्मा के अन्तर को व्यक्त करने के लिए भी नृत्य की मुद्रायें बहुत उपयुक्त थीं अतः कलाकार ने भगवान बुद्ध जैसी महान् आत्मा के अंकन में भेद स्थापित करने के लिए संगीतपूर्ण मुद्राओं का आश्रय लिया (देखिए रेखाचित्र—'गायक दल' तथा 'अप्सरा, सित्तनवासल)।

इस शैली में विभिन्न आकृतियों के निर्माण में सुन्दर हस्त-मुद्रायें प्रयोग की गई हैं जिनमें पात्र पकड़े हाथों की मुद्रायें, शान्ति की हस्त-मुद्रा, धर्मचक्र मुद्रा, शिखर हस्त मुद्रा, कत्तकामुख मुद्रा, दण्ड हस्त मुद्रा, ज्ञान हस्त मुद्रा, नीलकमल धारण किये हुए भगवान बुद्ध की हस्तमुद्रा, वैरांग्य सूचक साधू की हस्त मुद्रा सुन्दर नहीं वरन् भावपूर्ण हैं। हस्तमुद्रायें भाषा के समान समस्त चित्र की कथा को व्यक्त कर देती हैं।

भाव प्रदर्शन की दृष्टि से अङ्ग-भङ्गिमाओं का चित्र की लिखाई में विशेष महत्व है। अजंता के चित्रकारों ने स्त्रियों को सुकोमल लतिका के समान लचकदार भङ्गिमाओं में अंकित करके अपनी कल्पना और छन्दमय बुद्धि का परिचय दिया है। अजंता के चित्रों में 'महाप्रजापति' की भङ्गिमा दर्शनीय है, जिसमें वे एक तमाल लतिका

के समान स्तम्भ के सहारे अपना बायां पैर मोड़े खड़ी हैं। मुड़े हुए इस पैर से आकृति की तथा स्तम्भ की लम्बवत् सीधी रेखाओं की नीरसता समाप्त हो गयी है। वृक्ष की गोलाई के पश्चात कमर की लिखाई में लचक के साथ भङ्गिमा पर रहस्य छिपाये अजंता के चित्रकार ने अनेक स्त्री चित्रों का निर्माण किया है। प्रत्येक पात्र या पात्री की भंङ्गिमा में अत्यधिक स्वाभाविकता और सजीवता है। भङ्गिमाएँ आकर्षक और प्रभावपूर्ण है, जैसे मरती राजकुमारी, अवलोकेतेश्वर, झूला झूलती युवती तथा मार विजय में भगवान बुद्ध की ध्यान मुद्रा उत्तम है हस्त मुद्राओं और अङ्ग-भङ्गिमाओं की भव्यता को ठीक अनुपात तथा सरल सौन्दर्य ने और अधिक भावाभिव्यंजक बना दिया है। आकृतियों की विभिन्न प्रकार की भङ्गिमाएं बनाते समय कलाकार ने मांसिलपेशियों तथा अस्थिपंजरों का पूर्ण ध्यान रखा है। किसी भी आकृति की भंगिमा से उसकी शारीरिक रचना में विकृति नहीं होने पाई है इस कारण आकृतियों में सजीवता और स्वाभाविकता है।

वर्ण विधान—काल के क्रूर आघातों ने प्राचीन चित्रकारी का बहुत कुछ दर्ण सौष्ठव तथा लावण्य छीन लिया है, फिर भी आज तक अजन्ता के चित्रों की आभा फीकी नहीं पड़ी है। अजन्ता के चित्रों में सुन्दर वर्ण छटा यत्र-तत्र बिखरी दिखाई पड़ती है। यद्यपि इन चित्रों की चमक पर्याप्त धूमिल पड़ चुकी है तथापि रंग जानदार प्रतीत होते हैं। चमकदार नीले, हरे और बैंगनी रंग अपनी पूर्ण आभा में आज भी जगमगाते हैं। शरीर तथा कपड़ों का रंग लावण्ययुक्त और संगत है। अजन्ता के कुछ आरम्भिक चित्रों को छोड़कर सोलहवीं तथा सत्रहवीं गुफा में अजन्ता के चित्रकारों ने गहरी पृष्ठभूमि पर हल्के वर्ण विधान में आकृतियां बनाने की प्रवृति दिखाई है, परन्तु दूसरी ओर हल्की पृष्टभूमि पर गहरी आकृतियों के बनाने की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है जो यूरोप की वेनिस-चित्रकला शैली (संस्थान) के समान है। चित्रकार दर्शक के ध्यान को चित्र की ओर आकृष्ट करने के लिये बहुत जागरूक रहा, इस कारण उसने मानवाकृतियों के बालों में काले रंग का प्रयोग किया है, जिससे रूप और लावण्य की वृद्धि हुई है और इच्छित प्रभाव उत्पन्न हो गया है।

अजन्ता के चित्रकार की वर्ण विधान सम्बन्धी शिल्प कुशलता का एक सुन्दर उदाहरण सत्रहवीं गुफा के एक चित्र 'महाहंस जातक' में देखा जा सकता है। यह चित्र अपने वर्ण विधान के कारण बहुत विख्यात हो चुका है और रंग की योजना के आधार पर इसको अजन्ता का सर्वश्रेष्ठ चित्र माना जाता है। इस चित्र में कलाकार ने पूर्णत: स्वतंत्र रूप से रंगों का चयन किया है। इस चित्र में राजा एक ऊंचे सिंहासन पर बैठा है और चारों ओर अनुचर खड़े हैं। इसमें से एक अनुचर राजसी छत्र सा दूसरा चंवर धारण किये है और तीसरा अपने रंग के कारण हब्शी जैसा प्रतीत हो रहा है। यह हब्शी राजा के नीचे पैरों पर बैठा है। उसका वर्ण गहरा लाल है। जो निश्चित रूप से राजसी बहेलिया है, पीछे आलेखनों से सुसज्जित कनात खड़ी

है। चित्र की अग्रभूमि में एक तालाब है जिसमें कमलपुष्प तथा जल के पक्षी हैं। इस चित्र में श्वेत रंग के शीतल प्रयोग से चित्रकार ने चित्र को एक उत्तम संतुलन प्रदान किया है। इस चित्र में विभिन्न आकृतियों के शरीर में गुलाबी, भूरा, गहरा लाल तथा टेरावर्ट (गहरा गन्दा हरा) रंग लगाया गया है। इस चित्र में गहरी पृष्ठभूमि पर, जो लगभग काली है, हल्के रंग की आकृतियां बनाई गई हैं। इस गहरी पृष्ठभूमि पर विभिन्न बलों और रंगो मे विभिन्न वस्तुयें बनाई गयी हैं जिससे चित्र में कठोरता नहीं आने पाई है। चित्र के निचले भाग में संगत हरे रंगों का सफेद और लाल रंगों के साथ प्रयोग है। इस चित्र में अजन्ता के कलाकार ने नाटकीयता के प्रभाव को भी रोचक वर्ण-विधान के द्वारा प्रदर्शित किया है। कपड़ों, आभूषणों तथा अन्य साज-सज्जा में उपयुक्त तथा रोचक वर्णविधान है।

भित्तिचित्रण में गिने चुने प्राकृतिक खनिज रंगों का प्रयोग ही होता है ताकि वे चूने के क्षारात्मक प्रभाव से सुरक्षित रह सकें। इस शैली के चित्र में जिन रंगों का स्वन्त्रता से प्रयोग किया गया उनमें सफेद, लाल, भूरे से बने विभिन्न हल्के तथा गहरे रंग हैं। स्थानीय हरे रंग का प्रयोग किया गया है जो तनिक गन्दा रंग है। अजंता तथा बाघ में विशेष रूप से नीले रंग का प्रयोग है। सफेद रंग प्राय: अपारदर्शी है और उनको चूने या खड़िया से बनाया गया है। लाल तथा भूरे लौह (अयस्क) से प्राप्त खनिज रंग हैं। हरा रंग एक स्थानीय अयस्क (खनिज) से बनाया गया है जो टेरावर्ट (Terreverte) है। नीला रंग फारस से आयात किये हुए लेपिसलाजुली (Lapis-Lazuli) एक बहुमूल्य पत्थर को घिस कर बनाया गया है। शेष रंगों में पीला (रामरज), गहरा लाल (हिरौंजी तथा गेरुआ खनिज) स्थानीय हैं। चमकदार पीले रंग के प्रयोग के लिए अनुमानत: प्राकृतिक रूप में संखिया से उपलब्ध पीले रंग का प्रयोग है (Natural arsenic sulphide)। रंगों को चावल के मांढ़ तथा वज्रलेप (सरेस) में मिलाया जाता था।

परिप्रेक्ष्य—(Perspective) परिप्रेक्ष्य या अंग्रेजी शब्द परस्पेक्टिव के दो पक्ष माने गये हैं, जिस में प्रथम दृष्टि सम्बन्धी (Visual Perspective) और द्वितीय मानसिक परिप्रेक्ष्य (Mental perspective) है। अजन्ता के चित्रकारों ने भावना और कल्पना के महत्व को स्थापित करने के लिए मानसिक परिप्रेक्ष्य को ही उपयुक्त समझा। अधिकांश पाश्चात कला पारखियों ने साधारण दृष्टि ज्ञान या दृष्टिक्रम (Visual perspective) के आभाव में इन चित्रों की आलोचना की है जो उनकी भारी भूल है, क्योंकि आज योरोप में इसी भावनात्मक या मानसिक परिप्रेक्ष्य की ओर बल दिया जा रहा है। कलाकार ने इस मानसिक परिप्रेक्ष्य में अपनी भावनाओं जैसे श्रद्धा, घृणा, कोध आदि भावों को साधारण दृष्टा तक पहुंचाने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। कलाकारों ने चित्र में प्रयुक्त अनेक आकृतियों को सामान्य अनुपात से अधिक बड़ा या छोटा बनाकर उनके पद, महत्व तथा आध्यात्मिक उत्थान को व्यक्त

किया है। इस प्रकार का उत्तम उदाहरण अजन्ता का 'राहुल समर्पण' नामक चित्र हैं, जिसमें कमल पर खड़े भगवान बुद्ध की आकृति यशोधरा की आकृति से अनुपात में बहुत बड़ी बनाई गयी है और यह आकृति भवन के बराबर है। भवन आदि के परिप्रेक्ष्य में चित्रकार ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है और दृष्टिक्रम या परिप्रेक्ष्य से आलेखनों की सुन्दरता और रूप को नष्ट नहीं होने दिया है। चित्रकार योगी के समान एक ही स्थान पर बैठे-बैठे ध्यान या समाधि के द्वारा समस्त संसार या सृष्टि का अवलोकन कर लेता था और चित्रांकित कर देता था।

मुकुट, आभूषण तथा अलंकरण—अजन्ता तथा सभी अन्य गुफाओं के चित्रों में मुकुटों, आभूषणों तथा वस्त्रों को सुन्दरता मे अंकित किया गया है। राजा और रानी के मुकुटाकारों में ऊंचाई का विशेष अन्तर है। देवताओं तथा महापुरुषों के मुकुट शिखर के समान ऊंचे और भव्य हैं। परन्तु सित्तन्नवासल के चित्रों में महादेव का ऊंचा मुकुट उनकी अनोखी जटा-जूट से बनाया गया है। वैसे अजन्ता में मुकुटों के सबसे सुन्दर उदाहरण प्राप्त हैं। इन उदाहरणों में नागराज का मुकुट जिसके पीछे पांच फन का नाग लगा है तथा 'गृहत्याग' नामक चित्र में भगवान बुद्ध का मुकुट उल्लेखनीय है, (देखिये रेखाचित्र—'पद्मपाणि,' 'वज्रपाणि' तथा 'गन्धर्व युगल')। मुकुट की बनावट तथा आकार से ही व्यक्ति का पद, चरित्र या महत्व समझ में आ जाता है। आभूषणों में वृक्षस्थल पर बहुमूल्य रत्नों से ज़ड़ित मोतियों की लड़ियोंदार लम्बी मालाएं तथा गरदन में बड़े-बड़े मोतियों की मालाएं तथा कम्बुकन्ठा का इस

रेखाचित्र सं० १४
केश कलाप (अजन्ता)

शैली में प्रयोग किया गया है । यह मालाएं मुकुटों से माथे पर लटकती तथा गरदन से वक्षस्थल पर गंगा तथा यमुना या किसी लता के समान लहराती सी प्रतीत होती है । अन्य आभूषणों में कानों के पत्र-कुण्डल, मीनाकार कुण्डल, मकराकार कुण्डल,

रेखाचित्र सं० १५
राजकुमारी
(अजन्ता गुफा नं० १०, सातवीं शताब्दी)

भुजाओं में अनन्त तथा कमर में मोतियों या कड़ियों से युक्त करधनियां बनाई गई हैं (देखिये रेखाचित्र-- 'वज्रपाणि', 'गायकदल', 'अप्सरा' तथा 'राजकुमारी') । हाथों में सुन्दर गोल सुडौल कड़ों को पहने लम्बे हाथों वाली स्त्रियां मनोहारी बन गई हैं । कपड़ों, परदों, कालीनों, कनातों तथा वस्त्रों आदि को सजाने के लिये सुन्दर आलेखन बनाये गये हैं जिनमें पशु-पक्षियों तथा जलचरों का अंकन है ।

केश-विन्यास-- अजन्ता की चित्रकारी अति प्राचीन है परन्तु आज भी केश शृंगार की रीतियों में आधुनिक स्त्री-जगत अजन्ता की केश-विन्यास प्रणाली से प्रेरणा लेता है । स्त्रियों की लम्बी लहराती नागिन जैसी वेणियों में बंधे बाल, कन्धों पर लटकते घुंघराले धमीला ढंग के बाल, जटा या जूटटसर (गुंथे हुए) बाल, माथे पर लटकते चिकुर, हवा में उड़ते तरंग केश, खुले एवं छिटके हुए कुन्तल केश, जूड़ों में बंधे बाल आदि अनेक प्रकार के केश-विन्यास को अनोखा रूप दिया गया है । यदि अजन्ता को केश विन्यास या केश-सज्जा की खान माना जाए तो अनुचित न होगा । सुन्दर सुकोमल केशों के अतिरिक्त क्रूर और धूलधूसरित या सिंह केसर (राक्षसों के बाल) आदि अनेक प्रकार के बालो के अंकन मे भी चित्रकार पीछे नहीं रहा (देखिये रेखाचित्र—'गायकदल', 'गन्धर्व युगल' तथा 'राजकुमारी') ।

स्त्रियों का स्थान—अजन्ता में स्त्रियों को बहुत ऊंचा स्थान प्राप्त हुआ है । उनको कहीं भी शील से गिरा हुआ नहीं दिखाया गया है । अधिकांश शरीर के नीचे

वाले भाग में स्त्रियाँ साड़ी या अपारदीना (प्रतिहारी आदि) और ऊपरी शरीर में चोली पहने है। कहीं-कहीं उरोज नग्न भी हैं परन्तु स्त्रियों में प्रकृति, शक्ति और माँ का रूप झलकता है। स्त्रियाँ आभूषणों से युक्त हैं। यशोधरा के रूप में नारी की त्यागमूर्ति कितनी भव्य और महान् है, जबकि वह अपना सर्वस्व एक मात्र पुत्र 'राहुल' भगवान बुद्धदेव के चरणों में समर्पित कर देती है। चित्रकार ने स्त्री के नाना रूप, जैसे—सुन्दरी, युवती, विरहणी, संयोगनी, माँ, वृद्धा आदि सब ही का अंकन किया है। परन्तु उसके प्रत्येक रूप में शालीनता है और नारी की महान् त्याग मूर्ति प्रतिबिम्बित होती हैं। स्त्री को सौन्दर्य, कोमलता और शक्ति का अवतार माना गया है।

आध्यात्मिकता और सहानुभूति की भावना— अजन्ता के चित्रकार को जड़ तथा चेतन के समान सहानुभूति और संवेदना थी। पशु तथा पक्षियों के चित्रण में आत्मा का वही विकास दिखायी पड़ता है जो मानव आकृति के चित्रण में है। जीव प्रेम और सहानुभूति के उत्तम उदाहरण अजन्ता के 'महाहंस जातक', 'मृग जातक' 'गज जातक' आदि चित्रों में सुस्पष्ट है कि कलाकार ने इन पशु तथा पक्षियों में अपनी जैसी आत्मा का अनुभव किया है और जीव को मानव के समान माना है। बौद्ध धर्म की अहिंसा और बुद्ध के पूर्व जन्म की कथाओं, जिनमें वह कभी बोधिसत्व पशु तथा कभी-कभी पक्षी के रूप में अवतीर्ण हुए, के कारण भी बौद्ध दर्शन मे जीव के प्रति आदर, दया और सहानुभूति आयी। अतएव पशु-पक्षियों की आत्मा को भी अत्यधिक विकसित और उज्ज्वल दिखाया गया है। भगवान बुद्ध ने स्वयं भी जीव-हिंसा और बलि का विरोध किया और अहिंसा तथा दया की शिक्षा दी। इन सब ही परिस्थितियों का कला पर गहरा प्रभाव पड़ा और कलाकार ने जीव को समादर, सहानुभूति और संवेदना से देखा। इस कारण प्रत्येक आकृति में मानव-आत्मा का साक्षात्कार होता है।

भाव तथा रूप—अजन्ता के चित्रकारों ने विभिन्न भावों को रूप की ओट में अपनी तूलिका की सरल रेखाओं से अंकित किया है। भाव-प्रदर्शन के लिए चित्रकार ने हस्तमुद्राओं तथा अङ्ग-भंगिमाओं का सहारा लिया है और इनके द्वारा मूक चित्राकृति को कलाकार ने वाणी प्रदान की है। भय, शान्ति, हर्ष, श्रृंगार, रौद्र तथा वीर आदि भावों को चित्रकार ने चित्र आकृतियों की मुखाकृति पर विधिवत लिख दिया है। भाव की दृष्टि से 'राजा के चरणों पर नृतकी', 'वेस्सांतर जातक' तथा 'मार विजय' उत्तम चित्र उदाहरण हैं। भय तथा आतंक, याचना तथा ग्लानि, शान्ति तथा आनन्द आदि भावों का इन चित्रों में पूर्ण रूपेण अंकन हुआ है। भाव के अनुकूल ही चित्रकार ने असंख्य रूपों का निर्माण किया है। रूप आकृति आत्मा तथा उसके जीवन का प्रतीक है। प्रत्येक आकृति के रूप में अजन्ता के कलाकार ने कमाल कर दिया है। राजा, रानी, साधू, सेवक, दासी, साधू के वेश में धूर्त, वीर सिपाही,

योद्धा, वैरागी, भिक्षु, तपस्वी, कामनी तथा माँ प्रत्येक रूप में अपना व्यक्ति वैशिष्ट है। प्रत्येक आकृति की शारीरिक रचना, मुखाकृति तथा मुद्रा में विशेष अन्तर है। मुखाकृति में आँखों का लास्य, भौंह की लचक या सीधापन, जिसमे कोमलता या चिन्तन का भाव दिखाया गया है, अजन्ता के चित्रों की अपनी विशेषता है। शरीर का गहरा या हल्का वर्ण स्वयं बोल उठता है कि मैं कौन हूं। उदाहरणार्थ 'षडयन्त-जातक' कथा के चित्र में बैंगी पर हाथी के दांत लाते कहारों और 'महाहंस जातक' कथा के चित्र में बहेलिये अपने रूप, छोटे शरीरिक अनुपात (प्रमा) तथा गहरे वर्ण से ही अपना परिचय देते हैं। राजा, रानी तथा महान पुरुषों के रूप और लावण्य ही उनका परिचय दे देते हैं, उनको ऊंचे आसनों पर बैठा बनाया गया है। इस प्रकार रूप से ही कुलीन तथा दास वर्ग का परिचय हो जाता है।

युद्ध-दृश्य—चित्रकार ने जहाँ एक ओर भगवान बुद्ध के प्रति भक्ति, श्रद्धा और अहिंसा की भावना अभिव्यक्त की है वहाँ दूसरी ओर उसने सफलता से युद्ध चित्रों तथा भयानक दृश्यों का निर्माण भी किया। 'डांकनियों का युद्ध', 'युवतियों का बध करने को उद्धत राजा' जो नग्न खड्ग लिये बैठा है तथा 'विदुर पण्डित जातक' चित्र में तेजी से बढ़ते हुए अश्वारोहियों का दल इस प्रकार की प्रभावशाली कृतियाँ हैं। अजन्ता के कलाकार ने यदि एक ओर कोमल-कमनीय रूपों का निर्माण किया तो दूसरी ओर भयपूर्ण, भयानक, राक्षसी, हिंस्र रूपों का सफलता से निर्माण किया। 'मार विजय' चित्र में ऐसे अनेक भयंकर राक्षस भगवान बुद्ध पर चढ़ाई करते बनाये गये हैं।

वस्त्र तथा भवन— अजन्ता के चित्रों में गुप्तकालीन भवन तथा वास्तु का प्रयोग है, वैसे वाकाटक, शुङ्ग सातवाहन संस्कृतियाँ भी अजन्ता की कला में बोलती हैं। विशेष रूप से कक्ष, बीथिकायें स्तम्भ, चैत्य तथा स्तूप आदि सुन्दरता से बनाये गये हैं। इन चित्रों में गुप्तकालीन भव्य पहनावे का विशेष प्रभाव है। पुरुष अधिकांश अधोभाग में धोती पहने या ऊपरी शरीर में चुस्त वाना या ढीला कुर्त्ता पहने बनाया गया है। स्त्रियों का पहनावा सामान्य रूप से कोहनी तक आस्तीन की चोली तथा नीचे के भाग में धोती या आंचल है। नृतिकियों आदि को विशेष प्रकार का चुस्त कुर्त्ता तथा तंग पजामा पहने बनाया गया है। कभी-कभी स्त्रियों के उरोज नग्न हैं। ऊंचे मुकुट तथा लम्बी-लम्बी मालायें गुप्त संस्कृति का प्रभाव है।

आकार, छन्द तथा लय-- कलाकारों ने अपने आकारों को अत्यधिक संगीतमय और आकर्षक बनाने की चेष्टा की है। प्रत्येक वस्तु को एक लयपूर्ण आकार प्रदान करके कलाकार ने अमर सौन्दर्य की रचना की है। प्रत्येक आकृति में सुन्दर कान्टूर हैं, जिससे छन्द, लय तथा संगीत उत्पन्न होता है और प्रत्येक आकार की सीमारेखा एक मधुर ध्वनि से झूमती चलती है।

षडङ्ग तथा चित्रण विधि—अजन्ता के चित्रों की चित्रण-विधि, धरातल तथा रंग आदि के विषय में पहले ही पर्याप्त मात्रा में प्रकाश डाला जा चुका है, परन्तु यह बताना आवश्यक है कि बाघ के चित्रों में धरातल बनाने की विधि में कुछ अन्तर है जो सम्भवत: बाघ की रेतीली चट्टानों के कारण है। बाघ की चटानों में खड़िया तथा रेतीली मिट्टी थी। बाघ के चित्रों में चूने का पलास्तर (कच्च तथा कलि) पतला है और कभी-कभी चित्रों को दीवार पर चूना पोतकर (कलि लगाकर) ही चित्र बनाया गया है। सामान्यत: अधिकांश गुफाओं में अजन्ता की विधि से ही धरातल तैयार किया गया है।

अजन्ता शैली के समस्त चित्रों और उनकी विशेषताओं को ध्यान में रखा जाये तो स्पष्ट हो जाता है कि कलाकार ने वात्स्यायन के 'षडङ्ग भेद' या चित्रकला के छ: अङ्गों का पालन किया है। फिर भी अजन्ता का चित्रकार किसी निश्चित सिद्धान्त शृंखला में बंधकर संकुचित नहीं हुआ और चित्रकार ने अपनी अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को सर्वोपरि महत्व प्रदान किया है। इसी कारण यह कलाकृतियाँ आज भी अपनी उत्तम विशेषताओं के कारण कला जगत के लिए एक उज्जवल कला का उदाहरण बनी हुई हैं। अजन्ता की चित्रकला आज भी संसार की चित्रकला में उच्च स्थान है। आधुनिक यूरोप में इस प्रकार की चित्रकला का विकास दसवीं शताब्दी के पश्चात् हुआ जबकि भारत में अजन्ता आदि गुफाओं की श्रेष्ठ चित्रकारी सातवीं शताब्दी तक की जा चुकी थी।

सजीवता—कलाकार ने अपनी चित्रकृतियों में अपनी सजीव आत्मा को ऐसे ढंग से ढाल दिया है कि उसके मूक चित्र भी जीवन शक्ति से ओत-प्रोत होकर बोल उठते हैं। चित्र की प्रत्येक आकृति में जीवन स्पन्दन सा करता प्रतीत होता है। अलंकारिकता के साथ सजीवता रहने के कारण चित्र दर्शक की भावना और नेत्र दोनों को आकृष्ट कर लेते हैं। यह सजीवता चित्रकार की रेखांकन कुशलता और उसकी सूक्ष्म दृष्टि की परिचायक है, क्योंकि यही चित्र-परम्परा आगे चलकर निर्बल कलाकारों के हाथों में पडकर नितान्त निर्जीव हो गयी।

बौद्धकाल की चित्रकला के अन्य प्रमाण

गुप्त राजाओं की शक्ति और साम्राज्य के विस्तार के साथ साहित्य और कला का भी विकास हुआ। गुप्त राजाओं ने बौद्ध धर्म के लिये किसी प्रकार की रोक नहीं लगाई, परन्तु कालान्तर में बौद्ध धर्म के महायान और हीनयान सम्प्रदायों के झगडों के कारण बौद्ध धर्म को बहुत हानि पहुंची। गुप्तकाल में बौद्ध-धर्म सबल रूप में पुन: उत्थान को प्राप्त हो रहा था। गुप्त शासनकाल में शान्ति रही और इस कारण प्रत्येक प्रकार की कला की प्रगति हुई। इसी समय में विभिन्न गुफाओं की भित्तियों पर चित्र बनाये गए और इस कला का पूर्ण विकास हुआ। फाहियान

तथा ह्वेनसांग चीनी पर्यटकों ने भारतवर्ष का भली भांति भ्रमण किया। फाहियान (३९९-४१३ ईसवी के मध्य) और ह्वेनसांग (६२९-६४५ ईसवी के मध्य) भारत आए। इन दोनों ने दूर-दूर पर बने विशाल भवनों का विवरण दिया है। यह भवन अपने भित्तिचित्रों के कारण अनोखे थे। फाहियान ने पवित्र तीर्थ स्थान कपिलवस्तु का वर्णन दिया है। उसके अनुसार— "कपिलवस्तु में एक स्थान पर एक 'पवित्र धारण' का अंकन था जिसमें—भगवान बुद्ध एक श्वेत गत की पीठ पर बैठे अपनी माँ के गर्भ में प्रवेश करते अंकित किये गये थे।" इसी प्रकार ह्वेनसांग ने भी उत्तरी भारत के एक चैत्य मन्दिर का वर्णन किया है जिसकी खिड़कियां, द्वार तथा दीवारों का धरातल चित्रित काष्ठ-फलकों तथा पट चित्रों से सुसज्जित था। आज यह प्रमाण मुसलमानों के आक्रमणों से उत्पन्न बरबादी के कारण पूर्णतया नष्ट हो गये हैं। केवल अजन्ता और बाघ राजनीति और हलचल के क्षेत्र से दूर रहने के कारण इस विध्वंस से बच गए। दूसरी बात यह है कि यह चित्र कठोर चट्टानों के ऊपर बने थे जो नष्ट नहीं हो सकती थीं। इसी प्रकार के कुछ चित्र, जो काष्ठ, मिट्टी, ईंट आदि कम सामग्री से भवनों की दीबारों आदि पर बने थे नष्ट हो गये। अजन्ता के कुछ चित्रों में लकड़ी के चौखटे की चोहद्दी सी बनाकर उसको पलास्तर से भर कर धरातल तैयार करके भी चित्र बनाए गए। इस प्रकार की प्रथा अन्य स्थानों पर भी प्रचलित रही होगी परन्तु लकड़ी के नष्ट हो जाने से चित्र नष्ट हो गये होंगे।

तारानाथ के अनुसार बौद्ध-कालीन शैलियां—सोहलवीं शताब्दी के तिब्बती इतिहासकार लामा तारानाथ ने इस विषय पर पर्याप्त मात्रा में प्रकाश डाला है परन्तु उसके उल्लेख भ्रमपूर्ण हैं। तारानाथ ने आरम्भिक बौद्ध काल की तीन शैलियां मानी हैं– (१) देव, (२) यक्ष, तथा (३) नाग। देव शैली मगध राज्य (आधुनिक बिहार प्रान्त में प्रचलित थी। यह शैली गौतमबुद्ध के पश्चात् आरम्भ हुई, अनुमानतः छठी शताब्दी ईसा पूर्व से ही प्रचलित थी। यह शैली तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व तक प्रचलित रही। तारानाथ ने लिखा है कि—"आरम्भ मे मनुष्य कलाकार, जो दिव्य शक्ति से सम्पन्न थे, अपूर्व कलाकृतियों का सृजन करते थे।" विनय-आगम तथा अन्य ग्रन्थों में ऐसे वर्णन प्राप्त होते हैं कि-इन भित्तिचितेरों के चित्र प्राकृतिक वस्तु से समानता दर्शाने के कारण दृष्टा को धोखा देते थे।'

यक्ष शैली का प्रचलन लगभग तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से प्रारम्भ हुआ। तारानाथ ने यक्ष शैली का सम्बन्ध सम्राट अशोक के काल से माना है। तारानाथ ने यक्ष जाति को दिव्य माना हैं और इसकी कला को अनोखा बताया है।

नाग कला का प्रचलन नागार्जुन नाम के दार्शनिक तथा लेखक के समय में हुआ। अनुमानतः नागार्जुन का जन्म तीसरी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ था। नाग जाति के चिन्ह भारतवर्ष में आज भी मद्रास से काशमीर तक मिलते हैं। कृष्णा नदी के तट पर स्थित अमरावती स्तूप में दूसरी शताब्दी की नाग-कला के चिन्ह स्पष्ट

दिखाई पड़ते हैं। इन उदाहरणों से प्रतीत होता है कि नागा-कलाकार अच्छे भवन-विशेषज्ञ और कलाकार थे। तारानाथ के लेखों से प्रतीत होता है कि यह शैलियाँ यथार्थ थीं, क्योंकि उसने लिखा है कि देव, यक्ष तथा नागा-कलाकारों की कृतियों ने अपनी यथार्थता के कारण कई वर्ष तक दर्शकों को धोखा दिया।

तारानाथ ने लिखा है कि—"तीसरी शताब्दी के पश्चात कला का अधिपतन हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि समाज से कला का ज्ञान समाप्त हो गया।" तारानाथ ने ऐसा माना है कि, बाद में कलाओं का पुनर्रुत्थान हुआ। तारा नाथ ने उस समय की कुछ कला-शैलियों का वर्णन किया है, जिनमें तीन कला शैलियों या संस्थानों का उसने उल्लेख किया—इसमें मध्य देश की शैली, पश्चिमी शैलियां तथा पूर्वी शैलियां मुख्य थीं। उस समय के भूगोल के अनुसार मध्य-देश आधुनिक उत्तर प्रदेश था। मध्य-देश का संस्थान एक महान चित्रकार तथा मूर्तिकार बिम्बसार ने स्थापित किया। बिम्बसार का जन्म मगध में राजा बुद्धपक्ष के शासन काल में हुआ। राजा बुद्धपक्ष का शासनकाल अनुमानतः पांचवी या छटी शताब्दी था। इस शैली के बहुत से चित्रकार थे। इसकी कला शैली प्राचीन काल की देव शैली से मिलती-जुलती थी, इस कारण बिम्बसार को प्राचीन कला शैली का पुनरुद्धारक कहा जा सकता है। पश्चिमी कला संस्थान राजस्थान में प्रफुल्लित हुआ होगा और इस शैली का मुख्य कलाकार श्रीङ्गधर (शृंगधारी) था, जिसका जन्म मेवाड़ में राजा शिला (शील) के शासन काल में हुआ। कदाचित यह राजा उदयपुर का शासक शिलादित्य गुहिला था। शिलादित्य का समय सातवीं शताब्दी माना जाता है। इस संस्थान के चित्र यक्ष शैली से मिलते-जुलते थे। पूर्वी-कला संस्थान बरेन्द्र (बंगाल) में राजा धर्मपाल और देवपाल के संरक्षण में नवीं शताब्दी में फूला-फला। यह नाग शैली थी। इस शैली के निपुण कलाकार धिमान और उसका पुत्र वित्तपाल प्रसिद्ध थे। ये दोनों चित्रकला, मूर्तिकला तथा धनुकला में निपुण थे।

इसके अतिरिक्त अन्य नयी कला-शैलियां छठी और दसवीं शताब्दी के मध्य काशमीर, नेपाल, भूटान, ब्रह्मा, और दक्षिणी भारत में प्रचलित थीं। परन्तु तारानाथ के मतानुसार यह शैलियां मुख्य रूप से ऊपर वर्णित तीन शैलियों (स्कूलों) की कृतियों से प्रभावित थीं। काशमीर में कालान्तर में हुंसुराजा नामक कलाकार ने वहां चित्रकला तथा मूर्तिकला की नवीन शैलियों की स्थापना की। इसी शैली को काशमीर शैली के नाम से पुकारा जाता है।

★

मध्यकालीन की चित्रकला

मध्यकाल की चित्रकला
(७०० ई० से १६०० ई० तक)

भारतवर्ष में प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व से ही भित्तिचित्र कला का एक संस्थान स्थापित होने लगा था। इस कला-शैली में उत्तरोत्तर उच्चकोटि के शिल्प की वृद्धि होती गयी, परन्तु कुछ शताब्दियों के पश्चात् इसकी प्रगति मन्द पड़ने लगी। आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इस शैली की विशेषताएं अधिपतन का रूप धारण करने लगीं और इस कला-शैली के उच्चतम विकास की जो आशा की जाती थी वह अपूर्ण रह गई। सातवीं शताब्दी से बौद्ध धर्म में ह्रास और पतन के चिन्ह दिखाई पड़ने लगे, जिनका प्रभाव देश की कला तथा साहित्यिक रचनाओं पर भी पड़ा। लगभग एक हजार वर्ष तक विदेशी आक्रान्ताओं ने देश में अशान्ति और अव्यवस्था उत्पन्न कर सुखद वातावरण को नष्ट कर दिया जिससे भारतीय लोगों को कला विकास का उचित अवसर ही न मिल सका। दूसरी ओर हिन्दू धर्म पुन: शक्ति को प्राप्त होने लगा था इस कारण देश में धार्मिक तथा साँस्कृतिक परिवर्तन भी आरम्भ हो गये थे। इन सब कारणों से कला-विकास की स्वछन्द धारा शिथिल पड़ने लगी। लगभग एक हजार वर्ष पश्चात् ही पुन: कलाकृतियों के उत्तम उदाहरण प्राप्त होते हैं। इस एक हजार वर्ष की मध्यकालीन अवधि की कला के उदाहरण बहुत कम उपलब्ध हैं और इनकी कला-शैली बहुत निम्न कोटि की है।

भारतवर्ष के मध्यकाल की लगभग एक हजार वर्ष की अवधि के बीच चित्र-कला की प्रगति शिथिल होने के अनेक कारण हैं। यह देखकर आश्चर्य होता है कि चित्रकला को छोड़कर अन्य कलायें विकसित हुयीं जबकि चित्रकला नितान्त शिथिल पड़ गयी। आठवीं तथा नवीं शताब्दी से हमारे देश पर मुसलमानों के निरन्तर प्रहार होने लगे थे और स्थानीय राजनैतिक शक्तियां पूर्ण रूप से सैन्य-संगठन और

सुरक्षा की समस्याओं में उलझी रहीं। नवनित राज्यों के रूप बदलते जा रहे थे, शासक, प्रशासन और संविधान उलटते जा रहे थे, देश की दशा अत्यन्त छिन्न-भिन्न हो गई थी। ऐसी अवस्था में किसी भी महान कलाकृति का निर्माण असम्भव था। दूसरी ओर सातवीं शताब्दी से ही धार्मिक क्षेत्र में एक नवीन क्रांति और परिवर्तन की लहर दौड़ रही थी। हिन्दू धर्म पुनः समाज में सबल हो रहा था। हिन्दू धर्म का नवीन और परिमार्जित रूप जनता में लोकप्रिय होता जा रहा था, इसके साथ ही मुसलमान धर्म का प्रचार तथा प्रसार आरम्भ हो रहा था। इस कारण मध्यकालीन राजनैतिक और धार्मिक समस्याओं पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि कलाकारों की शक्तियां राजनैतिक और धार्मिक क्षेत्रों में भी अवश्य लग गईं होंगी।

यदि यह मान लिया जाये कि अजंता के भिक्षु कलाकार, जिन्होंने सातवीं शताब्दी तक सुन्दर चित्र बनाये और जिनकी कला शैली प्रचलित परम्परा बन गई थी, समाप्त हो गये होंगे सम्भव नहीं, क्योंकि यह शैली धार्मिक प्रतिक्रिया के पश्चात् भी परम्परा के रूप में प्रचलित रही। बौद्ध धर्म का स्थान हिन्दू धर्म ने ग्रहण किया। यह नवीन हिन्दू धर्म कला के अन्य क्षेत्रो जैसे भवन, मूर्ति तथा वास्तुकला के क्षेत्रों में बौद्ध धर्म से अधिक कलापूर्ण था। उदाहरणार्थ भवन तथा मूर्तिकला की हिन्दू काल में विशेष उन्नति हुई। इस समय के भव्य मन्दिर तथा उच्चकोटि के शिल्प से युक्त मूर्तियां कला-उन्नति की साक्षी हैं। दृश्य-कलाओं के क्षेत्र में आठवीं शताब्दी से दसवीं शताब्दी के बीच का समय भारतीय कला सिद्धान्तों और आदर्शों के चिन्तन और मनन का काल था। इस समय हिन्दू धर्म कलाकृतियों और कलाकारों को प्रतिष्ठित और नियंत्रित करने वाली एकमात्र शक्ति था। हिन्दू धर्म में चित्र के स्थान पर मूर्ति का विशेष महत्व था। मूर्ति के लिये मन्दिर की आवश्यकता थी इसी कारण चित्र का स्थान मूर्ति, भवन तथा वास्तु ने लिया। ये ही कारण हैं कि इस समय में चित्रकला की उन्नति न होते हुए भी अन्य कलाओं का विकास हुआ। एलीफेन्टा, ऐलोरा तथा बोरुबुदुर की मूर्तिकला में हिन्दूकला के उत्तम उदाहरण सुरक्षित है, शिल्पियों ने विशालकाय मूर्तियाँ तथा प्रस्तर-तक्षण के नमूने प्रस्तुत किये। इन भव्य उदाहरणों के चिन्ह आज बहुत कम प्राप्त हैं क्योंकि उत्तर भारत में गुप्त-शासकों के बाद उनके साम्राज्य की सीमा पर ही मुसलमानों का साम्राज्य स्थापित होता गया और उन्होंने इस भाग के हिन्दू भवनों तथा मन्दिरों आदि को नष्ट कर दिया। इस समय की चित्रकला के उदाहरण बहुत कम प्राप्त हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि चित्रकला का पूर्व विकसित माध्यम पुनः हिन्दू धर्म के जागरण से मूर्ति के रूप में प्रस्फुटित हो पड़ा।

इस समय की चित्रकला के उदाहरण न प्राप्त होने का एक कारण यवन विध्वंसों के अतिरिक्त यह भी हो सकता है कि भारतवर्ष की विनाशकारी जलवायु ने इस समय की कलाकृतियों से सुसज्जित भवनों को नष्ट कर दिया हो। यदि यह

सोचा जाये कि हिन्दू धर्म के अनुयाइयों ने इन चित्रों को नष्ट किया, तो व्यर्थ है, क्योंकि हिन्दू धर्म की सहिष्णुता के कारण यह सोचना संगत नहीं कि हिन्दू धर्म में किसी धर्म की शिक्षा, उपदेश, कला या साहित्य के प्रति कोई प्रतिक्रिया के भाव या विद्रोह था। अतः यह ही निश्चित है कि जलवायु या यवनों के द्वारा कराये गये भवनों के विध्वंसों तथा अग्नि-काण्डों से कलाकृतियों को भारी क्षति पहुंची। मुसलमानों ने भवनों तथा मूर्तियों के साथ ही इस समय के चित्रपटों, चित्रित पोथियों अथवा चित्रफलकों या भित्तिचित्रों को भी नष्ट कर दिया। इतिहास में मुसलमानों की ऐसी अभद्रता के अनेक प्रमाण प्राप्त हैं। एक बात और भी है कि सभी कलाओं में सामान्यता प्रगति समान स्तर पर नहीं होती है क्योंकि बौद्ध धर्म के साथ अजंता में भित्ति-चित्रण की कला का उच्चतम विकास हुआ जबकि उसकी सहकला मूर्तिकला को एक सौ वर्ष तक पूर्णतः प्राप्त नहीं हुई। इन दोनों कलाओं का प्रत्येक देश में घनिष्ट सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। वैसे चित्रकला मूर्तिकला की अपेक्षा अधिक सरल है, और प्रत्येक देश में प्रायः चित्रकला के पश्चात ही मूर्तिकला का विकास दिखाई पड़ता है मध्यकाल में भित्तिचित्रण की कला समाप्त होने लगी और जो चित्र बनाये गये वह अधिकांश लघु पोथीचित्र या पटचित्र हैं। सम्भवतः मुसलमान विजेताओं या आक्रान्ताओं के द्वारा भित्तिचित्र नष्ट कराये जाने के डर से चित्र ऐसे लघु रूप में बनाये जाने लगे जो आपत्तिकाल में सुविधा से सुरक्षा हेतु साथ में ले जाये जा सकें और विनाश से बच सकें। इसी कारण अनुमानतः पटचित्र या तालपत्रों पर बने चित्र इस समय में प्रचलित हुए जो भित्तिचित्रों की तुलना में अधिक स्थायी न थे।

वृहत्तर भारत की चित्रकला—मध्यकालीन भारत की चित्रकला का अनुमान लगाने के लिए वृहत्तर भारत की चित्रकला का अध्ययन अधिक लाभकारी होगा, क्योंकि इस प्रकार के कला उदाहरणों से तत्कालीन भारतीय चित्रकला का अनुमान लगाया जा सकता है। बौद्ध धर्म प्रचारकों तथा भिक्षुओं ने अपने धार्मिक उपदेशों तथा सिद्धान्तों के प्रचार हेतु चित्रकला को उत्तम साधन माना। अतः जब वे दूसरे देशों में धर्म प्रचारार्थ गये तो अपने साथ चित्रपट भी लेते गये। इन पटचित्रों पर भगवान तथागत के उपदेश तथा उनकी जीवन कथाएं चित्रित रहती थीं। जन साधारण को प्रभावित करने में तथा धर्मप्रचार में इन कलाकृतियों का विशेष स्थान था। भारत के समीपवर्ती देशों जैसे खुत्तन, तुर्खिस्तान, तिब्बत, चीन, लंका, स्याम, कम्बोडिया, वर्मा, नेपाल, अफगानिस्तान, कोरिया तथा जापान में बौद्ध धर्म तथा दर्शन के प्रचार के साथ भारतीय कला इन देशों में पहुची। बौद्ध-कला तथा धर्म के अत्यधिक प्रसार का कारण यह भी था कि जिन देशों की संस्कृति या विचारधारा को अपने बौद्ध आचार्यों ने उच्च आदर्श दिये वहाँ उन्होंने उन देशों की संस्कृति तथा विचारधारा से कुछ अपनाया भी। इन देशों की भवन, मूर्ति, वास्तु या चित्र-कला का इसी कारण भारतीय कला से सन्निकट सम्बन्ध प्रतीत होता है।

'पगान' के प्राचीन मन्दिरों में जातक कथाओं के चित्र प्राप्त हुए हैं और 'वरमा' के मन्दिर में तंत्र-मंत्र पर आधारित अनेक तांत्रिक चित्र मित्र मिले हैं। बरमा के चित्रों में शक्तिशाली तीव्र रेखाएं तथा अस्वाभाविक पाल शैली के ढंग की भंगिमायें हैं। श्रीलंका की सिगिरिया गुफा तथा अनुरुद्धपुर के चित्रों पर भारतीय कला का स्पष्ट प्रभाव है।

'मीरान' के भवन अवशेषों में पश्चिम एशिया निवासी रोमन चित्रकार 'त्तित' के द्वारा बनाई अनेक कृतियां प्राप्त हैं जिसमें 'वेस्सान्तर जातक' (चित्र पर अंकित लिपि के आधार पर समय चौथी शताब्दी) चित्र उल्लेखनीय है। इस चित्र पर गांधार शैली का प्रभाव है। 'दंदाउइलीक' से प्राप्त भित्तिचित्रों और चित्रपटों के अवशेष सातवीं तथा आठवीं शताब्दी के हैं। इन चित्रों की शैली भारतीय-चीनी प्रभाव से युक्त है। 'दंदाउइलीक' में प्राप्त एक स्त्री आकृति का एक महत्वपूर्ण चित्र है। इसके चेहरे, हाथों और आभूषणों आदि की लिखाई में भारतीयता है। इस आकृति के साथ एक बालक है और पृष्ठभूमि में बुद्ध तथा बौद्ध स्थविर अंकित किये गये हैं।

'कूचा क्षेत्र' में अनेक गुफाओं में भारतीय शैली की चित्रकारी प्राप्त होती है। यहाँ पर गुफाओं में ब्रह्मा तथा इन्द्र, शिव तथा पार्वती को नन्दी के साथ अंकित किया गया है। एक स्थान पर राजपूत या राजस्थानी कला जैसा विषय लिया गया है और बादलों से वर्षा की बूंद ग्रहण करता चातक अंकित किया गया है। यहाँ पर भित्तिचित्र, काष्ठफलक चित्र, पटचित्र आदि प्राप्त हुए हैं जिन पर भारतीय-ईरानी शैली का प्रभाव है।

कलिंग या तेलंगाना की मोन जाति मौलमीन से उत्तर में 'थाटन' नामक क्षेत्र में जाकर बस गयी थी। यह जाति बौद्ध धर्म की अनुयाई थी। पांचवी ईसवी शताब्दी के पश्चात तिब्बत की प्यू जाति भी 'मध्य बरमा' में पहुंची। इस जाति के लोगों ने सौ मठों का निर्माण कराया जिन पर चाँदी तथा सोने की पच्चीकारी उत्तम है। उस समय के पात्रों पर उत्कीर्ण लेखों से ज्ञात होता है कि उस समय वहाँ कोई विक्रम वशीय भारतीय राजा राज्य करता था।

'प्रोम' नामक प्राचीन स्थान के उत्खनन के पश्चात पांचवीं तथा छठी शताब्दी की कलाकृतियों के उदाहरण प्राप्त हुए हैं। जिन उदाहरणों में बुद्ध की एक प्रतिमा तथा सोने-चाँदी की अनेक पिटारियाँ उपलब्ध हुई जिन पर संस्कृत भाषा के लेख अंकित हैं।

ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य बरमियों ने बरमा पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया और राजा अनोराता ने 'पगान' में अपनी राजधानी स्थापित कर ली। इस शासक ने बौद्ध मठों के निर्माण का कार्य आरम्भ कराया। पगान के एक प्राचीन मन्दिर में आज भी विष्णु प्रतिमा प्रतिष्ठित है। पगान के अधिकांश भवन बौद्ध शैली

के हैं । यहां पर ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि धर्म प्रचार के लिये पांच सहस्त्र स्तूपों का निर्माण किया गया परन्तु इनके अवशेष मात्र ही आज प्राप्त हैं । यहाँ का श्वेत आनन्द मन्दिर अनोराता के पुत्र थियानसात ने ग्याहरवीं शताब्दी में बनवाया था । थियान-सात की माता भारतीय थी । उसने बिहार के बौद्धगया मन्दिर का पुनरुद्धार कराया था । श्याम के अन्तर्गत बैंकाक में एक ३८० फुट ऊंचा विशाल स्तूप है जो उत्तरी भारत के स्तूपों के समान है । उत्तरी श्याम के लेम्पून नामक स्थान में प्राप्त पाँच मंजिला मन्दिर है । यहां पर स्तूप के दोनों ओर बुद्ध की खड़ी मुद्रा में सात मूर्तियाँ विद्यमान हैं ।

चीन में भारतीय-कला का पहला प्रभाव तिब्बत तथा नेपाल के द्वारा पहुंचा । दूसरी ओर खोत्तन तथा तुर्किस्तान में प्राप्त कला उदाहरणों में ऐसा प्रतीत होता है कि इस क्षेत्र में हेलेनिस्टिक, भारतीय, ईरानी तथा चीनी संस्कृतियों का आदान-प्रदान होता था । अतः चीन में दूसरा भारतीय प्रभाव इस ओर से पहुँचा । तत्कालीन उन्नत संस्कृतियां इस क्षेत्र पर अपना प्रभाव इस कारण जमा रही थीं क्योंकि यह क्षेत्र ग्रीक, फारसी, ईरानी, चीनी तथा भारतीय व्यापारियों के काफिलों के आने-जाने का प्रधान मार्ग और व्यापार केन्द्र था । इन काफिलों के साथ एशिया से दूर तक पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक भारतीय धर्म प्रचारक गये । तुषित (पेकिंग) के एक बिहार में पाँच सौ अर्हतों की मूर्तियां प्राप्त हुई हैं । जिनमें भगवान बुद्ध के अनेकों रूपों – अवलोकेतेश्वर, मंजुश्री आदि रूपों की सुन्दर मूर्तियां प्राप्त हैं । चीनी सम्राट यांगती (६०५-६१७ ई०) के राजदरबार में खुत्तान के एक चित्रकार तथा उसके चित्रकार पुत्र को राजाश्रय प्राप्त था । यह दोनों भारतीय शैली के चित्र बनाते थे कोरिया तथा चीन में इन्हीं चित्रकारों ने बौद्धकला का प्रसार किया ।

जापान के 'होरऊजी मन्दिर' की दीवारों पर अजन्ता शैली की चित्रकारी आज भी सुरक्षित है । सेरयुजी मन्दिर में प्राप्त बुद्ध प्रतिमाओं पर गांधार शैली का प्रभाव स्पष्ट दिखायी पड़ता है । 'अंकोर' का संसार प्रसिद्ध मन्दिर बौद्ध शिल्प की दृष्टि से एक उत्तम कलाकृति है । 'चम्पा' में राजा चन्द्र वर्मा (हिन्दू) तथा 'कम्बोज' में अनेक शासकों ने वैष्णव तथा शैव मन्दिर बनवाये । कम्बोज में अधिकांश बड़े-बड़े शैव तथा वैष्णव मन्दिर दसवीं से बारहवीं शताब्दी तक बनाये गये । इन मन्दिरों में 'प्रस्तर शिलों' पर रामायण की कथाओं को काटकर उभारा गया है । इसी प्रकार 'बोरुबुदुर' (जावा) के मन्दिरों की भित्तियों पर रामायण के चिन्ह प्राप्त हैं । मलाया तथा जावा में बौद्ध शैली की अनेक कलाकृतियाँ सुरक्षित हैं । 'मलाया' में नालन्दा शैली के आधार पर भगवान बुद्ध की धातु-मूर्तियों का निर्माण किया गया । इसी प्रकार यहां पर भारतीय पल्लव शैली की विष्णु-मूर्तियां बनाई गईं । जावा में आठवीं शताब्दी के मध्य शैलेन्द्र वंश के शासकों ने बोरुबुदुर का मध्यस्तूप बनवाया और भगवान बुद्ध की १२० प्रतिमायें बनवाई गईं । इसके अतिरिक्त चारों ओर की

वीथिकाओं को अलंकृत करने के लिए १३०० मूर्तियाँ काटी गईं।

१८६३ ई० में दो विद्वानों डा० औरलस्टीन तथा लेकाक ने मध्य एशिया में भारतीय कला के उदाहरण उपलब्ध किये और उन्होंने ईरान, दनदन-अहिलिक आदि क्षेत्रों से जो कला सामग्री प्राप्त की उसने भारतीय कलाओं का महत्व बढ़ा। १९०३ ईसवी में उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश और बलूचिस्तान में पुरातत्व की खोज के लिए डा० स्टीन को निमन्त्रित किया गया था। इस समय उन्होंने अफगानिस्तान में बामियां की भग्न अवशेष गुफाओं से चौथी शताब्दी के भारतीय शैली के चित्र प्राप्त किये। इन कलाकृतियों पर भारतीय कला प्रभाव के अतिरिक्त, ईरानी तथा चीनी प्रभाव सुस्पष्ट है। बामियां के उत्तर में फन्दुकिस्तान में भी बौद्ध मठों की खोज का श्रेय डा० स्टीन को प्राप्त है। इन मठों में भारत के गुप्त तथा पाल राजाओं के आदेशों पर चित्र बनाये गये।

डा० स्टीन ने बड़ी सावधानी से खुत्तन के चारों ओर (मध्य एशिया) के भवनों की भित्तियों से भित्तिचित्रों को लगभग २ इंच मोटी पलास्तर की तह के साथ उतार लिया और पलास्तर के इन चित्र खण्डों को अलमोनियम के फ्रेमों में कसकर, इनकी सुरक्षा हेतु इन्हें वहाँ से हटा लिया गया। ये विशाल चित्र अब डायरेक्टर जनरल आफ आरकेलाजीकल सर्वे आफ इण्डिया-नई दिल्ली के संरक्षण में हैं और इनको सेन्ट्रल एशिया एन्टीक्वीटीज म्युजियम-जनपथ नई दिल्ली के एक विशाल कक्ष की दीवारों पर कला आलोचकों तथा जनता के अवलोकन हेतु पुनः पुरानी अवस्था तथा योजना में संजोया गया है। इन मानवाकार से भी बड़ी आकृतियों वाले भित्ति-चित्रों की रेखा, आकृति-रचना तथा रंग-योजना पर अजन्ता की भारतीय कला का गहरा प्रभाव है। लेकाक तथा स्टीन के द्वारा खोजे गये दनदन-अहिलिक के भित्तिचित्र, जो आठवीं शताब्दी के हैं, ऐसे प्रतीत होते हैं कि अजन्ता के किसी कुशल चित्रकार ने अंकित किये हैं।

चियुटजू में लेकाक ने आठवीं शताब्दी के कुछ चित्रित झंडे खुदाई में प्राप्त किये हैं जो तिब्बत के मंदिरों के थानका नामी झंडों से मिलते जुलते हैं। थानका चित्रों की परम्परा निसन्देह बहुत प्राचीन है और तिब्बत के कई प्राचीन मन्दिरों में इस प्रकार के झंडे प्राप्त हुए हैं। इन प्राचीन थानका चित्रों के कुछ उदाहरण निश्चय ही सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व के हैं। ग्याहरवीं शताब्दी के एक चीनी आलोचक टेङ्गचुन के एक उल्लेख से ऐसा प्रतीत होता है कि यह चित्र भारत में भी बनते थे। विशेष रूप से बंगाल स्थित नालन्दा मठ में बौद्ध भिक्ष या पुजारी बुद्ध तथा बोधिसत्व के चित्र पश्चिमी देशों से मंगाये हुए पट पर बनाये जाते थे। ग्याहरवीं शताब्दी में मगध, तिब्बत, नेपाल आदि देशों का आपस में गहरा सम्पर्क था, इस कारण यह सम्भव हो सकता है कि इन तीनों की कला में एक ही प्रकार की कलात्मक अभि-व्यंजना हुई हो। अफगानिस्तान में कुछ ऐसे चित्रित काष्ठफलक तथा हाथीदाँत फलक प्राप्त हुये हैं जिन पर बोधिसत्व की आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं।

तिब्बत में चैत्य भवनों की बड़ी-बड़ी भित्तियों को भगवान बुद्ध की जीवन कथाओं से अलंकृत किया गया। इन चित्रावलियों पर बौद्ध दर्शन तथा कला का पूर्ण रूपेण प्रभाव था। तिब्बत के कुछ भित्तिचित्र बहुत प्राचीन हैं और इनकी शैली में अजन्ता का अत्यधिक अनुकरण है। तिब्बत के थानका नामी झंडों के चित्र भी अपनी शैलीगत विशेषताओं के कारण प्राचीन भारतीय कला संस्थानों की याद दिलाते हैं। परसी ब्राउन महोदय का मत है कि यह चित्र भित्तिचित्र भी कहे जा सकते हैं क्योंकि धरातल भित्तिचित्रण की प्रणाली पर ही बनाया गया है परन्तु फिर भी चित्र कपड़े पर बने टेम्परा चित्र हैं।

इस प्रकार पहले खुत्तन और बाद में तिब्बत में भारतवर्ष की चित्र परम्परा के उदाहरण प्राप्त होते हैं और यह परम्परा इन देशों में परवर्ती काल में भी प्रचलित रही। इन उदाहरणों से यह अनुमान किया जा सकता है कि जब भारतीय कलाओं का सुदूर सीमान्त प्रदेशों में प्रसार हो रहा था तो भारत में भी उत्तम चित्र बनाए गये होंगे। अब हम भारत में प्राप्त इस काल की कलाकृतियों का अध्ययन करेंगे। इस अध्ययन के लिए सम्पूर्ण मध्यकाल की कला को पूर्व-मध्यकाल और उत्तर-मध्यकाल में विभाजित करना अधिक उपयुक्त होगा।

पूर्व-मध्यकाल—७०० ईसवी से १००० ईसवी तक।

उत्तर-मध्यकाल—१००० ईसवी से १५५० ईसवी तक।

मध्यकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (६०६ ई० से १५२६ ई० तक)

हूण ज्ञाति के आक्रमणों से गुप्तवंश नष्ट हो गया और देश में छोटे-छोटे राज्य स्थापित होने लगे। अंत में लगभग एक शताब्दी पश्चात् थानेश्वर के राजा हर्षवर्धन (६०६-६४७ ई०) ने सारे उत्तरी भारत पर विजय प्राप्त करके एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की उसने कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया। मालवा तथा सौराष्ट्र पर उसने विजय प्राप्त की। वह हिन्दू मत का अनुयायी था। उसने भव्य देव-मन्दिर बनवाये। उसके समय में नालन्दा (बिहार प्रान्त में) शिक्षा का महान केन्द्र था।

राजपूत काल में हर्ष के पश्चात् भारतवर्ष में अराजकता फैल गई और राजपूतों ने छोटे-छोटे राज्य उत्तरी भारत में स्थापित कर लिये। यह राज्य लगभग पाँच सौ वर्ष तक रहे फिर एक-एक करके मुस्लमान शासकों ने उन्हें जीत लिया। राजपून विष्णु, दुर्गा तथा शिव के उपासक थे अत: उन्होंने देवताओं के विशाल मन्दिर बनवाये। मुसलमान आक्रमण के समय भारत में निम्न राजपूत राज्य प्रसिद्ध थे—

(१) दिल्ली में तबार या तोमर राज्य वंश के शासकों में अनङ्गपाल द्वितीय प्रसिद्ध हुआ। उसने दिल्ली का राज्य दोहते पृथ्वीराज चौहान (अजमेर के शासक) को दे दिया था।

(२) अजमेर में चौहान वंश राज्य करता था। इस वंश में पृथ्वीराज महान् राजा हुआ उसने मुहम्मद गौरी को तरावड़ी की लड़ाई में हराया परन्तु ११९२ ई० में गौरी ने उसको कैद करके मरवा दिया।

(३) कन्नौज में राठौर वंश शासक था। इस वंश के जयचन्द राठौर की पुत्री संयुक्ता को पृथ्वीराज स्वयंवर से उठा ले गया। गौरी ने जयचान्द को ११९४ ई० में हराया।

(४) बिहार और बंगाल में पाल वंश और नेपाल में सेन वंश का बारहवी शताब्दी ईसवीं में मुहम्मद विन वख्तियार खिलजी ने अन्त कर दिया।

(५) मालवा में परमार वंश में राजा भोज (१०१८ के १०६०ई०) प्रसिद्ध कला-प्रेमी तथा कला मर्मज्ञ राजा हुआ। वह प्रसिद्ध विद्वान था।

(६) बुन्देलखन्ड के चन्देल राज्य को १२०३ ई० में कुतुबुद्दीन ऐवक ने मुसलमान राज्य में मिला लिया।

(७) मेवाड़ के सिसोदिया वंश में राणा सांगा तथा महाराणा प्रताप महान् योद्धा हुए। उन्होंने मुगलों से लड़ाईयां लड़ी।

महमूद गजनवी (९९७-१०३० ई०) में भारत पर सत्रह बार आक्रमण किये और उसने जयपाल (पंजाब का राज्यपाल) तथा राजा आनन्दपाल को हराया। उसने नगरकोट (काँगड़ा दुर्ग) १००९ ई० में जीता और लूट में चाँदी का बना एक ३० गज वर्गाकार माप का मकान ले गया। उसने मथुरा, कन्नौज, लाहौर तथा सोमनाथ पर आक्रमण कर लूटमार की। १२०६ ई० से १५२६ ई० तक भारत में निम्न प्रमुख 'पठान' या 'सुल्तान राजवंश' स्थापित हुए जिनसे राजनैतिक अशान्ति तथा हलचल बनी रही।

(१) गुलाम वंश (१२०६-१२९० ई०), (२) खिलजी वंश (१२९०-१३२० ई०), (३) तुगलक वंश (१३२०-१४१४ ई०), (४) सैय्यद वंश (१४१४ १४५० ई०), (५) लोधी वंश (१४५०-१५२६ ई०)

इस काल में मुसलमान भवन शैली में भवन बनाये गये।

पूर्व-मध्यकाल की चित्रकला

(७०० ई० से १००० ई० तक)

भारतवर्ष में पूर्व-मध्यकाल की चित्रकला के उदाहरण बहुत कम प्राप्त होते हैं। इस समय की अनेक साहित्यिक रचनाओं में चित्रकला का उल्लेख आया है। दसवीं शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य कुछ भित्तिचित्र बनाये जाते रहे जिनके उदाहरण एलोरा के कैलाशनाथ मन्दिर या वेरुल की गुफाओं में प्राप्त हैं।

पूर्व मध्यकाल के भित्तिचित्र (७०० ई० से १००० ई० तक)

एलोरा—एलोरा की गुफाओं को वेरुल के नाम से भी पुकारा जाता है।

एलोरा के मन्दिर अजन्ता से लगभग ८२ किलोमीटर या ५० मील की दूरी पर हैदराबाद राज्य में स्थित थे। यह स्थान औरंगाबाद रेलवे स्टेशन से २९ किलोमीटर (लगभग १६ मील) की दूरी पर स्थित है। यहां पर एक सम्पूर्ण पहाड़ी को काटकर मन्दिरों के रूप में परिणित कर दिया गया है। एलोरा या एलूरा का प्राचीन नाम एलापुर है जो स्थान आरम्भिक राष्ट्रकूट राजाओं की राजधानी था। कालान्तर में एलोरा (एलापुर) में राजाकृष्ण देवराय ने सर्वप्रथम एलोरा के कैलाशनाथ मन्दिरों का निर्माण कार्य एक पहाड़ी को कटवा कर आरम्भ कराया था। इन गुफाओं का शिल्प रीतिबद्ध है। यह गुफाएं एक लम्बी गहरी ढालू चट्टान के उत्तरी दक्षिणी पठार की ओर काटकर बनाई गई हैं। इन गुफाओं में दाहिनी ओर की दक्षिण की बारह गुफाएं बौद्ध धर्म से सम्बन्धित है, मध्य की सत्रह गुफायें ब्राह्मण धर्म से तथा उत्तर की पांच गुफाएं जैन धर्म से सम्बन्धित हैं। इन गुफाओं के निकट दो गुफायें और हैं। बौद्ध गुफाओं का समय अनुमानत: ५५० ई०-६५० ईसवी है। यह गुफाएं चित्रित थीं परन्तु अब भित्तियों पर चित्र अवशेष नहीं रहे हैं। कैलाशनाथ मन्दिर के एक ओर चौदहवीं गुफा रावण की खाई हैं तथा इक्कीसवीं गुफा रामेश्वर में मूर्तिकला के उत्कृष्ट उदाहरण सुरक्षित हैं। कैलाशनाथ मन्दिर की योजना तथा शैली में पट्टादकाल स्थित बीरूपक्ष शैली का अनुकरण है। इस गुफा की छत्तों तथा दीवारों पर चित्रों के अनेक अवशेष सुरक्षित हैं परन्तु यह सफाई के पश्चात ही स्पष्ट हो सकेंगे। कैलाशनाथ मन्दिर की छत्तों पर तथा पश्चिमी अर्धमण्डप में अधिकांश चित्र प्राप्त हैं। इन गुफाओं में से लंकेश्वर, इन्द्रसभा तथा गणेशलेण गुफाओं में चित्र अभी पर्याप्त सुरक्षित हैं। यहां पर चित्रों की दो या तीन तहे हैं। आरम्भिक चित्रों की तह ७५० ई० से ८०० ई० के मध्य की है। यहां पर चित्रों में गरुड़ पर आसीन वैष्णवी, सिंह पर बैठी देवी तथा सिंहवाहनी के चित्र या अधिकांश अप्सराएं, विद्याधर, देवताओं तथा गन्धर्वों के चित्र हैं। इन दिव्य आत्माओं को बादलों के मध्य अंकित किया गया है। एलोरा के उत्तरी छोर पर जो पांच जैन गुफाएं हैं, उनमें सबसे प्रसिद्ध बत्तीसवीं गुफा है जो 'इन्द्रसभा' के नाम से पुकारी जाती है। यह गुफा नवीं शताब्दी में काट कर बनाई गई। उत्तरी भारत के ललितपुर जिले के अन्तर्गत मदनपुर नामक स्थान में भित्तिचित्र प्राप्त हुए हैं। दसवीं से बारहवी शताब्दी के मध्य में राजा भोज के भतीजे उदयादित्य ने भी एलोरा में भित्तिचित्र बनवाये।

शैली— इन चित्रों की शैली अजन्ता के समान है किन्तु इस शैली में पत्तन के चिन्ह स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। एलोरा की आकृतियों के अंग- प्रत्यंग में कठोरता तथा जकड़न हैं। अधिकांश आकृतियों के चेहरे सवाचश्म-लम्बी, नोकीली परले गाल से बाहर निकली नाक और बड़ी-बड़ी आंखें बनाई गई हैं। आंख भी चेहरे की सीमा रेखा से बाहर निकली बनाई गई है। आकृतियों में अतिश्योक्तिपूर्ण नाटकीयता है।

पल्लव भित्तचित्र—कैलाशनाथ और कांचीपुरम के वैकुण्ठ पीरूमल मन्दिरों

में आठवीं शताब्दी के चित्र-खन्ड रह गये हैं। इन चित्रों के अतिरिक्त पल्लव कलाकारों की ठोस शैली का अन्य दो स्थानों पर परिचय प्राप्त होता है इन चित्रों में आरम्भिक चित्र 'तलगिरीश्वर मन्दिर' की दीवारों पर पन्नामालाई में सुरक्षित है। यह मन्दिर राजा नरसिंह वर्मन द्वितीय ने बनवाया जिसका राज्यकाल लगभग ६९५ ई० से ७२२ ई० था। इस प्रतिभा-सम्पन्न शासक ने ७२० ई० में चीन के लिये एक राजदूत भेजा था। उसने राजसिंह (राजाओं का सिंह) की उपाधि धारण की। उसका राज्यकाल शान्तिपूर्ण था। उसने भवन निर्माण में अत्यधिक प्रेम प्रदर्शित किया जिसका उदाहरण मामलपुरम के मन्दिरों में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। पन्नामालाई में सबसे अच्छे सुरक्षित चित्र अवशेषों में एक स्त्री की आकृति है, जिसमें दक्षिण की सुडौल छरछरे शरीर वाली स्त्री की आदर्श परिकल्पना की गई है। दक्षिणी कलाकारों के द्वारा रचित भित्तिचित्रों में तरल रंगों के क्रमिक बल दर्शनीय है जिनके कारण चित्रों में कोमलता आ गई हैं। पल्लव चित्रमाला में सित्तन्नवासल के चित्र श्रेष्ठ हैं। जिनका उल्लेख किया जा चुका है।

चोल राजवंश—राजराजा प्रथम (९८५-१०१६ ई०) के शासक बनते ही चोल राजवंश दक्षिण भारत में शक्ति सम्पन्न हो गया। चोल राज्य के अन्तर्गत छः मन्दिरों में परवर्तीकाल के भित्तिचित्र अभी सुरक्षित है। राज-राजेश्वर मन्दिर में खंडित भित्तिचित्रों के नीचे चित्रों के चिन्ह मिले हैं। इन चित्रों की सफाई तथा सुरक्षा का कार्य चाल रहा है।[1]

पल्लव तथा चोल राजाओं के समय की कला उत्तरी भारत की अजन्ता की परम्परा से प्रभावित एवं प्रेरित है। राजराजा प्रथम के समकालीन वृहदीश्वर मन्दिर (तंजौर) के अर्धमण्डलों तथा दीवारों पर अंकित चित्रावलियों की शैली अजन्ता से सम्बन्धित हैं, परन्तु इन चित्रों में दक्षिणी प्रभाव अधिक हैं। तजौर का वृहदीश्वर मन्दिर चोल सम्राट राजराजा ने १००० ई० में निर्मित कराया था।

वृहदीश्वर मन्दिर में एक महत्ववान चित्र प्राप्त हैं जिसमें शंकर दो अप्सराओं का नृत्य देख रहे हैं। इस चित्र में विष्णु का अंकन भी किया गया है। गन्धर्व तथा गण वाद्य यंत्रों से संगीत उत्पन्न कर रहे हैं। नृत्यरत आकृतियों की भंगिमायें लयपूर्ण हैं। यहाँ पर एक घुड़सवार का चित्र भी अंकित है। नटराज रूप में शिव का अंकन इस मन्दिर की एक विशेषता है। राजराजा को अपनी रानियों तथा सेवकों के साथ चित्रित किया गया है। इस मन्दिर के पर्याप्त चित्र सत्रहवीं शताब्दी में नायकों के शासन काल में नष्ट कर दिये गये।

---

1. 'ट्रेजर्स आफ एशिया—पेन्टिंग आफ इन्डिया'—ले० डगलस वैढर तथा बेसिल ग्रे, पृष्ठ ४४।

चित्रण विधि—तुङ्गभद्रा नदी के दक्षिण में भित्ति-चित्रण की सीको-फ्रेस्को पद्धतिं प्रचलित थी। डा० परमाशिवन के अनुसार–"पूने तथा रेत की तह (आधार) पर चूने के पलास्तर की एक चिकनी तह लगाई जाती थी और उसकी ओपा जाता था जिस पर रंग स्थायी रूप से जम जाते थे।"

तामिल साहित्य से ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में उपरोक्त वर्णित भित्तिचित्रण पद्धति का ज्ञान ईसवी शताब्दी से प्रारम्भ हो गया था। यद्यपि इस पद्धति का दक्षिण क्षेत्र में भिन्न-२ प्रकार से प्रयोग किया गया। इस प्रकार के धरातल पर लाल रंग से रेखांकन के पश्चात् तरल रंग लगाये जाते थे। इस शैली में रंगों की कोमलता होते हुये भी रेखायें कर्कश, मुद्रायें उग्रता लिए तथा आकृतियों की भङ्गिमायें अकड़-जकड़दार हैं।

पूर्व-मध्यकाल के कलाविषयक साहित्यिक ग्रन्थ

"विष्णु धर्मोत्तर पुराण"—विष्णु धर्मोत्तर पुराण लगभग छठी शताब्दी या कुछ बाद का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के अन्तर्गत 'चित्रसूत्र' नामक एक अध्याय की रचना की गई है। इस 'चित्रसूत्र' का सर्वप्रथम डा० स्टेला क्रैमरिश फिर डा० आनन्द कुमार स्वामी ने अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया। 'चित्रसूत्र' के आरम्भिक भाग से विदित होता है कि चित्रकला के सम्बन्ध में पर्याप्त पहले से ही अनेक ग्रन्थों में विचार व्यक्त होने लगे तथा चर्चायें होने लगी थीं। इसी ग्रन्थ में एक कथा आती है जो इस प्रकार है – प्राचीन-काल में उर्वशी की रचना करते हुये नारायण मुनि ने लोक मंगल के लिए 'चित्रसूत्र' की रचना की। मुनि ने निकट आई सुर-सुन्दरियों को भ्रमित करने के लिये मुनि ने आम का रस लेकर पृथ्वी पर एक रूपसी स्त्री का चित्र अंकित किया था। चित्र में अंकित उस अत्यन्त रूपसी स्त्री के चित्र का दर्शन कर वे सभी सुर-सुन्दरियाँ लज्जित हो गई। इस चित्र से नारायण ने विश्वकर्मा को चित्रकला सिखाई। इससे विश्वकर्मा ने सृष्टि का चित्र बनाया। इस प्रकार चित्रकला के लक्षणों से युक्त उस चित्रकृति को महामुनि ने विश्वकर्मा को समर्पित कर दिया। जिससे चित्रसूत्र का श्री गणेश हुआ।

सम्पूर्ण 'चित्रसूत्र' नौ अध्यायों में विभक्त है जिनमें चित्र के आयाम, प्रमाण, सामान्य नियम, आकृति के लक्षण, रंग, रेखा, रूप, भाव, चित्र में गुण दोष तथा चित्रों की सामग्री आदि के विषय में पर्याप्त चर्चा की गई है।

इस ग्रन्थ के अनुसार चित्र रसोदयक और आनन्ददायक होना चाहिये और अनेक प्रकार के चित्रों में रस या स्थाई भाव के अनुकूल ही चित्र की धारणा होनी चाहिये। विष्णुधर्मोत्तरपुराण के 'चित्रसूत्रम' नामक प्रकरण में पांच प्रकार के रंग माने गये हैं जो इस प्रकार हैं—(१) श्वेत, (२) पीत, (३) लाल, (४) कृष्ण और (५) नीला। इन पांच रंगों से अनेक दूसरे रंग बनाने की विधि भी बताई गई है। इसी प्रकार भिन्न-२ प्रमाण विधियां तथा नाप जोख की रीतियां बताई गई हैं।

इस ग्रन्थ में पाँच प्रकार के पुरुष तथा उनके माप तथा लक्षण बताये गये हैं। पुरुषों के पांच भेद—मल्य, रुचक्र, हस, भद्र, शशक बताये गये हैं। इस ग्रन्थ में चार प्रकार के चित्र बताये गये हैं—सत्य, वैणिक, नागर तथा मिश्र। स्त्रियों के बालों के अनेक भेद—कुन्तल, दक्षिणवृत, तरंग, वारिधारा, जटासर बताये गये हैं। इसी प्रकार नेत्रों तथा अंगभंगिमाओं के अनेक प्रकार भी बताये गये हैं (नेत्र– चपलाकृति, उत्पल, पत्रभा, मत्योदरा, पद्म-पत्रनिभा, सनाकृति, अङ्गभङ्गिमायें – रिजवगता, अनरिजु, सचिक्रीता सम, अर्ध-विलोचन, परोवगता, परिव्रता, परिच्छथगता, परावृतो तथा समानता)। इस ग्रन्थ से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समाज में चित्रकला का पर्याप्त प्रचलन था और चित्रकला के सिद्धान्तों का पूर्ण विकास हो चुका था। इस ग्रन्थ में भित्ति संस्कार—भित्ति के लेप पदार्थ उसकी प्रयोग विधि, महूर्त-इष्टदेव के ध्यान आदि के विषय में बताया गया है। इस काल के कई अन्य ग्रन्थों में विष्णुधर्मोत्तर के समान ही सरल सूझ-बूझ पर आधारित चित्रकला विषयक अध्याय प्राप्त होते हैं। इन ग्रन्थों के यह अध्याय 'चित्रसूत्र' पर ही आधारित हैं।

'मानसार'—मानसार के उल्लेखों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि महाविश्वकर्मा अर्थात् ब्रह्मा के चार मुखों से विश्वकर्मा, त्वष्टा, मय तथा मनु की उत्पत्ति हुई। विश्वकर्मा तथा इन्द्र की पुत्री का विवाह हुआ और उनकी संतान को स्थपित कहा गया। स्थपित समस्त शास्त्रों में पारंगत थे। उसके अधीन वर्धकी और तक्षक कार्य करते थे। वर्धकी चित्रकर्म का ज्ञाता था। वंर्धकी का नाम शिल्पाचार्यों में गिना जाता है। इस ग्रन्थ की रचना पर्याप्त पूर्व लगभग २०० ई० में हो चुकी थी जिसका परवर्ती संकलन मध्यकालीन है।

'चित्रलक्षण'—इस ग्रन्थ की रचना का काल छठी तथा सातवीं शताब्दी के मध्य माना जाता है। इस ग्रन्थ का तिब्बती भाषा में अनुवाद प्राप्त है। इस ग्रन्थ के प्रस्तावना लेख के अनुसार यह ग्रन्थ विश्वकर्मा और राजा नग्नजितु (भयजित्) के द्वारा बताये चित्रकर्म के लक्षणों का संग्रह है। इस ग्रन्थ के तीसरे अध्याय में चित्र रचना सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है। इसमें पशु-पक्षी, स्त्री पुरुष आदि के चित्रांकन की भिन्न-भिन्न विधियां तथा विभिन्न आकृतियों के अगों तथा उपाँगों के अनुपात में लम्बाई, चौड़ाई आदि का वणन किया गया हैं। उदाहरणार्थ इस ग्रन्थ में नेत्रों को आकार के आधार पर पांच वर्गों में रखा गया है। नेत्रों के यह पांच प्रकार इस प्रकार हैं—(१) धनुराकृति (भोगवृत्ति परिचायक), (२) उत्पलपत्राकृति (सामान्य स्वरूप की परिचायक), (३) मत्योदराकृति (प्रेमी तथा प्रेमिका या राजा के नेत्र), (४) पद्मपत्राकृति (भय तथा क्रन्दन के परिचायक नेत्र), तथा (५) कुटिल दृशाकृति—दोनों किनारों पर चौड़े परन्तु बीच में पतले (छल, क्रोध तथा मोह के सूचक नेत्र)। इस ग्रन्थ के अनुसार चित्रों को भाव प्रधान होना चाहिये।

'समरांगण-सूत्र' राजा भोज (१०१०-१०५५ ई०) परमार वंश का महान विद्या प्रेमी तथा कलानुरागी शासक था। उसने ज्योतिष, काव्य, योग, राजनीति, धर्म, शिल्प, नाटक आदि सम्बन्धित लगभग ३४ ग्रन्थों की रचना की। इसी शासक ने शिल्पशास्त्र पर दो ग्रन्थों 'समरांगणसूत्रधार' तथा 'युक्तिकल्पतरु' का निर्माण किया है। पहला ग्रन्थ ही महत्ववान है, इसमें चित्रकर्म के विषय पर भी पर्याप्त चर्चा की गयी है। यह ग्रन्थ विष्णुधर्मोत्तरपुराण पर ही आधारित है। इसमें दीवार ओपने की विधि आदि का पर्याप्त वर्णन आया है।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त 'शिल्परत्न' भवभूतिकृत 'उत्तर रामचरित्र' (७००-ई०) तथा वाणभट्टकृत 'कादम्बरी' (७०० ई०) 'हर्ष चरित्र' तथा 'तिलक मंजरी' में भी चित्र-कर्म तथा चित्रकारी की चर्चा की गई है। आचार्य दंडीकृत 'दशकुमार चरित्र' (७०० ई०) में इस प्रकार का प्रसंग आता है कि राजा उपहार वर्मा ने स्वयं अपना चित्र बनाया। इस प्रकार इन उल्लेखों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि चित्रकला का उस समय समाज में पर्याप्त ज्ञान था और भवनों या राजप्रसादों में भी चित्र बनाये जाते थे। परन्तु इस काल के चित्र-उदाहरण प्राप्त न होने के कारण यही सोचा जा सकता है कि सम्भवत: यह चित्र नष्ट हो गये हैं।

उत्तर मध्यकाल की चित्रकला

(१००० ई० से १५५० ई० तक)

पूर्व मध्यकाल की चित्रकला के उदाहरणों से ऐसा जान पड़ता है कि चित्रकला की धारा मन्द पड़ती जा रही थी, परन्तु फिर थी चित्रकला के सम्बन्ध में अनेक ग्रन्थों में चित्रकर्म सम्बन्धी अध्याय संकलित किये गये। इससे विदित होता है कि चित्रकला सम्बन्धी रीति-ग्रन्थों की ओर लेखकों का ध्यान विशेष रूप से जा रहा था। उत्तर-मध्यकालीन साहित्य में भी चित्रकला का यथेष्ट वर्णन मिलता है। इन वर्णनों से ऐसा प्रतीत होता है कि चित्रकला का समाज में अत्यधिक प्रचलन था और भवनों आदि में चित्रकारी की जाती थी। उत्तर मध्यकालीन ग्रन्थों में चित्रकला का पर्याप्त प्रसंग प्राप्त होता है।

'अभिलषितार्थ चिन्तामणि' (मानसोल्लास)—चालुक्य वंशीय राजा विक्रमादित्य द्वितीय के पुत्र सोमेश्वर ने ११२९ ई० में 'अभिलषितार्थ चिन्तामणि' (जिसका अपर नाम मानसोल्लास है) नामक एक विश्वकोष के रूप में ग्रन्थ लिखा। इस ग्रंथ में चित्रकला सम्बंधी सिद्धान्तों का समावेश किया गया है। 'मानसोल्लास' की तृतीय विशांति के पहले अध्याय में चित्रकला की विवेचना की गयी है सोमेश्वर के चित्र विधान पर 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण के चित्रलक्षण का प्रभाव है। सोमेश्वर ने अपने

लिए चित्र-विद्या बिरचि कहा है। उसने चार प्रकार के चित्र माने हैं जो इस प्रकार हैं—(१) विद्ध, (२) अविद्ध, (३) रस, तथा (४) धूलि चित्र।[1]

'सुरसुन्दरीकहा' (१०३८ ई०)—प्राकृत मागधी भाषा की जैन कहानी 'सूरसुन्दरीकहा', जिसका समय अनुमानत: १०३८ ई० है, में चित्रकला का वर्णन आया है जो इस प्रकार है—'एक चित्रकार ने एक कक्ष के धरातल पर एक मोरपंख का चित्र अंकित कर दिया जिसे भ्रम से उठाने वाले व्यक्ति के नख में चोट लग गई।' इसी ग्रन्थ से एक प्रेमी की एकान्त प्रेमाशक्ति की दशा को भ्रमर और कुमुदनी के अंकित चित्र से दर्शाया गया है।

'तरंगवती' (११ वीं १२ वीं शताब्दी)—तरंगवती नामक जैन कथा में भी प्रेम-प्रसंग के रूप में चित्रकला का उल्लेख किया गया है। 'तरंगवती' का नायक विदेश चला जाता है अतः नायिका तरंगवती नायक की खोज करने के लिये एक चित्र-प्रदर्शनी का आयोजन करती है। इस प्रदर्शनी का आयोजन वह इस उद्देश्य से करती है कि उसका रूठा हुआ प्रवासी प्रेमी प्रदर्शनी के दर्शनार्थ वहां आ जाए।

'कर्णसुन्दरी'—'कर्णसुन्दरी' विल्हण कवि (११ वीं शताब्दी) की एक रचना है। इस नाटिका में कर्णाट की राजकुमारी मियनल्लदेवी की अनहितनाद के कामदेव और त्रैलोक्यमल्ल के प्रति उनका चित्र देखकर प्रेमा-मुग्ध होने की दशा का वर्णन किया गया है।

'त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित'—श्वेताम्बरीय जैनों की पुस्तकों में त्रिषष्ठि-शलाकापुरुषचरित का विशेष स्थान है। इस महाकाव्य की रचना जैनाचार्य हेमचन्द (१०८२-११७२ ई०) ने की थी। इस महाकाव्य की कथा से ऐसा विदित होता है कि उस समय राज्य-दरबारों में अनेक चित्रकारों की एक विशेष सभा होती थी, जो भित्तिचित्रों से सुसज्जित होती थी।

'कथा सरित सागर'—'कथा सरित सागर' कवि सोमदेव की प्रसिद्ध काव्य रचना है। सोमदेव को काशमीर का निवासी माना जाता है और इस कवि का स्थितिकाल ११ वीं शताब्दी माना जाता है। वास्तव में यह कथा गुणाढ्य की

---

1. टिप्पणी—(१) विद्ध चित्र—शबीह, जो दर्पण में पड़े बिम्ब के समान सत्य आकृति या प्रतिरूप हो।
(२) अबिद्ध चित्र—भावना या कल्पना के आधार पर बनाया गया चित्र।
(३) रस चित्र—रसाभिव्यक्ति के उद्देश्य से बनाए गए चित्र।
(४) धूलि चित्र—अल्पना, चौक, पूरना, रंगोली आदि। यह चित्र रंगों के चूर्ण या लेप से धरती पर बनाए जाते हैं।

'वृहत्कथा' का एक संस्करण है जो सबसे उत्तम है। इस ग्रन्थ की अनेक कथाओं में चित्रकला का प्रसंग आया है। इन प्रसंगों से सुस्पष्ट है कि इस समय चित्रकला का समाज तथा जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध था। इस ग्रन्थ की अनेक कथाओं से तत्कालीन समाज में चित्रकला का महत्ववान स्थान स्थापित होता है। एक कथा में उदयन के कुमार नरवाहनदत्त को मूर्ति, चित्र तथा संगीत कलाओं में निपुण बताया गया है। एक अन्य कथा में वासवदत्ता के घर की भित्ति पर पद्मावती के द्वारा अंकित सीता की आकृति का वर्णन है। इसी प्रकार एक अन्य कथा में ऐसा प्रसंग आया है कि चित्रकार कुमारदत्त के द्वारा राजा पृथ्वी रूप से अपना एक चित्र राजकुमारी रूपलता के पास अपना अनुराग प्रकट करने के लिये भेजा था। इसी ग्रन्थ में कात्यायनी नामक परिव्राजिका के चित्रविद्या में दक्ष होने का प्रसंग आया हैं। उसने राजकुमारी मन्दाग्वती तथा राजकुमार सुन्दरसेन के सजीव चित्र बनाये।

इसी ग्रन्थ में राजा विक्रमादित्य के दरबार में नियुक्त चित्रकार के विषय में कहा गया है कि उसको सामन्तों जैसा स्थान प्राप्त था। इसी ग्रन्थ में चित्र प्रतियोगिताओं और कुमारदत्त तथा रोलदेव जैसे नामी चित्रकारों का प्रसंग आया है।

'बृहत्कथा मंजरी —'बृहत्कथा मंजरी' भी बृहत्कथा का एक संस्करण है। इसकी रचना काश्मीर निवासी कवि क्षेमेन्द्र ने की थी। उसका कार्यकाल ११ वीं शताब्दी माना जाता है यह संस्करण इस कथा का संक्षिप्त रूप है और इसमें भी चित्रकला का पर्याप्त प्रसंग आया है।

'नैषधचरित'—'नैषधचरित' नामक महाकाव्य की रचना श्रीहर्ष नामक कवि ने बारहवी शताब्दीं के मध्य की थी। इस ग्रन्थ में राजा नल के प्रमोद भवन की दीवारों पर बने जीते-जागते चित्रों का उल्लेख आया है। यह चित्र कल्पवल्ली के नाम से पुकारे गए हैं जो दीवारों तथा छतों पर चित्रित थे। इन कल्पवल्लियों में वस्त्र, आभूषण, पुष्प, फल, रत्न, मोती आदि के अभिप्राय चित्रित होने का प्रसंग आया है। नैषधचरित में ब्रज गोपियों की लीला, अप्सराओं पर प्रेमासक्त, मुनियों के चित्रों आदि का वर्णन किया गया है।

'पद्मपुराण' —'पद्मपुराण' का रचनाकाल १२००-१५०० ई० के मध्य माना जाता है। इस पुराण में इस प्रकार का एक प्रसंग आया है कि केरल राज्य के मन्त्री की सुपुत्री ने एक तीर्थों के चित्रा की पुस्तिका राजकुमारी हेम गौरांगी को दिखाई थी। इस पुस्तिका को देख राजकुमारी ने तीर्थों के भ्रमण का निश्चय किया। एक अन्य प्रसंग में भगवान शंकर के क्रीड़ा-गृह की भित्ति पर अंकित पालतू मोर और राजहंसों के उत्कृष्ट चित्रों का उल्लेख आया है।

'प्रसन्नराघव'—'प्रसन्नराघव नाटक' १३वीं शताब्दी के जयदेव कवि की रचना है। इसमें मैत्रेयी द्वारा अंकित राम-सीता के संयुक्त चित्र का वर्णन आया है।

उपरोक्त ग्रन्थों के आधार पर ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि चित्र-कला का समाज में व्यापक रूप से प्रचलन था परन्तु इस समय की ऐसी कोई विशाल, उत्तम चित्र-रचना उत्तरी भारत में प्राप्त नहीं होती जिससे चित्रकला का तत्कालीन समाज में महत्व स्थापित किया जा सके। इस समय साधारण स्तर के कुछ भित्ति-चित्रों के उदाहरण प्राप्त होते हैं जो दक्षिणी भारत या गुजरात में बनाए गये थे। इन भित्तिचित्रों का यथा स्थान वर्णन किया जायेगा। इस समय के व्यापक रूप से प्रचलित नवोदित प्रगतिशील कला के जो उदाहरण प्राप्त हुये हैं वह भित्तिचित्र नहीं हैं, बल्कि चित्रकला के यह उदाहरण पोथी या पुस्तक चित्र हैं। इनमें से कुछ उदाहरण बंगाल में लिखी गयी बौद्ध पोथियों (पाल शैली की पोथियों) में और कुछ मुख्यता गुजरात या पश्चिमी-भारत में लिखी गई जैन पोथियों (जैन या जैनेतर शैली की पोथियों) में प्राप्त हैं।

पाल शैली

पूर्व पीठिका—सम्राट हर्ष के पश्चात् बंगाल की शासन-व्यवस्था लगभग सौ वर्ष तक विश्रृंखलित रही और ७३०-७४० ई० के मध्य बंगाल की जनता ने विद्रोह आरम्भ कर दिया। बंगाल की जनता ने गोपाल नामक एक व्यक्ति को अपना राजा चुन लिया और बंगाल में शान्ति स्थापित हो गई। जनता के द्वारा निर्वाचित राजा गोपाल ने दक्षिणी बिहार तक अपना राज्य स्थापित कर लिया। राजा गोपाल बंगाल के पाल वंश का प्रथम शासक था। गोपाल के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों में राजा धर्मपाल और देवपाल ने साम्राज्य को और अधिक सुदृढ़ बनाया। इन्होंने राज्य की सीमा का विस्तार भी किया। यह राजा बौद्ध धर्म के अनुयाई थे। परन्तु ग्यारहवीं शताब्दी में विजयसेन और नान्यदेव नामक राजाओं ने पश्चिमी बंगाल और मिथला में दो स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये और पाल वंश की शक्ति को कम कर दिया। सेनवंशीय राजाओं ने उत्तरी भारत पर भी अपना प्रभुत्व जमा लिया। इस वंश के उत्तराधिकारी राजा सेन नाम से प्रसिद्ध हुए। इस वंश में राजा लक्ष्मनसेन प्रसिद्ध शासक हुआ। सेनवंश ब्राह्मण धर्म का अनुयाई था, अतः बौद्ध धर्म के लिए आघात पहुंचा। इस प्रकार पालवंशीय शासकों के शासन में जो शेष क्षेत्र, जो मुंगेर तक सीमित राज्य रह गया था, उसको ११९७ ई० में मुसलमानों के आक्रमण ने समाप्त कर दिया। मुंगेर बिहार में स्थित है। पालवंश का अन्तिम शक्तिशाली राजा रामपाल हुआ जिसका राज्यकाल १०८४ ई० से ११३० ई० में माना जाता है। इस राजा ने तिरहुत और उत्तरी बिहार को जीता था, इस प्रकार इन प्रदेशों में भी बौद्ध धर्म पहुंच गया था।

पाल-पोथियां—बंगाल तथा बिहार में लिखी गई दसवीं शताब्दी एवं परवर्ती काल की महायान बौद्ध धर्म से सम्बन्धित अनेक पोथियों में चित्र प्राप्त हुए हैं। यह

सचित्र पोथियां, अच्छे तालपत्र या राजताल पर लिखी गई हैं। इन पोथियों की अनेक प्रतियां नेपाल, बंगाल तथा बिहार के अन्तर्गत-- नालन्दा, विक्रमशिला तथा भागलपुर में प्राप्त हुई हैं। इन पोथियों के पन्ने तालपत्र से बनाये गए हैं। यह तालपत्र के पृष्ठ लगभग २२½ इंच लम्बे तथा २½ इंच चोड़े हैं। इन तालपत्रों से बन पृष्ठों पर देवनागरी लिपि में सुन्दर और कटे-कटे छापे के समान अक्षरों में यह पाथियां लिखी गई हैं। कुछ पोथियों में काली पृष्ठभूमि पर लिखाई सफेद रंग से की गई है।[1] इन पृष्ठों के बीच-बीच में आयताकार या वर्गाकार स्थान रिक्त छोड़ दिये जाते थे जिनमें महायान देवी-देवताओं के चित्र बनाये जाते थे। यह वर्गाकार चित्र एक या दो इंच वर्गाकार के होते थे। इन पोथियों में महायान देवी-देवताओं तथा भगवान बुद्ध के चित्र बनाये जाते थे। इन पोथियों की जिल्द के लिए दोनों ओर पटरे लगाये जाते थे, जिन पर उसी प्रकार चित्र बनाये जाते थे। पटरों पर भगवान बुद्ध की जीवनी या जातक कथाओं को सुन्दर अक्षरों में लिखा जाता था। लिपिकार बड़ी सावधानी से लिखाई करता था।

पाल शैली की सचित्र पोथियां इस प्रकार की सचित्र पाल पोथियों में 'प्रज्ञापारमित', 'साधनमाला', पंचशिखा', 'गन्धव्यूह' तथा 'करनदेवगुहा' महायान बौद्ध पोथियाँ प्राप्त हैं।[2] (देखिये छाया फलक संख्या ४)। इस प्रकार की सचित्र पाल-पोथियां दो दर्जन से भी कम प्राप्त हैं। तिब्बत के इतिहासकार लामा तारानाथ ने धीमान तथा वित्तपाल को पाल शैली या पाल चित्रकला का संस्थापक माना है।[3]

यह पोथियां विशेष रूप से बंगाल में लिखी गई। शीघ्र ही नेपाल तथा बिहार भी इस शैली के केन्द्र बन गये, परन्तु नेपाल के चित्रों की मुखाकृतियों में अत्यधिक मंगोल प्रभाव आ गया है, कदाचित यह नेपाल का अपना स्थानीय प्रभाव है।

पाल शैली के चित्रों की विशेषताएं - इस शैली के अधिकांश चित्र पोथियों में ही प्राप्त होते हैं और इनका आकार पर्याप्त लघु है इन पुस्तक चित्रों के अतिरिक्त इस शैली के नेपाल तथा बंगाल में चित्रित परवर्ती काल के पटचित्र भी प्राप्त हुए हैं, जिनमें अजन्ता के भित्तिचित्रण की यथोचित विशेषताएं समाविष्ट हो गई थीं। इन शैली में अजन्ता की शैली का पुष्ट रूप नहीं है और अजन्ता-शैली की विकृति को प्राप्त अवस्था दिखाई पड़ती है। पोथियों के पृष्ठों के बीच-बीच में जो चित्र बनाये गये हैं उनमें लाल (सिंदूर, हिंगुल तथा महावर), नीला (लाजवर्दी या नील), सफेद (खड़िया या कासगर), काला (काजल) तथा मूल रंगों के मिश्रण से बनाये गये गुलाबी, बैंगनी तथा फाखतई आदि रंगों का प्रयोग भी किया गया है।

---

1. 'भारत की चित्रकला'-- ले० राय कृष्ण दास, पृष्ठ ३९।
2. 'आर्ट आफ दी वर्ल्ड (इन्डिया)' – ले० हरमन गोएट्ज पृष्ठ १३९।
3. 'आर्ट आफ दी वर्ल्ड (इन्डिया)—ले० हरमन गोएट्ज पृष्ठ १३९।
   'Tibetan historians mention Dhiman and Bitpalo as founder of the pala School of Painting.'

यह पोथियां उत्तम प्रकार के तालपत्रों को छाया में सुखाकर बनाये गये पत्रों पर तैयार की गई हैं। इन तालपत्रों की लम्बाई २२$\frac{1}{4}$ इंच तथा चौड़ाई २$\frac{1}{4}$ इंच है। यह चित्र महायान धर्म से सम्बन्धित है। भारतवर्ष को चित्रकला धर्म प्रधान रही है, अत: इस शैली में भी केवल धर्म से सम्बन्धित भगवान बुद्ध के चित्र मिलते हैं।

इन चित्रों की लिखाई निर्बल है यद्यपि इस शैली में अजन्ता शैली का रिक्थ विद्यमान है। आकृतियों की लिखाई में सवाचश्म चेहरों की अधिकता है, और चेहरे प्राय: एक ही कँडे के बनाए गये हैं। मानवाकृतियों की नाकें लम्बी हैं जो परले गाल से आगे निकल गई हैं और आंखें बड़ी-बड़ी तथा पास पास बनाई गई हैं। आकृतियों के हाथों तथा पैरों की मुद्राओं में अकड़-जकड़ है और लिखाई में निर्बलता है। अजन्ता की उत्तराधिकारणी होने के कारण इस शैली में ह्रास के चिन्ह अपेक्षाकृति कम हैं। सम्भवत: यह शैली ही 'नाग शैली' है जिसका तारानाथ ने उल्लेख किया है।

चित्रों की रेखायें काले रंग से बनाई गयी हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि तूलिका के स्थान पर निब का प्रयोग किया गया है, क्योंकि रेखाओं में कोमलता नहीं है और मोटाई बराबर है। इन रेखाओं में प्रवाह तो है परन्तु मोटाई में क्रमिक उतार चढ़ाव नहीं है। आंखें बड़ी-बड़ी (कर्णस्पर्शी) हैं और वक्र रेखाओं से बनायी गयी हैं। आकृतियों के सर चपटे हैं। चित्र की आकृतियों में सजीवता और स्वच्छन्दता का अभाव हैं। इन दृष्टान्त चित्रों में अलंकारिकता का पर्याप्त समावेश है।

जैन शैली

श्वेताम्बर जैन धर्म की अनेक सचित्र पोथियाँ ११०० ई० से १५०० ई० के मध्य विशेष रूप से लिखी गयीं। इस प्रकार की पोथियों से भविष्य की कला-शैली की एक आधारशिला तैयार होने लगी थी, इस कारण इस कलाधारा का ऐतिहासिक महत्व है। इस शैली के नाम के सम्बन्ध में अनेक विवाद हैं और इस शैली को जैन शैली, गुजरात शैली, पश्चिमी भारत शैली (पश्चिमी भारतीय शैली) तथा अपभ्रंश शैली के नामों से पुकारा गया है।

जैन शैली का उपयुक्त नाम—डॉ० आनन्द कुमार स्वामी ने १९४२ ई० में 'बर्लिन म्युजियम' में सुरक्षित 'कल्पसूत्र' की एक सचित्र प्रति पाई। इस 'कल्पसूत्र' का परिचय प्रकाशित करके उन्होंने कला आलोचकों में गुजरात क्षेत्र से विकसित कला शैली के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न की। कालान्तर में उन्हें 'बालगोपाल-स्तुति', गीत-गोविन्द', 'रतिरहस्य' तथा 'दुर्गासप्तशती' आदि सचित्र ग्रन्थ प्राप्त हुए जो इस शैली के थे। यह ग्रन्थ ऐसे थे जिनका न तो गुजरात से कोई सम्बन्ध था और न जैन धर्म से ही कोई सम्बन्ध था। अत: डॉ० आनन्द कुमार स्वामी ने इस शैली का नाम लामा तारानाथ के द्वारा दिये गये नाम 'पश्चिम-भारत शैली' का समर्थन करते हुए इस शैली का नवीन नाम 'पश्चिम भारतीय शैली' माना।

स्व० नान्हलाल चमनलाल मेहता ने १९२४ ई० में गुजरात शैली के नाम से इस शैली का विवेचन 'रूपम्' नामक पत्रिका में प्रकाशित किया। स्व० मेहता के इस निबन्ध का आधार गुजरात में प्राप्त 'बसन्तविलास' की संस्कृत-गुजराती मिश्रित एक काव्य-पत्री थी। इस पट्टी (चित्रित पट) का लिपिकाल १४५१ ई० है। इस लम्बे पत्रीनुमा पट पर ७९ चित्र अंकित हैं. यह चित्र जैन धर्म से सम्बन्धित नहीं है। स्व० मेहता ने इन चित्रों को 'गुजरात शैली' के नाम से पुकारा। उन्होंने १९२६ ई० में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'स्टडीज इन इन्डियन पेन्टिंग' में इन चित्रों का उल्लेख दिया। उन्होंने इस सम्बन्ध में स्वतन्त्र रूप में एक अध्याय 'स्टडीज इन इन्डियन पेन्टिंग आफ गुजरात' लिखकर प्रमाणित विवरण प्रस्तुत किये। इस चित्रित-पट में काव्य के आधार पर बसन्त की शोभा को अत्यन्त सजीव ढंग से चित्रित किया गया है।

ग्यारहवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य पश्चिमी-भारत में जिन सचित्र ग्रन्थों को तैयार किया गया। उनका विषय यद्यपि जैनेत्तर भी था, परन्तु इन ग्रन्थों का मुख्य विषय जैन धर्म था, इसलिए इन ग्रन्थों के चित्रों की शैली का एक तीसरा नाम 'जैन शैली' प्रस्तुत किया गया। इस नाम से सहमत होकर परसी ब्राउन तथा अन्य लेखकों ने इसे इसी नाम से सम्बोधित किया है। इन चित्रों को यह नाम इस-लिए भी प्रदान किया गया, कि ये विश्वास किया जाता रहा है कि यह चित्र जैन साधुओं के द्वारा बनाये गये हैं।

कालान्तर में इस शैली के अनेक सचित्र ग्रन्थ, अहमदाबाद, तथा गुजरात के बाहर मारबाड़, मालव, पंजाब, तथा पूर्वी भारत में जौनपुर (उत्तर प्रदेश), अवध (उत्तर प्रदेश), बंगाल, उड़ीसा, नेपाल के अतिरिक्त ब्रह्मा (बरमा) तथा श्याम में भी प्राप्त हुए। इस शैली की जौनपुर में बनी 'कल्पसूत्र' की एक चित्रित प्रति सारा-भाई ने प्राप्त की। जौनपुर (उत्तर प्रदेश) उत्तर भारत के पूर्व में स्थित है, अतः जो शैली पूर्वी भारत तक प्रचलित थी उसको 'पश्चिम भारतीय शैली के नाम से पुकारना ठीक नहीं और तारानाथ या डा० कुमार स्वामी का मत उपयुक्त नहीं है। कल्पसूत्र की इस प्रति का समय १४६५ ई० है और इस प्रति के लिपिकार प० कर्णसिंह के पुत्र श्री देवीदास गौड़ कायस्थ हैं। गौड़ कायस्थों का निवास स्थान विशेष रूप से उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग, बंगाल तथा बिहार था। वे गौड़ कायस्थ जो उत्तर प्रदेश की ओर आ गये थे, अब पुनः मुसलमानों के आगमन से पूर्वी भारत की ओर चले गये। जैसे बंगाल के पाल वंश के राजा देवपाल के लेखक कायस्थ थे, ऐसा उल्लेख मिलता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यह शैली गुजरात या पश्चिम भारत तक ही सीमित नहीं रही और इसका प्रसार पूर्वी भारत तथा नेपाल में भी हुआ। इस प्रकार इस शैली के बारे में यह धारणा भी भ्रमपूर्ण सिद्ध हुई कि इसे एक सीमित क्षेत्र की कला मानकर 'पश्चिम भारतीय शैली' या 'गुजरात शैली' के नाम से पुकारा जाय। इसी प्रकार १९२९ ई० में श्री गांगुली ने 'बालगोपाल स्तुति' के वैष्णव-धर्म से

सम्बन्धित चित्रों की सूचना दी जो इस शैली के थे। इसी प्रकार 'बसन्तविलास' और 'चौरपंचाशिका' आदि पोथियों के चित्र भी जैनत्तर हैं। इस प्रकार यह शैली जैन धर्म के अतिरिक्त वैष्णव धर्म के ग्रन्थों या जैनत्तर ग्रन्थों में भी प्रयुक्त हुई अतः जैन शैली' नाम भी सार्थक सिद्ध नहीं होता। अतः इन सब कारणों को ध्यान में रखते हुए डा० मोती चन्द्र तथा राय कृष्णदास ने इस शैली को 'अपभ्रंश शैली के नाम से पुकारना अधिक उपयुक्त समझा है। उनका मत है कि यह शैली अपने निजत्व को खो चुकी थी और एक महान शैली (अजन्ता शैली) के विकृत रूप को प्राप्त थी, इस लिए शैली के लिए अपभ्रंश शब्द ही एक ऐसा शब्द है जिसके द्वारा तत्कालीन विकृति को प्राप्त शैलियों या परिवर्तनशील कला प्रवृतियों की अभिव्यंजना हो सकती है।

भारतीय साहित्य में यह काल प्राकृत भाषाओं की रचना का काल है इस काल में डिंगल तथा पिंगल लोक भाषाओं (ग्रामीण भाषाओं) में वीर काव्य की रचना की गई। इस काल को साहित्य में वीर गाथा काल, चारण काल या अपभ्रंश काल के नाम से पुकारा गया है क्योंकि इस काल में मूल संस्कृत भाषा में रचनायें नहीं की गई और कालिदास की शृंगार काव्य परम्परा का रूप ही मिट गया। युद्ध की हाहाकार में राजपूत योद्धाओं ने अपने सौम्य और शान्त रूप को त्याग कर मुसलमानों से देश को बचाने के लिये महाकाल का स्मरण किया और 'हरहर महादेव' का नारा लगाया। इन योद्धाओं ने केशरिया बाने पहन मुंड मालायें धारण की—कनपट्टी दाढ़ियां तथा शेर जैसे मूछे धारण कर अपने निजी देव-रूप से भ्रमित हो विकराल महाकाल रूप धारण किया और हर ओर प्राचीन मान्यतायें परम्परायें भ्रष्ट हो गई। यही पतन कला और साहित्य में हुआ अतः इस अपभ्रंश शब्द से इस कला की समस्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी परिलक्षित हो जाती है।

इस 'अपभ्रंश शैली' या ग्रामीण शैली या ग्राम्या शैली, या तथाकथित 'जैन-शैली', 'गुजराती शैली या पश्चिम भारतीय शैली' के तीनों रूपों में चित्र उपलब्ध हैं—(१) ताड़पत्रों पर बने पोथीचित्र, (२) कपड़े पर बने पट-चित्र (चित्रपट या चित्रित पट), (३) कागज पर बने पोथीचित्र या फुटकर चित्र। इस प्रकार के चित्र आज भारत, अमेरिका, नेपाल तथा ब्रिटेन के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। 'अपभ्रंश शैली' की सचित्र पोथियों की बड़ी संख्या जैन धर्म से सम्बधित है।

इस शैली का सविधान यदि देखा जाय तो यह शैली अजन्ता शैली का भ्रष्ट रूप प्रतीत होती है। यह शैली ह्रास को प्राप्त है और पूर्व विकसित कला परम्परा में अप्रगतिशील होने के कारण पहली दृष्टि में अजन्ता शैली से भिन्न लगती है। ये शैली अपनी मूल विशेषताओं को खो चुकी थी, इस कारण इस शैली का नाम 'अपभ्रंश शैली' उपयुक्त है। अपभ्रंश नाम के अन्तर्गत पाल-शैली, ऐलोरा के १०वीं तथा ११वीं शताब्दी के चित्र तथा जैन-शैली सब ही को रखा जा सकता है।

अपभ्रंश शैली के चित्र—इस शैली के चित्र बसन्तविलास(१४५१ई०),'बालगोपालस्तुति', 'गीतगोविन्द', दुर्गासप्तशती,' 'रतिरहस्य', कल्पसूत्र', आदि पोथियों

में प्राप्त है जिनका उल्लेख पहले दिया जा चुका है। 'कल्पसूत्र' की एक प्रति साराभाई मणिकलाल को जौनपुर में प्राप्त हुई थी। कल्पसूत्र की इस प्रति का लिपिकाल १४६५ ई० है। 'कल्पसूत्र' की दूसरी प्रति रॉयल एशियाटिक सोसायटी, बम्बई तथा तीसरी प्रति सेठ आणंद जी कल्याण जी के पास लोमड़ी में भी बताई जाती है। इसका लिपिकाल १४१५ ई० माना जाता है। 'कल्पसूत्र' की एक चौथी प्रति जौनपुर की है जो स्वर्णाक्षरों में तैयार की गई हैं और इस समय बड़ौदा के नरसिंह जी के पोल को ज्ञान मन्दिर में सुरक्षित है। 'कल्पसूत्र' की यह प्रति सबसे उत्तम प्रति मानी जाती है। यह प्रति १४६७ ई० में जौनपुर के बादशाह हुसेनशाह शर्की के शासन काल में तैयार की गई थी। 'कल्पसूत्र' की एक अन्य प्रति अहमदाबाद में मुनि दयाविजय के संग्रह में सुरक्षित है। यह प्रति पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में तैयार की गई है और स्वर्णाक्षरों में लिखी गई है।

मारवाड़ तथा गुजरात नवीं शताब्दी से ही कला के केन्द्र बन गये थे और इस शैली का यहाँ पर ही जन्म हुआ। १४५१ ईसवी की लिखी 'वसन्तविलास' की सचित्र काव्य-पत्री (चित्रित पट), जिसका पहले उल्लेख किया जा चुका है, स्व० मेहता को १९२४ ई० में अहमदाबाद में प्राप्त हुई। यह चित्रपट गुजरात के शासक अहमद शाह कुतबउद्दीन के समय का है। 'बसन्तविलास' की यह प्रति जन्मपत्रीनुमा या कुन्डलीनुमा लम्बे कपड़े पर लिखी गई पट्टी है।[1] इस पट्टी की लम्बाई ४३६ इंच तथा चौड़ाई ९$\frac{1}{8}$ इन्च है और इस पत्री के बाई ओर एक इन्च चौड़ा हाशिया है और दाहिनी ओर ३/४ इन्च चौड़ा हासिया है। 'बसन्तविलास' में बसन्तागमन और विशेष रूप से फाल्गुन का वर्णन है। इस काव्य-कथा में एक पति और पत्नी का प्रेम प्रसंग अंकित है जो कालिदास की महान काव्य रचना 'ऋतुसंहार' पर आधारित है। इस लम्बी कपड़े की पट्टी या पत्री पर लिखाई के साथ-साथ चित्र भी बनाये गये है। चित्रों में मानवाकृतियों की लिखाई में शक्तिशाली रेखा का प्रयोग है। इन चित्रों में चित्रकार ने वर्णनात्मक शैली अपनाई है और चित्रों की रंग योजना सरल है। लाल, पीले तथा नीले रंग का प्रयोग है, पृष्ठभूमि साधारणतया पीली है। स्त्रियों की साड़ी पहने बनाया गया है और उनकी चोली में कोहनी तक अस्तीने हैं। यह चोली नाभि या कमर तक उनके शरीर को ढके रहती है। 'बसन्तविलास' की प्रति मुसलमान शासकों के समय में गुजरात में लिखी गई। सप्रति यह पट्टी, 'फ्रायर आर्ट गेलरी'-वाशिंगटन में सुरक्षित है। इस समय की भवन कला पर मुसलमानी प्रभाव पड़ने लगा था, और जौनपुर में हिन्दू तथा मुसलमान कला के सम्मिश्रण से सुन्दर भवन बनाये गये किन्तु इस चित्रावली पर मुसलमानी प्रभाव नहीं है। सम्भवतः इस समय तक इस्लाम धर्म के सांस्कृतिक केन्द्र ईरान की कलाकृतियों (चित्रों) को एशिया में प्रसिद्धि तथा मान्यता प्राप्त नहीं हुई थी।

---

1. 'स्टडीज इन इन्डियन पेंटिंग—लेखक एन० सी० मेहता, पृष्ठ १६।

श्वेताम्बर जैन धर्म से सम्बन्धित ताड़पत्रीय पोथियों में 'निशीथचूर्णी', 'अंगसूत्र', 'दशवैकालिक लघुवृत्ति', त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित', 'नेमिनाथचरित', 'कथासरितसागर', 'संग्रहणीयसूत्र', 'उत्तराध्यनसूत्र', श्रावकप्रतिक्रमणचुर्णी, तथा 'कल्पसूत्र' है। इन सचित्र पोथियों का लिपिकाल १००० ई० से १५०० ई० के मध्य माना जाता है। यह पोथियाँ भारत में आज पटना, बड़ौदा, खंभात, अहमदाबाद तथा जैसलमेर के निजी पुस्तकालयों या अमेरिका के बोस्टन स्थित संग्राहलयों में प्राप्त हैं।

पाटन के ग्रन्थ-भण्डार में 'निशीथचूर्णी' की एक प्रति सुरक्षित है जिसका लिपिकाल ११०० ई० है। इसमें अपभ्रंश कला के उदाहरण प्राप्त होते हैं। अंगसूत्र की तीन सचित्र प्रतियाँ तथा 'दशवैकालिक' लघुवृत्ति की एक सचित्र प्रति शान्तिनाथ भंडार खम्भात के संरक्षण में है। 'दशवैकालिक' की यह प्रति ११४३ ई० की है। बड़ौदा के समीप एक जैन पुस्तक भण्डार में ११६१ ई० के सात ग्रन्थ प्राप्त है। इन ग्रन्थों में सुन्दर चित्र बने हुये हैं जिनमें सोलह विद्यादेवियों-सरस्वती, लक्ष्मी, आम्बिका चक्र देवी आदि के चित्र हैं। शान्तिनाथ भंडार में १२४१ ईसवी की 'नेमिनाथ चरित की भी एक सचित्र प्रति सुरक्षित है। इन उदाहरणों के अतिरिक्त कथा रत्नसागर' की प्रति में भी चित्र प्राप्त हुये है। बोस्टन संग्रहालय में सुरक्षित १३६० ई० की लिखी 'श्रावक प्रतिक्रमण चूर्णी की प्रति से भी चित्रकला का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है। पाटन के शान्तिनाथ भंडार में १४३३ ईसवी का कपड़े पर चित्रित एक चित्रपट था जो 'पंचतीर्थपट' के नाम से विख्यात था परन्तु अब यह चित्र अप्राप्य है। इसकी एक अनुकृति 'इन्डियन आर्ट एन्ड लेटर्स' में १९३२ ईसवी में प्रकाशित हुई है।[1]

बोस्टन संग्रहालय तथा गुजरात के श्री भोगीलाल जी के संग्रह में कागज पर लिखी हुई 'बालगोपाल स्तुति' और बड़ौदा के मंजुलाल मजूमदार के निजी पुस्तकालय में दुर्गासप्तशती' की पोथियाँ महत्ववान् हैं। जोधपुर के किसी पुस्तकालय में 'पाण्डवचरित' नामक ग्रन्थ की पन्द्रहवीं शताब्दी की लिखी गई एक प्रति बताई जाती है। इस शैली में जहाँ 'मार्कण्डेय पुराण' तथा 'दुर्गासप्तशती' जैसे वैष्णव ग्रन्थों का निर्माण किया गया, वहाँ 'रतिरहस्य' और 'कामसूत्र' पर आधारित कामशास्त्र से सम्बन्धित चित्र बनाये गये।

अपभ्रंश शैली के चित्रों की विशेषतायें - इस शैली में पूर्ववर्ती शैलियों की तुलना में ह्रास और निर्बलता के चिन्ह अधिक हैं। कदाचित इस निर्बलता का कारण यह भी हो सकता है कि यह चित्रित जैन पोथियाँ धर्म अनुयायियों द्वारा जनता में बाँटी जाती थीं। इस कारण इन पोथियों की अत्याधिक माँग थी जिसको पूरा करने के लिये जैन मुनि या आचार्य, चित्रकार तथा लिपिक शीघ्रता से कार्य करते थे और पोथियाँ लिखते थे। इस शीघ्रता के कारण यह आशा नहीं की जा सकती

---

1. इन्डियन आर्ट एन्ड लेटर्स'। १९३२ ई० पृष्ठ ७१-७८ तक।

कि चित्र लिखाई की सावधानी, कारीगरी और वक्रीय रेखांकन की पूर्णता को प्राप्त कर पाते। चित्र की लिखाई में जल्दबाजी होने के कारण कमजोरी और कठोरता आ गई है और आकृतियों की लिखाई में सुमधुर गोलाई के स्थान पर तीक्षण कोणात्मकता का प्रयोग किया गया है।

इन चित्रों में मानव आकृतियों के चेहरे सवाचश्म हैं और एक ही ढंग के बने हैं। नाक अनुपात से अधिक लम्बी और नुकीली बनाई गई है जो परले गाल की सीमा रेखा से आगे निकल गई है। चेहरे सवाचश्म और एक ही आकार-प्रकार (कँडे) के बनाये गये हैं। चिबुक आम की गठली के समान चपटी और छोटी है, आँखें पास-पास और बड़ी-बड़ी बनाई गई हैं और उनकी रचना दो वक्रों के द्वारा की गई है। पुतली बनाने के लिए इन वक्रों के मध्य एक बिन्दी लगा दी गई है जो अनुपात रहित और गोलाई रहित है। नेत्र चेहरे की सीमारेखा से बहार निकले बनाये गये है। पुतली की बनावट तथा नेत्रों के सीमा रेखा से बाहर निकले रहने के कारण आँखों में उग्रता का भाव है और बाहर निकली दिखाई पड़ती है। उंगलियों का रेखांकन कठोर, निर्बल और अत्याधिक अलंकारिक तथा रूढ़िबद्ध है। पेट का भाग बहुत बड़ा बनाया गया है और छाती उभरी हुई बनाई गयी है। पशु-पक्षी तथा मानव आकृतियाँ रुई के गुड्डों या गुजरात की कठ-पुतलियों के समान प्रतीत होती है।[1] बादल रुई के ढेर के समान दिखाई पड़ते हैं। चित्रों में अनेक आकृतियों की रेखायें काले रंग से की गई हैं। आकृतियों में गोलाई लाने के लिये छाया का प्रयोग किया गया है। यह छाया बारीक काली रेखाओं में लगाई गई है। कुछ विद्वानों का विचार है कि यह रेखायें निब से बनाई गयी हैं। परन्तु वास्तव में रेखायें तूलिका से ही बनाई गयी हैं। कलाकार के हाथ में निर्बलता और कठोरता आ जाने के कारण रेखा में बारीकी और क्रमिक मोटापन तथा पतलापन नहीं है। यह रेखायें बराबर मोटाई की बनाई गयी हैं। इसी कारण रेखाओं से निब का भ्रम होता है। इन रेखाओं की अकुशलता का किसी सीमा तक एक कारण यह भी हो सकता है कि यह चित्र भारतवर्ष की भित्तिचित्रण पद्धति पर कार्य

---

1. टिप्पणी—डॉ० मोतीचन्द्र ने कलानिधि (अंक १, वर्ष १, २००५ वि०) में अपभ्रंश शैली की बारह विशेषतायें इस प्रकार बतायी हैं—

(१) खाली जगह में निकली आंख, (२) परवल के आकार की आंखें और स्त्रियों के कर्णस्पर्शी नेत्रों के काजल की कान तक गयी रेखा (३) नोकीली नाक, (४) दोहरी ठुड्डी, (५) मुड़े हुए हाथ तथा ऐंठी उंगलियाँ, (६) उभरी हुई छाती, (७) खिलौने जैसी पशु-पक्षी, (८) कमजोर लिखाई, (९) प्राकृतिक दृश्यों की कमी, (१०) धरातल पर अनेक दृश्यों का अंकन, (११) १५वीं शताब्दी के अन्तिम चरण से १६वीं शताब्दी तक हाथियों का अलंकरण, (१२) चटकदार रंगों तथा सोने का प्रयोग।

करने वाले कलाकार ही बना रहे थे। भित्ति पर चित्रकार को बड़े चित्र बनाने में रेखा की पूर्णता दिखाने में अपनी योग्यता दिखाने का अधिक अवसर था परन्तु जब भित्ति चित्रण परम्परा के चित्रकारों के हाथ में लघु चित्र का कार्य आया तो वह रेखा को अत्यधिक बारीक नहीं बना सके और उनकी रेखा तालपत्रीय या कागजी लघु-चित्रों के अनुकूल नहीं बन सकी। कुछ लेखकों ने इन पोथी चित्रों को जैन साधुओं के द्वारा बनाया हुआ माना है परन्तु यह बात संगत नहीं। वास्तव में यह चित्र अधिकांश साधारण व्यवसायी चित्रकारों के द्वारा बनाये जाते थे, जिनको पारिश्रमिक बहुत कम मिलता था। इस प्रकार के दो चित्रकारों के आज नाम भी प्राप्त होते हैं जिससे प्रतीत होता है कि यह चित्र साधुओं ने नहीं बनाये।

अपभ्रंश शैली के चित्रों में अधिकांश चमकदार उष्ण रंगों का प्रयोग है। पृष्ठभूमि में बहुधा लाल रंग का सपाट प्रयोग किया गया है और फाख्तई, पीले, श्वेत, नीले रंगों का समावेश किया गया है। तीर्थंकरों के अनेक रूपों में भिन्न प्रकार के रंगों का प्रयोग है। महावीर की आकृति में पीला, पार्श्व नाथ की आकृति में नीला; नेमीनाथ की आकृति में काला और ऋषभनाथ की आकृति में स्वर्णिम वर्ण का प्रयोग है।

अपभ्रंश शैली में प्राकृतिक रूपों को भुला दिया गया है अतः स्वाभाविकता नष्ट हो गई है। प्रत्येक आकृति का रूढ़ि के आधार पर निर्माण किया गया है अतः चित्र निर्जीव तथा भद्दे हैं।

उत्तर-मध्यकाल के भित्तिचित्र

विजयालय चोलेश्वर मन्दिर—प्राचीन पद्दूकोटई राज्य के नृतमाली नामक स्थान में विजयालय-चोलेश्वर मन्दिर, जो चोल-काल की प्रसिद्ध कलानिधि है, में कुछ सजीव और आकर्षक स्त्री आकृतियों के चित्र भित्तियों पर अंकित किये गये हैं। यह आकृतियाँ मन्दिर की दक्षिणी दीवार पर आज भी सुरक्षित हैं, जिनका समय बारहवीं शताब्दी अनुमानित है। यहाँ पर गन्धर्वराज, नृत्य करती हुई काली, दुर्गा और मुण्डों की माला लिए भैरव की आकृतियाँ भी चित्रित की गई हैं। यहाँ पर उत्तर की ओर भित्ति पर दो विशाल चित्र हैं जिनमें शिव को नटराज के रूप में चित्रित किया गया है। इन चित्रों का रेखांकन सतर्कता से किया गया है, परन्तु इन चित्रों के रंग धुंधले और सपाट हैं और पन्द्रहवीं शताब्दी से पूर्व के नहीं हैं।

तिरपतिकुरम— तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दी में तिरपतिकुरम (जिनकांची) में निर्मित वर्धमान मन्दिर के संगीत मंडप पर चित्र बनाए गये थे, जो आज भी वर्तमान हैं। इसी प्रकार अनेगुडी के उच्चयप्पा मठ में अंकित भित्तिचित्र दक्षिण की चित्रकला के उत्तम उदाहरण हैं। इस संगीत मंडप को बुक्काराय द्वितीय के मंत्री एवं सेनापति इरूगप्पा ने १३४७-८८ ई० में बनवाया था। उच्चयप्पा मठ का निर्माण

अनुमानतः देवराज ने कराया था। इन मठों की भित्तचित्रकारी की शैली को विजय-नगर शैली के अन्तर्गत रखा गया।

लेपाक्षी—१३३६ ई० में हरिहर तथा बुक्काराय ने तुंगभद्रा नदी के दक्षिणी किनारे पर विजयनगर राज्य की स्थापना की थी। राजा आचुत्यादेव के समय (१५-३०-१५४२ ई०) तक विशाल मन्दिर लेपाक्षी में बनवाए गये। अब लेपाक्षी अनन्तपुर जिले का एक छोटा सा ग्राम है। इस मन्दिर में मुख्य मंडप तथा प्रवेश-मंडप में भित्तिचित्रों की एक विशाल चित्रमाला सुरक्षित है। लेपाक्षी के मन्दिरों के निर्माण का समय अनुमानतः १५४० ई० है। इन चित्रों के बड़े-बड़े खण्ड नष्ट हो चुके हैं। यह चित्र शैव धर्म से सम्बन्धित बताए जाते हैं।

एलोरा बेरूल- ऐलोरा की चित्रकारी का उल्लेख पहले दिया जा चुका है। ऐलोरा के कैलाशनाथ मन्दिर तथा जैन मन्दिरों की भित्तिचित्रकारी से मध्यकाल की भित्तिचित्रण कला तथा लघुचित्रण कला (पोथी चित्रों) का आरम्भ होता प्रतीत होता है। अधिकांश इस समय के भवनों में भव्यशिल्प सज्जा के कारण भित्तिचित्रों को प्रोत्साहन न प्राप्त हुआ। अतः गुजरात में भित्तिचित्रण परम्परा का ह्रास होने लगा।

ग्यारहवीं शताब्दी वाले भान् के पादताडितकम नामक प्रहसन के एक अंश में सयामीला का एक प्रसंग जिसमें एक विदूषक प्रद्युम्न के एक भवन का चित्रण होता देखता है और इस प्रकार व्यंग करता है—"लाटदेश (गुजरात) के चित्रकारों इन डिंडियों और बानरों में विशेष अन्तर नहीं। ये कूंची और मसि की मल लिये इधर उधर घूमा करते हैं और भित्तियों तथा उन पर अंकित चित्रों को चील-बिलार खींच कर नष्ट करते रहते हैं।"[1] सोलंकी वंशीय कुमार पाल (११४३-११७४ ई०) के द्वारा बनवाये मन्दिरों में भित्तिचित्रों के अवशेष रह गये हैं। १४३२ ई० में बीदर दुर्ग के रंगमहल के तीन कक्षों की भित्तियों पर चित्र बनाए गए थे जो अब नष्ट हो गये हैं।

चित्रकला का पुनरुत्थान—पन्द्रहवीं शताब्दी में चित्रकला का जागरण सा होता दिखाई पड़ता है। हिन्दू संस्कृति और धर्म के क्षेत्र में पुनः एक जागृति की लहर दौड़ रही थी। चित्रकला भी इस लहर से अछूती नहीं रही। चित्रकला का उत्थान महाराणा कुम्भा के राज्यकाल में होता दिखाई पड़ता है। महाराणा कुम्भा ने अपने भवन को चित्रित कराया इसी प्रकार गदाशाह के भवन में भी उनके और उनकी पत्नी के चित्र अंकित किये गए।

गुजरात का शासक महमूद शाह बेगड़ा, जिसका राज्यकाल १४५९ ई० से १५११ ई० तक है, एक कला प्रेमी शासक था। उसने समस्त कलाओं को आश्रय

1. 'भारत की चित्रकला'—ले० राय कृष्णदास, पृष्ठ ३९।

तथा प्रोत्साहन प्रदान किया। उसने पुर्तगालियों से युद्ध किया परन्तु पुर्तगालियों के समुद्री बेड़े के सामने युद्ध में वह सफल न हो सका। १५३१ ई० में उसके वंशज उत्तराधिकारी बहादुरशाह ने मालव ने जीत लिया और तीन वर्ष पश्चात् उसने मेवाड़ के राणा से चित्तौड़ भी छीन लिया परन्तु गुजरात पर १५७३ ई० में मुगल सम्राट अकबर का शासन हो गया और १५६४ ई० में अकबर ने मालवा भी अपने राज्य में मिला लिया। महमूद शाह बेगड़ा कलाकारों का आश्रयदाता था। उसने अपनी राजधानी मांडू को कलाकारों का केन्द्र बनाया और उसने अपने मित्र राज्य काशमीर से चित्रकार बुलाये। काशमीर में उस समय परम दयालु सुल्तान जैनुल-आबिदीन (१४२०-७० ई०) की उदारता के कारण चित्रकला की विशेष उन्नति हो रही थी। यह काशमीर शैली अजन्ता शैली की विशेषताओं से पूर्ण थी। सम्भव हो सकता है कि महाराणा कुम्भा ने भी काशमीर से ही चित्रकारों को बुलाया हो। तारानाथ के उल्लेख में पहले बताया जा चुका है कि काशमीर में मध्य भारत की चित्रकला पहुंच चुकी थी।[1] गुजरात तथा काशमीर के मैत्री सम्बन्ध के कारण अवश्य ही कलाकार इधर उधर आते-जाते रहे होंगे। इसके अतिरिक्त मांडू के सुल्तान 'गयासुद्दीन खिलजी' के लिये प्रस्तुत की गई 'नयामत नामा' पुस्तक के कुछ चित्रित पृष्ठ प्राप्त हुये हैं। इन चित्रों में कुछ ईरानी प्रभाव का आभास प्रतीत होता है जिसके फलस्वरूप चित्रों में अपभ्रंश शैली के सवाचश्म चेहरों के स्थान पर एक-चश्मी चेहरे आए हैं। वास्तव में यहीं से राजस्थानी चित्रकला अनेक क्षेत्रों में परिवर्तनशील होकर पुनरुत्थान को प्राप्त होने लगी और अप्रगतिशील चित्रकला प्रगतिशील बनकर अपना निजत्व धारण करने लगी।

राजस्थानी शैलियों का उदय—

रागमाला चित्र तथा कृष्णलीला के स्तुति चित्र इसी समय में बनाये गये। इस प्रकार राजस्थानी शैली पन्द्रहवीं शताब्दी से आरम्भ होती प्रतीत होती है, क्योंकि बोस्टन संग्रहालय वाली 'स्तुति-चित्रावली' में एकचश्म चेहरे का प्रयोग है, साथ ही खुली हुई चोलियां बनाई गई हैं जो समसामयिक राजस्थानी ढंग की चोलियों के समान हैं। यह परिवर्तन इन बात का प्रमाण है कि इस समय से चित्रकला पुनः नवीन प्रवृतियां समसामयिक प्रभाव और विकासोन्मुखी चिन्हों के साथ उदित हुई। सोहलवीं शताब्दी के आते-आते हमको हित हरवंश, नानक, बल्लभाचार्य कबीर, आदि की मुखाकृति छवियाँ प्राप्त होने लगती हैं। यह छवियां प्राचीन मुखाकृतियाँ चित्रों पर आधारित हो सकती हैं। इससे स्पष्ट हैं कि किसी ऐसी शैली का विकास निश्चित

1. टिप्पणी—विन्सेंट स्मिथ ने इसी बात को स्पष्ट करते हुये लिखा है। कि महाराज ललितादित्य ने ७४० ई० में कन्नौज पर विजय प्राप्त की थी। इसी विजय के समय वह मध्य देश से कुछ चित्रकारों को अपने साथ ले गया। इस प्रकार ७वीं शताब्दी में मध्य देशीय कला पहुंच गई थी।

रूप से पहले ही हो चुका था जिसमें मुखाकृति या व्यक्ति चित्रण की शक्ति थी। जैन, गुजराती या तथाकथित अपभ्रंश शैली की निर्बलता, रेखांकन की निश्चित परम्परा और आकृति के नख-शिख चित्रण की अकुशलता के कारण इस प्रकार की उत्तम छवियों की आशा नहीं की जा सकती थी। अतः यह सोचना सम्भव है कि काश्मीर कला के प्रभाव से अपभ्रंश शैली एक भिन्न रूप धारण कर गई। १५६२ ई० का बना रानी रूपमती का राजस्थानी शैली का चित्र इस बात का प्रमाण है कि यह शैली पूर्णतया स्वस्थ हो चुकी थी।

'कल्पसूत्र' की प्रति के रागनियों वाले चित्रों में जो पौने दो चश्म और डेढ़ चश्म चेहरे आए हैं उनमें भी राजस्थानी प्रभाव है। वास्तव में यह पुनरुत्थान गुजरात और दक्षिणी राजस्थान या मेवाड़ में हुआ प्रतीत होता है। अकबर के समय में गुजरात कलाकारों का केन्द्र था और अकबर की गुजरात विजय के पश्चात कई कलाकार अकबर की चित्रशाला में पहुंच गये थे। अकबर की चित्रशाला में अनुमानतः छः चित्रकार गुजराती थे। इस प्रकार प्राचीन अपभ्रंश शैली काश्मीर तथा मेवाड़ की शैली से प्रभावित हुई और शीघ्र एक निजी रूप धारण कर गई जो राजस्थानी शैली थी। परन्तु इस शैली के आरम्भिक उदाहरण बहुत कम प्राप्त हुए हैं। इस शैली के अधिकांश उदाहरण अकबर के काल या कुछ बाद के हैं, जिनमें बहुत कुछ मुगल प्रभाव भी है। राजस्थानी शैली के अधिकांश उत्तम उदाहरण अठारहवीं शताब्दी के हैं। राजस्थानी या राजपूत राज्यों की चित्रकला के अध्ययन से पूर्व मुगल कला का अध्ययन आवश्यक है क्योंकि मुगलों का उत्तरी भारत के एक विशाल क्षेत्र पर शासन स्थापित हो गया और मुगलों ने भारतीय संस्कृति पर गहरा प्रभाव डाला।

★

मुगलकाल की चित्रकला

५

मुगलकाल की चित्रकला

(१५५० ई० से १८५७ ई० तक)

आदि स्रोत— ईरानी फारसी मुगल कला का आदि स्रोत या जन्म स्थान समरकन्द और हिरात था। पन्द्रहवीं शताब्दी में तैमूर वंश के संरक्षण मे फारस की कला उत्कर्ष को प्राप्त हुई। तैमूर का भारतवर्ष से सम्बन्ध, साधारणतया कला की दृष्टि से नहीं माना जाता है, बल्कि संहारक के रूप मे माना जाता है। उसने भारतवर्ष पर १३९८ ई० में आक्रमण किया और लूटमार, विध्वस तथा बर्बरता का प्रदर्शन किया। तैमूर के तातार सैनिकों ने लूटमार की और उन्होंने भवनों को गिरा दिया तथा स्थान-स्थान पर आग लगाई गई और अत्याचार किये गये। परन्तु दूसरी ओर देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि तैमूर वंश बर्बर न था, उसमे पूर्णता सभ्य और कलाप्रिय शासकों का जन्म हुआ। इस वंश के समान फारस मे अन्य कोई ऐसा सभ्य और सुसंस्कृत वंश नहीं हुआ। इस वंश के शासकों ने चित्रकला को विशेष प्रोत्साहन प्रदान किया और एक दरबारी चित्रकला का विकास हुआ।

महान संहारक और विजेता तैमूर का पुत्र शाहरुख स्वयं एक कवि था और उसने अपने दरबार में कवियों और चित्रकारों को आश्रय प्रदान किया। उसने एक राजदूत-संघ चीन भेजा। इस दूतसंघ में एक चित्रकार भी था।

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में खुरासा के सुल्तान हुसैन के संरक्षण में बिहजाद जैसा नामी चित्रकार था। बिहजाद ईरानी शैली का अपने समय का सबसे उत्तम चित्रकार था इसी कारण बिहजाद को 'पूर्व का रैफेल' कह कर पुकारा गया है।[1]

1. 'इन्डियन पेन्टिङ्ग'—ले० पारसी ब्राउन, पृष्ठ ४८।
   'Bihzad the greatest artist of the time, who has been called the Raphael of East.'

बिहजाद पहले तैमूर वंशीय सुल्तान हुसैन बेगरा (मिर्जा) का दरबारी चित्रकार था, परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् सुल्तान शाह इस्माईल के संरक्षण में चला गया। बाबर ने भी आगे चलकर 'बाबर नामा' या अपनी आत्मकथा में उसका वर्णन दिया है। बाबर के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि सम्राट बाबर ने बिहजाद के चित्रों का अध्ययन किया था। बिहजाद स्कूल के उत्तराधिकारियों ने उसकी ईरानी शैली को अधिक उन्नत किया और फारस के विभिन्न शासकों ने चित्रकला तथा चित्रकारी को संरक्षण प्रदान किया। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि फारस में सोलहवी शदाब्दी तक एक उच्च फारस ईरानी कला शैली विकसित हो चुकी थी जो मुगल शासकों के साथ भारतवर्ष में आई। अब हमें यह देखना है कि भारत में यह फारस-ईरानी कला शैली किस प्रकार आई और उसका भारतीय एवं मौलिक मुगल रूप किस प्रकार निखरा।

ईरानी शैली—मुसलमान धर्म के उदय के साथ ईरान में जो कला-शैली प्रचलित हुई उसमें प्राचीन भारतीय चित्रकला की गहरी छाप थी। इस्लाम में मानव आकृतियां या जीवधारियों की आकृतियां चित्रित करना धर्म निषिद्ध था अतः इस्लामी चित्रकला में आलंकारिक आलेखनों या ज्यामितिय तरहों का रूप निखर कर आया। प्रारम्भ में इस्लामी चित्रकार जीवधारियों की आकृतियों के चित्रण के प्रति उदासीन रहे परन्तु शनैः-शनैः धार्मिक कट्टरता शिथिल पड़ने लगी और पुष्प पत्तियों, पशु-पक्षियों तथा मानवाकृतियों का भी अकन प्रचलित हो गया।

तैमूर का पुत्र शाहरुख महान कला प्रेमी हुआ। उसने हिरात नगर को राजधानी बनाया और हिरात कला का केन्द्र बन गया। १५वीं शदी के उत्तराध में इस हिरात कलम या शैली का प्रसिद्ध चित्रकार बिहजाद हुआ। इस ईरानी या हिरात शैली का बिहजाद तथा उसके शिष्यों ने विकास किया। यह शैली भारत में बाबर तथा हुमायूं के काल में पहुंची।

ईरानी कला की विशेषतायें

१. रेखांकन—ईरानी कला पर अजन्ता की भारतीय रेखांकन शैली तथा चीनी कला की छाप पड़ चुकी थी। दूसरी ओर इस शैली पर इस्लामी सूक्ष्म नक्काशी की कला का प्रभाव भी था। ईरानी शैली रेखा पर आधारित थी। इस शैली में रेखाएं भारतीय गोलाई-युक्त नहीं हैं बल्कि सपाटेदार कोण-युक्त हैं। ईरानी कला में बारीक रेखाओं का प्रयोग है।

२. आलंकारिक विधान—ईरानी शैली के चित्रों में भावाभिव्यक्ति की अपेक्षा आलंकारिकता अधिक हैं। वस्त्रों की बनावट तथा फहरान में यथार्थता नहीं है अपितु आलंकारिक सौन्दर्य है। चित्रों में ईरानी वृक्षों के आलंकारिक योजना में प्रस्तुत किया गया है। प्रकृति में घुमावदार रेखाओं द्वारा चित्रित किया गया है।

३. वर्णन विधान—ईरानी चित्रों में सपाट रंग लगाये गये हैं। ईरानी चित्रकार आकृति को उभारने, और गोलाई प्रदान करने के लिये छाया प्रकाश का प्रयोग

नहीं करते थे और केवल सपाट रेखांकन का प्रयोग ही करते थे। रंग अत्यधिक चटकीले तथा अमिश्रित होते थे। पृष्ठभूमि अधिकांश हल्के रंग से रंगी जाती थी।

४. कोमलता—ईरानी शैली में मानवाकृतियां बड़ी कोमल या नाजुक बनाई गई हैं आकृतियों की गरदन पतली लम्बी सुराई-नुमा ही चित्रित की गई है और लम्बी, पतली लचकदार बाहों वाली स्त्रियां अंकित की गयी हैं। ईरानी चित्रों में में स्त्री की कोमलता की उपमा लता के रूप में दर्शायी गयी है और पुरुष की उपमा प्राय: 'सरों' के वृक्ष से दर्शायी गई है।

५. उद्यान चित्रण—ईरानी चित्रों में उद्यान के चित्रण की सुमधुर कल्पना दिखाई पड़ती है।

६. ज्यामितीय योजना—ईरानी चित्रों में प्रकृति तथा मानवकृतियों तथा भवन आदि के चित्रण में यथार्थता नहीं है अपितु ज्यामितीय योजना को अपनाया गया है।

७. हाशिये—ईरानी चित्रों के चारों ओर हाशिये बनाने की प्रथा प्रचलित थी। चित्रों के हाशिये आलंकारिक अभिप्रायों, आखेट-दृश्यों, पशु-पक्षियों तथा पुष्प पत्तियों से अलंकृत किये गये हैं। इन हाशियों में सुनहरी रंग का प्रयोग मनोरम है।

८. भवन—ईरानी चित्रों में मेहरावदार, जालियों युक्त तथा फूलपत्तों की नक्काशी के काम से अलंकृत भवन बनाये गये हैं। भवनों की दीवारों में एक-एक ईंट तथा पच्चीकारी आदि को बड़ी बारीकी से दर्शाया गया है। इन भवनों में नीले, हरे एवं श्वेत आदि शीतल वर्णों का अधिक प्रयोग है। आकृतियों को इन भवनों में उभारने के लिये प्राय: इनके वस्त्रादि गहरे रंग से रंगे जाते थे और पृष्ठभूमि हल्के रंग से रंगी जाती थी।

९. आकृतियां—ईरानी शैली मानवाकृतियों के चेहरे प्राय: गोल तथा पौने दो चश्म बनाये गये हैं, जिनमें छोटी आंखें, पतली लम्बी नाक तथा पीले अधर वाले छोटे मुख-विवर का चित्रण किया गया है। चेहरे गोलाई युक्त हैं और उनमें गठनशीलता का अभाव है अत: फूले-फले कपोल तथा गोल चिबुक दिखाई पड़ती है। चेहरे एक ही वक्राकार से बनाये हैं।

१०. वस्त्र- ईरानी शैली में आकृतियों को प्राय: लम्बा लबदा या चोगा, पगड़ी तथा कुल्हेदार साफा पहने हुये चित्रित किया है।

११. आकृति भेद—स्त्री तथा पुरुष आकृतियों में रूप का अन्तर दर्शाने के लिये केशविन्यास, बालों तथा दाड़ी-मूछों आदि से पृथकता दर्शाई गयी है अन्यथा उनकी शारीरिक रचना में भेद नहीं दर्शाया गया है।

१२. लेख—ईरानी शैली के चित्रों में चित्रकारों के नाम तथा चित्र के विषय से सम्बन्धित विवरण तथा कविता आदि भी लेखांकित कर दी जाती थी। यह लेख चित्रित आकाश में या अन्य किसी भाग में एक आयताकार सफेद पट्टी बनाकर उसके ऊपर अंकित कर दिये जाते थे।

१३. संयोजन ईरानी चित्रों में सरल वर्णात्मक शैली के संयोजन लिखे गये हैं। प्राकृतिक दृश्यों में दो स्थलों के पृथक करने के लिए नालियां, क्यारियां तथा टीले या चट्टानें अंकित की गयी हैं और भवनों के अनेक भागों को दीवारों से विभाजित करके दर्शाया गया है।

१४. प्रकृति—प्रकृति को स्वतन्त्र रूप से चित्रित नहीं किया गया है। प्रकृति को पृष्ठभूमि में आलंकारिक रूप में चित्रित किया गया है।

बाबर तथा हुमायुं के काल में वह ईरानी-शैली अपने मूल या अपरिवर्तित रूप में प्रचलित थी। अकबर के शासन काल में इस शैली से एक ,नवीन कला शैली का जन्म हुआ जिसे 'मुगल-कला कहते हैं।

भारतवर्ष में मुगलों का प्रवेश—सर्वप्रथम बाबर भारतवर्ष में मुगल साम्राज्य के संस्थापक के रूप में आया। उसने अपनी सैन्य कुशलता तथा तोपखाने के कारण भारतवर्ष की शासन सत्ता को अपने हाथ में ले लिया। बाबर का नाम जहीरउद्दीन मोहम्मद था और उसके पिता का नाम उमरशेख था। उमरशेख फरगना प्रान्त का शासक था। बाबर ग्यारह वर्ष की आयु पर पैतृक रूप से इस छोटे से फरगना राज्य का उत्तराधिकारी बना। जब वह १५११ ई० में २८ वर्ष का हुआ तो उसको समरकन्द का यह राज्य छोड़कर भागना पड़ा परन्तु इससे सात वर्ष पूर्व ही वह काबुल पर अधिकार स्थापित कर चुका था। १५०५ ई० में बाबर ने गजनी पर भी अधिकार स्थापित कर लिया था और उसने सिन्धु पर हमला किया परन्तु १५१६ ई० तक वह सिन्धु को पार न कर सका। १५२४ ई० में दौलत खां और आलम खां, जो दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी के चाचा थे, ने बाबर को लाहौर पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया, परन्तु उसको इस बार पुनसंङ्गठन के लिए काबुल लौटना पड़ा और १५२५ ईसवी में ही बाबर को सफलता प्राप्त हो सकी। पानीपत के महान् युद्ध के पश्चात् बाबर को अप्रैल मास में १५२६ ईसवी में विजय प्राप्त हुई और वह दिल्ली का शासक बन गया। इस प्रकार बाबर के द्वारा ही भारत में मुगल साम्राज्य की नींव पड़ी और इस वंश की मुगल संस्कृति तथा सभ्यता का भारत में सूत्रपात हुआ। बाबर पैतृक सम्बन्ध में तैमूर से और मातृ सम्बन्ध में चंगेज वंश से सम्बन्धित था। बाबर की माता-मही चंगेज वंशीय मंगोल जाति की महिला थी, इस वंश का नाम इस महिला के मंगोल वंशीय होने के कारण ही, इस महिला के नाम पर, 'मुगल-वंश' पड़ा।

मुगलों का कला प्रेम—मुगल शासकों ने भारतवर्ष में राज्य विस्तार के साथ ही सुव्यवस्था स्थापित की और देश में शान्ति तथा समृद्धि बढ़ने लगी। मुगल सम्राटों को अपने वंशजों के समान ही चित्रकला, उद्यान तथा भवन-निर्माण में अधिक रुचि थी। मुगल शहजादों तथा सामन्तों की अपनी-अपनी चित्रशालायें होती थीं। बादशाह तथा शहजादे (युवराज) स्वयं भी चित्रकला का अभ्यास करते थे। सम्राट प्रायः

उच्च पदाधिकारियों, सभासदों तथा सामन्तों को अपने शबीह-चित्र भेंट स्वरूप प्रदान करता था। मुगल साम्राज्य तथा शासकों के साथ-साथ मुगल कला का उत्तरोत्तर विकास हुआ और राजकुमारों, दरबारियों तथा सरदारों ने इस चित्रकला को पर्याप्त संरक्षण प्रदान किया, किन्तु औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीति के कारण मुगल साम्राज्य का ही पतन नहीं हुआ वरन् चित्रकला का वातावरण भी समाप्त हो गया।

बाबर का कला प्रेम - बाबर ने भारत का राज्य-सिंहासन १५२६ ई० में प्राप्त किया और १५३० ई० में उसकी मृत्यु हो गई। जहाँ एक ओर वह नीति-कुशल शासक और योद्धा था वहां दूसरी ओर एक अच्छा लेखक तथा कवि था। उसने स्वयं अपनी आत्म-कथा 'तुजके बाबरी' या 'बाबर नामा' नामक पुस्तक तुर्की भाषा में लिखी। इस आत्म-कथा में उसने अपना जीता जागता चित्र खींचा है। उसने बिहजाद नामक चित्रकार का रोचक वर्णन किया है, जिसमें उसकी चित्रकला के प्रति रुचि और विषय की जानकारी दिखाई पड़ती है। उसने एक स्थान पर लिखा है कि—चित्रकारों या शिल्पकारों में बिहजाद का नाम प्रमुख है। वह एक कुशल चित्रकार था परन्तु दाढ़ी रहित युवा चेहरे से ठीक नहीं बनाता था।[1] बाबर ने एक अन्य चित्रकार शाहमुजफ्फर के विषय में इस प्रकार लिखा है कि—'एक अन्य चित्रकार शाहमुजफ्फर था। वह चित्रों में सादृश्य बहुत सुन्दरता से ले आता था, परन्तु वह अधिक जीवित न रहा, और उसकी उस समय तक मृत्यु हो गयी जब वह ख्याति प्राप्त करने लगा था।[1] इन लेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि बाबर की चित्रकला में स्वयं बहुत रुचि थी और उसने ईरान के इन चित्रकारों की कृतियाँ भी देखी थीं। बाबर ने समरकन्द की मस्जिद का वर्णन किया है जिसमें उसने यह भी उल्लेख दिया है कि वह चीनी तस्वीरों से सजी थी।[1]

हुमायुँ—बाबर के पश्चात् हुमायुं १५३० ई० में सिंहासन पर बैठा परन्तु उसका सारा जीवन लड़ाईयों में ही व्यतीत हुआ। बंगाल के शेरशाह तथा गुजरात के बहादुरशाह के कारण उसको भारत छोड़कर भागना पड़ा और उसको भारत के सिंहासन को छोड़कर देश-विदेश की खाक छाननी पड़ी। हुमायुं ने अपने भाई कामरां से सहायता प्राप्त करना चाही परन्तु वह काबुल लौट गया और उसने पंजाब शेरशाह के लिए छोड़ दिया। तब हुमायुं ने मारवाड़ के राजा मालदेव का आश्रय ग्रहण किया और सिन्ध के सरदारों से भी उसने सहायता प्राप्त की। जब वह अमरकोट के निकट सिन्ध के सरदारों से सहायता प्राप्त करने के लिए इधर उधर भटक रहा था तो उसके पुत्र मोहम्मद जलालउद्दीन अकबर का जन्म २३ नबम्बर १५४२ ईसवी में हुआ। इसके पश्चात वह खानदेश होता हुआ १५४७ ई० में ईरान और फिर फारस के

1. "दी मेमोयर्स आफ जहीरउद्दीन मोहम्मद बाबर, इम्परर आफ हिन्दुस्तान—अनुवादक जोन लीडेन इस्क० एम० डी, पृष्ठ ३२१ तथा ३२२।

शाह की शरण में पहुंचा। यहां १५५५ ईसवी के आरम्भ में हुमायुं के सिया मत ग्रहण करने के पश्चात् उसको पूर्ण सहायता प्राप्त हुई और उसने पुनः अपना खोया हुआ दिल्ली का राज्य बहराम खां जैसे याग्य सेनापति की सहायता से प्राप्त कर लिया। परन्तु १५५७ ईसवी में उसकी मृत्यु हो गयी और वह केवल कुछ मास ही शासन कर सका।

हुमायुं का कला प्रेम— हुमायुं को अपने पिता के समान साहित्य तथा कला से प्रेम था।[1] हुमायुं अपनी कला प्रियता तथा उदारता का अपने अल्प शासनकाल में युद्ध में उलझे रहने के कारण प्रदर्शन न कर सका परन्तु फिर भी जब वनबास काल में इधर-उधर भटक रहा था तो भी वह अपने साथ सचित्र पुस्तकें रखता था, जिससे उसका चित्रकला और साहित्य के प्रति गहरा प्रेम प्रकट होता है। एक बार जब वह सिन्ध और खानदेश की ओर से ईरान जा रहा था तो उसके साथ चित्रकार भी थे। इस यात्रा में एक दिन जब वह खेमे में बैठा था तो एक सुन्दर कबूतर वहां आ गया। हुमायुं ने उसको पकड़ कर उसके पंख काटे और चित्रकारों से तस्वीर बनवाकर उसको छोड़ दिया।

१५४७ ई० में हुमायुं जब शाहतहमास्प के दरबार में सहायता के लिए ईरान पहुंचा था तो उसका दो महान ईरानी चित्रकारों - मीर सैय्यादअली 'जुदाई' और ख्वाजा अब्दुस्समद 'शीराजी से परिचय हुआ था। यह दोनों चित्रकार शाहतहमास्प के दरबार मे थे। हुमायुं ने इन चित्रकारों से अपने साथ भारत चलने को कहा परन्तु उस समय यह चित्रकार हुमायुं के साथ न आये। कुछ मास के पश्चात् जब कन्धार तथा काबुल पर १५४७ ई० में हुमायुं का अधिकार स्थापित हो गया ता यह दोनों चित्रकार उसकी सेवा में आ गये और हुमायुं ने उनको दरबारी चित्रकार नियुक्त कर लिया और इनकी अध्यक्षता में ही स्वयं हुमायुं तथा बालक अकबर ने चित्रकला का अभ्यास किया।[2] अमीर हम्जा की कहानी मे मोहम्मद के चाचा अमीर हम्जा की देश देशान्तर विजय को आश्चर्यजनक साहसपूर्ण कहानी का वर्णन था। इस कथा का चित्रण सम्भवता हुमायुं के संरक्षण में किशोर अकबर के चरित्र निर्माण के लिये आरम्भ हुआ। यह चित्र पूर्णतया फारसी शैली में तैयार किये गये परन्तु परवर्तीकाल में इनमें भारतीय पोषकों हिन्दू मूर्तियों, भारतीय ग्राम्य दृश्यों तथा जीवन का समावेश भी हो गया।[3] यह चित्र सूती कपड़े पर बनाये गये, जिनका आकार ६८ × ५२ सेन्टीमीटर था।[4] इन चित्रों में से अनेक अभी भी साउथ केंसिंगटन

---

1. 'आर्ट आफ दी बर्ल्ड' (१ इन्डिया)—लेखक हरमन गोएट्ज, पृष्ठ २१०।
2. 'इन्डियन पेन्टिङ्ग अन्डर मुगल्स'—लेखक परसी ब्राऊन, पृष्ठ ५४।
3. 'आर्ट आफ दी बर्ल्ड' (१ इन्डिया)—लेखक हरमन गोएट्ज, पृष्ठ २१२ तथा २१३।
4. 'कैटलाग आफ दी इन्डियन कलेक्शन्स (पार्ट सिक्स) मुगल पेन्टिंग—लेखक-आनन्द कुमार स्वामी, पृष्ठ ४।

म्युजियम तथा ब्रिटिश म्युजियम में सुरक्षित है।[1]

अकबर— १५५७ ई० में अकबर अपने पिता हुमायु की मृत्यु के पश्चात् लगभग तेरह वर्ष की आयु में सिंहासन पर बैठा। सिंहासन पर बैठते ही उसको कई लड़ाईयां लड़नी पड़ीं, और १५७० ई० के पश्चात् ही उसको सांस्कृतिक उत्थान में योग देने का अवसर प्राप्त हुआ। अकबर ने 'दीनइलाही' धर्म चलाकर अपनी धार्मिक उदारता का परिचय दिया। उसने मुसलमानों के धार्मिक कट्टरपन को नहीं माना

रेखाचित्र सं० १६

'सम्राट अकबर'—१५५६ ई० (मुगल शैली)

और चित्रकला, जोकि मुसलमान धर्म में निषेध है, की उन्नति के लिये सतत् प्रयत्न किये। उसने स्वयं अम्बर (आमेर) के राजा बिहारीमल की पुत्री राजकुमारी जोधाबाई से विवाह किया और उसको धार्मिक स्वतन्त्रता दी। इस साम्राज्ञी के लिए अन्त:पुर में वैष्णवधर्म के उपदेश देने की स्वतन्त्रता थी। इस राजपूत रानी का

1. 'मुगल पेन्टिग'—लेखक जे० सी० एस० विलकिंसन, पृष्ठ २।

पुत्र सलीम ही सिंहाहन का उत्तराधिकारी बना। इस प्रकार से अकबर ने सन्धि की नीति को अपनाया और राजपूतों की संस्कृति पहनावे आदि से बहुत कुछ लिया और वहां दूसरी ओर उसने उनके जीवन को बहुत कुछ प्रभावित भी किया। अकबर के कई विश्वसनीय और सहायक हिन्दू थे। जयपुर के राजा भगवानदास और राजा मानसिंह ने अकबर की ओर से राजपूतों से भयानक युद्ध किये। अकबर के दरबार में 'नवरत्न' अर्थात् नौ उच्चकोटि के विद्वान या महान व्यक्ति थे। इन 'नवरत्नों में अब्बुलफजल, फैजी, तानसेन, बीरबल, अब्दुलरहीम खानखाना, टोडरमल, राजा मानसिंह, बिहारीमल तथा भगवानदास थे। इन नवरत्नों में अधिकांश हिन्दू व्यक्ति थे। अकबर के दरबार में अधिकांश चित्रकार कायस्थ, चितेरा, खाती तथा कांहर जाति के थे।[1] अकबर ने साहित्यकारों, दार्शनिकों, संगीतकारों तथा कलाकारों आदि में विशेष रुचि दिखाई जिसके फलस्वरूप अकबर के समय में प्रत्येक कला को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

अकबर का कला प्रेम—अकबर के शासनकाल तक उत्तरी भारत में एक विशाल और समृद्ध साम्राज्य स्थापित हो चुका था। इस समय भारतवर्ष पुन: प्रगति के लिये तत्पर हो चुका था। ऐसे शान्त और सुखद वातावरण में ललित कलाओं का विकास होता है अत: मुगलकाल भी मुगल दरबार के वैभव और राज्य विस्तार के साथ विकसित हुई। मुगल दरबार का वैभव भिन्न-भिन्न कलाकारों, साहित्यकारों संगीतकारों तथा राजपूत सरदारों को आकर्षित कर रहा था। सम्राट अकबर की कला-प्रियता के कारण कलाकारों एवं विद्वानों को समादर और सुखद आश्रय भी प्राप्त हो रहा था। अकबर की चित्रशाला में लगभग छ: गुजराती चित्रकार थे। इससे स्पष्ट है कि उत्तम आश्रय प्राप्त करने के लिए कुशल चित्रकार मुगल दरबार की ओर आकर्षित हो रहे थे। अकबर ने भवन तथा चित्रकला को विशेष महत्व प्रदान किया और उसने अपनी उदारता से इनको एक नवीन रूप प्रदान किया।

वास्तव में अकबर की रुचि युवाकाल से ही चित्रकल की ओर थी। पहले बताया जा चुका है कि अकबर ने भवन कला तथा चित्रकल का अभ्यास किया था। जहांगीर के आत्मचरित्र 'तुजके जहांगीरी' से भी इस बात की पुन: पुष्टि होती है। जहाँगीर ने एक रोचक घटना का वर्णन करते हुए लिखा है—कि अकबर की

---

1. 'इन्डियन पेंटिंग अन्डर दी मुगल्स'—ले० परसी ब्राउन, पृष्ठ १२१, के अनुसार "......Akbar's school Painters were all Hindus. Most of these were drawn from the castes the kayastha, chitera, silavat and khati of whom the most renowned were the kayasthas or writers. It may be remarked that the chiteras were orignally metal workers, the silavat or salat, stone masons and the khati wood carvers. On the other hand atleast four of Akbar,s artists were of the kahar or palanquirne bearer cast, including the famous Daswanth."

ताजपोशी के समय (सिंहासन पर आसीन होने के समय) जब हेमू ने विद्रोह किया, और अन्त में उसको पराजित कर जब बन्दी बनाकर अकबर के सम्मुख लाया गया तो अब्दुलरहीम खानखाना के पिता बैरामखां ने सम्राट से प्रार्थना की कि इस काफिर को मार कर गिजा (धर्मयुद्ध का यश) को प्राप्त करें। इस पर अकबर ने कहा कि "मैं तो इसे पहले ही टुकड़े-टुकड़े कर चुका हूं। जब मैं काबुल में ख्वाजा अब्दुस्समद 'शारीकलम' से चित्रकारी सीखता था तो एक दिन मेरी तूलिका (कलम) से एक ऐसा चित्र बन गया जिसके अंग अस्त-व्यस्त या कटे-फटे थे।" एक पास बैठे व्यक्ति ने जब पूछा यह कि 'यह किसकी सूरत है' तो मेरे मुंह से अकस्मात उत्तर— 'हेमू' निकल पड़ा।

अकबर के समय में चित्रकारों का स्थान—अकबर ने चित्रकारों तथा चित्रकला में अत्यधिक रुचि दिखाई। अब्बुलफजल ने 'आइनेअकबरी' में लिखा है कि बादशाह स्वयं अपनी शबीह या मुखाकृतिचित्र बनाने के लिये बैठता था और उसने अपने दरबारियों के चित्र भी बनवाये।[1] अकबर ने एक बार स्वयं यह भी कहा था कि—'ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं जो चित्रकला से घृणा करते हैं। परन्तु ऐसे व्यक्ति मेरे स्नेह-भाजन नहीं है। धार्मिक नियमों के अन्धविश्वासी चित्रकला के घातक शत्रु हैं परन्तु अब उनके नेत्र सत्य का अनुभव करते हैं।' आईनेअकबरी के लेखक अब्बुलफजल ने यह भी विवरण दिया है कि अकबर ने सौ से अधिक चित्रकारों की नियुक्ति की, जो फतेहपुर सीकरी के एक विशेष भवन में कार्य करते थे।[2] यह कार्य १५७० ई० से १५८५ ई० तक इस चित्रशाला में सुचारू रूप से चलता रहा। चित्र-शाला के दरोगे चित्रकारों के इस भवन का सप्ताह में एक बार निरीक्षण करते थे। यह दरोगे चित्रकारों की कृतियां सम्राट के सम्मुख प्रस्तुत करते थे। सम्राट चित्रकारों की कार्य कुशलता के अनुसार उनको इनाम देता था और उनका वेतन बढ़ा दिया जाता था।[3] इस चित्रशाला के अध्यक्ष उस्ताद मीर सैयदअली तथा ख्वाजा अब्दु-स्समद थे। चित्रकारों के लिये दरबार में उच्च पद दिये जाते थे और चित्रकार मन-सबदार हुआ करते थे। उच्चकोटि के चित्रकारों को ५०० मनसबदारी तक के ओहदे प्रदान किये जाते थे। अब्दुस्समद की ५०० मनसबदारी के पद पर नियुक्ति हुई परन्तु उसका पद छोटा होते हुए भी दरबार में उसकी कला के कारण उसका विशेष सम्मान था। १५७३ ई० में जब अकबर ने गिने-चुने २७ सरदारों के साथ अहमदाबाद पर 'तूफानी आक्रमण, किया तो उसके दल में तीन चित्रकार थे। अकबर ने यह धावा राजस्थान पार करके गर्मी के मौसम में साणीयों पर यात्रा करके किया था और ६०० मील की यात्रा ११ दिन में तय की थी। इस सरनाल के युद्ध में तीन चित्रकार (१) साँवलदास, (२) जगन्नाथ, तथा (३) ताराताथ साथ गये थे। सांवलदास ने इस युद्ध का मार्मिक चित्र बनाया था।[4]

1, 2, तथा 3. 'आईनेअकबरी' से।

4. 'इन्डियन पेंटिंग अन्डर दी मुगल्स'—लेखक परसी ब्राउन, पृष्ठ ८३;

अकबर ने अपने चित्रकारों को प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए उच्च पद तथा इनाम ही नहीं बल्कि उपाधियां भी प्रदान कीं और उनसे अनेक चित्रकारों को 'नादिर उलमुल्क' (देश का आचार्य) तथा हुमायुंनसानी (राज्य का शुभ या मंगलमय) की उपाधियों से विभूषित किया।

अकबर के दरबारी चित्रकार

'वाकायत-ऐ-बाबरी' की अकबर कालीन प्रति में उन्नीस उच्चकोटि के हिन्दू और तीन उच्चकोटि के मुसलमान चित्रकारों का उल्लेख है, परन्तु 'आइनेअकबरी' में तेरह उच्चकोटि के हिन्दू और चार मुसलमान चित्रकारों का वर्णन है।[1] अकबर के समय में भिन्न-भिन्न देशों से चित्रकार मुगल दरबार की ओर आकर्षित होकर आ रहे थे। आइनेअकबरी के अनुसार इस समय के कलाकारों में कलमाक के फरूख, अब्दुस्समद, (शीराजी) तथा तबरेज के मीरसैयद अली से यह स्पष्ट है कि विभिन्न कलाकार 'सुदूर देशों' से मुगल दरबार में राज-आश्रय ग्रहण करने के लिए आ रहे थे। जहांगीर के समय में समरकन्द से भी चित्रकार आये। अकबर के समय में हिन्दू तथा मुसलमान चित्रकारों में कोई भेद-भाव न था क्योंकि 'आइनेअकबरी' में अब्बुल-फजल ने लिखा है—'यह सत्य है कि हिन्दुओं के चित्र हमारी चित्रकला को मात करते हैं। वास्तव में सम्पूर्ण संसार में उनके जैसे चित्रकार बहुत कम मिलते हैं।[2] आइनेअकबरी के अनुसार, अकबर की चित्रशाला के चित्रकार कायस्थ, चितेरा, सिलावट तथा खाती जाति के थे। इस समय केतेरह हिन्दू चित्रकारों के नाम प्राप्त हैं जिनमें दसवन्त, बसावन, केशव, लाल, मुकुन्द, मधु, जगन, महेश, तारा, सांवल, खेमकरन, हरवंश तथा राम थे। 'दसवन्त' कहार जाति का था। वह पालकी उठाया करता था और दीवार पर लिखाई भी करता था। एक बार सम्राट अकबर ने उसको दीवार पर लिखते हुए देखा और उसको सम्राट ने अपनी सेवा में रख लिया। आगे चलकर दसवन्त एक कुशल चित्रकार सिद्ध हुआ।[3] मिस्किन भी अकबर के दरबार का एक निपुण पक्षी-चित्रकार था। 'बसावन' चित्र की पृष्ठिका बनाने के काम में निपुण था। अब्बुलफजल ने लिखा है कि—'कई ऐसे चित्रकार तैयार हो गये हैं जो कि बिहजाद और यूरोप के चित्रकारों से टक्कर लेते हैं।[4] अकबर के दरबार में जब कोई अतिथि आता तो उसको वह अपनी चित्रशाला भी दिखाता था। जहांगीर ने अपने आत्मचरित्र में लिखा है कि वह अब्दुस्समद को बड़े सम्मान से रखता था, अकबर ने उसको १५५७ ई० में अपनी टकसाल का अधिकारी बना दिया। जगन्नाथ, धरमदास, नन्द ग्वालियरी, भीम गुजराती तथा शंकर भी इस समय के अच्छे चित्रकार थे।

---

1. तथा 2. 'आईनेअकबरी' से।

3. तथा 4. 'आइनेअकबरी' से।

अकबर के काल के प्रमुख चित्रकार

अकबर के काल में जिन कलाकारों ने कला विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया उनमें चार कलाकारों के नाम प्रमुख हैं। यह चित्रकार १. मीर सैयद अली, २. ख्वाजा अब्दुस्समद शीराजी, ३. दसवन्त तथा ४. बसावन थे इन चित्रकारों का परिचय यहाँ पर प्रस्तुत करना इस कारण अनिवार्य है कि इन चित्रकारों ने ही मुगल शैली को जन्म दिया।

मीर सैयद अली - मीर सैयद अली 'जुदाई' अकबर के दरबार का मीर मुसव्विर (मुख्य चित्रकार था) वह सफवी शैली या फारसी-ईरानी शैली का कुशल चित्रकार था। उसका जन्म सोलहवीं शताब्दी में फारस के तब्रेज नामक नगर में हुआ था। उसके पिता सुल्तानिया के शाह के दरबार में मीर मुसव्विर (प्रधान-चित्रकार) थे। अत: किशोर अवस्था में ही मीर सैयन अली ने चित्रकला का लिपि लेखन कला का उत्तम अभ्यास कर लिया था। काजी अहमद नामक लेखक ने १५९६-९७ ई० में रचित अपने एक ग्रन्थ में लिपिकारों की नामावली में मीर सैयद अली का नाम दिया है। अकबर के दरबार के प्रसिद्ध लेखक अब्बुलफजल ने अपने ग्रन्थ 'आइनेअकबरी' में इसके पिता का नाम मीर मंसूर बताया है। १५४७ ई० में हुमायूं जब शाहतहमास्प के दरबार में फारस (ईरान) पहुंचा तो उसकी भेंट यहाँ पर मीर सैयद अली से हुई और उसने मीर सैयद अली को अपने साथ भारत आने के लिए निमंत्रित किया परन्तु सैयद अली उस समय निर्वासित हुमायूं के साथ नहीं आया। परन्तु इसी वर्ष हुमायुं ने जब अपने भाईयों को पराजित करके काबुल तथा कन्धार पर अधिकार कर लिया तो मीरसैयदअली तथा ख्वाजा अब्दुस्समद कुछ समय पश्चात हुमायुं के संरक्षण में काबुल आ गये। यह कलाकार निश्चित रूप से १५५० ई० तक काबुल आ गये थे। इन चित्रकारों ने काबुल में अमीर हम्जा की दास्तान पर आधारित चित्रों का निर्माण आरम्भ कर दिया था जो अकबर के समय में पूर्ण हुआ। इस कार्य में अनेक हिन्दू तथा मुसलमान चित्रकारों की सेवायें भी ग्रहण की गई थीं।

मीर सैयद अली के बहुत कम चित्र ही आज प्राप्त है। इन चित्रों से उसकी प्रभावशाली सरल कला शैली का परिचय प्राप्त होता है और यह चित्र तब्रेज की ईरानी शैली के हैं। उसके चित्रों में आकृतियों आदि की व्यवस्था संयोजन सन्तुलित और सुनियोजित है। इसके चित्रों में वातावरण आकर्षक और प्रकृति की सुषमा आलंकारिक है तथापि उसने बारीकी और सूक्ष्म चित्रण से आकृतियों आदि में वास्तविकता लाने की चेष्टा की है। इसने अपने चित्रों में दैनिक लोक जीवन से सम्बन्धित विषयों का अंकन किया है। उसने दरबारी जीवन की अपेक्षा नगर एवं ग्रामीण दृश्यों का चित्रण अधिक किया है। उसकी मानवाकृतियों की रचना बिहजाद शैली की है और आकृतियां लम्बी, पतली तथा लता के समान लचकदार हैं। उसकी आकृतियों में गरदन लम्बी पतली सुराहीदार और चेहरे लम्बे बनाये गये हैं।

जब वह अकबर की दरबारी चित्रशाला में मीर मुसव्विर नियुक्त हुआ तो उसकी देखरेख में गुजराती, राजस्थानी चित्रकार काम करते थे। वह इन स्थानीय चित्रकारों से प्रभावित हुआ था। उसके प्रमुख चित्रों में—'गाय का वध करते जहहाक,' 'लैला के सम्मुख जंजीरों में बंधा मजनूं,' 'वहराम तथा गड़रिया,' 'मंजनूं का जन्म', 'जामी कृत-हफ्त-औरंग चित्रावली' तथा 'पिता मंसूर का व्यक्ति चित्र' है। हम्जा नामा के प्रारम्भिक चित्रों पर उसकी शैली का प्रभाव माना जाता है इसी कारण मीर सैयद अली को मुगल कला शैली का 'जन्मदाता' भी माना जाता है।

ख्वाजा अब्दुस्समद 'शीराजी'— मीर सैयद अली के समान ख्वाजा अब्दुस्समद 'शीराजी' भी अकबर के दरबार का मीर मुसव्विर था। वह भारत में मुगल शैली की चित्रकला के जन्मदाताओं में मीर सैयद अली के समान ही एक था। आइने-अकबरी में उसके सम्बन्ध में पर्याप्त उल्लेख प्राप्त होता है। आइनेअकबरी के अनुसार उसकी मधुर एवं कोमल चित्र शैली के कारण उसको 'शीरीकलम' की उपाधि प्रदान की गई थी। उसका जन्म ईरान के प्रसिद्ध नगर शीराज में हुआ था। शीराज ईरान में अपनी कला और कलाकारों के लिये प्रसिद्ध था और शीराज नगर दूर-दूर तक एक कला केन्द्र के रूप में सुविख्यात था। ख्वाजा अब्दुस्समद का पिता फारस के राज्यपाल के दरबार में मन्त्री था। १५४५ ई० में जब हुमायुं फारस की राजधानी तब्रेज नगरी में था तो ख्वाजा अब्दुस्समद उसके पास गया और उसने परिचय प्राप्त किया। हुमायुं ने उसे अपने साथ चलने के लिये निमंत्रित किया लेकिन उस समय वह उसके साथ नहीं आया। हुमायुं की १५४७ ई० में काबुल विजय के पश्चात् १५४९ ई० में वह हुमायुं के आश्रय में काबुल दरबार में पहुंच गया। तैमूरनामा के अनुसार यहाँ पर हुमायुं तथा किशोर युवराज अकबर ने उससे चित्रकला की शिक्षा ग्रहण की। १५५६ ई० में अकबर ने अपने राज्यारोहण के पश्चात ख्वाजा अब्दुस्समद को विशेष सम्मान दिया। इस समय से उसकी कला शैली में उत्तरोत्तर परिमार्जन, निखार और विकास आया। इसकी कृतियों में बाह्य रूपों के साथ-साथ आन्तरिक भावना तथा आत्मा मुखरित होने लगी। वह अकबर की चित्रशाला का प्रधान कलाशिक्षक भी था और उसके शिष्य उत्तम कलाकार सिद्ध हुये। उसके शिष्यों में दसवन्त उत्तम चित्रकार था।

पर्सी ब्राउन की यह धारणा है कि हुमायुं के संरक्षण में अब्दुस्समद ने मीर सैयद अली के दास्ताने अमीर हम्जा के चित्रों का निर्माण किया था।

अकबर अब्दुस्समद को केवल एक श्रेष्ठ चित्रकार ही नहीं समझता था अपितु उसका दरबार में उच्च सम्मान था। अपने पिता का समकालीन तथा सहायक होने के कारण अकबर उसको आदर और सम्मान से रखता था। यद्यपि वह अकबर के दरबार में चार सौ मनसबदारी के पद पर नियुक्त किया गया था परन्तु उसका दरबार में सम्मान बहुत अधिक था। उसके पुत्र शरीफ को अकबर ने अपने

पुत्र युवराज (शहजादा) सलीम का मदरसे के लिये साथी बना दिया था। १५७६ ई० में अकबर ने अब्दुस्समद को फतेहपुर सीकरी स्थित अपनी टकसाल का अधिकारी बना दिया और सन् १५८४ ई० में उसको मुल्तान के सूबे का दीवान बना दिया था। अनुमानतः अब्दुस्समद का निधन १५८५ ई० के लगभग हुआ। वह दीन-ए-इलाही का अनुयायी था।

अब्दुस्समद अपनी सुलिपि के लिये बहुत प्रसिद्ध था लेकिन चित्रकार के रूप में उसका अधिक महत्वपूर्ण योगदान है। उसने जो आरम्भिक चित्र बनाये हैं उनकी शैली तब्रेज सफबी शैली है अमीर हम्जा चित्रावली के निर्माण के लिये अकबर ने जो पचास चित्रकार नियुक्त किये थे उनका निर्देशन पहले मीर सैयद अली ने और बाद में ख्वाजा अब्दुस्समद 'शीराजी' ने किया था।

दसवन्त—अब्बुलफजल ने आइनेअकबरी में दसवन्त का जो विवरण प्रस्तुत किया है उससे ज्ञात होता है कि वह कहार का लड़का था। आरम्भ में वह अकबर की फतेहपुर सीकरी स्थित दरबारी चित्रशाला में सेवक था और चित्रशाला के काम में दिलचस्पी के कारण दीवारों पर लिखाई का काम या वेलबूटे की लिखाई या चित्र बनाने का काम करता था। एक दिन उसको लिखाई करते देखकर सम्राट अकबर की कृपा-दृष्टि उस पर पड़ी और सम्राट ने उसकी कला प्रतिभा को देखकर भली-भाँति जाँच लिया और उसने दसवन्त को ख्वाजा अब्दुस्समद की देख-रेख में चित्र-कला के अभ्यास के लिए सौंप दिया। दसवन्त कुछ समय में कला शिक्षा ग्रहण करके एक अद्वितीय चित्राकार के रूप में विकसित हो गया। दसवन्त के जीवन के सम्बन्ध में अधिक विवरण प्राप्त नहीं होते हैं। अब्बुलफजल के अनुसार वह पागल हो गया और उसने अपनी आत्म हत्या करली थी।

अनुमानतः दसवन्त ने अमीर हम्जा चित्रावली के भी कुछ चित्र बनाये हैं। उसने जो अन्य चित्र बनाये हैं उनमें से कुछ पर ही उसका नाम अकित है। तैमूरनामा के एक चित्र की अनुकृति तथा रज्मनामा के अनेक चित्रों पर उसका नाम अकित है। उसके द्वारा बनाया हुआ एक चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय-नई दिल्ली में भी है जिस पर उसके हस्ताक्षर अकित हैं। जयपुर के रज्मनामा वाली प्रति से उसकी श्रेष्ठ शैली का अनुमान लगाया जा सकता है। इस रज्मनामा के २१ चित्रों पर दसवन्त का नाम अंकित है जिनका रचना काल १५८४ ई० में अनुमानित है। उसके साथ काम करने वाले चित्रकारों में मिस्कीन, सरवन तथा केसू का नाम विशेष है।

दसवन्त ने भारतीय वातावरण का कुशलता से चित्रण किया है। उसने भारतीय देवी-देवताओं का चित्रण सुन्दरता से किया है। यह देव आकृतियां चित्र के अधिकांश भाग पर अपना महत्व तथा प्रभुत्व स्थापित किये हुए प्रतीत होती हैं। उसने भयंकर राक्षसी आकृतियां बड़ी आतंकपूर्ण और विचित्र बनाई हैं। उसने पौरा-णिक कथानकों के चित्रण में विशेष रुचि दर्शाई है। उसकी आकृतियों के चित्रण में

परिप्रेक्षय तथा दूरी का आभास होता है। उसके चित्रों में केन्द्रीय आकृति के उचित संयोजन से सन्तुलन स्थापित किया गया है। उसके चित्रों में हिन्दू परम्पराओं की प्रबलता के साथ-साथ यूरोपीय कला तथा आकृति निर्माण का प्रभाव भी है।

बसावन अकबर के दरबारी चित्रकारों में बसावन एक कुशल चित्रकार था और उसको दरबार में अपनी कला प्रतिभा के कारण उचित महत्व तथा सम्मान प्राप्त था। उसने लगभग एक सौ से अधिक सुन्दर तथा उत्कृष्ठ चित्रों की रचना की। परन्तु खेद है कि उसके जीवन के सम्बन्ध में विशेष जानकारी नहीं प्राप्त होती। वह हिन्दू था अतः उसने हिन्दू जीवन की अपने चित्रों में झांकी प्रस्तुत की है। उसने मीर सैयद अली तथा ख्वाजा अब्दुस्समद की देख-रेख में मुगल शैली की शिक्षा ग्रहण की। अब्बुलफजल ने आइनेअकबरी में दसवन्त के परिचय के पश्चात् बसावन का उल्लेख करते हुये बसावन की बड़ी तारीफ की है। इन दोनों चित्रकारों ने तैमूरनामा तथा रज्मनामा के चित्रों का निर्माण किया है। बसावन का पुत्र मनोहर जहांगीर के दरबार में मुगल शैली का प्रसिद्ध चित्रकार था।

बसावन के चित्रों में बहारिस्ताने-जामी पर आधारित एक चित्र में शेखअबू-उल-कस्साब को एक दरवेश (संत) के दर्शन करते हुए अंकित किया गया है। यह दोनों व्यक्ति बातचीत करते हुये एक मण्डप में चित्रित किये गये हैं। दरवेश शेख की बात को सुनते हुए अपनी सुई में धागा डालते हुए दर्शाया गया है। मण्डप के विवरण सुन्दरता से अंकित हैं और मण्डप के अंकन में योरोपीय परिप्रेक्ष्य का प्रयोग नहीं है। अग्रभूमि में गठीले तने वाला एक पुराना भारी घना वृक्ष चित्रित है। इन दोनों व्यक्तियों की मुखाकृतियों को बारीकी से लिखा गया है और उनमें चरित्र चित्रण की यथार्थता झलकती है। आकृतियों की मुद्रायें तथा भंङ्गिमायें भावपूर्ण तथा स्वाभाविक हैं। उसकी आकृतियों में वस्त्रों की बनावट पर यूरोपीय कला का प्रभाव है और आकृतियों में गठनशीलता तथा छाया-प्रकाश का प्रयोग उत्तम है उसने लगभग ४० वर्ष तक चित्र निर्माण किया और बड़ी संख्या में चित्र बनाये। उसके साथी सहायक-कलाकारों में भीम गुजराती तथा मिस्कीन चित्रकार थे।

अब्बुलफजल के अनुसार बसावन से पृष्ठभूमि निर्माण, मुखाकृतियों की चारित्रिक विशेषताओं का चित्रण तथा रंगों का सम्मिश्रण यथा रूप किया है।

अकबर के काल में कला-सामग्री—'आइने अकबरी' में अब्बुलफजल ने लिखा है कि—'चित्र बनाने की सामग्री में बहुत उन्नति हुई है और रंग बनाने की पद्धति भी सुधर गयीं है, जिसमें चित्रों की तैयारी में सुविधा हो गई। अकबर के समय में उत्तम प्रकार के रंग और कागज का निर्माण भी होने लगा था। पहले कागज ईरान से मंगवाया जाता था और चित्रकार (१) ईरानी तथा (२) इस्फानी कागज चित्र बनाने के लिये पसन्द करते थे। सियालकोट (पंजाब) में कागज का एक मुगल कारखाना स्थापित किया गया और इस स्थान के नाम पर यहाँ का बना (३) 'सियालकोटी-कागज'

प्रसिद्ध हो गया था। अकबर के समय में चित्रों के लिए उपयुक्त आकार का कागज कठिनाई से प्राप्त होता था। अतः चित्रकार छोटे-छोटे कागजों को बड़ी सावधानी से जोड़ते थे।[1] अब्बुलफजल लिखता है—'धीरे-धीरे अनेक प्रकार के कागज प्रचलित होने लगे और उनका उत्पादन होने लगा। (१) सन से बने 'सनी कागज' (२) रेशम से बने 'रेशमी' या 'हरीरी-कागज' (३) बांस से बने 'बांसी कागज' तथा (४) टाट से बने 'तुलोट-कागज' का प्रचलन भी हो गया। दौलताबाद में भी कागज का बड़ा उद्योग विकसित हो गया था। परन्तु सुदूर दक्षिण तक कालान्तर में भी हिन्दुस्तान से कागज मंगाया जाता रहा। दक्षिण में सियालकोट के बने कागज मुगली-कागज के नाम प्रसिद्ध थे और चित्रकार इन कागजों को पसन्द करते थे। मैसूर के चित्रकार स्थानीय कागज (खरदी कागज) का प्रयोग करते थे। यह सब कागज सफेद नहीं बल्कि हल्के भूरे रंग के थे। इस समय अनेक कागज प्रचलित थे, इनमें निम्न कागज लोकप्रिय थे—(१) दौलताबादी कागज, (२) खटाई कागज, (चीन के खटा नगर में बना कागज), (३) आदिल शाही, (४) सुल्तानी (समरकन्द का कागज), (५) निजामशाही, (६) गौनी (तब्रेज में बनने वाला पीला कागज), (७) नुखयार पानी लगा कागज, (८) सियालकोटी कागज।

चित्रकार की तूलिका को 'कलम' कहते थे और चित्रकार को कलम-करतार कहते थे। तूलिकायें गिलहरी, ऊंट, बकरे, भैंसे अथवा बिल्ली के बालों से बनाई जाती थीं।

अकबर का अमीरहमजा की कहानी के प्रति प्रेम और मुगल शैली का जन्म—मतीरउलउमरा के अनुसार—"अकबर अमीरहमजा की कहानी का बहुत शौकीन था। इस विषद कहानी में ३६० कहानियां थीं। वह कहानियों में इतनी अधिक दिलचस्पी लेता था कि अंतःपुर में वह इन कहानियों को एक कथावाचक के समान सुनाया करता था। उसने इस दास्तान की आश्चर्यजनक घटनाओं को आरम्भ से अन्त तक चित्रित कराया।[2] उसने इस विशाल कथा को १२ खण्डों मे विभाजित कराया। प्रत्येक खण्ड में एक सौ जुज (folios) थे और प्रत्येक जुज एक जिरा (zira) लम्बा था। प्रत्येक जुज में दो चित्र थे, और प्रत्येक चित्र के सम्मुख भाग पर काजबीन (मुंशी) ख्वाजा अताउल्ला के सुन्दर लेख में विवरण लिखा हुआ था। तरबेज निवासी नादिर उल मुल्क हुमायूंनशाही सैयदअली जुदाई की देखरेख में पहले बिहजाद के समान तूलिका या कलम वाले चित्रकार इस पुस्तक के तैयार करने के लिए नियुक्त किए गये और बाद में शीराज के ख्वाजा अब्दुस्समद की देख-रेख में यह कार्य चलता रहा। अब्बुलफजल के अनुसार—"किसी ने भी इस पुस्तक के समान

1. 'कैटलाग आफ दी इन्डियन कलेक्शन्स' (पार्ट सिक्स) मुगल पेन्टिग – लेखक आनन्द कुमार स्वामी, पृष्ठ ४, ५,।
2. 'इन्डियन पेन्टिग अन्डर दी मुगल्स'— लेखक, परसी ब्राउन, पृष्ठ १८६।

दूसरा जवाहर नहीं देखा होगा और न किसी राजा के पास इसके बराबर कोई मूल्यवान वस्तु थी। इस समय यह पुस्तक 'शाही पुस्तकालय' में है।"[1] उपरोक्त पचास सहायक चित्रकारों में अधिकांश भारतीय अन्य फारसी चित्रकार रहे होंगे। इन कृतियों में कुछ ही अंशों में फारसी प्रभाव है और किसी सीमा तक भवन, पहनावा, वृक्ष आदि भारतीय हैं।[2] इन चित्रों पर यूरोपिय प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। एक ही चित्र में फारसी या ईरानी, भारतीय तथा युरोपियन प्रभाव दिखाई पड़ता है, यही मुगल शैली है यह चित्र मुगल शैली के आरम्भिक उदाहरण हैं। इन चित्रों में हुमायु के समय की फारसी शैली का प्रभाव अभी भी अधिक दिखाई पड़ता रहा। परन्तु बाद में अकबर ने भारतीय जीवन का समावेश किया और १५७० ई० के पश्चात् अकबर ने शान्ति से चित्रकला को अत्यधिक समय और संरक्षण प्रदान किया। आईनेअकबरी में अब्बुलफजल लिखता है कि--"सम्राट ने अपने यौवन-काल के आरम्भ से ही चित्रकला के लिए बहुत रुचि प्रदर्शित की और श्रीमान् ने उसको मनो-रंजन और ज्ञान का साधन माना।" अकबर ने फारसी ही नहीं बल्कि हिन्दू महा-काव्यों---'महाभारत', 'रामायण', योगवसिष्ठ रामायण', आदि ग्रन्थों के आधार पर भी चित्र बनवाये और उनका फारसी भाषा में अनुवाद कराया गया। इसी समय महाकवि केशव की 'रसिकप्रिया' पर अतुलनीय चित्र बनाए गए।

अकबर की चित्रशाला में हिन्दू तथा मुसलमान कारीगर, चित्रकार तथा मुन्शी कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करते थे। इस प्रकार हिन्दुओं की भारतीय चित्रकला तथा मुसलमान तिमरुदी या फारसी-ईरानी कला का पूर्ण सम्मिश्रण होता चला गया। अकबर की चित्रशाला में बहुत से भारतीय चित्रकारों को फारसी चित्रकला सिखाई गई और इस आदान प्रदान मे गुजराती, राजस्थानी और अजन्ता की भित्तिचित्र परम्परा का ईरानी या फारसी शैली पर प्रभाव पड़ा और यह भारतीय ईरानी या भारतीय-तिमरुदी या भारतीय-फारसी शैली मुगल शैली में परणित हो गई। इसमें भारतीय प्रकृति और मुगल-दरबार की अपनी निजी विशेषतायें दिखाई पड़ती हैं, और किसी प्रकार भी इनको फारसी शैली की भारतीय शाखा नहीं मानना चाहिए, (देखिए छाया फलक संख्या ३)। मुगल कला की उपलब्धियां फारसी शैली से भी आगे बढ़ गईं और उसका अपना मौलिक इतिहास, विकास-क्रम और महत्व है और उनमें भारतीय भावना और वातावरण है।

अकबर के समय में तैयार की गई 'बाबरनामा' की एक सचित्र प्रति

---

1. 'कैटलाग आफ इन्डियन कलेक्शन्स' (पार्ट सिक्स) मुगल पेन्टिग—लेखक, आनन्द कुमार स्वामी, पृष्ठ ४ तथा ५।
2. 'मुगल पेन्टिग'--लेखक जे० पी० एस० बिलकिन्सन, पृष्ठ २। "Mughal Painting wouid seem at first acquintance to represent a fundamental departure from Indian traditions, so obvious are its many contrasts with the Buddhist and Hindu art."

'राष्ट्रीय-संग्रहालय' नई दिल्ली में सुरक्षित है। इस प्रति के जुज ११६ में चौबीस चित्र हैं, जिन पर खेम का लेख है, इससे ज्ञात होता है कि यह प्रति अकबर के शासन-काल के बियालीसवें वर्ष अर्थात १५९८ ई० में तैयार की गई। इस प्रति में कुल १८३ चित्र हैं और इस प्रति मे निम्न ४८ चित्रकारों के नाम मिलते हैं —

(१) अनन्त, (२) असी, (३) असी कांहार, (४) इब्राहीम कंहार, (५) केशव कंहार, (६) खेम कंहार, (७) खेमकरन, (८) गोविन्द, (९) जगन्ननाथ, (१०) जमशेद, (११) जमाल, (१२) तुलसी, (१३) दौलत, (१४) दौलत खान-जादा, (१५) धनराज, (१६) धन्नू, (१७) धर्मदास, (१८) नकी खानजादा, (१९) नन्द कलन, (२०)नन्द कुंवर, (२१)नरसिंह, (२२) नाना, (२३) पयाग, (२४) पारस, (२५) प्रेम, (२६) फातू, (२७) फर्रूख चेला, (२८) वेदी, (२९) बनवारी खुर्द, (३०) भगवान, (३१) भवानी, (३२)भाग्य, (३३) भीम गुजराती, (३४) भूरा, (३५) मनरा, (३६) मंसूर, (३७) महेश, (३८) माधो, (३९) मिस्किन, (४०) मोहम्मद काशमीरी, (४१) लक्ष्मण, (४२) लौंग, (४३) शंकर, (४४) शिवदास, (४५) सरबण, (४६) सूरदास, (४७) हजारा तथा (४८) हुसैन।[1] कई चित्रों पर चित्रकारों का नाम नहीं है। इसी प्रति पर शाहजहां के हस्ताक्षर हैं, जिससे यह स्पष्ट है कि यह प्रति शाही पुस्तकालय की होगी। इस प्रति के चित्रों में आकृतियों की बनावट तथा एक चश्म चेहरे फारसी शैली के हैं, परन्तु सपाट रंग का प्रयोग और लाल रंग की अधिकता भारतीय शैली की है इन चित्रों में पहनावा अकबर-कालीन हैं।

धीरे-धीरे मुगल शैली में प्रचलित फारसी विषय जैसे 'शीरी-फरहाद', 'लैला मजनूं' तथा फारसी कवि निजामी के काव्य का स्थान भारतीय काव्य तथा कथाओं ने ग्रहण कर लिया। ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि युवराज दानियाल (१५७२-१६०४ ई०) ने कहा था कि "फरहाद तथा शीरी की प्रेम गाथा पुरानी हो चुकी है यदि हम उसको पढ़ते हैं तो उसको हमारे निजी दर्शन और श्रवण के अनुरूप होना चाहिए"। (सूज-ऊ-जुदाज नाउई)। इस वाक्य से उस समय की मुगल-सभ्यता की पूर्ण झांकी मिल जाती है।

जहांगीर— चित्रकला के जिस संस्थान का बीजारोपण अकबर ने किया था वास्तव में वह जहांगीर (१६०५-१६२७ ईसवी राज्यकाल) के समय में पूर्ण यौवन और विकास को प्राप्त हुआ। जहांगीर उदार प्रेमी, लेखक, चित्रकार और योग्य न्याय-प्रिय शासक था। उसने अपनी आत्मकथा 'तुजके जहांगीर' लिखी है जो एक उच्चकोटि की स्मृति-कथा है।

---

1. देखिए फलक संख्या-२ के साथ विवरण 'मुगल मिनियेचर्स'—लेखक रायकृष्णदास (ललित कला एकेडेमी, नई दिल्ली)।

जहांगीर की चित्रकला के प्रति रुचि - उसने अपने युवाकाल में ही चित्रशाला को संरक्षण दिया और अपने चित्रकार नियुक्त किये थे। उसकी चित्रशाला में अनेक चित्रकार वही थे जो अकबर की चित्रशाला में कार्य कर चुके थे। सम्राट ने स्वयं अपनी आत्मकथा में कई चित्रकारों तथा चित्रों का उल्लेख किया है। साथ ही सम्राट ने अपने चित्रकला के प्रति प्रेम और ज्ञान का बड़े सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है जो इस प्रकार है--'मेरी चित्र के प्रति रुचि और उसकी जांच करने का अभ्यास इस सीमा तक पहुंच गया है कि जब किसी मृत्य या जीवित कलाकार की कृति बिना बताये मेरे सम्मुख लाई जाती है तो मैं कुछ ही क्षणों में बता देता हूँ कि यह अमुक-अमुक व्यक्ति का कार्य है। यदि एक चित्र में कई शबीहाँ हों और प्रत्येक चेहरा भिन्न चित्रकार का बनाया हुआ हो, तो मैं पहचान सकता हूं कि कौन सा चेहरा उनमें से किसका बनाया हुआ है। यदि एक चेहरे में ही किसी दूसरे आदमी ने आंख और भृकुटी बनाई है, तो मैं यह पहचान सकता हूं कि वास्तविक चेहरा किसका बनाया हुआ है आंख और भौंहें किसने बनाई हैं'। इससे जहाँगीर का चित्रकला विषयक ज्ञान सुस्पष्ट है।

जहांगीर को यूरोपीय चित्रों में भी पर्याप्त रुचि थी और उसने कई धार्मिक तथा जीवन-सम्बन्धी यूरोपिय चित्र उपलब्ध कर लिये थे। एक बार एक अंग्रेज राजदूत सर टामस रो जहांगीर के दरबार में आया तो उसने जहांगीर के लिए कुछ चित्र दिखाये जिनमें से एक चित्र जहांगीर को बहुत पसन्द आया, जो उसने सर टामस रो से एक रात के लिए ले लिया। दूसरे दिन सम्राट ने सर टामस रो के सम्मुख उस चित्र की पांच प्रतियां प्रस्तुत कर दीं और 'रो' को यह पहचाना कठिन हो गया था कि उनमें से कौन सी उसकी मूल तस्वीर है। इस पर सम्राट ने कहा—'हम चित्रकला में उतने निर्बल नहीं हैं, जितना तुम हमको समझते हो।' जहांगीर को अपने चित्रकारों पर बहुत अभिमान था। अकबर के समान जहांगीर ने चित्रकारों की सुविधाजनक स्थिति को और अधिक महत्व दिया, इसी कारण अनेक कलाकार उसके दरबार में आये।

'तुज़के जहांगीर' में जहांगीर ने एक स्थल पर काशमीर में बनबाई एक चित्रदीर्घा या गेलरी का वर्णन दिया है, उसके अनुसार---'यह दीर्घा कुशल चित्रकारों के हाथों से अलंकृत थी। सबसे अधिक सम्माननीय स्थान पर हुमायु की छवि थी और मेरे पिता का चित्र मेरे भाई शाह अब्बास के सम्मुख था। उनके बाद मिर्जा कामरा, मिर्जा मोहम्मद हकीम, शाह मुराद और सुल्तान उयनीयाल की छवियां थी। दूसरी मंजिल पर अमीरों और विशेष सेवकों की छवियां थीं। बाह्य कक्ष की दीवारों पर काशमीर के रास्ते के कई स्थलों के दृश्य जिस क्रम से मैंने देखे थे उसी क्रम से चित्रित किये गये थे।' इस प्रकार की दीर्घा तथा चित्रों का समय १६२० ई० अनुमानित है। इसी प्रकार का एक सुन्दर शाहीमहल (चश्मेनूर) जहांगीर ने अजमेर में बनवाया था, जिसके सुन्दर चित्रों से अलंकृत होने का उल्लेख मिलता है।

जहाँगीर के समय के चित्रकार तथा उनकी स्थिति-- जहाँगीर के समय में चित्रकारों की स्थिति बहुत अच्छी थी। चित्रकार मनसबदार होते थे और उनके कार्य करने के लिए उत्तम चित्रशालायें भी थीं, भारतीय तथा फारसी या हिन्दू तथा मुसलमान चित्रकार कार्य करते थे। बादशाह स्वयं चित्रकारों का कार्य देखता था और जिन चित्रकारो का कार्य उत्तम होता था, उनको वह इनाम देता था और उस चित्रकार का वह वेतन भी बढ़ा देता था। उसने अपने दरबारी चित्रकार फारूख वेग (कुलमाक) के एक चित्र पर प्रसन्न होकर दो हजार रुपया दिया था। इसी प्रकार मंसूर के एक बैलगाड़ी के चित्र से प्रभावित होकर बादशाह ने उसको एक सहस्त्र मुद्रायें पुरस्कार स्वरूप प्रदान की थीं। जहाँगीर अब्दुल हसन को अपने समय का सबसे अच्छा चित्रकार मानता था। अब्बुल हसन आकारिजा का पुत्र था, और उसको सम्राट ने 'नादिर-उज्जमा' (युग शिरोमणि) की उपाधि से विभूषित किया था। अब्बुल हसन के अतिरिक्त उस्ताद मंसूर जिसको 'नादिर उल असर' की उपाधि प्रदान की गई थी, पशु पक्षियों के चित्रण तथा रेखांकन में अपनी संतति का अद्वितीय कलाकार था। छवि अंकन के लिए बिशनदास बेजोड चित्रकार था।

जहाँगीर के दरबार में चित्रकार की सुनिश्चिन स्थिति देखकर विभिन्न फारसी चित्रकार उसकी शरण में आये। इन चित्रकारों में कुलमाक का सुप्रसिद्ध चित्रकार फारूखवेग, हिरात का आकारिजा और उसका पुत्र अब्दुल हसन, स्मार्क का मोहम्मद नादिर तथा मोहम्मद मुराद ऐसे ही चित्रकार थे, जो जहाँगीर के दरबार में सुदूर देशों से आये। इसी प्रकार भारतीय चित्रकार भी जहांगीर के दरबार में आ रहे थे। इन चित्रकारों में गोबर्द्धन, मनोहर, दौलत तथा उस्ताद मंसूर थे। उस्ताद मंसूर भारतीय मुसलमान था। जहांगीर के दरबार में इन चित्रकारों के अतिरिक्त अकबर की चित्रशाला के चित्रकार भी उसी प्रकार कार्य करते थे।[1] मनोहर को पशु-चित्रण में, उस्ताद मंसूर और मिस्किन को पक्षी चित्रण में उच्च स्थान प्राप्त था।

बादशाह प्राय: चित्रकार को यात्राओं और उत्सवों आदि के अवसर पर अपने साथ रखता था। जब वह शिकार आदि के लिए जाता था तो चित्रकार भी उसके साथ जाते थे। बादशाह इन अवसरों की घटनाओं पर चित्रकारों से चित्र बनवाया करता था। एक चित्र उदाहरण जिसमें शेर के शिकार का दृश्य है, से इस बात की पुष्टि होती है (इस चित्र का विवरण आगे दिया जायेगा), इस शिकार-चित्र की आकृतियों की कल्पना नहीं की जा सकती और चित्रकार ने इस घटना को देखा

1. 'इन्डियन पेंटिंग अन्डर दी मुगल्स'—लेखक परसी ब्राउन, पृष्ठ ८१।
"The two pioneers of the movement, Abdus Samad and Mir Sayyid, had died, and the Kalmack artist Farrukh Beg, was now the leader of the school."

होगा। अकबर को लड़ाइयों के दृश्यों के चित्र बनवाने में अधिक रुचि थी परन्तु जहांगीर को शान्ति के प्रसंगों से सम्बन्धित चित्र बनवाने में अधिक रुचि थी।

जहांगीर ने विदेशी चित्रकारों को बुलाकर अपने युवाकाल में ही फारसी कला को अधिक प्रोत्साहित किया था। इस प्रकार के चित्र उदाहरणों में एक 'कलील-वयदिमनाह' की प्रति है जो १६१० ई० में बनकर तैयार हुई थी और अब ब्रिटिश-म्युजियम में सुरक्षित है। इन चित्रों से ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय तक फारसी कलाकार मुगल शैली को पूर्णतया ग्रहण और आत्मसात नहीं कर सके थे।[1]

शाहजहां—जहांगीर की मृत्यु के पश्चात शाहजादा खुर्रम शाहजहां के नाम से १६२८ ई० में सिंहासन पर बैठा और उसने १६५८ ई० तक राज्य किया। वह कट्टर शुन्नी मुसलमान था, इस कारण हिन्दू धर्म के प्रति उसकी नीति अनुदार थी। शाहजहां की विशेष रुचि भवन की ओर थी, अत: उसने भवन निर्माण तथा वास्तु-कला के विकास में अत्यधिक योगदान दिया। शाहजहां द्वारा निर्मित भवनों में मोती मस्जिद, जामा-मस्जिद, लाल किले तथा दीवाने-खास और दीवाने-आम कलापूर्ण होने के कारण महत्ववान हैं। उसने समय की वास्तुकला का भव्यतम उदाहरण ताजमहल है जो आज भी संसार के सात आश्चर्यों मे से एक है। उसने अपन प्रिय बेगम मुमताज महल की स्मृति में इस कलानिधि का निर्माण कराया और इस प्रेम स्मारक के लिए लगभग चार लाख पौंड स्टरलिङ्ग का व्यय किया। १६५८ ई० में शाहजहाँ के उसके पुत्र औरंगजेब ने बन्दी बना लिया और आगरे के किले में उसकी १६६६ ई० में मृत्यु हो गई।

शाहजहां के समय के चित्रकार तथा उनकी स्थिति—शाहजहां को अपने पूर्वजों के समान भवन निर्माण कराने में बहुत रुचि थी और उसका यह भवन प्रेम उनसे भी आगे बढ़ गया। इस कारण शाहजहां के राज्यकाल में चित्रकला उपेक्षित सी रह गई। यद्यपि चित्रकारों तथा चित्रों की संख्या उतनी ही रही, परन्तु इन चित्रों में पहले जैसी सजीवता और स्वच्छन्दता नहीं रही।

जहांगीर की चित्रशाला के चित्रकार शाहजहाँ के दरबार में उसी प्रकार कार्य करते रहे, इनके अतिरिक्त उसने कुछ नवीन चित्रकारों की भी नियुक्ति की। गोवर्धन, मोहम्मद नादिर, विचित्तर, चित्रमन आदि उसके दरबार के प्रमुख चित्रकारों में गिने जाते थे। शाहजहाँ के समय में मुगल चित्रशाला और चित्रकारों की स्थिति प्रायः उसी प्रकार चलती रही जिस प्रकार की स्थिति जहांगीर के दरबार में थी। परन्तु शाहजहां के भवन प्रेम तथा कट्टरपन के कारफ चित्रकला को यथेष्ट प्रोत्साहन नहीं मिला और चित्रकारों की कृतियों में धीरे-धीरे दरबारी अदब-कायदे और बाह्य तड़क-भड़क ही रह गई।

---

1. 'कैटलाग आफ दी इन्डियन कलेक्शन्स' (पार्ट सिक्स) मुगल पेन्टिग--ले० आनंद कुमार स्वामी, पृष्ठ १०।

दारा शिकोह— (१६१५-१६५९ ई०)—शाहजहां की तुलना में उसका ज्येष्ठ पुत्र शाहज़ादा दारा शिकोह चित्रकला का परमप्रेमी सिद्ध हुआ। दारा आध्यात्मिक रुचि का व्यक्ति था। हिन्दू विद्वानों और चित्रकारों के प्रति उसे प्रेम था। दारा का चालीस चित्रों का मुरक्का या चित्राधार (अलबम) जो अब इंडिया आफिस लाइब्रेरी, लन्दन में सुरक्षित हैं, उसके अगाध कलाप्रेम का परिचायक है। दारा द्वारा अपनी प्रिय पत्नी नादिरा बेगम को उपहार में दिया हुआ एक चित्राधार भी इस मुरक्के में संग्रहीत है। यह मुरक्का उसने नादिरा बेगम को १६४१-४२ ईसवी में भेंट किया था।[1]

औरंगजेब—१६५८ ईसवी में शाहजहां को बन्दी बनाकर उसका चतुर्थ पुत्र औरंगजेब आलमगीर के नाम से राजसिंहासन पर बैठा। औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसने हिन्दुओं को उच्च पदों से हटा दिया और जजिया फिर से लगा दिया। राजपूत राजा मुगल साम्राज्य के विरोधी हो गये और उन्होंने विद्रोह आरम्भ कर दिया। इस प्रकार जो शान्तिपूर्ण कलात्मक वातावरण उसके पूर्वजों ने बनाया था समाप्त हो गया, और कलाकार, विद्वान, हिन्दू सामन्त तथा सरदार आदि सब ही मुगल दरबार छोड़कर इधर उधर भागने लगे।

चित्रकारों की स्थिति औरंगजेब ने कला और कलाकारों के वातावरण को उसी प्रकार समाप्त कर दिया जिस प्रकार साकी और रिन्द (सुरा पिलाने वाले और सुरा पीने वाले) की महफिल में कोई मोमिन (पवित्र व्यक्ति) बाधा बन जाता है। उसने चित्रकला को धर्म निषेध घोषित कर दिया और दरबार में चित्रकला का कोई भी स्थान न रहा। कलाकारों को आश्रय और संरक्षण प्राप्त करने के लिये छोटे-छोटे राज्यों की ओर भागना पड़ा। अधिकांश चित्रकार पहाड़ी राज्यों की ओर चले गये।

प्रायः मुगल सम्राट ही नहीं बल्कि अमीरउमरा भी अपने निजी चित्रकार नियुक्त करते थे। अतः दरबारी संरक्षण समाप्त हो जाने पर भी कुछ चित्रकार

---

1. टिप्पणी—'भारतीय चित्रकला' प्रथम संस्करण लेखक वाचस्पति गैरोला ने (पृष्ठ १८४) दारा को शाहजहां का अग्रज (बड़ा भाई) बताया है जबकि दारा शिकोह शाहजहां का ज्येष्ठ पुत्र और औरंगजेब का अग्रज था। उन्होंने नादिरा बेगम को भेंट किये गये चित्राधार के प्रथम चित्र के बनने का समय १४९८ ई० माना है जो काल संगत नहीं है क्योंकि भारत में बाबर ने १५२७ ई० में पानीपत के युद्ध के पश्चात् मुगल वंश की नींव डाली। इस प्रकार यह चित्र बाबर से भी पूर्व का हुआ और फारस में बना होगा जबकि इस चित्राधार के चित्र भारत में बने हैं।

सम्भवतः इन अमीरों के संरक्षण में कार्य करते रहे । औरंगजेब चित्रकला का कट्टर विरोधी था परन्तु फिर भी उसके युवा-अवस्था से लेकर वृद्धावस्था तक के चित्र मिलते हैं । यद्यपि आलमगीर चित्रकला का विरोधी था तो भी उसने अनुमानतः राजनीतिक उद्देश्य या आनन्द के लिए चित्र बनवाये, ऐसे भी कुछ प्रमाण मिलते हैं । जब उसने ग्वालियर के किले में कुछ राजबन्दियों को, जिनमें उसका ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद सुल्तान भी कैद किया था तो कहा जाता है कि वह उनको केवल एक प्याला पोस्त की खीर ही खाने जो देता था । ऐसा कहा जाता है कि इन भूखे राजबन्दियों के शारीरिक परिवर्तनों को देखने के लिए या अपने ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद सुल्तान की ममता के कारण उसने समय-समय पर उनके चित्र बनवाये ।[1] इस प्रकार चित्रकला के जिस वृक्ष का बीजारोपण अकबर महान् ने किया था और सम्राट जहांगीर ने जिसको सींचा, उसको औरंगजेब ने समूल नष्ट कर दिया ।

औरंगजेब से परवर्ती मुगल कला—१७०७ ई० में औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात मुगल साम्राज्य की अवस्था बहुत निर्बल हो गई । औरंगजेब के समय से मुगल साम्राज्य के साथ ही चित्रकला का पतन होता चला गया । यद्यपि शाहआलम प्रथम (१७०७-१७१२ ई०), जहाँदारशाह (१७१२ ई०), फर्रूखसियर (१७१३-१७१६ ई०), रफीउद्दौला (१७१६ ई०) तथा मुहम्मदशाह (१७१६-१७४८ ई०) के समय तक मुगल शैली में कुछ पहली की सी विशेषतायें दिखाई देती रहीं परन्तु अन्तःपुर के दृश्य या दरबार के नैतिक अधिपतन के दृश्य ही चित्रकारों की तूलिका के विषय बन गये थे ! अधिकांश संगीत गोष्ठियो, मुजरों, मद्यपान दृश्यों तथा काम-क्रीड़ाओं के चित्र ही बनाये जाने लगे । इसी समय राजस्थानी चित्रकला ने मुगल शैली की कुछ विशेषतायें ग्रहण की और दूसरी ओर राजस्थानी-शैली का परवर्ती मुगल कला पर गहरा प्रभाव पड़ा । इस प्रकार दोनों शैलियों की परम्परा का मिश्रण हो गया और दोनों शैलियां घुल मिल गईं । कभी-कभी इन सम्मिश्रित शैली के चित्रों को किसी एक शैली के अन्तर्गत रखना कठिन हो जाता है ।

मुगल दरबार का जो कुछ जीर्ण-शीर्ण वैभव रह गया था वह अहमदशाह (१७४८-१७५४ ई०), आलमगीर द्वितीय (१७५४-१७५६ ई०), शाहआलम द्वितीय (१७५६-१८०६ ई०), अकबर द्वितीय, (१८०६-१८३७ ई०), बहादुरशाह द्वितीय (जफर) (१८३७-१८५७ ई०) के समय तक पूर्ण रूपेण समाप्त हो गया । शाह आलम नाम मात्र का सम्राट था क्योंकि नादिरशाह, अहमदशाह अब्दाली, सूरजमल जाट, रुहेला तथा मराठा आक्रमणकारियों और लुटेरों ने दिल्ली को लूटकर मुगल राजकोश

---

1. 'इन्डियन पेन्टिंग अन्डर दी मुगल्स'—लेखक परसी ब्राउन, पृष्ठ १०२ ।

टिप्पणी—परसी ब्राउन महोदय ने भी मुहम्मद सुल्तान राजबन्दी के शारीरिक परिवर्तन देखने के लिए बनवाये गये चित्रों का वर्णन दिया है परन्तु पोस्त के आहार का वर्णन नहीं दिया है ।

को खाली कर दिया और साथ में बहुत सी बहुमूल्य सामग्री, जिसमें सम्भवतः चित्र तथा हस्तलिखित पोथियां भी सम्मिलित थीं, आक्रान्ता अपने साथ ले गये। ऐसी खराब अवस्था में भी नाममात्र के परवर्ती शासक औरंगजेब के पश्चात् शाह आलम तक विधिवत् दिल्ली दरबार की चित्रशाला चलाते रहे। इन खानदानी (वंश क्रमानुगत) परवर्ती चित्रकारों के पास प्राचीन चित्रों के चर्बे थे, जो उन्हें वंशानुगत परम्परा (विरासत) में मिले थे। इन चर्बों की सहायता से बाजारू चित्रकार नवीन चित्र बनाते रहे। शाहआलम कालीन चित्रों पर बहुधा जाली राजसी-मोहरें लगाकर भी चित्रकार संरक्षकों को धोखा देने लगे। यह भी सम्भव हो सकता है कि दिल्ली के मुगल पुस्तकालय तथा चित्र निकेतन की लूट के पश्चात् यह अनुकृति चित्र शाहआलम के लिए बनाए गए हों और इसलिए उनपर शाही मोहरें लगाई गई हों। चित्रकारों की स्थिति खराब हो गई और उनको जीवकोपार्जन के लिए बाजारू बनना पड़ा।

रूहेला कलम—मुरशीदाबाद, बरेली (रुहेलखण्ड), लखनऊ तथा हैदराबाद, जो पहले मुगल प्रान्तों की राजधानियां थीं स्वतन्त्र हो गईं और यहां पर परवर्ती मुगल शैली संरक्षकों की रुचि के आधार पर चलती रही। रुहेला शक्ति के उदय से अनेक चित्रकार बरेली जा बसे और रुहेला सरदार हाफिज रहमत खां के समय तक पोथीखाने (कुतुबखाने) के लिए सचित्र पुस्तकें तैयार करते रहे। हेस्टिंग्ज तथा रुहेला सरदार हाफिज रहमत खां के बीच १७७४ ई० में मीरानपुर कटरा में घमासान युद्ध हुआ और रुहेलाओं की पराजय के पश्चात् रामपुर को छोड़कर शेष रुहेला राज्य अवध के साथ जोड़ दिया गया। अब रुहेला पोथियां बरेली के हेस्टिंग्ज-रुहेला युद्ध के पश्चात् अंग्रेजी अधिकारियों ने लूटीं और बरबाद कीं। कुछ पोथियां लखनऊ का नवाब आसफउद्दौला अपने साथ ले गया जहां वे पुनः अंग्रेजों ने बरबाद कीं (१८५८ ई०) और यहां से यह पोथियां ब्रिटिश संग्रहालय लन्दन में पहुंच गईं। ब्रिटिश म्युजियम में हाफिज रहमत खां की एक सचित्र पांडुलिपि प्राप्त है। आजादी की लड़ाई लड़ने वाले बहादुर हाफिज रहमत खां के वंशजों के पास अभी भी इस शैली की चित्र पोथियाँ हैं परन्तु उनकी कला प्रकाश में नहीं आ सकी है। बरेली के पुराने शहर में काजी परिवार के पास अभी भी ऐसी सचित्र पोथियां हैं। रुहेला शासन के पतन के पश्चात् रुहेला चित्रकार गढ़वाल राज्य में आ बसे या रामपुर में नवाब के संरक्षण में चित्र बनाते रहे। रामपुर का नवाब अंग्रेजों से मिल गया था। अतः अनेक चित्रकार कलकत्ता या पटना चले गये। बरेली का प्रसिद्ध चित्रकार बाहाब तथा रामपुर का चित्रकार बब्बन कलकत्ता जा बसे। बहाब कलकत्ता के रंगमंचों के लिए जंगल दृश्य (या स्टेटस) बनाने के लिये प्रसिद्ध हुआ।

मुगलकाल की चित्रकला

बाबर तथा हुमायुं के काल की चित्रकला—भारतीय इतिहास में मुगल साम्राज्य एक नवीन पृष्ठ है और उसकी चित्रकला एक सुखद संयोग के रूप में

दरबारी भव्यता और भोग-विलास का उल्लास अपने प्रकोड़ में संचित किए है। न जाने कितने विदेशी और स्वदेशी चित्रकारों के महान परिश्रम और शिल्प साधना के परिणामस्वरूप मुगलकला का जन्म हुआ। आरम्भिक मुगल चित्रों की शैली परवर्ती कला से विशेष पृथकत्व लिए हुए है। आरम्भिक चित्र ईरानी फारसीपन लिए हैं और इनमें ईरानी शैली का अनुकरण किया गया है। इस प्रकार की शैली के चित्र-उदाहरण भारतवर्ष में बहुत कम उपलब्ध हैं। इन चित्रों में फारस की पन्द्रहवीं शताब्दी की तिमरुदी-शैली से बहुत समानता है। इस प्रकार के अधिकांश चित्र हुमायुं के समय के हैं। भारत में आते हुये बाबर जिन पुस्तकों को अपने साथ लाया उनमें 'शहनामा' की सचित्र प्रति भी थी। यह प्रति लगभग २०० वर्ष तक मुगल शाही कुतुबखाने में रही और बाद में अंग्रेजों के हाथ लग गई और लन्दन पहुंची। आज यह प्रति एशियाटिक सोसायटी में सुरक्षित है। यह प्रति फारसी कला की निधि है। पहले कहा जा चुका है कि बाबर अपने अल्प शासन-काल में कलाप्रेम प्रदर्शित नहीं कर सका था।

१५५० ई० तक हुमायुं का जब काबुल पर अधिकार हो चुका था तो दो विदेशी चित्रकार ख्वाजा अब्दुस्समद तथा मीर सयैदअली ईरान से हुमायुं के संरक्षण में काबुल आ गये थे जिनका पहले उल्लेख किया जा चुका है। इन चित्रकारों ने हुमायुं की आज्ञा पर 'दास्ताने अमीर हम्जा' के चित्र बनाना प्रारम्भ कर दिये थे जो पूर्णतया फारसी शैली के थे। इस चित्रावली के लगभग १४०० चित्र बाद में अकबर के समय में बनाये गये इस प्रकार हम्जा चित्रावली अकबर के समय में बनकर पूर्ण हुई। इस चित्रावली में आरम्भिक चित्र-शैली कों बनाये रखने की चेष्टा की गई। इस प्रकार के आरम्भिक चित्रों के चेहरों की बनावट, प्रकृति तथा पहनावा ईरानी फारसी ढंग का है और रेखा में चीनी प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस शैली के उदाहरण बहुत कम हैं। यह चित्र लन्दन तथा वियना आदि के संग्रहालयों में ही प्राप्त हैं।

प्रारम्भिक चित्रों पर ईरानी शैली का प्रभाव—आरम्भिक मुगल शैली के चित्र ईरानी-फारसी चित्रों के समान हैं और मोजाइक चित्रों के समान चमकदार हैं। अधिकांश चित्रों में चमकदार लाल, नीले तथा, हरे रंगों का प्रयोग किया गया है और चेहरे की सीमा रेखा एक वक्र के द्वारा बनाई गई है। आकृतियों में वह सजीवता नहीं है जो परवर्ती चित्रों में दिखाई पड़ती है। कपड़ों की बनावट सरल और सपाट है उनमें शिकन या फहरहन का आभास नहीं मिलता और हाशिये बेलबूटों के द्वारा सजाये गए हैं। आकृतियों की अङ्ग-भङ्गिमायें तथा हस्त मुद्रायें-निर्बल हैं। चित्रों की सीमा रेखायें कोणदार चीनी ढग की हैं यह चित्र यथार्थ न होकर अलंकारिक हैं, परन्तु पृष्ठभूमि में दरारदार सूखे पर्वतों तथा वृक्षों इत्यादि को अलंकारिक विधान में बनाया गया है। वृक्षों को अधिकांश आच्छादित बनाया गया है। इन चित्रों में क्षितिज रेखा को बहुत ऊपर बनाया गया है जिससे चित्र में अत्यधिक

स्थानान्तर या दरी का बोध होता है। चित्रों की पृष्ट-भूमि तथा ग्राकृतियों के वस्त्र ग्रादि में सोने के रंग का बड़ी सुन्दरता से प्रयोग किया गया है। सोने के रंग को उभार देने के लिए चित्रों की सीमा रेखायें काले रंग से बनाई गई हैं। कपड़ों, पर्दों, कालीनों तथा भवन ग्रादि में पेचीदा (जटिल) ग्रालेखन (डिजाइन) बनाये गये हैं।

ईरानी-फारसी शैली के चित्रों में दार्ष्टिक परिप्रेक्ष्य का प्रयोग नहीं दिखाई पड़ता है और न ही चित्रों में गठनशीलता तथा गोलाई लाने के लिए छाया का प्रयोग किया गया है। यह चित्र सपाट रंगों तथा रेखा के प्रयोग से बनाए गए हैं परन्तु चित्रों का संयोजन तथा योजनायें प्रभावशाली और सुन्दर हैं।

अकबर कालीन चित्र—अकबर ने १५६६ ई० में फ़तेहपुर सीकरी के भवनों में अलंकरण कार्य प्रारम्भ करा दिया। इन महलों में भित्तिचित्र भी बनाये गए। यह चित्र बल्लुआ पत्थर की दीवारों पर सफेद अस्तर लगाकर कागजी चित्रों की पद्धति पर बनाये गए प्रतीत होते हैं। अधिकांश चित्र फारसी शैली के हैं, परन्तु रंग भारतीय हैं। चित्रों में चीनी प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है और अजगर तथा बादल आदि चीनी शैली में बनाये गये हैं।

अकबर के समय में चिकत्रला का अत्यधिक विकास हुआ और अनेक प्रकार के चित्र बनाये गये जिसमें कागजी पुस्तक चित्रों या पोथी चित्रों तथा शबीह चित्रों की अधिकता थी। उसके समय के चित्रों को चार वर्गों के अन्तर्गत रक्खा जा सकता है।

(१) अभारतीय काव्य या कथाओं, या फारसी कथाओं के चित्र—हम्जानामा चित्रावली इस प्रकार का उदाहरण है जिसका निर्माण १५६०-१५७५ ई० के मध्य अकबर ने कराया। इसी प्रकार शाहनामा की सचित्र प्रतियां आदि भी तैयार की गई। खमसानिजामी तथा बहारिस्तानेजामी पर अकबर ने विशेष रूप से चित्र बनवाये।

(२) भारतीय महाकाव्यों या कथाओं के चित्र—इन चित्रों के विषय भारतीय काव्यों जैसे रामायण, महाभारत, नलदमयन्ती कथा, नैषधचरित्र, हरिवंश सरितसागर आदि, पर आधारित हैं।

(३) ऐतिहासिक चित्र—अकबर के शाही पोथीखाने में ऐतिहासिक महत्व की अनेक पुस्तकें थीं। इस प्रकार के ऐतिहासिक चित्र तारीखेइल्फी, तारीखेनदाने तैमूरिया, अकबरनामा आदि की प्रतियों में बनाये गये।

(४) व्यक्ति चित्र—अकबर को व्यक्ति-चित्रों या शबीहों का बहुत शौक था। उसने अपने तथा अपने दरबारियों के व्यक्ति-चित्र बनवाये। इस प्रकार राज्य के विशिष्ट और महान् व्यक्तियों और पूर्व-पुरुषों के चित्रों का एक बड़ा मुरक्का (एलबम) उसने तैयार कराया।

अकबर कालीन सचित्र पोथियाँ—अकबर 'अमीरहम्जा' की कहानी 'दास्ताने अमीरहम्जा' में विशेष रुचि लेता था। इस कथा में ३६० कहानियाँ हैं जिनको वह कथावाचक के रूप में अन्तःपुर की वेगमों को बड़े शौक से सुनाता था। हुमायुं के समय में ही इस विषद कथा के चित्र बनाये जाने लगे थे और इसका पर्याप्त कार्य समाप्त हो गया था। 'मतीरउलउमरा' के अनुसार अकबर के समय में हम्जानामा के चित्र बनते रहे।[1] इस प्रकार अकबर ने आदि से अन्त तक अमीरहम्जा की सचित्र प्रतिलिपि बनवाने की आज्ञा दी। अकबर ने इस कथा को बारह खण्डों में विभाजित कराया और इनमें से प्रत्येक खंड में एक सौ जुज थे। प्रत्येक जुज जिरा के बराबर लम्बा था और प्रत्येक जुज में दो चित्र थे। इस प्रकार इस प्रतिलिपि में २४०० चित्र बनाये गये थे। इन चित्रों के ऊपर लिपि में चित्र का विवरण लिखा जाता था। ख्वाजा अताउल्लाह लिपिक या मुन्शी ने इन चित्रों पर विवरण लिखे है। मुगल दरबार में मुन्शी को 'काजवीन' के नाम से पुकारा जाता था। अमीरहम्जा के चित्रों में फारसी का प्रभाव अधिक है। यह चित्र सूती कपड़े पर अस्तर लगाकर बनाये गये हैं और इनमें से कुछ वोस्टन संग्रहालय में सुरक्षित हैं यह चित्र बड़े आकार के हैं और ६८×५२ सेन्टीमीटर लम्बाई तथा चौड़ाई के हैं। कालान्तर में अकबर की चित्रशाला में फारसी प्रभाव कम होता गया और राजस्थानी, काश्मीरी या भारतीय प्रभाव बढ़ता गया। वास्तव में यहीं से मुगल शैली का पूर्ण विकसित रूप आरम्भ हो जाता है। अकवर के समय में हम्जानामा के अतिरिक्त 'शाहनामा,' 'चङ्गेजनामा,' 'जफरनामा','तवारीख-खाननाने तैमूरिया, 'रज्मनामा'(महाभारत का फारसी अनुवाद), 'वाकयात-वाबरी' (बाबर की आत्मकथा), 'अकबरनामा', 'अनवारे सुहैली' (पंचतन्त्र का फारसी अनुवाद), 'आयारदानिश' (पंचतन्त्र का फारसी अनुवाद), 'तारीखी रशीदी (दरावनामा), 'खमसानिजामी', 'बहारिस्ताने जामी',रामायण', 'हरिवंश', 'महाभारत', 'योगवाशिष्ट', 'नलदमयन्ती कथा', 'शकुन्तला', 'कथा सरित-सागर', 'दशावतार', 'कृष्णचरित', तूतीनामा', अजीबुलमखलूकात', आनेईअकबरी,' 'कलीला-व्य-दिमनाह' (रूदगी कवि के द्वारा किया गया महाभारत का फारसी अनुवाद) आदि ग्रन्थों की सचित्र प्रतिलिपियां तैयार की गई और अकबर के पुस्तकालय में रक्खी गई। शाहनामा की प्रति में ही जामी कवि के काव्य का एक भाग संकलित है। आज इन सचित्र ग्रन्थों की प्रतियां इधर उधर संग्रहालयों में फुटकर पृष्ठों के रूप में या समुचित अवस्था में पहुंच गई हैं। अधिकाँश कृतियां विदेशी संग्रहालयों में ही प्राप्त हैं इन प्रतिलिपियों में से ,नलदमयन्ती', 'कलीला-व्य-दिमनाह' तथा 'आयार-दानिश' की प्रतियाँ ब्रिटिश म्युजियम इंगलैण्ड तथा कुछ अन्य संग्रहालयों में प्राप्त हैं। ब्रिटिश म्युजियम में 'बाबरनामा' तथा दराबनामा' की प्रतियां भी सुरक्षित हैं। और 'दराब-

---

1. कैटलाग आफ इन्डियन क्लेक्शन्स' (पार्ट सिक्स) मुगल पेंटिंग लेखक-आनन्द कुमार स्वामी पृष्ठ ४।

नामा' की इस प्रति में ही जामी की कविता का एक भाग है। 'बाबरनामा' की दो अन्य सचित्र प्रतियां प्राप्त हैं, जिनमें से एक प्रति के फुटकर पृष्ठ साउथ केसिङ्गटन संग्रहालय में तथा लुव्र संग्रहालय (फ्रांस) के सुरक्षित है।

अकबरनामा की प्रति के ११७ चित्र 'अमीरहम्जा' प्रति के २५ पृष्ठ तथा 'बाबरनामा' प्रति के कुछ फुटकर पृष्ठ विक्टोरिया तथा अल्बर्ट संग्रहालय साउथ केसिङ्गटन में सुरक्षित हैं। बाबरनामा के इन फुटकर पृष्ठों की अवस्था खराब है। 'अमीरहम्जा' प्रति के ६१ पृष्ठ आर्ट एण्ड इन्डस्ट्री म्यूजियम वियना में हैं और कुछ अन्य फुटकर पृष्ठ यूरोप के दूसरे संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। 'खम्सानिजामी, के कुछ फुटकर पृष्ठ वोडलीयन लाइब्रेरी- आक्सफोर्ड तथा एक प्रति मि० डायसन पेरीन्स, मेलबर्न वोरकेस्टशायर-इङ्गलैण्ड (Mr. Dyson Perrins of Malvern Worcesteshire) के संग्रह में हैं। हम्जा चित्रावली के चौदह सौ पृष्ठ-पटचित्रों में से अब डेढ़ सौ चित्रों का ही अनुमान लगता है इनमें से दो बम्बई के श्री आर्देशिर संग्रहालय में एक हैदराबाद निजाम संग्रहालय में तथा दो भारत कला भवन काशी संग्रहालय में, और एक बड़ौदा संग्रहालय में हैं।

इन सचित्र पोथियों की प्रतियों में से भारतवर्ष में केवल 'रज्मनामा', 'तैमूर-नामा' तथा 'बाबरनामा' की प्रतियां ही उपलब्ध हैं। रज्मनामा' तथा 'रामायण' की एक-एक प्रति इस समय हिज हाईनेस महाराजा जयपुर के सग्रह में सुरक्षित है। 'तैमूरनामा' की एक प्रति बांकीपुर पुस्तकालय में सुरक्षित है। बाबरनामा की प्रति राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में सुरक्षित है। इस प्रति को सग्रहालय ने 'आगरा' कालेज-आगरा' से प्राप्त किया था। 'तारीखे खानदाने तैमूरिया' की एक प्रति जो सचित्र है ख़ुदाबख्श खां पुस्तकालय, पटना मे सुरक्षित है। अकबर के समय में सम्भवतः रसिकप्रिया नामक हिन्दी काव्य पर भी चित्र बनाये गये।

अकबर ने पोथी चित्रों के बनवाने में विशेष रुचि दिखाई। इन पोथियों के अतिरिक्त कई अन्य छिन्न-भिन्न पोथियों के पृष्ठ प्राप्त हुए हैं जिनमें तारीख-रसीदी', 'अनवारे-सुहेली', 'तारीख-अल्फी' और हरिवंश के फारसी 'अनुवाद' के चित्र प्राप्त हैं। इनमें से 'अनवारे सुहेली' की अकबर कालीन चार प्रतियों का पता चलता है जिनमें से एक जो लाहौर में चित्रित की गयी थी, का समय १५९६ ई० है। इस प्रति का एक पृष्ठ भारत कला भवन, काशी में सुरक्षित है। दूसरी प्रति ब्रिटिश सग्रहालय, लंदन में सुरक्षित है। सम्भवता यह प्रति अकबर के बाद की है। तीसरी प्रति रामपुर स्टेट लायब्रेरी, रामपुर तथा चौथी रायल एशियाटिक सोसायटी, लन्दन में सुरक्षित है।

इन पोथियों की बहुत सी प्रतियों पर शाही मुहरें तथा मुगल बादशाहों के लेख भी प्राप्त हैं। पटना संग्रहालय वाली 'तारीखे खानदाने तैमूरिया' की प्रति पर शाहजहां की शाही मोहर तथा लेख हैं। शाहजहां को शाही पुस्तकालय की पुस्तकों पर लेख लिखने का शौक था। इस प्रति में दसवन्त का बनाया हुआ चित्र भी है।

इस पोथी में तैमूर वंश का आरम्भ से लेकर अकबर के शासन काल के बाइसवें वर्ष (१५७७ ई०) तक का इतिहास है। इस प्रति के निर्माण के समय सम्भवतः १८५० ईसवी १८८५ ईसवी के मध्य रहा होगा। लखनऊ संग्रहालय में 'तूतीनामा के कुछ पृष्ठ सुरक्षित हैं।

महाभारत का अनुवाद 'रज्मनामा' एक वर्ष के परिश्रम के पश्चात् १५८२ ई० में पूरा हुआ। इसकी सचित्र प्रति बादशाह के लिये १५८८ ई० में तैयार की गई जिसकी तीन जिल्दें थीं। परन्तु नादिरशाह के आक्रमण से पूर्व मुहम्मदशाह ने इस प्रति को महाराजा जयसिंह सवाई (जयपुर) को भेंट में दे दिया था। इस प्रकार यह आश्चर्यजनक पोथी नादिरशाह की बरबादी से बच गई और महाराजा जयपुर के संग्रह में सुरक्षित है। साउथ-केसिङ्गटन वाली 'अकबरनामा' की प्रति पर सम्राट जहांगीर का लेख है। यह प्रति १६०२ ईसवी तक बनकर तैयार हुई, परन्तु जहांगीर ने इस पर अपना लेख लिख दिया है। अनुमानतः इस प्रति का कार्य अकबर के समय में ही समाप्त हो गया था। इस प्रति में एक सौ से अधिक चित्र हैं।

अकबर कालीन शबीह चित्र—पोथी चित्रों के अतिरिक्त अकबर के समय में बादशाह, विदूषकों, दरबारियों, सन्तों, साधुओं आदि की शबीहां तैयार की गयीं। अब्बुलफजल ने लिखा कि"········जो लोग मर गये थे उनको इन चित्रों से नवीन जीवन और जीवित पुरुषों को अमरत्व प्राप्त हो गया।" बादशाह अकबर के अनेक चित्र प्राप्त हैं, जिनमें से दो बोस्टन संग्रहालय और एक इन्डिया आफिस लायब्रेरी में सुरक्षित है।

अकबर का पोथीखाना—अकबर ने इन चित्रित तथा हस्तलिखित पुस्तकों का एक विशाल संग्रह तैयार कराया और यह पोथियां एक विशाल शाही पुस्तकालय में संजोई गई। इस पुस्तकालय में लगभग २४,००० पोथियों का संग्रह हो गया था जिनका मूल्य साढ़े छः लाख रुपया था। पोथियों के एक-एक भाग (जिल्द) का मूल्य २७० रुपया था। अकबर ने इन पुस्तकों को लिखने, सजाने या अलंकृत करने के लिए तथा जिल्द तैयार करने के लिये कुशल और विख्यात कारीगरों को नियुक्त किया था। फैजी के निधन (१५८५ ईसवी) के पश्चात् उसके पुस्तकालय से ४००० पुस्तकें शाही पुस्तकालय में आईं, इस प्रकार शाही पुस्तकालय में पोथियों की संख्या ३८,००० तक पहुंच गयी। आज यह पोथियां बहुत कम प्राप्त हैं और इनके साथ में अनेक चित्रकारों की कृतियां भी समाप्त हो गई हैं।

अकबर के शाही पुस्तकालय के समान ही विख्यात अब्दुल रहीम खानखाना का अपना पोथी संग्रह था जिसमें हस्तलिखित पांडुलिपियां तथा सचित्र पोथियां थीं। यह विशाल पुस्तक संग्रह औरंगजेब के शासन काल के पश्चात् आक्रमणकारियों के द्वारा लूट में तितर-बितर हो गये।

अकबर कालीन चित्रों की विशेषतायें—अकबर के समय में अधिकांश

फारसी तथा भारतीय काव्यों, कथाओं तथा ऐतिहासिक घटनाओं या दरबारी जीवन से सम्बन्धित चित्र बनाये गये ।

अकबर कालीन चित्रों में रंग चमकदार हैं जो मीने के समान चमकते हैं । इस समय के चित्रों में जो रंग प्रयोग किये गये उन रंगों को तीन वर्गों के अन्तर्गत रखा जा सकता है –(१) चमकदार रंग जिनमें सिंदूर, प्योड़ी, और लाजवर्दी, सामान्य चमक वाले रंग हिंगुल, गुलाली (रक्त और लाल रंग) और जंगाल (हरा) है, (२) बुझे हुए रंग जिनमें हिरौंजी, गेरू, रामरज, खड़िया तथा हरा ढावा और गंदे रंगों में नील तथा स्याही (काजल) हैं, (३) सफेद रंग का प्रयोग रंगों को हल्का करने के लिए या स्वतन्त्र रूप से किया गया है । अकबर कालीन चित्रों में मूल रगों का प्रयोग है और रंगों में स्याही मिलाकर साये का रंग नहीं बनाया गया है, इस कारण रंग गन्दे और धुंधले नही पड़े हैं ।

हम्जा चित्रावली के पश्चात् यह शैली अपने पूर्ण यौवन को प्राप्त कर लेती है और इस समय की मुगल चित्रकला में रास्थानी, ईरानी, काश्मीरी शैली की अनेक विशेषतायें अपना प्रभाव डालने लगती हैं और यह शैली पूर्णरूपेण एक भारतीय शैली बन जाती है । इस शैली के उत्कृष्ट उदाहरण जयपुर के 'रज्मनामा' तथा 'अकबरनामा के चित्रों में मिलते हैं । इन चित्रों में रेखाएं गोलाई युक्त हैं तथा आलेखन में डौल या गोलाई का आभास प्रतीत होता है । इन चित्रों में रेखांकन गतिशील है, एक चश्म चेहरे बनाये गये हैं हस्तमुद्राओं, वस्त्रों की फरहन तथा शिकनों, वृक्षों की पत्तियों के रेखांकन में यथार्थता बारीकी तथा स्वाभाविकता है । इन चित्रों में ईरानीपन यदि कहीं दिखाई पड़ता है तो नक्काशी या अलंकारिक आलेखन में, परन्तु अलंकरण को इन चित्रों में विशेष महत्व नहीं मिला है ।

जहांगीर कालीन चित्र—जहांगीर के समय में पोथी चित्रों का निर्माण उसी प्रकार चलता रहा । इस समय में चित्रकार की कल्पना के लिए अधिक क्षेत्र तथा स्वतन्त्रता प्राप्त हुई । कलाकारों का एक दल बादशाह के साथ रहता था । चित्रकारों की सूची तैयार की जाती थी और प्रत्येक चित्रकार का नाम सूची में लिखा जाता था । बादशाह जहांगीर ने तत्कालीन दरबारी जीवन और अपने जीवन को चित्रित कराने में प्रमुख दिलचस्पी ली ।

जहाँगीर कालीन चित्रों पर चित्रकारों के द्वारा लिखित नाम प्राप्त नहीं होते । प्रायः यह नाम मुन्शी लिखा करते थे और पोथियों के साथ चित्रकारों के नामों की सूची को भी नहीं जोड़ा जाता था । जहांगीर के दरबार के प्रिय कलाकार विशनदास, फर्रुखबेग, अब्बुल हसन, मंसूर, मनोहर तथा गोवर्धन थे । अब्बुल हसन नामक चित्रकार ने 'जहांगीरनामा' की प्रति का मुख्य चित्र बनाया था । 'जहांगीर-नामा' की यह पहली प्रति जहांगीर के सिंहासनारोहण के चौदहवें वर्ष में बनकर तैयार हुई थी । बादशाह ने यह पहली प्रति शाहजहां को अपने लेखों सहित भेंट की। पन्द्रहवें वर्ष में 'जहाँगीरनामा' की दूसरी प्रति तैयार हुई जो जहांगीर ने अपने दूसरे

पुत्र परवेज के लिए भेजी परन्तु इन दोनों प्रतियों के चित्रों आदि के विषय में यह नहीं बताया जा सकता कि वे कहाँ है। वैसे तो 'जहाँगीरनाम' के अनेक फुटकर पृष्ठ इधर-उधर भारतीय संग्रहों में प्राप्त है। 'जहांगीरनामा' की बादशाह जहांगीर वाली निजी प्रति जिसका कुछ भाग नष्ट हो चुका है रामपुर स्टेट लायब्रेरी (रामपुर राज्य पुस्तकालय) में सुरक्षित है।

फुटकर चित्रों की प्रथा —जहांगीर के समय में चित्रों की जिल्दें तैयार नहीं की गईं बल्कि चित्रों को स्वतन्त्र रूप से बनाया जाता था। जहांगीर ने अपने मनो-रंजन के अतिरिक्त दया, सहृदयता, मैत्री, क्रोध आदि के सन्तोषार्थ भी चित्रों का निर्माण कराया जिसका उल्लेख उसने अपनी आत्मकथा में स्वयं किया है और इस प्रकार के चित्रों के अनेक उदाहरण भी प्राप्त हैं। जहांगीर ने स्वयं सुल्तान अलाउद्दीन शाह (१३५१ ई० से १३८८ ई०) तथा उसके सचिव ख्वाजा हसन के चित्रों का उल्लेख किया है। यह दोनों चित्र वोस्टन संग्रहालय में सुरक्षित है और इन चित्रों का समय सोलहवीं शताब्दी का तीसरा चरण है। इस प्रकार का एक अन्य चित्र राज्य पुस्तकालय में है जिसमें अमीर शाईक नोयान वली को अंकित किया गया है। समय के अनुसार यह चित्र अकबर कालीन हो सकता है।

जहांगीर कालीन शबीह चित्र —जहांगीर ने अपने आत्म चरित्र में स्वयं लिखा है कि विशनदास शबीह लगाने में वेजोड़ है। जहांगीर ने अपने राजदूतों को शाहअब्बास (ईरान) के दरबार में १६१७-१८ ई० में भेजा और उसने इनके साथ विशनदास चित्रकार को भेजा था। जहांगीर ने लिखा है कि—"विशनदास ने मेरे भाई 'शाहअब्बास' की ऐसी सच्ची शबीह लगाई कि मैंने जब उसे शाह के सेवकों को दिखाया तो वह मान गए।" बादशाह ने विशनदास को एक हाथी और मूल्यवान पुरुस्कार दिये। इस चित्र की एक परवर्ती अनुकृति वोस्टन संग्रहालय में है। बिशनदास के बनाये चित्र बहुत कम प्राप्त हैं। एक चित्र में उसने शेखफल नामक एक सूफी सन्त का चित्रण किया है जो कला भवन, काशी में सुरक्षित है। शेख फूल अपनी कुटी के आगे अपने विचार में मस्त है और उनके दर्शनों के लिए भक्त खड़े हैं, ऊपर एक घना नीम का वृक्ष है। जहांगीर को सच्चे साधु सन्तों के प्रति अनन्य श्रद्धा थी, वह उनके चित्र बनवाया करता था। जहांगीर ने अपने आत्म चरित्र में एक दरबारी इनायत खां का वर्णन किया है जो मृत्यु के समय बहुत दुर्बल और कंकाल मात्र हो गया था। बादशाह ने सहृदयता के कारण चित्रकार से उसकी तस्वीर बनवाई जो अब 'वोडलियन लायब्रेरी' आक्सफोर्ड में सुरक्षित है। इस चित्र में निर्बल मरणासन्न इनायत खां तकियों के सहारे लेटा है और उसकी पसलियां चमक रही हैं और चेहरे पर जैसे मृत्यु की छाया ने अधिकार जमा लिया है—इस चित्र के वातावरण में स्तब्धता है। एक अन्य चित्र में जहांगीर के क्रोध का सुन्दर प्रदर्शन है, यह चित्र रामपुर स्टेट, पुस्तकालय में सुरक्षित है। इस चित्र में जहांगीर का

दरबार मन्दाकर बाग में (आगरा के समीप) दिखाया गया है। जहांगीर ने इस चित्र की घटना का स्वयं रोचक शब्दों में वर्णन किया है। घटना इस प्रकार थी– 'उमरखान के पुत्र कबवाव को अपवित्र लोगों की सोहबत में पाया गया। इस अपराधी के पिता उमरखान तथा दादा मीर अब्दुल लतीफ मुगल दरबार में सम्मानित अधिकारी थे, परन्तु कउबाव लज्जा से नीचे सर झुकाये खड़ा है। उसके पीछे उसके दो साथी अपराधी बने खड़े हैं जिनमें से एक की टोपी में सींग और एक की टोपी में कान लगे हैं। जहांगीर ऊपर की ओर क्रोधित मुद्रा में सिंहासन पर बैठा अपराधी को कारावास की आज्ञा दे रहा है।

उत्सवों के चित्र—गोवर्धन के द्वारा बनाये गये 'आबपासी' या 'गुलाबपासी' के उत्सव के चित्र का सम्राट ने सुन्दर वर्णन दिया है। यह चित्र भी 'रामपुर स्टेट लायब्रेरी' में सुरक्षित हैं।

जहांगीर के सिंहासन रोहण का एक सुन्दर चित्र जो मनोहर ने बनाया है रामपुर राज्य पुस्तकालय में प्राप्त हैं। इस चित्र में ताज-पोशी (राज्य अभिषेक) के उत्सव का सुन्दर दृश्य दिखाया गया है। चित्र के मध्य भाग में दो हाथी हैं जो झूलों आदि से सजे हैं, ऊपर वाला हाथी निशान या ध्वज वाला हाथी है। हाथियों के दोनों ओर तीन-तीन घुड़सवार हैं जो तुरही बजा रहे हैं। इन हाथियों तथा घुड़सवारों का रूख चित्र के बाईं ओर है, इन घुड़सवारों के आगे एक निशानबाज प्यादों की पंक्ति है जो निशान लिए हैं। घुड़सवारों और हाथियों के पीछे एक ओर स्त्रियों और एक ओर गवैयों का दल है। निशान वाले हाथी पर दो झंडे हैं जिनमें से एक झंडे पर शेर तथा दूसरे पर चीनी प्रकार का फोनेक्स-पक्षी तथा ड्रेगन (गरुण तथा अजगर) बना है। इस हाथी पर पीछे एक निशानबाज बैठा है जो पीछे मुड़कर गवैयों को देख रहा है। चित्र की पृष्ठभूमि में भवन है जो चित्र के संयोजन में विशेष महत्व का है। इसी प्रकार का एक चित्र जिसमें शाहजादा खुर्रम का विवाह उत्सव दिखाया गया है बहुत सुन्दर है। यह चित्र इन्डियन म्युजियम कलकत्ता में है।

शिकार के चित्र – शिकार के चित्रों में बादशाह ने बहुत रुचि प्रकट की। शिकार के चित्रों में शेर के शिकार के दो चित्र इन्डियन म्युजियम कलकत्ता में सुरक्षित है। इनमें से एक चित्र बादशाह ने शेर को अपनी बन्दूक की गोली से मार दिया है और शेर को शाही दल चारों ओर से घेरे खड़ा हैं। दूसरे चित्र में बादशाह को शेर से अपनी सुरक्षा करते दिखाया गया। इस चित्र में बादशाह अपनी खाली बन्दूक से शेर को डराते हुए दिखाया गया है। बन्दूक की गोली की चोट खाते ही शेर बादशाह के हाथी की पीठ कर चढ़ गया है। बादशाह खाली बन्दूक से जख्मी शेर को डरा रहा है। उसके हाथी से उसका अंगरक्षक भाग रहा है, पीलवान डर से हाथी के सर पर झुका जा रहा है, घुड़सवार सिपाही बादशाह की मदद के लिये आ गए हैं। इनमें से एक के पास भाला है। इस चित्र को देखने से प्रतीत होता कि है चित्रकार ने

स्वयं इस घटना को देखा था इसी कारण सम्राट का भागता हुआ अंगरक्षक, शेर के झपटने की मुद्रा तथा हाथी की गति यथार्थ बन पड़ी है।

बडोलीयन पुस्तकालय के एक चित्र में मृगों का रात्रि के समय में आखेट दिखाया गया है—शिकारी झाड़ियों में छुप कर बैठे हैं, और कमान संभाले हैं—उनके सामने हिरन आ गए हैं। चित्र का वातावरण सुन्दर है। इस चित्र की पृष्ठ-भूमि में एक संत अपनी कुटी के द्वार पर बैठा बनाया गया है।

संतों के चित्र—संतों के सत्संगों से सम्बन्धित अनेक चित्र भी जहांगीर ने बनवाये। इन्डियन म्युजियम कलकत्ता में 'रात्रि के समय साधुओं की गोष्ठी' का चित्र बहुत सुन्दर है। इसमें पांच साधु एक कुटी के सामने बैठे हैं—वातावरण अन्धकार पूर्ण हैं। मोमबत्ती के झीने प्रकाश में पांचों आकृतियां स्पष्ट दिखाई पड़ रही हैं। इस चित्र पर युरोपियन प्रभाव दिखाई पड़ता है।

पशु-पक्षी तथा पुरुषों के चित्र--बादशाह जहांगीर को पक्षियों, पशुओं तथा पुष्पों के चित्र बनवाने का भी बहुत शौक था। जब कभी वह आश्चर्यजनक पुष्प या पक्षी देखता तो उनकी अपने चित्रकारों से तस्वीर बनवाता था। जहांगीर ने स्वयं ऐसे पक्षियों के रोचक वर्णन दिये हैं। इस प्रकार के एक तुर्की-तीतर का बादशाह ने सुन्दर वर्णन दिया है। इस तुर्की तीतर का चित्र कलकत्ता संग्रहालय में सुरक्षित है। इसी प्रकार का एक मोरनी का चित्र जो मंसूर नामक चित्रकार का बनाया हुआ है, सजीव एवं सुन्दर है परन्तु आज यह चित्र पेरिस में है। उस्ताद मंसूर के अन्य चित्रों में जेबरा, कोयल, कौआ, चील, मुरगी, तीतर, बटेर, चीनी तोते (Parrakeet), पीलू हाथी, ऊंट, ज़ेबरा, जिराफ, बन्दर, लंगूर, शेर, गैंडा, घोड़ा आदि के चित्र बनाये गए। इसी प्रकार के पहाडी तथा मैदानी क्षेत्रों के पुष्प जंगली स्ट्राबेरीज, नरगिस, गुलाब, चेरी, पोस्ता आदि पुष्पों के चित्र बनाये गये और इस प्रकार एक वनस्पति-विज्ञान तथा जीव-विज्ञान सम्बन्धी चित्रों का पोर्ट-फोलियो या संग्रह तैयार हो गया। उस्ताद मंसूर का एक चित्र 'लालपुष्प' जो पीली पृष्ठभूमि पर बना है, उल्लेखनीय है। बादशाह जहांगीर स्वयं लिखता है---"काश्मीर की सीमा में जो पुष्प दिखाई देते हैं उनका हिसाब नहीं लगाया जा सकता और जो नादिर-उल असर उस्ताद मंसूर ने चित्रित किए हैं वे १०० से अधिक हैं।

अब्बुलहसन—बादशाह जहांगीर अब्बुलहसन को बहुत चाहता था। उसकी शैली ईरानी थी। उसके विषय में बादशाह ने स्वयं लिखा है कि उस "दिन अब्बुलहसन चित्रकार, जिनको, 'नादिर-उज-जमा' की उपाधि से सम्मानित किया जा चुका था, ने मेरी तख्तपोशी (सिंहासन रोपण) की तस्वीर खींची, यह चित्र प्रशंसा के योग्य था, अतः उसको बहुत अधिक संरक्षण मिला.........इस समय उसका कोई प्रतिद्वन्दी या शानी नहीं है, यदि इस समय तक उस्ताद अब्दुस्समद या बिहज़ाद जीवित रहे होते तो उन्होंने उसके प्रति न्याय किया होता।"

बादशाह आगे लिखता है कि—"जब वह (जहांगीर) स्वयं युवराज था तो अब्बुलहसन के पिता आकारिजा (हिरात निवासी) ने मेरी सेवायें स्वीकार कीं और और अब्बुलहसन दरबार का खानजादा था। परन्तु उसके और उसके पिता के काम की तुलना नहीं की जा सकती (पिता चित्रों की अनुकृतियां बनाने के कार्य में कुशल था) वह अपने पिता से कहीं अच्छा है और उन दोनों को एक श्रेणी में नहीं रक्खा जा सकता है। मेरा उससे सम्बन्ध यह है कि मैंने उसकी परिवरिश की थी। मैंने आरम्भिक समय से आज तक उसकी देखभाल की है, तब कहीं उसकी कला इस स्तर तक पहुंच सकी है और सत्य ही वह 'युगशिरोमणि' (नादिर-उज-जमा) हो गया है।" उसका एक चित्र 'जामनगर के जामजासा' का मुखाकृति-चित्र, जो 'इन्डियन बुक पेन्टिङ्ग' लेखक कुहनिल तथा गोएट्ज ने प्रकाशित किया है, उत्तम है। उसका एक अन्य चित्र, जिसमें एक बैलगाड़ी या रथ को हल्की पीली पृष्ठभूमि पर बनाया गया है, बहुत सुन्दर है। इस चित्र में रथ की नक्काशी, बैलों की गति तथा फारसी रेखांकन और चमकदार रंग उसकी अपनी विशेषता है। बैलों के सर भयानक तथा बड़े हैं जो फारसी ढंग के हैं। उनकी पूछों में बारीकी से बाल बनाये गये हैं। रथ पर सुनहारा काम है तथा सवार मूंगिया वस्त्र और सारथी नीली पोशाक पहने है। रथ पर ही चित्रकार का नाम 'राकिम अब्बुलहसन' अर्थात् 'चित्र का लेखक या रचयिता अब्बुल-हसन' लिखा है। इस प्रकार जहाँगीर ने जीवन सम्बन्धी चित्रों की ओर अधिक ध्यान दिया और चित्रकला के क्षेत्र को व्यापक बनाया।

यूरोपियन चित्र—जहांगीर के समय में एक अन्य दिशा में चित्रकार ने अपना ध्यान मोड़ा वह था—यूरोपियन चित्रों की अनुकृतियां। जहांगीर के दरबार में यूरोपिन व्यापारियों के द्वारा चित्र भी आने लगे थे। बादशाह ने चित्रों की अनुकृतियाँ तैयार करायीं और यूरोपियन चित्रों का एक विशाल संग्रह विशनदास ने १५८८ ई० में बनाकर तैयार किया। जहांगीर के आरभिक शासनकाल में 'कलीला-वय-दिमनाह' की चित्रित प्रतिलिपि भी तैयार हुई। इस प्रति के पूर्ण होने का समय १६१० ई० रहा होगा। इस संग्रह में अधिकांश फारसी शैली के चित्र हैं, और इस प्रतिलिपि को तैयार करने में अधिकांश फारसी चित्रकारों ने कार्य किया। आरम्भिक काल में जहांगीर ने फारसी कलाकारों को बुलाया और फारसी कला को अधिक महत्त्व दिया परन्तु कालान्तर में यह बात नहीं दिखाई पड़ती है।

यथार्थवादी दृष्टिकोण—जहांगीर अनोखे ही स्वभाव का व्यक्ति था। वह एक सुधारक, प्रकृतिवादी, आखेटक, कला संरक्षक, लेखक, इतिहासकार, सुरापन करने वाला, न्यायशील, प्रजावादी और क्रूर शासक था, परन्तु उसमें कला प्रेम प्रगाढ़ था। उसके दरबार में भारतीय ही नहीं यूरोपीय कला का भी समान स्थान था और उसके चित्रकारों ने 'देवी मरियम' आदि के चित्रों की कई अनुकृतियां तैयार कीं। इस यूरोपियन कला का भारतीय मुगल कला पर प्रभाव अवश्य पड़ा परन्तु मुगल कला ने अपनी स्वतन्त्र गति और निजत्व की भावना और मौलिकता को नहीं छोड़ा।

इस समय मुगलशैली का अत्यधिक विकास हुआ। जहांगीर एक महान् प्रकृतिवादी सिद्ध हुआ। उस्ताद मंसूर, मनोहर तथा मिस्किन ने पशु-पक्षी और पुष्पों के चित्रण में कमाल कर दिखाया।

ऐतिहासिक घटनायें तथा स्त्री चित्र— राजनीति से सम्बन्धित ऐतिहासिक घटनाओं का भी चित्रों में सुन्दर रूप में अंकन मिलता है। उस्ताद शालीवाहन का बनाया एक चित्र इस प्रकार का सुन्दर उदाहरण हैं। यह चित्र एक लम्बी पत्री के रूप में बना है। सर्वप्रथम आगरा के इस विज्ञप्ति पत्र की खोज गुजरात के सुविख्यात इतिहासकार श्री जिनविजय ने की। यह चित्र लगभग १३ फुट लम्बा और १३ इंच चौड़ा है और दो भागों में विभाजित है। उस्ताद शाहीवाहन जहांगीर के दरबार का एक चित्रकार था, परन्तु वह पवित्र और धर्म श्रद्धालु व्यक्ति था। उसने स्वयं इस चित्रित पत्री को आश्चर्य विजयसेन सूरी, जो उस समय काठियावाड़ के देवापट्टम थे, के लिए शुभकामनाओं सहित भेंट में भेजा था। १६१० ईसवी में श्री विजय सेन जी के शिष्य श्री विवेक हर्ष और उदय हर्ष ने राजा रामदास के साथ जहांगीर के दरबार (आगरा) में यह निवेदन किया कि परेयुशान (Paryushana) के आठ दिन के व्रतों के समय में पशु-वध निषेध कर दिया जाय। इस पत्रीनुमा चित्र का विषय यही ऐतिहासिक घटना है। प्रथम भाग में जहांगीर ऊपर के भाग में एक छज्जे पर बैठा है, और राजा रामदास, पं विवेक हर्ष तथा पीछे खड़े पं० उदय हर्ष का परिचय दे रहे हैं। नीचे के भाग में अनेक तुर्की, अरबी तथा एक अंग्रेज प्यादा यथास्थान खड़े हैं। चित्र के दूसरे भाग में गुरु विजयसेन गद्दी पर बैठे हैं और विवेक हर्ष तथा उदय हर्ष पशु निषेध आज्ञा का शाही फरमान अपने गुरु को दे रहे हैं। इस चित्र में विजय सेन तथा अन्य पुजारियों के चित्र हैं जो सफेद वस्त्र धारण किये हैं। चित्र के नीचे के भाग में एक व्यक्ति नाच रहा है, साथ में बराबर में खड़ा व्यक्ति मंजीरा बजा रहा

रेखाचित्र सं० १७
सम्राट जहाँगीर (मुगल शैल)

है। पीछे तीन श्वेत वस्त्र धारण किए स्वास्तिका चिन्ह-धारणी देव-सेविकायें बैठी हैं इनके सामने साधारण स्त्रियां चावल डाल रही हैं और पूजा कर रही हैं।

उपरोक्त चित्रावली के रंग स्पष्ट, आकर्षक, प्रभावशाली और कोमल है, चित्र शैली मुगल है, परन्तु इन चित्रों को हरी, पीली, लाल तथा नीली पृष्ठभूमि पर अंकित किया गया है। इस चित्र में जनसाधारण (सामान्य वर्ग) तथा दरबार (उच्च वर्ग) दोनों का सुन्दर अंकन है।

जहांगीर के समय में निश्चित रूप से स्त्री चित्र भी बनाये गए। अकबर के समय में उसकी मां हमीदा बानो बेगम की तथा जहांगीर के समय में नूरजहां की शबीह तैयार हुई। जहांगीर की स्वयं अनेक शबीहें तैयार की गईं (देखिए रेखाचित्र-सम्राट जहांगीर) जो पर्याप्त यथार्थ रेखांकन पर आधारित हैं।

जहांगीर कालीन भित्तिचित्र—जहांगीर ने भित्तिचित्र भी बनवाये और यह चित्र १६११ ई० में विलियम फिन्च ने लाहौर दुर्ग में देखे थे। इन चित्रों में नूरपुर का राजा बासु भी सभासदों के साथ चित्रित किया गया था। इसके अतिरिक्त लाहौर के महलों में भी भित्तिचित्र बनाये गये। इन चित्रों में ईसाई, यूरोपियन तथा अन्य विषय अंकित किए गए।

जहांगीर कालीन चित्रों की विशेषतायें—जहांगीर कालीन चित्रकला ने एक नवीन मोड़ ग्रहण किया और उसमें परम्परा के स्थान पर यथार्थता आ गई और इस समय के चित्रकार ईरानी प्रभाव से मुक्त हो गए। जहांगीर कालीन चित्रों में बारीकी, सफाई, शारीरिक गठनशीलता तथा वस्त्रों आदि की बनावट में बहुत परिमार्जन दिखाई पड़ने लगता है। वस्त्रों की बनावट में शिकनों आदि का विशेष ध्यान रखा गया है। वस्त्रों में वायु के प्रकम्पन का बोध होता है। चेहरों आदि में गोलाई लाने के लिए बारीक रेखाओं के द्वारा छाया या परदाज का प्रयोग किया गया है जिसे खतपरदाज कहते थे। कभी-कभी बारीक छोटे-छोटे बिन्दुओं को लगाकर बिन्दु-परदाज लगाया गया है जिसे 'दाना परदाज' कहते थे। अकबर कालीन चित्र सपाट हैं परन्तु जहांगीर कालीन चित्रों में शारीरिक गठनशीलता या गोलाई और उभार लाने के लिए छाया तथा प्रकाश का कोमल प्रयोग किया गया है।

पशुओं तथा पक्षियों की बनावट में अत्यधिक यथार्थता है। हाथियों, घोड़ों, शिकारों, मोरों तथा अन्य पशु-पक्षियों के चित्रण में अत्यधिक स्वाभाविकता है। हाथियों के चित्रण में अजन्ता की परम्परा का आभास होता है।

जहांगीर कालीन चित्रों में दार्ष्टिक परिप्रेक्ष्य का सुन्दर प्रयोग है। इन्डियन म्युजियम कलकत्ता में एक घुड़सवारों के दल का चित्र प्राप्त है। यह दल मुख्यभूमि से पृष्ठभूमि की ओर पीठ किए बाईं ओर तिरछा वक्रीय गति से जा रहा है। इस चित्र की पृष्ठभूमि के घुड़सवार छोटे बनाए गए हैं और बाईं ओर मुड़ते हुए होने के कारण उनकी पीठ न होकर क्रमशः वाम अङ्ग दिखाई पड़ने लगता है। इस प्रकार न केवल दार्ष्टिक परिप्रेक्ष्य वरन् स्थितिजन्य लघुता का भी सुन्दर प्रयोग दिखाई पड़ता

है। जहांगीर कालीन चित्रों में पृष्ठभूमि में दूर तक मरुस्थली पर्वतीय क्षेत्रों की प्रकृति बड़ी सूक्ष्मता से अंकित की गई है। यह प्राकृतिक दृश्य दिल्ली से अजमेर जाने वाले राजमार्ग के स्थलों पर आधारित हैं।

इस समय के चित्रों में रेखाएं बारीक, कोमल, लचकदार तथा प्रवाहपूर्ण और सजीव हैं। हल्के गुलाबी, सफेद, सोने तथा चाँदी के रंगों का उत्तम प्रयोग है। चित्रों में संगत और हल्के रंगों का प्रयोग होने लगता है। रंग आँखों को प्रिय लगने वाले और रत्नों के समान चमकदार हैं।

शाहजहाँ कालीन चित्र— जहांगीर काल के चित्रों की विशेषताओं तथा कारीगरी की कुशलता के कारण जहांगीर काल मुगल चित्रकला का पूर्ण यौवन काल है, और उसका पूर्ण निजत्व तथा ओज इस समय तक विकसित हो उठता है। शाहजहाँ के काल में चित्रकला की अवनति आरम्भ हो जाती है, यद्यपि चित्रों का निर्माण उसी प्रकार होता रहा और उनकी संख्या भी वही रही, परन्तु चित्र की लिखावट में कमजोरी आ गई।

शाहजहाँ ने अपनी शानशौकत तथा सभासदों के अनुशासन की ओर अधिक ध्यान दिया, इस कारण ही चित्रकार की अवनति आरम्भ हो जाती है। यद्यपि चित्रों का निर्माण उसी प्रकार होता रहा और चित्रों की संख्या भी उतनी ही रही परन्तु चित्र की लिखावट तथा रंगों की प्रौढ़ता अदृश्य होने लगी।

वैभव सम्बन्धी चित्र—शाहजहां ने अपनी शानशौकत तथा सभासदों के अनुशासन की ओर अधिक ध्यान दिया, इस कारण चित्रकार की दृष्टि दरबारी भव्यता तथा अदब-कायदों तक सीमित रह गई। शाहजहां के समय में अधिकांश दरबारी चित्र बनाए गए। चित्रकार इन दरबारी अदब कायदों में जकड़ता गया, परन्तु फिर भी, दरबारी चित्रों के उत्तम उदाहरण प्राप्त हैं। इनमें से एक चित्र उदाहरण बोडोलियन लायब्रेरी, आक्सफोर्ड में सुरक्षित है। इस चित्र में 'शाहजहां एक फारसी राजदूत का दीवाने आम में स्वागत कर रहा है।' सम्भवतः यह घटना १६२८ ई० में शाहजहां के सिंहासनारोहण के पश्चात् शीघ्र ही घटी। इस समय शाहजहाँ की आयु ३६ वर्ष की थी जो चित्र में भी स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इस राजदूत को शाहजहाँ के दरबार में फारस के शाह-अब्बास के पुत्र शाह सूफी ने भेजा था। इस दल के साथ उसने पांच अरबी घोड़े तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएं भेजी थीं। 'इस चित्र में शाहजहां दिल्ली के दीवाने आम में ऊँचे छज्जे पर बैठा है। नीचे फारसी लोगों का दल है और फारसी राजदूत माथे तक दाहिना हाथ उठाकर मुजरा कर रहा है—उसके अन्य सलाहकार उसके साथ हैं—पीछे एक पंक्ति में कई लोग थालों में उपहार लिये खड़े हैं-—नीचे की ओर पांच घोड़े हैं। चित्र में मुगल अधिकारी यथा स्थान पर खड़े बनाये गये हैं। मुगल तथा फारसी लोगों की पोशाक भिन्न है। इस चित्र में

राजदूत बिना झुके सीधे खड़े होकर सलाम कर रहा है जो फारसी ढंग है – जिसकी भावुक सम्राट शाहजहां ने अपनी अवहेलना का प्रतीक माना था।'[1]

शाहजहां का एक अन्य चित्र, जिसमें शाहजहां मयूर सिंहासन या तख्ते-ताऊस पर बैठा है, बैरन म्युरिस रोथ्सचाईल्ड संग्रह, पेरिस में सुरक्षित है। इस चित्र में भी सम्राट को युवक दिखाया गया है। यह चित्र अनुमानत: १६३० ई० का है। मयूर सिंहासन की छत्त, जो आयताकार गुम्बद के आकार की है और चार स्तम्भों पर रुकी है, के ऊपर मोर पक्षी बनाये गये हैं। सारा सिंहासन बहुमूल्य रत्नों के रचित है। इस मयूर सिंहासन के सम्बन्ध में जो समसामयिक यूरोपियन यात्रियों के वर्णन प्राप्त हैं उनमें चित्र से किंचित अन्तर है। यह सिंहासन उस समय के मूल्य से छः स्ट्रलिङ्ग पाउन्ड्स का था।

राजदूतों के चित्र—एक चित्र एन० सी० मेहता ने 'स्टडीज इन इण्डियन पेन्टिग'— फलक ३६), में प्रकाशित किया है जिसमें एक यूरोपियन राजदूत को शाहजहां के दरबार में चित्रित किया गया है। इस चित्र में शाहजहां दीवाने खास में बैठा है— दो युवराज उसके पीछे और दो युवराज सामने बैठे हैं। सम्भवत: यह दारा, शुजा, मुराद और औरंगजेब हैं। इन युवराजों के कानों में छोटी बालियाँ हैं जिससे अनुमान होता है कि यह शाहजहाँ के आरम्भिक शासनकाल का चित्र है। यूरोपियन राजदूत अपने साथियों सहित बादशाह के सम्मुख खड़ा है। यह आश्चर्य की बात है कि इस राजदूत-दल में स्त्रियाँ तथा पुरुष दोनों ही हैं। शायद यह पुर्तगाली राजदूत का दल है जो दिल्ली के सम्राट से व्यापार के लिए विशेषाधिकार प्राप्त करने के लिये आया था। यह चित्र सुन्दर है और इनमें भी अवनति या ह्रास के चिन्ह दृष्टिगोचर नहीं होते हैं और रंग संगत तथा कोमल हैं।

पूर्वजों तथा सम्मानित व्यक्तियों के चित्र—

एक उदाहरण में अकबर का व्यक्ति चित्र है जो अपने ही ढंग का है। यह चित्र यम० कारटियर संग्रह, पेरिस में सुरक्षित है। इस चित्र में वृद्ध अकबर को दिखाया गया है। इस चित्र के ऊपर हाशिये में दो फरिश्ते तथा बाईं ओर तीन अनुचर और नीचे तीन हिरन बने हैं। सम्राट के पीछे प्रकाश पुंज (प्रभा मंडल) का प्रयोग किया गया है। शाहजहां के समय में फकीर उल्लाहखान प्रधान चित्रकार था। इस चित्रकार का एक सुन्दर चित्र बैरन म्युरिस रोथ्सचाईल्ड संग्रह, पेरिस में सुरक्षित है। इस चित्र में फकीर उल्लाह खान के लिये शानदार मुगल अधिकारों के रूप में चित्रित किया गया है। इस चित्रकार के बनाये हुये चित्र बहुत कम प्राप्त हैं, सम्भवत: वह केवल निरीक्षण कार्य करता था। इस चित्र के ऊपर, नीचे तथा बाईं

---

1. यह चित्र 'इन्डियन पेन्टिग अन्डर दी मुगल्स'— ले० परसी ब्राउन, में प्रकाशित है।

ग्रोर हाशिये में सात मानवाकृतियाँ हैं जो उसके सहायकों के छवि-चित्र हैं—इनमें तीन हिन्दू हैं।

मीर हाशिम व्यक्ति चित्रण या छवि चित्रण में इस समय का कुशल ग्रौर विख्यात चित्रकार था। सम्भवतः उपरोक्त चित्र मीर हाशिम ग्रौर उसके सहायकों की उपलब्धियाँ हैं। उसका एक चित्र, जिसमें 'मुगल सरदार' चित्रित है, यम० डिमोटी संग्रह, पेरिस में प्राप्त है।

दारा शिकोह का चित्र प्रेम—शाहजहां के ज्येष्ठ पुत्र दारा शिकोह ने भी ग्रपने चित्रकार नियुक्त किये। यह प्रतिभा सम्पन्न युवराज कलानुरागी तथा संग्रहकर्त्ता था। उसके निजी बहुमूल्य चित्रों के एलबम के चित्रों या चित्राधार से उसका कला-प्रेम स्पष्ट है। इस एलबम के चित्रों पर दारा के हस्ताक्षर हैं ग्रौर ग्राज यह चित्र-संग्रह इन्डिया ग्राफिस लाइब्रेरी, लन्दन में सुरक्षित है। युवराज दारा शिकोह का एक सुन्दर मुखाकृति चित्र हुनर नामक चित्रकार का बनाया हुग्रा है (देखिए रेखाचित्र—'दारा शिकोह')। इस युवराज को ग्रौरंगजेब के षडयन्त्र के कारण लड़ाई में हारना

रेखाचित्र सं० १८
दारा शिकोह (मुगल शैली)

पड़ा ग्रौर सिन्ध की ग्रोर भागना पड़ा ग्रौर यहीं उसको उसकी एक सबसे ग्रधिक प्रिय बेगम के प्यास से तड़प-तड़प कर मर जाने का समाचार मिला—जिससे युवराज ग्रचेत होकर गिर पड़ा था। उसके उपरोक्त एलबम के मुख्य पृष्ठ पर सुनहले भाग में एक लेख है जो इस प्रकार है—"यह संग्रह उसकी सबसे प्रिय ग्रौर निकट मित्र सम्भ्रांत महिला नादिरा बेगम को सम्राट शाहजहाँ के पुत्र युवराज मुहम्मद दारा शिकोह के द्वारा भेंट दिया गया।" दारा शिकोह के एलबम में ग्रनेक सुन्दर चित्र प्राप्त हैं, उनमें से एक चित्र में 'दो बतखें' तथा दूसरे में 'नाईट हिरोन' (Night Heron) पक्षी है। यह चित्रा बहुत सुन्दर है। दारा शिकोह का घुड़सवार के रूप में एक चित्र इंडियन म्युजियम, कलकत्ता में प्राप्त है जो १६२५ ई० का है। इसी एलबम में युवराज शुजा का एक रेखाचित्र है। इस चित्र में उसको १६ वर्षीय किशोर के रूप में दिखाया गया है।

शाहजहां कालीन गोष्ठियों के चित्र— शाहजहां कालीन शैली का एक चित्र बानू सीताराम साहू संग्रह, बनारस में है। इस चित्र में एक 'पवित्र गोष्ठी' दिखाई गई है। उसमें चार पवित्र मनुष्य किसी ग्रन्थी में उलझे विचार-विमर्श कर रहे हैं। इस चित्र में एक छायादार वृक्ष के नीचे चाँदी जैसा सफेद दाड़ी तथा बालों वाला एक वृद्ध बैठा है, उसके सामने एक उच्च मुगल पदाधिकारी बैंगनी जामा और ऊपर से फूलदार सफेद कोट पहने भव्य ढंग से बैठा है। पास ही एक युवराज कन्धे पर सरोद रखे बजा रहा है और वृद्ध की ओर देख रहा है। उसके सामने दूसरी ओर एक तपस्वी हिन्दू सन्यासी पद्मासन लगाए बैठा है जो गेरुआ धोती लपेटे है। इस चित्र के पीछे हाजी मुहम्मद करवलाई की १२१२ हिजरी की मोहर अंकित है।

इस समय के चित्रो के हाशिये में बादलों से निकलती अनेक देवदूतों या परदार मानव आकृतियों (परियों) का आलेखन दिखाई पड़ता है।

शाहजहाँ ने अपने समय के इतिहास 'बादशाहनामा' की सचित्र प्रति तैयार कराई। इसमें कई सौ चित्र थे परन्तु दुर्भाग्यवश यह प्रति तितर-बितर हो गई और इसके पृष्ठ अनेक संग्रहालयों में पहुंच गए हैं। उसका एक विशेष भाग ब्रिटेन के बिडम्बसर महल के संग्रह में प्राप्त है। शाहजहाँ के समय से यवन सुन्दरियों तथा बेगमों के चित्र भी बनाये जाने लगे, जो प्राप्त हैं। रंगमहल और कामक्रीड़ा या रति-सम्बन्धी दृश्यों पर आधारित चित्र जो जहांगीर के समय में प्रचलित हो चुके थे, अब अधिक बनाये जाने लगे।

शाहजहां कालीन चित्रों की विशेषतायें— शाहजहां के समय के चित्रों में एक विकसित कला शैली के रूढ़िवादी ढंग से प्रयोग की परिपाटी प्रचलित होती दिखाई पड़ने लगती है और क्रमशः मुगल विशेषतायें समाप्त होने लगती हैं और अवनति के चिन्ह स्पष्ट दिखाई पड़ने लगते हैं।

शाहजहां कालीन चित्रों में विशेष रूप से रेखांकन वेजान और शिथिल पड़ने लगता है तथा हाथ, पैर और शरीर की भङ्गिमाओं में जकड़ और कठोरता आने लगती है।

चमकदार रंगों के साथ सोने और चाँदी के रंगों का प्रयोग बहुत अधिक होने लगता है जिससे चित्रकार की कमजोरी स्पष्ट पता लगती है। चित्रों की रेखाएं काली तथा कठोर हो जाती हैं। चित्रों की खुलाई तथा साया लगाने का काम काली स्याही से किया जाने लगता है।

अधिकांश चित्रों में दरबार के दृश्यों का अंकन दिखाई पड़ता है, जिनमें दरबारियों को जकड़े हुए अदबकायदों में खड़ा दिखाया गया है। इस प्रकार नियमों में जकड़ कर चित्र निर्जीव हो गए हैं और चित्रों में यूरोपियन प्रभाव भी अधिक आने लगता है। चित्रों में दार्ष्टिक परिपेक्ष्य तथा त्रिआयामी प्रभाव दिखाई पड़ने लगता है। चित्रों के हाशियों में जहांगीर कालीन आलेखनों का प्रयोग दिखाई पड़ता है लेकिन कहीं

कहीं देवदूत या पंखदार आकृतियों का प्रयोग मिलने लगता है। चित्रों में विवरणों की अधिकता है और रंगों में विशेषतया मीनाकारी आदि पर अधिक ध्यान दिया जाने लगता है परन्तु शाही रौब के कारण चित्र में भावना का अभाव रहता है और कृत्रिमता झलकने लगती है।

यूरोपियन विषय जैसे मरियम तथा शिशुईसा आदि के चित्रों में विदेशी भावना दिखाई पड़ती है। शाहजहां के समय से सपाट स्याह कलम रेखाचित्रों का प्रचलन भी होने लगा था।

औरंगजेब कालीन चित्र तथा उनकी विशेषतायें यद्यपि औरंगजेब एक कट्टर मुसलमान और चित्रकला विरोधी शासक था परन्तु उसके भी युवराज काल से लेकर वृद्धावस्था तक के चित्र प्राप्त हैं। इस प्रकार औरंगजेब के युवराज काल का एक मुखाकृति चित्र ब्रिटिश संग्रहालय में प्राप्त है। रामपुर राज्य पुस्तकालय रामपुर में सुरक्षित एक चित्र में औरंगजेब को 'बीजापुर के घेरे के समय पर' चित्रित किया गया है। इस चित्र में औरंगजेब को वृद्धावस्था में अंकित किया गया है। बीजापुर का घेरा १६८६ ई० में आरम्भ हुआ था और कठिन संघर्ष के पश्चात् औरंगजेब को विजय प्राप्त हुई। इस चित्र में औरंगजेब के मुख के चारों ओर सुनहरा प्रताप पुन्ज बनाया गया है। औरंगजेब का एक चित्र 'रोस संग्रह'-बोस्टन में भी सुरक्षित है। इस चित्र में मुगल शासक औरंगजेब को सोने के तख्त पर हरी गद्दी पर बैठा बनाया गया है। परन्तु इन चित्रों में मुगल शैली की विशेषताए नहीं दिखाई पड़ती है। ब्यौरे की लिखाई में कठोरता तथा कमजोरी है, और स्याही का अत्यधिक प्रयोग है। इन चित्रों में रेखांकन दुर्बल है। इन चित्रों में केवल कारीगरी ही शेष दिखाई पड़ती है और सजीवता के स्थान पर स्तब्धता आ गई है।

परवर्ती मुगल शासकों के समय के चित्र तथा उनकी विशेषतायें—अठारहवीं शताब्दी में मुगल चित्रकला में एक नवीन जागरण होता दिखाई पड़ता है और औरंगजेब के पश्चात् एक बार पुन: चित्रों की गिनती तथा चित्रों की विशेषताओं में उन्नति हुई। औरंगजेब का उत्तराधिकारी उसका पुत्र शाहआलम (बाद में बहादुरशाह के नाम से विख्यात १७०७ ई० से १७१२ ई० तक) विलासी था। उसने कलाओं के प्रति प्रेम प्रदर्शित किया। शाह आलम के पश्चात् उसका पुत्र जहांदार (१७१२ ई०) और फिर मोहम्मदशाह (१७१९ ई०)से बाद के शासक, जो १७५२ ई० तक दिल्ली के राज सिंहासन पर बैठे, सब ही विलासी और निर्बल शासक थे परन्तु इनके कला प्रेम में सन्देह नहीं। फर्रूखसियर (१७१३-१७१९ ई०) के समय में चित्रकला का पुन: विकास हुआ और मुगल शैली में पुनः कुछ रंग की विशेषताएं तथा कारीगरी दिखाई पड़ने लगी। विषय में अधिकांश भोग-विलास या रति-सम्बन्धी चित्रों का विशेष महत्व बढ़ने लगा। इस प्रकार मोहम्मद शाह तक (१७४८ ई०) यह शैली मुगल विशेषताओं को अपनाए रही। इन शासकों के व्यक्ति चित्र या दरबार के चित्र अनेक

संग्रहों में प्राप्त हैं। फर्रूखसियर के समय का एक सुन्दर चित्र उदाहरण काश्रोसजी जहांगीर संग्रह बम्बई में प्राप्त है। इस चित्र पर राजस्थानी तथा दक्षिणी कला का गहरा प्रभाव है। इस चित्र में एक आखेटकों का दल दिखाया गया है। जहांदारशाह का एक दरबार-चित्र रोस संग्रह में है—इस चित्र में सुनहरे रंग की अधिकता है तथा हल्के रंगों का प्रयोग है। दरबारियों के नाम उनके ऊपर लिखे हुए हैं। इसी प्रकार मोहम्मद शाह के अनेक चित्र भी रोस संग्रह बोस्टन संग्रहालय में प्राप्त हैं।

मुगल शैली का अधिपतन— मुगलों का रहा-सहा यश सम्राट आलमगीर द्वितीय (१७५४ ई० से १७५६ ई०) तक समाप्त हो जाता है। उसके पश्चात् शाह आलम द्वितीय (१७५६ ई० से १८०६ ई०), अकबर द्वितीय (१८०६ ई० से १८३७-ई०) तथा बहादुरशाह द्वितीय (१८३७ ई० से १८५७ ई०) दिल्ली के सिंहासन पर बैठे परन्तु इनकी शक्ति समाप्त हो चुकी थी और वे केवल नाम मात्र के शासक थे। अन्तिम शासक बहादुरशाह 'जफर' को अंग्रेजों ने अन्डमान द्वीप में आजीवन कारावास में भेज दिया। शाह आलम द्वितीय के समय में चित्रकार प्रायः बाजारू हो चुके थे और खानदानी चित्रकार पुराने चर्बों से अकबर, जहांगीर, शाहजहां तथा औरंगजेब आदि के अनुकृति चित्र बनाने लगे जिन पर जाली मोहरें लगा दी गयी। कभी-कभी इस चित्र के व्यक्ति का नाम गलत है, क्योंकि यह लोग धोखा देकर चित्र बेचा करते थे। कुछ चित्र सम्भवतः शाहआलम ने भी अपने लिए सत्य-प्रतिलिपियों के रूप में बनवाये और सम्भवतः यह मोहरें उसने ही चित्र की पूर्णरूपेण अनुकृति कराने के लिए लगवाई हों परन्तु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। अन्ततः यह स्पष्ट है कि चित्रकार केवल चर्बे से चित्र बनाने तक सीमित रह गये थे, और मुगल काल की रेखांकन-कोमलता, सजीवता और रंगों का पौढ़ापन समाप्त हो गया। शाहआलम के समय का जहांगीर का एक सुन्दर चित्र, जो विचित्तर के द्वारा बनाये हुए चित्र की अनुकृति है, श्री शान्ति कुमार मुरारजी-बम्बई के निजी संग्रह में प्राप्त है। इस समय के चित्रों में काली स्याही का प्रयोग अधिक है, चित्रों की आकृतियों में गोलाई तथा खुलाई का काम स्याह कलम से ही किया गया है। फर्रूखसियर के समय से पृष्ठभूमि में भी काले रंग का प्रयोग होने लगता है।

औरंगजेब के शासनकाल से ही चित्रकार मुगल दरबार छोड़कर भागने लगे थे। इस प्रकार के उदाहरणों में गढ़वाल के चित्रकार मौलाराम के पूर्वजों का मुगल दरबार छोड़ कर सुलेमान शिकोह के साथ भागना प्रमाणित है। इसी प्रकार अन्य राज्यों में भी कई चित्रकारों के दल पहुंचे जहाँ उन्होंने स्थानीय कला शैलियां विकसित की। चित्रकारों के कई वंश दूसरे मुसलमान तथा हिन्दू दरबारों जैसे हैदराबाद, अवध, राजस्थान और पंजाब में चले गये।

मुगल शैली के चित्रों की विशेषतायें

जिस प्रकार मुगल साम्राज्य भव्यता, ऐश्वर्य और वैभव के साथ उदित हुआ

उसी प्रकार मुगल कला-शैली ने भी अपनी भव्य विशेषताओं के कारण भारतीय चित्र-कला शैलियों में अपना पृथक महत्व तथा स्थान ग्रहण कर लिया। मुगलों में चित्रकला धर्म निषिद्ध है, परन्तु फारस के तुर्क बादशाहों ने अपनी कला-प्रियता का परिचय दिया और ईरान से उन्होंने कला प्रेरणा ग्रहण की। इस प्रकार ईरानी कला भारत की कला बन गई। फारस की चित्रकला वास्तव में लघु चित्रों और पोथियों की चित्रकला थी। कवियों की रचनाएं, दरबार की झाँकियां, बादशाहों की शबीहें, लड़ाईयाँ तथा प्रतिभोज दृश्य इस चित्र-शैली के प्रिय विषय थे, परन्तु चित्रकला धर्म निषिद्ध होने के कारण कभी धर्म के क्षेत्र में पदार्पण न कर सकी। १६ वीं शताब्दी में जब फारस की चित्रकला भारतीय मुगल सम्राटों के संरक्षण में भारतीय कला की विशेषताओं को ग्रहण कर गई तो उसमें अनेक नवीन विशेषताएं प्रस्फुटित होने लगीं और यह मुगल चित्रकला भारत की एक महान चित्रकला-शैली बन गई।

जिस प्रकार भारतवर्ष एक धर्म प्रधान देश रहा है उसी प्रकार चित्रकला भी कई शताब्दियों तक धर्म प्रधान बनी रही। अजन्ता की चित्रकारी, पाल तथा जैन शैली के पोथी चित्र और राजस्थानी शैली की कृतियाँ विशेष रूप से धर्म से सम्बन्धित थीं और चित्रकला धर्म का एक अंग बनी रही। इस्लाम धर्म में चित्रकला धर्म निषेध थी क्योंकि मुसलमानों की ऐसी धारण हैं कि किसी व्यक्ति की आकृति अथवा चित्र बनाने पर उसमें जान डालना चाहिये, अन्यथा वह पाप है। इस कारण ही मुसलमान धर्म की जन्म भूमि अरब में जो मस्जिदें बननाई गईं उनमें अलंकरण हेतु ज्यामितिक आकारों के आलेखनों तथा कुफिका सुलिपि का ही केवल प्रयोग किया गया है। धीरे-धीरे ज्यामितिक आलेखनों का स्थान अंगूर की बेल तथा तितली आदि ने ले लिया, परन्तु भारत में मुगल शासकों ने अधिक उदारता दिखाई। इस उदारता के उपरान्त भी चित्रकला को धार्मिक स्थान नहीं प्राप्त हुआ, इसी कारण मुगल कृतियों में आध्यात्मिक-पक्ष प्रबल न हो सका। मुगल चित्रकार बाह्य वैभव-रूप तथा सांसारिक उपकरणों तक सीमित रह गया। यद्यपि शबीह लिखते समय चित्रकार ने व्यक्ति के चरित्र को सच्चाई के साथ अंकित कर दिया परन्तु आत्मा का पक्ष कलाकार की कृतियों में नहीं आ सका। चित्रकार बादशाह के चारों ओर के जीवन तक या दरबारी इतिहास तक सीमित रहा और जनसाधारण की ओर उसकी दृष्टि न जा सकी।

चित्रों का विषय—मुगल बादशाहों को पुस्तकालयों तथा पुस्तक संग्रह में अत्यधिक रुचि थी। इन बादशाहों ने शाही पुस्तकालयों में सुन्दर सचित्र पुस्तकों को जुटाने के लिए उत्तम से उत्तम कलाकारों को आश्रय प्रदान किया। पुस्तकों या पोथियों से सम्बन्धित चित्रों की रचना होने के कारण कविता तथा कथाओं पर आधारित चित्र अधिक बनाये गये। मुगल चित्रकार केवल फारसी साहित्य पर आधारित चित्रों तक सीमित न रहा बल्कि उसने भारतीय कवियों की रचनाओं पर भी चित्र बनाए।

परन्तु भारतीय काव्य तथा कथाओं से सम्बन्धित चित्रों में भारतीय आत्मा उतनी प्रबल नहीं है जैसी कि भारतीय चित्रों में उदाहरणार्थ-महाभारत और नल-दमयन्ती के चित्र लिये जा सकते हैं। इन चित्रों पर बहुत अधिक मुगल प्रभाव है। सचित्र ग्रन्थों की परम्परा से सुलिपि का भी विकास हुआ क्योंकि चित्रों के साथ काव्य या कथा को भी सुलिपि में चित्रों के हाशियों या चित्र के पीछे लिखा जाता था।

मुगल बादशाह अपनी शान-शौकत पर बहुत अधिक ध्यान देते थे, यही कारण है कि मुगल बादशाहों ने अपने तथा अपने दरबारियों के छवि-चित्र तथा विभिन्न दरबारों के चित्र बनवाए। अकबर, जहांगीर (रेखाचित्र-'सम्राट जहाँगीर'), शाहजहां आदि सब ही मुगल शासकों के चित्र प्राप्त हैं। इन दरबारी चित्रों से दरबारी अदब-कायदे, मुजरे तथा मुगल अनुशासन का पूर्ण आभास होता है। दरबार के दृश्यों में बादशाह को अधिकांशतः छज्जे पर या छत्तदार तख्त पर बैठा दिखाया गया है। दरबार के दृश्यों में एक गम्भीरता है जिससे मुगल सम्राट का रौब और दबदबा स्पष्ट प्रतीत होता है।

मुगल दरबार में यूरोपियन तथा फारसी राजदूत तथा समय-समय पर हिन्दू राजा और धार्मिक नेता आते रहते थे। अनेक चित्रों में इन राजाओं या राजदूतों के आगमन के दृश्य अंकित किये गये हैं। इस प्रकार के उदाहरणों में 'कैदी सुलतान वैयीजाद तैमूर के सामने' जिससे पीछे मीर अली का लेख है तथा 'यूरोपियन राजदूत' जिसमें बादशाह शाहजहां का दीवाने-खास है और जहांगीर के दरबार में विवेक हर्ष तथा पं० उदय हर्ष के चित्र सुन्दर हैं। इन दरबारी दृश्यों में मंत्री, सरदार, मुन्शी या काजबीन, सेवक, चोबदार, सब नियमानुकूल अपने-अपने स्थान पर अंकित किये गये हैं।

मुगल कलाकार का प्रधान लक्ष्य अपने बादशाह का दिल बहलाव करना और उसकी इच्छा पूर्ति करना था। अतः कलाकार ने समय-समय पर बादशाहों के शबीह चित्र बनाए। इस कारण मुगल शैली में अनेक बादशाहों की यौवनकाल से वृद्धावस्था तक ही शबीहां प्राप्त हो जाती हैं। बादशाह अपने छवि-चित्र अनेक निकट सम्बन्धियों, सामन्तों तथा अधीन राजाओं को भी बांटता था। इस कारण बादशाहों के शबीह चित्र अत्यधिक बनाये गये। मुगल-चित्रकार ने बादशाहों के ही नहीं, बल्कि मलिकाओं, बेगमों, शहजादों (रेखाचित्र-'दारा शिकोह'), सरदारों, मंत्रियों, अमीरों, विद्वानों तथा विदूषकों आदि के छवि-चित्र खूब बनाये। आरम्भिक मुगल मुखाकृति चित्र निःसंदेह विदेशी शैली, सम्भवतः दक्षिणी-फारस की शैली के हैं। इनकी शैली सुल्तान मोहम्मद तथा उसके समसामयिक चित्रकारों की रचना होने के कारण फारसी शैली के बहुत निकट प्रतीत होने लगती है। सुल्तान मोहम्मद, बिहजाद का शिष्य था उसकी और उसके स्कूल की कृतियां भारतवर्ष में बहुत कम प्राप्त हैं।

शैली– मुगल दरबार के अनेक विवरणों से यह प्रमाणित हो गया कि अधिकांश प्रमुख मुगल मुखाकृति चित्रकार हिन्दू थे । उदाहरणार्थ हुनर (होनहार) तथा भगवती हिन्दू थे । इस प्रकार भारतीय हिन्दू तथा विदेशी-मुसलमान चित्रकारों की फारसी-ईरानी मिश्रित शैली से मुगल मुखाकृति चित्रण की कला विकसित हुई जो सत्रहवीं शताब्दी में समोन्नति को प्राप्त हुई ।

मुखाकृतियां छवि चित्र– मुखाकृति या व्यक्ति चित्रों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि चित्रकार में शिल्प कुशलता और मुखाकृति चित्रण के प्रति एक स्वाभाविक देन या प्रतिभा थी । केवल मुगल सम्राटों के मिथ्या अभिमान के कारण ही मुखाकृति चित्रण का विकास नहीं हुआ बल्कि व्यक्तिगत रूप से भी इन सम्राटों ने मुखाकृति चित्रण में दिलचस्पी दिखाई । साधारणतः सब ही मुखाकृति चित्र बहुत उत्तम नहीं हैं परन्तु मुगल शासकों के चित्र उत्तम हैं । राजसी पुरुषों के मुख के चारों ओर एक सुनहरा प्रभा मंडल अंकित किया गया है, जिससे उनका उच्च पद तथा वैभव स्पष्ट हो जाता है । कभी-कभी एक ही चित्र में कई पीढ़ियों के बादशाहों को भी एक साथ बैठा बनाया गया है, यद्यपि इस प्रकार चित्र कलाक्रम तथा ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ठीक नहीं है । अधिकांश चित्रों में अकेले खड़ी हुई आकृतियां ही छवि-चित्रों में बनाई गई हैं । इस चित्र के व्यक्ति को हरी मखमली कोमल घास पर खड़ा बनाया गया है घास पर छोटे-मोटे फूल भी बनाये गये हैं जिससे दूर्वाच्छादित भूमि कालीन के समान दिखाई पड़ती है ।

पृष्ठभूमि— मुगल शैली के चित्रों में पृष्ठभूमि से प्रायः धुंधले (उदासीन तथा शीतल) रंगों का प्रयोग किया गया है । पृष्ठभूमि के रंग प्रायः आंखों को प्रिय लगने वाले रंग जैसे काहिया (गहरा हरा या टेरावर्ट) या हल्के हरे या काले रंग का प्रयोग है । चित्रकार ने रंगों को मोजाईक के समान चमकदार योजना में रखा है ।[1]

वस्त्र तथा साज-सामान– कपड़ों, पर्दों, कालीनों तथा अन्य साज-सामान में जटिल या पेंचीदा आलेखन बनाये गये हैं और इनमें सोने के रंग का भी प्रयोग किया गया है । प्रायः आकृतियों को ग्रीष्मकालीन महीन वस्त्र पहने बनाया गया है जिनके पारदर्शी झीने ताने से आकृति का सुकोमल शरीर झलकता दिखाई पड़ता है । अधिकाँश आकृतियों को चिकन, मलमल या डोरिया आदि के बने बारीक वस्त्रों को पहने बनाया गया है । इन वस्त्रों में कहीं-कहीं पर बूटियाँ बनाई गई है । अधिकाँश चित्रों में पृष्ठभूमि हल्के रंग से बनाई गयी है परन्तु कालान्तर में हरे रंग का प्रयोग होने लगता है । कुछ चित्रों में साधारण छाया, प्रकाश तथा परछाई भी नहीं दिखाई गयी है और केवल कोमल छाया के प्रयोग से डौल उत्पन्न कर आकृति को उभार प्रदान किया गया है ।

---

1. 'मुगल पेन्टिंग' —ले० जे० वी० एस० विलकिन्सन, पृष्ठ ३ ।
'''and marked above all by its brilliant use of mosaics of pure colour............'

चरित्र चित्रण—मुगल चित्रों में मोती जैसी चमक ही नहीं दिखाई पड़ती वरन् चित्र के व्यक्ति का चरित्र भी लिख दिया गया है। चित्रकार ने चित्रांकन करने में बादशाह की खुशामद नहीं की है बल्कि उसने व्यक्ति की क्रूरता तथा सहृदयता आदि भी चित्र में अंकित कर दी है। इन चित्रकारों को मानव प्रकृति का ज्ञान था। चित्रकार ने केवल रेखा तथा सुकोमल छाया से ही सादृश्य के साथ-साथ चित्रांकित व्यक्ति के चरित्र तथा स्वाभाव का निरूपण कर दिया है। व्यक्ति के चरित्र या स्वाभाव का इतनी सफलता से अंकन किया है कि जैसे चित्रकार ने चित्र के व्यक्ति के हृदय में झांक कर ही देखा हो। यह हो सकता है कि समसामयिक इतिहासकारों तथा लेखकों ने बादशाह को खुश करने के लिये उसके विषय में बढ़ा-चढ़ाकर लिख दिया हो, परन्तु चित्रकार ने निडर होकर अपनी अभिव्यक्ति की हैं। उसने अचेतन रूप से ही ब्यक्ति के कृत्यों के अनुसार ही उसको रूप और आकार प्रदान कर सुन्दर, क्रूर, निर्दयी, दयालु, सच्चा, झूठा, निर्बल या सशक्त बनाया है। हाथों की बनावट तथा आंख से चित्र के भाव प्रकट हो जाते हैं।

एकचश्म चेहरे—अधिकांश मुगल व्यक्तिचित्र एक चश्म हैं परन्तु आरम्भिक ईरानी-शैली में बने चित्रों में चेहरे डेढ़चश्म हैं। मुगल चित्रकारों के व्यक्तिचित्र कुछ नियमों में बंधे हुए तथा किसी सीमा तक अलंकारिक हैं। यह चित्र यदि किसी साधारण चित्रकार के द्वारा बनाये जाते तो वह नियमों में जकड़ कर निर्जीव हो जाते। कुछ शबीह चित्रों को रेखांकन और हल्के रंगों के प्रयोग से ही बनाया गया है (इन चित्रों को रंगीन रेखाकृति कहा जा सकता है)। मुगल चित्रकारों ने ऐतिहासिक पुरूषों के चित्र भी बनाये। यह चित्र प्रायः प्राचीन परम्परागत चित्रों पर आधारित हैं परन्तु कभी-कभी चित्रकार ने मृत व्यक्ति के गुणों के आधार पर उसके काल्पनिक रूप को चित्रित कर दिया है, और उसका चित्र बना दिया। इस प्रकार के उदाहरणों में सिकन्दर महान् आदि के चित्र हैं।

हाशिये तथा लेख—मुगल चित्रों के हाशियों पर या चित्र पर जिस व्यक्ति का चित्र है उसका नाम लिखा रहता है। यह नाम या लेख काली स्याही से कुफिका लिपि के समान सुन्दर सुलिपि में लिखा गया है। जब कई आकृतियों के दल का चित्र हो तो चित्र पर उसका नाम लिखना उचित न था इस कारण प्रायः चित्र की पृष्ठिका पर नाम लिख दिए गए हैं। परन्तु अधिकांश नाम विश्वशनीय नहीं हैं, क्योंकि कभी कभी औरंगजेब के स्थान पर जहांगीर लिखा है। चेहरा देखते ही यह गलती ज्ञात हो जाती है क्योंकि इन दोनों सम्राटों के नाक-नक्श में बहुत अन्तर था। शायद यह गलत नाम बाद में किसी के चित्रों पर लिख दिए हैं जिससे चित्र का महत्व बढ़ जाये। अतः इन चित्रों के नामों को बहुत सतर्क होकर देखना चाहिये। कभी-कभी यह नाम व्यक्तियों के चेहरों के सम्मुख या कपड़ों में लिख दिये गये हैं।

सन्तों की शबीहें—मुगल बादशाहों ने समसामयिक साधुओं, संतों आदि के

चित्र भी बनवाये। अकबर की तो विशेष श्रद्धा ही साधुओं, सन्तों और धार्मिक पुरुषों के प्रति थी। वह उनके सत्संगों में भाग लेता था और 'दीन इलाही' धर्म इसी प्रकार के हिन्दू, जैन, ईसाई तथा मुसलमान धर्मों का सारांश था। इस समय तुलसीदास, कबीर, शेखफूल, शेख सलीम चिश्ती आदि के कई चित्र बनाये गये जिससे मुगल शासकों की साधुओं के प्रति आस्था प्रकट होती है। मुसलमान साधुओं के अतिरिक्त कई हिन्दू संतों जैसे बल्लभाचार्य, सूर, तुलसी, मीरा, कबीर आदि की अनेक शबीहे बनाई गईं।

स्त्री चित्रण मुगल काल में स्त्रियों का चित्रण कम किया गया है। स्त्रियों का चित्रण भारतीय परम्परा पर किया गया है।

उत्सव – ऐतिहासिक घटनायें तथा उत्सवों के चित्रों में भी मुगल चित्रकार ने विशेष उत्साह लिया। मुगल दरबार में आये विभिन्न राजदूतों के चित्र, युद्ध तथा सन्धियों और दरबारों के अनेक सजीव चित्र प्राप्त हैं। मुगल हरम या अन्तःपुर में सदैव ही उत्सवों की चहल-पहल दिखाई पड़ती थी, कभी युवराजों के जन्म पर, कभी ताज पोशी (राज्याभिषेक) पर इस प्रकार के समारोह बरबार होते रहते थे, इस प्रकार के अनेक चित्र प्राप्त हैं। इनमें से एक चित्र जिसमें 'सलीम का जन्म' दिखाया गया है, विशेष उल्लेखनीय है। यह चित्र विक्टोरिया एण्ड अलवर्ट' म्युजियम लन्दन में सुरक्षित है। इस चित्र के चार भाग हैं –एक ही भाग में इतनी आकृतियां और चहल-पहल है कि मुगल कलाकार की कलादक्षता का पूर्ण परिचय प्राप्त हो जाता है। शाहजहाँ का जनाजा', 'अलीमरदान खाँ का मुजरा', 'शाहजहां का जन्म' इस प्रकार के ऐतिहासिक चित्रों के सुन्दर उदाहरण हैं। उत्सवों में 'आवपासी' या 'नौरोज' का जहांगीर कालीन सुन्दर चित्र प्राप्त है।

आखेट तथा यात्रा चित्र—जहांगीर काल में अनेक यात्राओं के समय मार्ग में देखे गये मनोरम स्थलों के चित्र बनाये गये। जहांगीर ने इस प्रकार के चित्रों का उल्लेख भी किया है परन्तु इनके उदाहरण प्राप्त नहीं। इस समय कलाकारों ने युद्ध चित्र तथा परेडों और घुड़सवारों के दस्तों के अनेक चित्र बनाये। आखेट के चित्र जहाँगीर काल से मुगल-चित्रकार का प्रिय विषय बन गये निःसन्देह यह चित्र शासकों की आज्ञाओं पर बनाये गए होंगे। मुगल शासक आखेट और युद्धों की स्मृति को प्रमाण स्वरूप सुरक्षित रखना चाहते होंगे, अतः इन सम्राटों ने आखेट की साहसी घटनाओं और पशु को घेरने के अनेक दृश्य बनवाये। शेर का शिकार तथा मृग-आखेट चित्रकार का प्रिय विषय थे। एक शेर के शिकार के चित्र में जहांगीर को मौत के मुख से बचते दिखाया गया है। बादशाह खाली बन्दूक से अपने हाथी पर सवार बाघ को डरा रहा है। इस चित्र का पहले उल्लेख किया जा चुका है। ऐसे शिकार के दृश्यों में प्राकृतिक दृश्य सुन्दर है। प्रायः दूर पर पृष्ठभूमि में पहाड़ियां दिखाई गई हैं तथा अनेक प्रकार के वृक्ष और ऊंची नीची-पथरीली भूमि या घाटियों का अंकन है।

प्रकृति तथा पशु — मुगल चित्रों में प्रकृति का पूर्ण ज्ञान तथा रोमानी भावना दिखाई पड़ती है।[1] प्रकृति का अंकन आगरा दिल्ली तथा राजस्थान की पहाड़ी भूमि के आधार पर किया गया है जिधर से मुगल काफिले गुजरते थे। दरार दार दूरी पर दर्शाये गये राजस्थानी सूखे पर्वत, झीने बादल, स्वच्छ आकाश तथा खुला मैदान मुगल चित्रों की विशेषता है। ऊंचा ताड़ का वृक्ष या बैंगनी फूल से झुका हुआ कदली वृक्ष, आम, वट, पीपल, तथा अन्य वृक्ष इस प्रकार के प्रमाण हैं कि चित्रकार ने कुशलता से वृक्षों को बनाया है। मुगल-शैली में वृक्ष यथार्थ बनाये गए हैं। पत्तियों में साया लगाया गया है। वृक्षों को खण्ड में विभाजित करके उनमें पत्तियों के गुच्छे बनाए जाते थे। पत्तियों को बारीकी से अनेक दशाओं में जैसे-उलटी या सीधी पत्ती भी बनाते थे। फूलों की पंखड़ियाँ बारीकी से बनाई जाती थीं। मुगल चित्रों में जल को अंकित करने के लिए भूरे धरातल पर लहरदार या टेढ़ी रेखाओं से लहरें बनाई जाती थीं या झाग भी दर्शाये जाते थे। जल में चांदी के रंग का प्रयोग भी है। मुगल बादशाहों की दृष्टि दरबार या जंगल के बाह्य रूप तक ही सीमित न रही बल्कि जहांगीर जैसे सूक्ष्म दृष्टि वाले सम्राट ने जंगली तथा पालतू पशु-पक्षियों और पुष्पों को भी चित्रों का प्रधान विषय माना। मुगल बादशाहों को पशु-पक्षियों की लड़ाइयाँ देखने तथा शिकरा या बाज पालने का शौक था। शिकरे को यह बादशाह अपनी कलाई पर पट्टा बांध कर बिठाते थे, इस प्रकार के अनेक चित्र प्राप्त हैं। अकबर को हाथियों की लड़ाई में बहुत दिलचस्पी थी उसका इस प्रकार का चित्र प्राप्त है जिसमें वह हाथियों की लड़ाई एक नाव पर बैठा देख रहा है और यह मस्त हाथी लड़ते हुए नावों के पुल पर दौड़ रहे हैं। झील के चारों ओर हलचल मच गई है,झील की दूसरी ओर से किले के प्यादे भाले लिए दौड़ रहे हैं। इन चित्रों में हाथियों की बनावट बहुत स्वाभाविक और यथार्थ है। मुगल चित्रों में कम मिलने वाले या अनोखे पशु जैसे जेबरा, हाथी, घोडा, शेर, मेढ़ा, ऊंट, बकरे आदि का अंकन मिलता है। पशुओं के चित्रण में यथार्थता और जीवन है। जहांगीर ने पशुओं के अतिरिक्त कम मिलने वाले पशु ही नहीं वरन पक्षियों तथा पुष्पों का चित्रण भी कराया। इस प्रकार के पक्षियों में मोर, मोरनी, सुनहरा कबूतर (पीजेन्ट), शिकरा, काक्तुआ (एक प्रकार का बड़ा तोता), पीलू, तुर्की-तीतर, बटेर, बुलबुल, कोयल,

---

1. 'मुगल पेन्टिग' — लेखक जे० वी० एस० विलकिन्सन, पृष्ठ ३। "Its conventions such as the high hill background, certain stereotype gestures, the adoptions of several point of view simultaneously, the employment of elaborate patterns in carpets or canopies or architectural details, in Chinese cloud poems; its flowers affectionately inlarged, are all deliberate departure from Nature into world of sheer romance."

सारस, मुर्गा, बत्तख आदि अनेक प्रकार के पक्षी तथा पुष्पों में नरगिस, अनार, चेरी, पोस्त, वाटर-वेरीज आदि का सुन्दरता से अंकन किया गया है मुगल-चित्रों में हाथी का अंकन भारतीय परम्परा पर आधारित है ।

इन पुष्पों के चित्रों में प्राय: पुष्पों के ऊपर मंडराते हुए भौंरे, तितलियों तथा अन्य कीड़ों आदि को भी अंकित किया गया है । पुष्पों के रंग चमकदार, सजीव और सुन्दर हैं और उनका वर्ण-विधान तथा रेखांकन आलकारिक है । प्रायः पृष्ठभूमि सपाट, हल्की पीली, नीली या हरी है । कभी-कभी दूरी पर क्षितिज के पास का दृश्य भी दिखाया गया है । इस प्रकार जीव तथा वनस्पति विज्ञान सम्बन्धी विषय मुगल चित्रकार की एक नवीनता है । कम मिलने वाले या अनोखे पशुओं में जेबरा, जिराफ, गैंडा, मेढ़ा, हाथी, ऊंट आदि के सुन्दर चित्र प्राप्त हैं ।

मुगल चित्रों का विधान तथा साज-सज्जा— मुगल चित्र भित्तियों (दीवारों) पर या सूती कपड़े या कागज पर बनाये गये हैं और अधिकांश लघु चित्र हैं । उनका विधान अपनी एक विशेषता है । अधिकांश मुगल चित्रों को कागज पर ही बनाया गया है । चित्रकार ने तीन या चार कागजों को सटा कर चिपका कर एक मोटा कागज तैयार करके उन पर गेरू के रंग से या कत्थई रंग से बुत बांध कर चित्र की सीमा रेखा को बनाया है । उस पहली रेखा को जिसे 'टिपाई' कहते थे, के पश्चात पारदर्शी सफेद रंग दो या तीन बार पोत दिया जाता था जिसके ऊपर पुन: रेखांकन करते थे जिसे 'सच्ची टिपाई' कहते थे । फिर चित्र में सपाट रग दो या तीन बार भर दिये जाते थे जिसे 'रंगमेजी' कहते थे, इसके बाद चित्र को एक चिकनी शिला पर उल्टा रखकर ऊपर से घोटा जाता जिससे ओप आ जाता था, साथ-साथ जहाँ जिस रंग की कमी मालूम पड़ती उसको फिर से लगा देते, इसे 'गदकारी' कहा जाता था । इस प्रकार घोटने से रंग दबकर मीनाकारी के समान प्रतीत होने लगते थे । तब पुन: अन्त में सीमारेखा के अंकन (सरहद के खत) से आकृति और चित्र के प्रत्येक भाग पर काम करते थे (इसे 'खुलाई' कहते थे) । इस समय जहाँ पर छाया या किसी रंग को लगाने की आवश्यकता होती तो उसे लगा देते (जैसे अधरों की लाली, आँख की पलक तथा कानों की लाली आदि लगा देते थे) । स्त्री चित्रों में आभूषण, मेंहदी, महावर इत्यादि इसी समय लगाई जाती थी जिसे 'मोती-महावर' कहते थे और पुन: चित्र को घोटकर चमक पैदा की जाती थी । अन्त में बारीकियों को पूरा किया जाता था, आंख की सफेदी को उभारा जाता था इस 'मीनाकारी' या 'सुईकारी' कहते थे । शरीर के रंग भरने को 'चेहराई' कहा जाता था । इस प्रकार चित्र पूर्ण होकर बसली बनाने वाले के पास तथा खत-साज के पास जाता था । बसली बनाने वाला चित्र को कई कागज चिपका कर बनायी गई मोटी बसली पर चिपकाता था और 'खत-साज' या 'तक्काश' उसके चारों ओर सुन्दर बेल-बूटों खतों या लेखों

आदि से उसकी सज्जा करता था। जिल्दसाज उसे यथास्थान मुरक्को में लगा देता था।

हाशिये—मुगल चित्रों के हाशिये भी एक कुशल कलाकार के द्वारा बनाये जाते थे जो कारीगरी के उत्तम उदाहरण हैं। इन हाशिये में बेल-बूटों के अतिरिक्त आखेट-स्थल या चित्र के प्रसंग से सम्बन्धित या मेल खाते पशु, पक्षी, पुष्प या मानवाकृतियों पर आधारित लेख बनाये जाते थे। कभी-कभी यह हाशिये चित्र से भी सुन्दर बन गये हैं और इनके कारण ही चित्र-विशेष का महत्व है। प्राय: हाशिये में सोने तथा चांदी के तबक को भी छिटक दिया गया है।

बसली के पीछे अधिकांश फारसी सुलेख के उत्तम उदाहरण मिले हैं। इस प्रकार मुगल चित्र अनेक चित्रकारों के हाथों में से निकल कर तैयार होता और तब बसली (माउन्ट) पर चढ़ता और फिर अच्छे कारीगरों के द्वारा उसका हाशिया तथा लेख तैयार किया जाता था।

मुगल चित्रों के रंग—मुगल चित्रकार के रंग मीने के समान चमकदार साफ और स्थाई हैं। कलाकार इन रंगों को अन्य सामग्री के समान ही अपनी देख-रेख में सतर्कता से तैयार कराते थे। मुगल चित्रों में प्रयुक्त रंग तीन वर्गों में रखे जा सकते हैं जो इस प्रकार हैं - (१) वनस्पतिक, (२) रासायनिक तथा (३) खनिज। इस रंगों में वनस्पतिक रंगों में काला-काजल (सरसों के तेल से भरे दीपक में कपूर जलाकर काजल बनाया जाता था, या सरसों के तेल को जलाकर काजल बनाया जाता था), महावर का रंग (लाख से बना वनस्पतिक रंग), नीला (नील के पौधे का रस) पीला (नकली प्योड़ी तथा ढाक आदि फूलों का रस) है। रासायनिक रंगों में सफेद (सफेदी कासगार जस्ते को फूंक कर बनाया गया रंग), लाल-सिन्दूर (पारे का भस्म) तथा हिंगुल (संगरफ-रासायनिक रंग), पीला-प्योड़ी (रासायनिक) आदि हैं। खनिज रंगों में लाल-हिरौंजी तथा गेरू (खनिज), नीला - लेपिसलाजुली पीला—चमकदार हरतल, पीला गन्दा – रामरज, हल्का पीला मटमैला—मुलतानी मिट्टी, सफेद खड़िया हरा जंगाल सगसब्ज (टेरावर्ट) आदि हैं। इन रंगों के सम्मिश्रण से बने बैंगनी) (नीला तथा सिन्दूर हिंगुल का सम्मिश्रण), गहरे चमकदार हरे (नील तथा प्योड़ी का मिश्रण) आदि रंग हैं। इन रंगों के अतिरिक्त, शंख की भस्म, अबरक एवं सफेद पत्थर के चूर्ण घिस कर बनाये गये चूर्ण तथा सोने चाँदी के वर्क से बने रंग का प्रयोग विशेष है।

मुगल चित्रों में संगत तथा शीतल, जैसे— गुलाबी (सफेद + लाल), हरे फाखतई, हल्के नीले, धुम्रांयेले (ग्रे) तथा सफेद रंगों का प्रयोग अधिक है। इन रंगों के अतिरिक्त सोने तथा चांदी की हिलकारी बनाकर इनके रंगों का प्रयोग किया गया है जिससे चित्र अधिक ओजपूर्ण बन गये हैं। रात्रि अथवा वर्षा का वातावरण दर्शाने

के लिये प्रत्येक रंग में काला रंग मिला दिया जाता था. ऐसे रंग को 'बुता रंग' कहते थे। चमकदार रंगों को 'चुहचुहा' रंग कहा जाता था।

रेखांकन विधि—चित्रों की सीमा रेखा को प्रायः चरवे से बनाया गया है। यह चरवे (ट्रेसिंग पेपर के समान बनाई गई हिरन की महीन खाल) हिरन की खाल पर बारीक छेद करके बनाये जाते थे और इन छेदों पर आक पौधों को जलाकर बनाई गई बारीक राख की पोटरी को फिरा दिया जाता था, जिससे चित्र की सीमा-रेखा बन जाती थी। इस प्रकार के अनेक चरवे प्राप्त हैं।

रात्रि के दृश्य—मुगल चित्रकार ने चाँदनी रात या दो प्रकार के प्रकाशों को दिखाने में कमाल कर दिया है। ऐसे चित्रों में कागज पर सबसे पहले चाँदी का अस्तर या पृष्ठिका लगा दी जाती थी जिससे चांदनी या पानी का प्रभाव दिखाई पड़ने लगता था। कभी-कभी रात्रि में मशालों को सोने के रंग से बनाकर चांदनी के प्रकाश को चांदी के रंग से भी दिखाया गया है—इस प्रकार दो प्रकार के प्रकाश दिखाये गये हैं।

मुगल चित्रों की रेखा—मुगल चित्रों की रेखायें साफ महीन और लिपि की रेखाओं के समान हैं। रेखाओं के बल, गति और सजीवता होने के कारण मुगल चित्र निखर उठे हैं। सीमा रेखाओं के किनारों पर आवश्यक स्थानों पर डौल या गोलाई लाने के लिये सुकोमल छाया का प्रयोग किया गया है। मुगल रेखाओं में चरित्र-चित्रण की अपूर्व शक्ति हैं।

छाया या परदाज—मुगल चित्रों में सादृश्य और यथार्थता लाने के लिए आकृतियों में आवश्यकतानुसार छाया का प्रयोग किया गया है, जिससे गहराई और प्रकाश का उठा हुआ भाग चित्र में स्पष्ट दिखायी पड़ने लगता है। यह छाया प्रायः बगलों तथा चेहरे में कान तथा जबड़े के नीचे और आंख के पास लगाई गई है। इस छाया को महीन तूलिका (केवल एक दो बाली बाली तूलिका) से काली स्याही या किसी काले मिश्रित उपयुक्त रंग से, पास-पास महीन तथा छोटी रेखाओं को खींच कर 'खत परदाज' या पास-पास बारीक बिन्दु लगा कर 'दाना परदाज' के द्वारा बनाया जाता था।

मुगल चित्रों की योजना तथा संयोजन—मुगल चित्रों की योजनाएं सरल तथा चित्राकर्षक है। अधिकांश चित्रा में लम्बवत या क्षैतिज योजनाओं का प्रयोग है। व्यक्ति चित्रों प्रायः त्रिभुजाकार उदय (लम्बवत) योजनायें ली गई हैं।

चित्रों के तीनों भाग अर्थात् पृष्ठभूमि' मध्यभूमि और मुख्यभूमि या अग्रभूमि को समान कुशलता और परिश्रम तथा सावधानी से बनाया गया है। मुगल चित्रों में अत्यधिक स्थानान्तर या दूरी दिखाने के लिये क्षैतिज रेखा को चित्र के ऊपरी भाग में रखा गया है। क्षितिज के पास पृष्ठभूमि के भाग में प्रायः फारसी ढंग के साफ

पहाड़ बने हैं जिनमें दरारें सुकोमल रंगों के द्वारा बनाई गई हैं। मध्य भाग में मैदान का भाग है जिनमें अनेक वृक्ष आदि बनाए गए हैं। मध्यभूमि या मुख्यभूमि में प्राय: चित्र की प्रमुख आकृति बनाई गयी है। चित्र के प्रमुख व्यक्ति को केन्द्रत्व प्रदान किया गया है। मुख्यभूमि में पानी या पुष्पित पौधों को भी बनाया गया है। चित्र के अनेक व्यक्तियों को उनके पद या महत्व के अनुसार ही किसी उपयुक्त स्थान पर रखा गया है।

अधिकांश मुगल चित्रों में उद्यान, राजप्रासाद, दुर्ग बारहदरी (बरामदा), दीवानेआम तथा दीवाने खास, शामियाने तथा कनातें या प्राकृतिक दृश्य बनाये गए है जिनमें भारतीय वृक्ष तथा वातावरण हैं। भारतीय वृक्षों में वट, ताड़, आम, जामुन, केला इत्यादि अनेक प्रकार के वृक्षों का संयोजन है।

भवन— मुगल चित्रों में भवन का अत्यधिक प्रयोग किया गया है। यह भवन सफेद संगमरमर के हैं या चूने से पुते बनाये गए हैं। कभी-कभी भवन लाल रंग के हैं जो आगरा तथा दिल्ली के लाल पत्थर से बने दुर्गों तथा भवनों की याद दिलाते हैं। यह भवन समसामयिक मुगल भवन-शैली में बनाए गए हैं। इनमें गुम्बद, बारहदरी, महराबों, चबूतरों, छज्जों तथा जालियों को सुन्दरता से बनाया गया है। भवन के साथ उद्यान भी बनाए गए हैं। मुगल दरबार-मंडपों की महरावें घुमावदार वक्रों से बनाई गयी हैं और स्तम्भों पर सुन्दर सजावट है। भवन में मोजाईक के आलेखन भी बनाये गए हैं। मुगल चित्रों में दुर्गों का चित्रण भी किया गया है। इन दुर्गों को दिल्ली के लाल किले या आगरा के किले के समान बनाया गया है। दुर्गों के विशाल द्वार, परकोटे तथा कंगूरे और बुर्जियां मुगल दुर्गों की विशेषताएं थीं जो यथोचित रूप से चित्रों में दर्शाई गई हैं।

परिप्रेक्ष्य (Perspective) **तथा स्थितिजन्य-लघुता** (Fore shortening)— मुगल शैली के चित्रों को देखने से स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि चित्रकार को दार्ष्टिक परिप्रेक्ष्य का पूर्ण ज्ञान था परन्तु फिर भी कहीं कहीं पर परिप्रेक्ष्य के नियमों का पालन इसलिए नहीं किया गया है कि आलेखन का प्रवाह न टूट जाय या आलेखन का प्रभाव समाप्त न हो जाय— इस प्रकार अलंकरण और आलेखन को परिप्रेक्ष्य की तुलना में अधिक महत्व दिया गया है। सामान्यत: भवनों आदि के बनाने में तथा परेडों आदि के दृश्यों में परिप्रेक्ष्य का प्रयोग किया गया है। कलकत्ता म्युजियम में एक घुड़सवारों के दस्ते का दृश्य है, जिसमें सैनिक-दस्ते को मुख्यभूमि से पृष्ठभूमि में तिरछा जाते हुए दिखाया गया है। इस चित्र में पृष्ठभूमि के सवार छोटे ही नहीं बनाये गये हैं वरन् अपनी स्थिति के अनुसार सवारों की आकृतियां अपनी स्थितियों में बदलती भी दिखाई पड़ती हैं मुख्यभूमि के सवारों की पीठ ही दिखाई पड़ रही है परन्तु पृष्ठभूमि में क्रमिक रूप से छोटे होते हुए और बाई ओर घूमते सवारों का

बाया अंग दिखाई देने लगता है। इस प्रकार इस चित्र में दार्ष्टिक परिप्रेक्ष्य के साथ-साथ स्थिति-जन्यलघुता का सुन्दरता से समावेश किया गया है।

आलेखन—मुगल कलाकारों ने हाशिये में ही नहीं बल्कि फर्श, कालीन, पर्दों, छत्रों, स्तम्भों दीवारों तथा वस्त्रों आदि में भी आवश्यकतानुसार आलेखनों का प्रयोग किया है। भवन सम्बन्धी आलेखन प्राय: ज्यामितिक हैं। परन्तु अन्य स्थानों पर पुष्प और पत्तों आदि से सुन्दर बेलें तथा बूटियां बनाई गई हैं। कपड़ों में यह आलेखन प्राय: सुनहरी रंग से बनाए गए हैं।

वस्त्र तथा आभूषण—मुगल चित्रों में प्राय: जामा, चुस्त पाजामा, कमर में पटका और पगड़ी पुरुषों का पहनावा है। यह जामे बहुत कुछ राजपूत बाने का परिष्कृत रूप है। स्त्रियों के पहनावे में झीना आँचल, कुर्ता या चोली आस्तीनदार तथा पाजामा तथा लहंगा सामान्यत: प्रयोग किया गया है। पैरों में नोकदार देशी जूतियां बनाई गई हैं। मुगल चित्रों में बादशाहों, योद्धाओं, सामान्य व्यक्तियों आदि के जूते भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं जिनसे उनको पहचानना सरल हो जाता है। बादशाहों की पगड़ियों में कीमती मोतियों की कलगियां बनाई गई हैं। उनके गले में कीमती मोतियों की अनेक मालायें बनाई गई हैं, जिनसे उनका वक्षस्थल ढका रहता है। मालाओं के अतिरिक्त युवराजों के कानों में प्राय: कुंडल भी बनाए गए हैं। स्त्रियों के आभूषणों में मोतियों की मालायें, बेंदी, बाजूबन्द, दस्तबन्द, कड़े, झुमके, झूमड़ तथा पेटियां बनाई गई हैं।

हस्त-मुद्रायें तथा अंग-भंगिमायें—मुगल चित्रों में यथार्थता का अधिक समावेश है इसी कारण अधिकांश हस्तमुद्रायें तथा अंगभंगिमायें स्वाभाविक और यथार्थ हैं। हस्तमुद्राओं में सजीवता और भावाभिव्यक्ति की क्षमता है। हस्तमुद्राओं तथा अंगभंगिमाओं से चित्रकार ने चित्र की योजना में एक नाटकीयता उत्पन्न कर दी है। मुगल व्यक्ति-चित्रों में आकृति अधिकांश खड़ी मुद्रा में बनाई गई हैं। सामान्यता खड़ी, बैठी, झुकी, सलाम या मुजरा आदि करती अनेक प्रकार की अंग-भंगिमाओं में मानवाकृतियों को चित्रांकित किया गया है। हाथों, उंगलियों, तथा पैरों आदि की बनावट सुन्दर और सजीव है।

मुगल दरबार में यूरोपियन कला का प्रभाव बराबर बढ़ रहा था परन्तु फिर भी मुगल कला अपनी निजी अस्तित्व बनाए रही और उसने अपनी अलंकारिक योजना, संगत रंगों की शीतलता तथा सुमधुर कोमलता, सीमा रेखा के साथ गोलाई, उभार या डौल की विशेषता को न जाने दिया। अन्तत: पाश्चात्य प्रभाव मुगल कला की गति को न मोड़ सका।

मुगल चित्रों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह बादशाहों और उनके मुसाहिबों की कला थी। इसमें जन-जीवन और समाज की झांकी नहीं है केवल राज्य-अधिकारियों, समाज के नियन्त्रकों और देश के भाग्य निर्णायकों की

जीवन-चर्या ही है। मुगल चित्रकला जनता से सर्वथा छिन्न-भिन्न रही और कभी भी उसका सम्बन्ध जनसाधारण या लोक भावना से न हो सका। मुगल कला मुगल वैभव, विलास और ठाट-बाट में खोई रही। अधिकांश चित्र इतने मूल्यवान थे कि साधारण जनता इतना व्यय भी नही कर सकती थी।

दक्षिण शैली

दक्षिण में, विजयनगर के राजाओं के समसामयिक वहमनी सुल्तानों का शासन था। इन सुल्तानों का साम्राज्य १४ वीं शताब्दी से १६वीं शताब्दी के मध्य-सुदृढ़ रूप से स्थापित हो गया था। सुल्तान अहमदशाह वली वहमनी ने कला-प्रेम का परिचय दिया। उसने १४३२ ई० में निर्मित वीदर दुर्ग के रंगमहल के कक्षों में चित्र बनवाए। किसी समय इस महल के तीन कक्षों में सुन्दर पुष्पलताओं के चित्र थे। अहमदशाह वली का मकबरा ईरानी ढंग की फूल पत्तियों की नक्काशी से सुसज्जित था। बहमनी शासकों के कलानुरागी होते हुए भी दक्षिण में कला का विकास न हो सका।

१४९० ई० से १५१२ ई० के मध्य बहमनी साम्राज्य के पतन के पश्चात् दक्षिण में पांच राजवंश स्थापित हुए जो निम्न है[1]—

(१) वीदर का बरीदशाही वंश
(२) अहमदनगर का निजामशाही वंश
(३) बिरार का इमादशाही वंश
(४) बीजापुर का आदिलशाही वंश
(५) गोलकुण्डा का कुतुबशाही वंश

इन पांचों राज्यों ने १५६५ ई० में सन्धि करके विजयनगर के हिन्दू राज्य को ताली कोटा युद्ध में हराकर विजयनगर राजधानी को लूटा, विध्वंस किया और जलाया। इस राजधानी के विध्वंसावशेष तुंगभद्रा के दक्षिणी तट पर आज भी स्थित हैं।

इन राज्यों ने प्रारम्भ में बहमनी राज्य की परम्परा को बनाये रखा परन्तु कालान्तर में केवल तीन राज्यों की कला परम्परायें ही आगे विकसित हुई। इन पाँच राज्यों में से केवल बीजापुर, गोलकुण्डा तथा अहमदनगर राज्यों ने चित्रकला की परम्परा को बनाए रखा। लगभग १७वीं तथा १८वीं शताब्दी में दक्षिण की ये चित्रशालायें पूना, हैदराबाद, कुडप्पा, कुर्नूल और शेरापुर आदि नगरों में विकसित हुई। दक्षिण के यह शासक युद्ध के समय में अपना पराक्रम तथा वीरता दिखाते थे परन्तु शान्ति के समय में सारा राजकार्य अपने मन्त्रियों पर छोड़ अपना समय भोग-बिलास में व्यतीत करते थे। जिस प्रकार दिल्ली की मुगल सल्तनत में चित्रकला को

1. 'आर्ट आफ दी बर्ल्ड (इन्डिया)—ले० हरमन गोएट्ज, पृष्ठ २०२।

राजकीय स्थान प्राप्त था उसी प्रकार दक्षिण से रजवाड़ों में संगीतज्ञ, चित्रकार कवि तथा कलाविद् सम्मानित होते थे। परन्तु दक्षिणी सुल्तान शासक अकबर की कलाओं के प्रति उदार नीति से अनभिज्ञ थे। दक्षिण में १६५० ई० से लेकर १७५० ई० तक कलाओं की अच्छी प्रगति हुई। सोहलवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में मुगल सम्राट अकबर ने दक्खिनी राज्यों पर विजय प्राप्त करने का अभियान प्रारम्भ कर दिया।

बीजापुर--बीजापुर का आदिलशाही राजवंश कला प्रेमी वंश था। इस वंश के प्रतिष्ठापक सुल्तान युसुफ आदिलशाह (१४९०-१५१० ई०) ने कला प्रेम प्रदर्शित किया। उसने ईरानी तथा तुर्की साहित्यकारों को अपने दरबार में निमंत्रित किया। उसका पुत्र इस्माईल अली आदिलशाह (१५५८-१५८० ई०) तथा उसकी पत्नी चांद सुल्ताना कला पारखी और महान कला संरक्षक थे। 'नुजूम-अल-उलूम' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ इन्हीं आदिलशाह के राज्यकाल (१५७० ई०) में चित्रित होकर तैयार हुआ था। इस सचित्र ग्रन्थ में दक्षिण शैली की भव्यता और प्राचीन फारसी भारतीय शैली की परम्परायें दिखाई पड़ती हैं। इस पोथी में ८७६ चित्र हैं। इन चित्रों में मानवाकृतियां, पशु, पक्षी आदि के चित्र बनाये गये हैं और इनका विषय ज्योतिष, तन्त्र-मन्त्र, शास्त्रविद्या तथा हस्तिशास्त्र आदि है। इन चित्रों में फारसी-ईरानी तथा भारतीय अपभ्रंश शैली का सम्मिश्रण है।

इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय (१५८०- १६२७ ई०) के समय बीजापुर कला की अत्यधिक उन्नति हुई। उसके समय में व्यक्ति चित्र तथा भित्तिचित्र बनाये गए। उसके पुत्र मुहम्मद आदिल शाह (१६२७-१६५७ ई०) ने भी कला के प्रति प्रेम प्रदर्शित किया। आगे चलकर इस वंश में अली आदिलशाह द्वितीय (१६५७-१६७२ ई०) में तथा सिकन्दर अलीशाह (१६७२-१६८७ ई०) ने बीजापुर शैली की उन्नति के लिये प्रयत्न किये। इन शासकों के समय में राजपूत, बुन्देला तथा पश्चिमी कला शैलियों का भी बीजापुर की कला पर प्रभाव पड़ा और 'रागमाला' चित्रावली अंकित की गयी। १६८७ ई० में औरंगजेब ने बीजापुर को परास्त कर आदिलशाही राज्य का अन्त कर दिया।

अहमदनगर—दक्षिण में अहमदनगर शासकों के संरक्षण में 'तारीफेहुसेन-शाही' (१५९१-९५ ई०) की सचित्र पांडुलिपि तैयार की गयी। यह पांडुलिपि पूना में तैयार की गई थी। इसके चित्र फारसी शैली के हैं और आलंकारिक तथा भव्य हैं। अहमदनगर में रागमाला चित्र भी बनाये गये। इन चित्रों में सुनहरी पृष्ठभूमि है और कठपुतलियों जैसी आकृतियां नहीं हैं तथा आलंकारिक विधान है।

गोलाकुन्डा—१५५० ई० से १५८० ई० के मध्य इब्राहीम कुतुबशाह (तुर्क) का गोलकुण्डा में शासन स्थापित हुआ। उसके पुत्र मुहम्मद कुली कुतुबशाह (१५८०-१६११ ई०) ने साम्राज्य का विकास किया। इसी काल में विजयनगर के अनेक शिल्पी, जुलाहे, कलाकार तथा स्वर्णकार गोलकुण्डा में काम करने लगे। गोलकुण्डा के बन्दर

गाह मसुलीपट्ठम में मुहम्मद कुली के समय कलाओं की उन्नति हुई। बादशाह कलाओं में रुचि लेता था और उसने हैदराबाद नगर भी बसाया जहां उसने प्रसिद्ध चारमीनार की इमारत बनवाई। इस समय का एक चित्र "नारी और मैना (चेस्टर वेट्रीसंग्रह में) प्राप्त है—इस चित्र की पृष्ठभूमि सुनहरी है—पर्वतों का चित्रण ईरानी शैली में दरारदार और गुलाबी रंग में हुआ है। अग्रभूमि में पुष्पित पौधे चित्रित हैं। मध्यभूमि में वृक्ष अंकित हैं जो चीनी ढंग के हैं। नारी का सांवला वर्ण लम्बे केश, लाल रंग का जामा, बैंगनी पजामा, सुनहरी दुपट्टा तथा कीमती आभूषण आदि के कारण यह चित्र सुन्दर प्रतीत होता है।

मुहम्मद कुली कुतुबशाह के पश्चात् उसका भतीजा मुहम्मद कुतुबशाह (१६११-१६२६ ई०) गद्दी पर बैठा। उसके समय में चित्र बनाये गये। उसके दरबार के एक चित्र में हल्के नीले आकाश में गहरे नीले रंग से गोल रेखायें बनाई गई हैं, भवन में सुनहरे स्तम्भों के ऊपर श्वेत मुंडेर एवं जालीदार गवाक्ष बनाये गये हैं, रिक्त दरवाजों में बैंगनी रंग लगाकर सुनहरी बूटे बनाये गये हैं। शरीर का वर्ण गुलाबी है (चेहराई गुलाबी है) और मानवाकृतियों के परिधान नीले, हरे, एवं श्वेत चित्रित किये गये हैं। सेवक तथा साईस आदि की आकृतियाँ पौने दो चश्म बनाई गई हैं। महत्वपूर्ण आकृतियाँ सादृश्यपूर्ण हैं और उनके चेहरे एक चश्म बनाये गये हैं। सेवकों की कमर में पटका तथा बगल में फुन्दनेदार कपड़ा बंधा बनाया गया है। १६१० से १६२० ई० के मध्य गोलकुण्डा में 'दीवान-ए-हाफिज' की सचित्र पोथी चित्रित की गई।

यह कला परम्परा अब्बुल हसन तानाशाह (१६७२-८७ ई०) तक प्रचलित रही। १६८७ ई० में औरंगजेब की सेना ने गोलकुण्डा पर घेरा डाल दिया। १६८८ ई० में औरंगजेब ने इन राज्यों को हराकर इनके ऊपर हैदराबाद में मुगल सूबेदार नियुक्त कर दिया।

दक्षिण शैली की विशेषता— दक्षिणी शैली के चित्र दृष्टांत चित्रों तथा स्फुट-चित्रों दोनों रूपों में प्राप्त हैं। इस शैली का अच्छा-खासा संग्रह हैदराबाद म्युजियम में संग्रहीत है। १७वीं शताब्दी की दक्षिण शैली के अनेक चित्र गोलकुण्डा तथा शालारजंग म्युजियम (हैदराबाद) के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। उस समय के दक्षिणी चित्रकारों में मीरहाशिम तथा रहीम आदि का नाम महत्ववान है। प्रिंस आफ वेल्स म्युजियम, बम्बई में कपड़े पर चित्रित बाजीपुर के सुल्तानों का विशाल पटचित्र प्राप्त है।

इन दक्षिणी शैली के चित्रों में अत्यधिक परम्परागत फारसी ढंग की आकृतियां बनाई गई हैं। चित्रों में चमकदार लाल, नीले, तथा पीले और सफेद रंग की प्रधानता है और सोने तथा चांदी के रंग का अत्यधिक प्रयोग है।

हैदराबाद—हैदराबाद का शासक आसफशाह (१७२४-४८ ई०) कलाकारों

का आश्रयदाता था। औरंगजेब के कट्टरपन के कारण कुछ चित्रकार दिल्ली दरबार से हैदराबाद आकर रहने लगे। आसफशाह अधिकांश औरंगाबाद में रहता था अतः हैदराबाद और औरंगाबाद दोनों स्थानों में चित्रकला फली-फूली। इस कला में मुगल-कला के अतिरिक्त स्थानीय कला की विशेषताएं तथा गोलकुण्डा की चित्रकला का प्रभाव आ मिला। गोलकुण्डा शैली का प्रभाव हैदराबाद तथा अन्य दक्षिणी शैलियों पर १२० ई० तक बना रहा। अठारहवीं शताब्दी में पुनः मुगल चित्रकार यहां आये और इस कला धारा में मिल गये।

हैदराबाद की चित्रकला में चित्र के विषय, वस्त्र, आभूषण, वर्ण विधान, आकृति रचना पुष्प तथा पशु मौलिक हैं। आश्रयदाताओं, स्त्रियों सामन्तों, दरवेशों तथा राग-रागनियों के चित्र इस कला के प्रधान विषय हैं। तानाशाह के समय के चित्रों में चटकीले रंगों तथा सुनहरे रंग का प्रयोग है परन्तु यह विशेषता हैदराबाद के परवर्ती चित्रों में नहीं है। परवर्ती चित्रों में फीके बेजान रंगों का प्रयोग है और संयोजन रूढ़िवादी है। अनेक चित्रों में आम, नारियल, पुष्पित चम्पा, ताड़ आदि के वृक्ष पृष्ठभूमि में अंकित हैं और मयूर आदि पक्षी बनाये गये हैं। चमकदार नीले आकाश में सुनहरी रेखाएँ तथा उड़ते पक्षी भी बनाये गये हैं। इन चित्रों में आलेखन-युक्त कालीन, तकिये तथा वस्त्र आदि दक्षिणी आलंकारिक प्रवृति के परिचायक हैं।

इस काल में जो रागमाला के चित्र बनाये गये वे उत्तम हैं। आश्रयदाताओं या जागीरदारों के चित्र अच्छे हैं परन्तु सन्तों या दरवेशों के चित्र भद्दे हैं।

आसफशाह के पश्चात् उसका बेटा नासिर जंग दो वर्ष तक शासक रहा। वह चित्रकार भी था। उसके उपरान्त मुजफ्फर जंग, सलावन जंग और १७६२ ई० में निजाम अली खां आसफशाह द्वितीय शासक बने। उनके राज्यकाल में चित्रकला फली-फूली। १७९३ ई० में 'तुजुक-ए-आसफी' ग्रन्थ का लेखन तथा चित्रण कार्य हुआ। निजाम स्वयं चित्रकार था और वेकटवलम् उसके दरबार का चित्रकार था जिसको बारह हजार रुपए वार्षिक आय की जागीर निजाम ने प्रदान की।

हैदराबाद शैली में दरबारी दृश्य, रनिवास, रागमाला, चकई क्रीड़ा, दूती द्वारा वधू का मार्ग दर्शन आदि के चित्र बनाये गये। आखेट के चित्र हैदराबाद कला में बहुत कम प्राप्त है। चित्रों में प्रायः हल्की पीली अथवा नीली पृष्ठभूमि पर आकृतियों की रचना की गई है। आकाश में रंग-बिरंगे बादल बनाये गये हैं—अग्रभूमि में पुष्पित क्यारियाँ चित्रित की गई हैं। जनजीवन के चित्रों पर स्थानीय प्रभाव है।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त से उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक कपड़े पर भी बड़े-बड़े चित्र बनाये गये इनमें जलूसों आदि का उसी शैली में चित्रण किया गया।

हैदराबाद कलम की विशेषताएं—

१. समस्त चित्रों में संयोजन व्यवस्था आदि परम्परागत और एक ही प्रकार की हैं।

२. आकाश का चित्रण गहरे नीले बुते हुए रंग से किया गया है।

३. मानवाकृतियों की शारीरिक रचना लम्बोत्तर है।

४. श्वेत मीनारों में बारीक पच्चीकारी का चित्रण किया गया है।

५. स्त्रियों के पीछे की ओर ढलवां तथा छोटे माथे, एक चश्म, प्रफुल्ल चेहरे बनाये गये हैं और लम्बे तरंग केश बनाये गये हैं।

६. मोतियों वाले आभूषण जैसे—सतलड़ी या पंचलड़ी हार, कण्ठी, माला, धुकधुकी, बाजूबन्द, कंकन कर्णफूल आदि बनाये गये है। स्त्रियों का पहनावा लम्बी चोली, सूथन दुपट्टा तथा पेशवाज है।

७. पुरुषों का पहनावा—घेरदार जामा, पगड़ी, कमरबन्द तथा सरपेंच है और उनको हार, माला, बाजूबन्द पहने दर्शाया गया हैं।

८. भवनों, विलास सामग्री जैसे कालीन, चीनी पुष्पपात्र तथा वस्त्रों में टोंच कसीदाकारी आदि दर्शाई गई है।

९. पृष्ठ भूमि में दक्षिणी शैली के भवन या मुगल शैली की पृष्ठ-भूमि अंकित है।

१०. हाशिये सुनहरी अथवा सिंगरफी रंग से नक्काशीदार बनाये गये हैं।

११. मयूर का अधिक चित्रण है।

आसफशाह चतुर्थ तथा पंचम (१८२९-६१ ई०) के समय में यहाँ की चित्रकला का ह्रास हो गया।

राजस्थानी चित्रकला

६

राजस्थानी चित्रकला

(१६०० ई० से १८५० ई० तक)

उत्तरी-भारत में सोलहवीं शताब्दी से बहुत से लघु चित्र प्राप्त होने लगते हैं, जो मुगल कालीन हैं। १६१६ ई० में स्व० आनन्द कुमार स्वामी ने इन चित्रों का वर्गीकरण करते हुए इनको दो भागों के अन्तर्गत रखा, एक तो—'मुगल शैली के चित्र' और दूसरे—'राजपूत शैली से चित्र'। राजपूत शैली के अन्तर्गत उन्होंने राजपूतना तथा पहाड़ी राज्यों के चित्रों को रखा। परन्तु आधुनिक खोजों के अनुसार यह सर्वथा भ्रम-मूलक आधार हैं क्योंकि राजस्थान क्षेत्र की चित्रकला के उदाहरणों और पहाड़ी शैली के उदाहरणों में लगभग २०० वर्ष का अन्तर है। जब राजपूत या राजस्थानी शैली पतन को प्राप्त होती है उस समय पहाड़ी शैलियों का शैशव काल आरम्भ होता है। राजस्थानी शैली के चित्र अपनी मौलिकता सोलहवीं शताब्दी तक ग्रहण कर अठारहवीं शताब्दी तक अपनी विशेषताओं को खो देते हैं। पहाड़ी चित्रों का निर्माण अठारहवीं शताब्दी से आरम्भ होता है और लगभग ५० वर्ष पश्चात् यह शैली अपना यौवन प्राप्त करती है। इसके अतिरिक्त राजस्थानी चित्रों का मूल स्रोत लोक-चित्रकला या प्राचीन अपभ्रंश या जैन शैली हैं इसी कारण इस शैली में पूर्णता भारतीय भित्ति-चित्रण की आलंकारिक परम्परा दिखाई पड़ती है। पहाड़ी शैलियों का विकास इसके विपरीत मुगल कला से हुआ और साथ ही यह पूर्ण रूप से सूक्ष्म चित्र कला का एक अत्यधिक विकसित, परिमार्जित और सुन्दर रूप है। इन दोनों शैलियों की विषय वस्तु में भी पर्याप्त अन्तर है—राजस्थानी शैली में राग-रागनियों की अधिकता है परन्तु पहाड़ी शैली में राग-रागनियों का अंकन नगण्य सा है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि पहाड़ी क्षेत्रों की चित्रकला राजस्थान क्षेत्र की चित्रकला से भिन्न है। पहाड़ी तथा राजस्थान क्षेत्र की चित्रकला को पहाड़ी और राजस्थानी

राज्यों में राजपूत वंशीय शासक होने के कारण राजपूत नाम से पुकारना उचित नहीं (पहाड़ी राज्यों में भी राजपूत राजा ही राज्य करते थे)। अतः राजस्थान क्षेत्र की कला को राजस्थानी कला के नाम से पुकारना ही उपयुक्त है। जाति के आधार पर 'राजपूत कला' नाम अधिक भ्रम-मूलक सिद्ध होगा क्योंकि प्रत्येक राजपूत जाति के द्वारा शासित राज्य की कला इन नाम के अन्तर्गत रखी जा सकती है। परिणामतः राजस्थान की कला को 'राजस्थानी-शैली' के नाम से पुकारना संगत है। इस नाम से एक निश्चित क्षेत्र की विशिष्ट कला का ही सम्बोधन होता है।

राजस्थान एक विशाल मरुस्थलीय क्षेत्र है जिसमें आठवीं शती से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक अनेक छोटे बड़े राज्य स्थापित हो चुके थे। इस प्रदेश के शासक-राजपूत (राज+पुत्र) थे। उनकी सभ्यता की छाप आज भी समस्त उत्तरी भारत पर स्पष्ट दिखाई पड़ती है। आमेर(जयपुर),बीकानेर, जोधपुर, तथा उदयपुर, आदि राजपूतों के प्रमुख स्थानों में राजभवनों में भित्तिचित्रण के चिन्ह प्राप्त हैं। इन स्थानों में अभी भी भित्तिचित्रण की प्राचीन परम्परा विद्यमान है। यहां के चित्र आलंकारिक शैली के हैं पहले बताया जा चुका है कि बुद्ध धर्म की अवनति के पश्चात हिन्दू धर्म की उन्नति से अनेक सामाजिक तथा धार्मिक परिवर्तन हुए जिनका हिन्दू-कला तथा साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। मन्दिरों के निर्माण के कारण भवन तथा मन्दिर के साज-समान, धार्मिक साहित्य तथा संगीत में पुनः प्रगति हुई। बारहवीं शताब्दी में रामानुज ने एक सम्प्रदाय आरम्भ किया जिसका समस्त भारत पर प्रभाव पड़ा और सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ तक उत्तरी भारत में इस आन्दोलन ने एक विशाल रूप ग्रहण कर लिया। ब्रज का समीपस्थ क्षेत्र इस आन्दोलन का प्रमुख केन्द्र था। ब्रज-प्रदेश मुगल राज्य में रहते हुए भी राजस्थान की सीमा पर था अतः राजस्थान पर इस आन्दोलन का प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। रामानुज सम्प्रदाय के अनुयाईयों में चैतन्य, बल्लभाचार्य, सूर, तुलसी, मीरा आदि प्रमुख थे। रामानुज ने विष्णु के किसी भी रूप की आराधना पर बल दिया, इस कारण यह सम्प्रदाय वैष्णव सम्प्रदाय के नाम से अधिक विख्यात हुआ। विष्णु ने अनेक रूपों में राम तथा कृष्ण की भक्ति का प्रमुख स्थान था और कृष्ण को राम से अधिक महत्व प्राप्त हुआ। इस सम्प्रदाय का उद्देश्य परमात्मा या विष्णु के किसी रूप में आत्मा की विस्मृति करना था। उपासक देव-आराधना में खोकर संसार को भूल जाता था। मीरा के भक्ति पद राजस्थान तथा ब्रज में लोक-वाणी बन गए। इसी समय में कबीर, नानक, दादू आदि समाज सुधारक भी हुए।

सोलहवीं शताब्दी की चित्रकला और साहित्य पर वैष्णव-सम्प्रदाय का गहरा प्रभाव पड़ा। इस आन्दोलन के कारण राजस्थानी कला में काव्य की अत्यधिक नवीन, सुमधुर कल्पना, भावुकता और रहस्यात्मकता आई। इस सामाजिक जागरण और अकबर की उदार नीति के कारण कलाओं में एक नवीन सूझ-बूझ और रसप्रवाह दिखाई पड़ने लगा।

पहले उल्लेख किया जा चुका है कि चौदहवीं तथा पन्द्रहवीं शताब्दी में मथुरा तथा अनेक गुजराती तथा राजस्थानी तीर्थ स्थानों के मठों में चित्रित पोथियाँ बाँटने का प्रचलन हो गया था। इस प्रकार की पोथियों की चित्रकला में कुछ नवीन विशेषतायें प्रस्फुटित होने लगी थीं। परन्तु मुगल काल के आते-जाते वह कला अनेक राजस्थानी राज्यों में अपना विकासोन्नमुख रूप धारण कर लेती है। मुसलमानों के आक्रमणों तथा कट्टरपन के कारण चित्रकला कुछ हिन्दू राज्यों में ही शिथिल गति से जीवित रही और वही कला कालान्तर में भौतिक विशेषतायें ग्रहण कर गई। मुगल सम्राट अकबर ने मेवाड़ को छोडकर लगभग सम्पूर्ण राजस्थान पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था। इस प्रकार सोलहवीं शताब्दी में राजस्थानी कला पर मुगल प्रभाव भी पड़ा और परवर्ती काल में यह शैली मुगल 'सम्बन्ध से बहुत परमार्जित होती गई और मुगल-काल भी इस शैली के सम्बन्ध से परिवर्तित होकर मुगल या भारतीय

रेखाचित्र सं० १६
'कृष्ण का रूप धारण किये स्त्री' राजस्थानी शैली
(सोलहवीं या सत्रहवीं शताब्दी)

बनी। इस प्रकार राजस्थान के अनेक नगरों में कुछ अपनी विशिष्ट मौलिकताओं के साथ अनेक राजस्थानी शैलियाँ सोलहवीं शताब्दी तक विकसित हो गई थीं।

राजस्थान के विभिन्न राज्यों में केवल मेवाड़ बहुत समय तक अपनी स्वतंत्रता बनाए रहा और मेवाड़ में ही सर्वप्रथम प्राचीन चित्रकला का पुनरुत्थान हुआ जान पड़ता है। सम्भवत: यह प्राचीन शैली बूंदी, जयपुर, जोधपुर, आदि स्थानों में भी प्रचलित थी परन्तु इसके आरम्भिक उदाहरण प्राप्त नहीं होते और जो उदाहरण प्राप्त भी होते हैं वह मुगल कलीन हैं। इन राज्यों पर शीघ्र मुगल अधिपत्य होने के कारण मुगल कला का प्रभाव भी शीघ्र ही पड़ने लगा होगा। समस्त राजस्थानी राज्यों की चित्र शैलियाँ सत्रहवीं शताब्दी में विकास को प्राप्त हो जाती है और इनमें पूर्ण परिपक्वता और परिमार्जन आ जाता है। राजस्थान की चित्रकला का अध्ययन करने से इन कला शैलियों की जानकारी सुलभ होती जा रही है। फिर भी राजस्थान की प्रमुख चित्रकला शैलियों में मेवाड़ शैली, बूंदी शैली, किशनगढ़ शैली, जयपुर शैली या आमेर शैली (अम्बर शैली) और बीकानेर शैली प्रमुख हैं। बीकानेर में मुगल राज्य हो जाने से इस स्थान की चित्रकला पर मुगल प्रभाव बहुत अधिक दिखाई पड़ता है।

आधुनिक खोजों तथा अध्ययन के द्वारा राजस्थानी कला का पुन: अवलोकन करने की आवश्यकता है, क्योंकि राजस्थानी कला में भिन्न शैलियां विकसित हुई हैं। इनके जन्म और विकास क्रम का जानना आवश्यक है। विभिन्न राज्यों में कला ने कुछ न कुछ अपनी निजी विशेषता ग्रहण की है इसी प्रकार की प्रवृत्तियों ने राजस्थानी कला के विकास तथा प्रगति को नवीन मोड़ दिया है। अब तक बहुत से राजस्थानी कला-संस्थानों के इतिहास के विषय में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया जा चुका है।

मेवाड़ की चित्रकला
(मेवाड़ शैली)

मेवाड़ की स्थित—मेवाड़ की राजधानी 'उदयपुर' अपनी सुन्दरता के लिये प्रसिद्ध है। यह नगरी मनोरम झीलों के कारण विख्यात है। इन झीलों के अतिरिक्त चारों ओर के जगल, पहाड़ियाँ तथा भव्य राजप्रसाद इसकी शोभा को और अधिक बढ़ा देते हैं। झीलों के मध्य और किनारे बने जलमहलों तथा दुर्गनुमा महलों के कारण यह झीलें और अधिक आकर्षक बन गई हैं। उदयपुर का राजदरबार सदैव संगीत तथा नृत्य की लय से गूंजता रहा और यहां राजाओं की जीवन-पद्धति मध्य-कालीन वैभव की प्रतीक थी। राजपूत-सभ्यता की छाप मेवाड़ की चित्रकला में दिखाई पड़ती थी।

मेवाड़ के राणांओं का कला प्रेम—मेवाड़ के इतिहास में महाराणा कुम्भा (१४३३ १४६८ ई०) का महत्वपूर्ण स्थान है। महाराणा कुम्भा एक संगीतज्ञ, विद्वान और

कला-संरक्षक शासक था। महाराणा कुम्भा के पश्चात् राणा सांगा या संग्राम सिंह (१५०९-१५२८ ई०) में मेवाड़ की सत्ता को और अधिक सुदृढ़ बनाया और उसने बाबर से भी युद्ध किया। राणा सांगा के पुत्र भोजराज का विवाह मीराबाई से सम्पन्न हुआ। मीराबाई के गाये भक्ति पद आज भी गुजरात, बुन्देलखण्ड तथा राजस्थान में लोक-प्रिय गीत हैं। इस समय वैष्णव सम्प्रदाय अपने पूर्ण यौवन पर था और फिर जब महारानी मीराबाई ही वैष्णव भक्ति में खो गई थी तो फिर मेवाड़ पर तो वैष्णव भक्ति का प्रभाव अवश्य ही गहरा होना चाहिए था। राणा उदयसिंह (१५३५-१५७२ ई०) ने अकबर के आक्रमणों का सामना किया परन्तु राणा को अपनी राजधानी चित्तौड़ को छोड़ना पड़ा और नवीन राजधानी 'उदयपुर' की स्थापना करनी पड़ी। राणा उदयसिंह के उत्तराधिकारी महाराणा प्रताप (१५७२-१५९७ ई०) ने मुगलों से लोहा लिया और मुगलों के दाँत खट्टे कर दिये। राणा ने जगलों की शरण लेकर मुगलों से युद्ध किया। राणा ने मुगलों की अधीनता स्वीकार न की, परन्तु उसको अपनी राजधानी चावन्ड (चावण्ड) बनाना पड़ी। अमर सिंह प्रथम (१५९७-१६२० ई०) को परिस्थितिवश मुगल अधिपत्य स्वीकार करना पड़ा। इस प्रकार अमरसिंह के प्रथम पुत्र कर्णसिंह (१६२०-१६२८ ई०) के समय में मुगलों से पर्याप्त सम्बन्ध स्थापित हो गया। कर्णसिंह के उत्तराधिकारी राजा जगत सिंह (१६२८-१६५२ ई०) को शाहजहां ने अनेक भेंटे और उपाधियां प्रदान कीं परन्तु राजा राजसिंह (१६५२-१६८० ई०) पहले मुगलों से मिला रहा परन्तु बाद में औरंगजेब की नीति से मुगलों के विरुद्ध हो गया और उसने मुगलों से युद्ध किया। यह युद्ध सिद्ध 'श्रीनाथ जी' की मूर्ति के सम्बन्ध में हुआ। बाद में इस मूर्ति की स्थापना 'सीहाड़' में की गई जो आगे चलकर 'श्रीनाथ द्वारा' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। 'श्रीनाथ-द्वारा' वैष्णव कला तथा सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र बन गया। राजा राजसिंह को काव्य तथा भवन में विशेष रुचि थी। राजसिंह के पश्चात् जयसिंह (१६८०-१६९८ ई०) मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा। वह स्वतंत्र प्रकृति का शान्तिप्रिय शासक था। उसमें राजसिंह जैसी योग्यता थी परन्तु वह निर्बल शासक सिद्ध हुआ। जयसिंह के पश्चात् अमरसिंह द्वितीय (१६९८-१७१० ई०) ने शासन व्यवस्था का सुधार किया परन्तु राजा को सुरा और सुन्दरी से अधिक प्रेम हो गया।

मेवाड़ के आरम्भिक चित्र – मेवाड़ के आरम्भिक चित्रों के उदाहरण बहुत कम प्राप्त हैं। इस शैली के आरम्भिक चित्रों का एक उदाहरण 'स्वापासनाचार्यम्' जिसका समय १४२३ ईसवी है, श्री विजयबल्लभ सूरी स्मारक ग्रन्थ, बम्बई (१९५६ ई० में प्रकाशित, पृष्ठ १७६) में प्रकाशित है। इस चित्र की शैली गुजराती तथा राजस्थानी शैली का सम्मिश्रण है और शैली अलंकारिक है, जो पश्चिम भारतीय शैली या अपभ्रंश शैली का ही एक प्रगतिशील रूप है। सोलहवीं शताब्दी की मेवाड़-कला के विषय में विवरणों तथा प्रमाणों के प्राप्त न होने के कारण कुछ निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता। परन्तु यह अनुमान किया जा सकता है कि इस शैली का

विकास पश्चिम भारतीय शैली या अपभ्रंश शैली के आधार पर ही होता रहा होगा। 'आनन्द कुमार स्वामी' ने १९२६ ई० में मेवाड़ शैली को विशेष रूप से विचित्र (भद्दे) प्रकार की श्रीनाथ जी और उनसे सम्बन्धित चित्रों तक सीमित शैली बताया है। यह चित्र सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दी में 'नाथद्वारा' में बनाए गए और यह चित्र वैष्णव सम्प्रदाय के यात्रियों और श्री वल्लभाचार्य के अनुयाईयों के लिए सम्पूर्ण राजस्थान तथा गुजरात में बांटे जाते थे।[1]

रेखाचित्र, सं० २०
माता पुत्र
उदयपुर भित्तिचित्र, राजस्थानी शैली
(अठारहवीं शताब्दी)

नवीन खोजों से मेवाड़ शैली के तिथि सहित चित्र प्रकाश में आये हैं। श्रीनाथद्वारा की कला शैली धीरे-धीरे मेवाड़ के दूसरे नगरों में पहुंची और उदयपुर नगर इस कला का विशेष केन्द्र बन गया। इस शैली के अन्य केन्द्रों में चित्तौड़ तथा चावन्ड का विशेष स्थान है। नाथद्वारा के जो चित्र उदाहरण प्राप्त हुए हैं ये तनिक

1. 'कैटलाग आफ इन्डियन कलेक्शन्स' (पार्ट फिफ्थ)—ले० आनन्द कुमारस्वामी, पृष्ठ ४।

बाद के है। कुमारस्वामी के कैटलाग ग्राफ इन्डियन कलेक्शन्स के मुख्य-पृष्ठ के चित्र 'कृष्ण राधा की प्रतीक्षा करते हुए' में दक्षिणी-राजस्थानी या गुजराती शैली का प्रभाव माना गया है ग्रौर उन्होंने इसका समय सोलहवीं शताब्दी बताया है। परन्तु इस शैली के 'गीत गोविन्द' के चित्र जो प्रिंस ग्राफ वेल्स म्युजियम, बम्बई में सुरक्षित हैं के ग्राधार पर यह चित्र उदयपुर में सत्रहवीं शताब्दी में बना हुग्रा होना चाहिए।[1] ग्रनेक तिथि सहित उदाहरणों से यह सिद्ध हो जाता है कि राजस्थानी शैली ने सोलहवीं शताब्दी के ग्रन्त में पश्चिम भारत कला-शैली से भिन्न ग्रपनी मौलिकता उत्पन्न कर ली थी ग्रौर इस नवीन कला शैली के विकास ग्रौर प्रगति में मेवाड़ ग्रग्रगण्य था।

मेवाड़ शैली का विकास—मुगल साम्राज्य के उदय तक मेवाड़ में दूसरे राज्यों के समान ही 'पश्चिम भारतीय शैली' या ग्रपभ्रंश शैली' प्रचलित थी। परन्तु नवीन मुगल कला शैली के सम्पर्क से उसमें कई परिवर्तन हुए ग्रौर राजस्थानी शैली सोलहवीं शताब्दी के ग्रन्त तक विकसित होती रही। सत्रहवीं शताब्दी के ग्रारम्भ में मेवाड़ कला परिपक्व रूप धारण कर चुकी थी। १६०३ ईसवी की एक ग्रपूर्ण 'रागनी चित्रमाला', जो श्री गोपीकृष्ण कनेरिया संग्रह, कलकत्ता में सुरक्षित है, चावन्ड में चित्रित की गई थी। इस चित्रमाला में चमकीले रंग हैं ग्रौर रेखांकन पश्चिमी भारत शैली या ग्रपभ्रंश शैली के समान हैं। रेखांकन में, कोणदार रेखाग्रों का प्रयोग है ग्रौर चेहरों की बनावट जैन पोथियों के चित्रों के समान है। १६०५ ईसवी से १६५० ईसवी तक की मेवाड़ कला की प्रगति ठीक प्रकार से ज्ञात नही, परन्तु इस समय का एक उदाहरण—'नायिका चित्रमाला' (समय ग्रनुमानतः १६४० ई०) नेशनल म्युजियम, नई दिल्ली मे सुरक्षित है।[2]

ऐसा प्रतीत होता है कि मेवाड़ स्कूल की उत्पत्ति १६०५ ई० से पूर्व राजस्थानी लोककला से हुई। इस प्रगतिशील कला में दार्ष्टिक-परिप्रेक्ष्य तथा रेखांकन की सतर्कता ग्रहण करने की चेष्टा दिखाई पड़ती है। इन सब प्रगति के चरणों को ग्रहण करती हुई मेवाड़ शैली सत्रहवीं शताब्दी के ग्रारम्भ में एक परिमार्जित शैली बन गई। परन्तु सत्रहवीं शताब्दी के मध्य मुगलों के सम्पर्क से यह शैली मुगल शैली की ग्रोर झुकने लगती है ग्रौर इस शैली में बहुत कुछ मुगल विशेषतायें घुल-मिल गईं। मुगल शैली का यह प्रभाव मेवाड़ कला पर विशेष रूप से जगतसिंह प्रथम (१६२८-१६५२ ई०) के राज्यकाल में ग्राया। मेवाड़ शैली के चित्रकारी में निसारदीन, साहबदीन ग्रौर मनोहर का नाम प्रमुख है।

---

1. भूमिका, 'मेवाड़ पेन्टिग'—ले० मोती चन्द्र।
2. भूमिका, 'मेवाड़ पेन्टिग'—ले० मोती चन्द्र।

मेवाड़ शैली के चित्रों का विषय

भागवत पुराण— मध्यकालीन वैष्णव सम्प्रदाय की ज्ञान ज्योति और उज्ज्वलता ने कृष्ण को अधिक महत्वपूर्ण देवता बना दिया और 'भागवत पुराण' वैष्णवों का धर्म-ग्रन्थ बन गया। भागवत पुराण के आधार पर अनेक कवियों और कलाकारों ने रचनायें कीं। सत्रहवीं शताब्दी की मेवाड़ शैली में भी भगवत पुराण की महत्वपूर्ण स्थान मिला और इस समय की कई सचित्र भागवत पुराण की प्रतियां प्राप्त हैं। उदयपुर संग्रहालय का भागवत पुराण शाहबादी नामक चित्रकार के द्वारा १६४८ ईसवी में चित्रित किया गया। इसी प्रकार भागवत पुराण के उदाहरण महाराजा जोधपुर संग्रह और कोटा पुस्तकालय के संग्रह में हैं। राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में भी भागवत पुराण के कुछ फुटकर पृष्ठ प्राप्त हैं।

रामायण—यद्यपि कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय का जोर होने के कारण कृष्ण की जीवन लीलाओं पर ही, कलाकारों की दृष्टि अधिक गई, परन्तु फिर भी 'रामायण' के आधार पर चित्र बनाये गये। १६४६ ईसवी की 'रामायण' की एक सचित्र-प्रति प्रिंस आफ वेल्स म्युजियम, बम्बई में और दूसरी प्रति सरस्वती भंडार, उदयपुर में सुरक्षित है। उदयपुर वाली प्रति १६५१ ईसवी की है जो चित्तौड़ में लिखी गई थी और सम्भवत: यहां पर ही चित्रित हुई। प्रिंस आफ वेल्स म्युजियम में 'दशरथ का लौटते हुए जलूस' एक सुन्दर चित्र उदाहरण है, जिसका समय १६४६ ई० है और उस चित्र को मनोहर ने बनाया।

दरबारी जीवन तथा राग रागनियों का चित्रण—इन चित्रकारो पर दरबारी संगीत और नृत्य का निश्चित रूप से गहरा प्रभाव पड़ा और दरबार में प्रेरणा पाकर ही चित्रकार ने दरबारी जीवन और राग-रागनियों का चित्रण किया। राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली की 'रागमाला चित्रावली' सबसे सुन्दर है और अपनी शैली की उत्कृष्ट कृति है।

नायिका भेद—राजस्थानी चित्रकारों ने तत्कालीन कवियों की रचनाओं पर आधारित चित्र भी बनाये जिनमें 'नायिका भेद' की प्रमुखता दी गई और वैष्णव धर्म के प्रभाव के कारण इन चित्रों में नायक तथा नायिका साधारण पुरुष या स्त्री न होकर कृष्ण और राधा जैसे आदर्श प्रेमी हैं। नायिका भेद के अन्तर्गत अष्ट अथवा दस-नायिका का अंकन किया गया। जो इस प्रकार है—१. प्रेषितपतिका, २. खंडिता, ३. कलहांतरिता, ४. विप्रलब्धा, ५. वासक-सज्जा, ६. उत्का (उत्कण्ठिता), ७. अभिसारिका, ८. आगतपतिका, ९. स्वाधीनपतिका, १० प्रवत्स्यत। केशवदास की 'रसिक प्रिया' ने समस्त राजस्थानी चित्र-कला में अत्यधिक सम्मान प्राप्त किया। 'रसिक प्रिया' मेवाड़ के चित्रकारों का प्रिय विषय बनी। मेवाड़ शैली की 'रसिक-प्रिया' की सचित्र प्रति बीकानेर के दरबार संग्रह में सुरक्षित है, परन्तु श्री गोएट्ज ने इस प्रति को अम्बर (आमेर) का माना और इस प्रति का समय १६५७ ईसवी माना

है। परन्तु यह समय और स्थान डा० मोती चन्द्र के अनुसार ठीक नहीं, उन्होंने इस प्रति का समय सत्रहवीं शताब्दी माना है और इसको मेवाड़ शैली का माना है।[1] 'गीत गोविन्द' को भी इस समय लोकप्रियता प्राप्त हुई और गीत गोविन्द' की अनेक सचित्र प्रतियाँ तैयार की गईं। गीत गोविन्द के आधार पर बने कुछ चित्र उदाहरण प्रिंस आफ वेल्स म्युजियम, बम्बई में सुरक्षित है। इन चित्रों पर अंकित लेख गुजराती और मेवाड़ी मिश्रित भाषा में हैं। मेवाड़ी शैली की दूसरी 'गीत गोविन्द' की प्रति कुमार संग्रामसिंह संग्रह (नाभागढ़) में है।

सूरसागर—बल्लभाचार्य के अनुयाइयों के भक्ति पदों के कारण सूरदास का विशेष स्थान है। सूरदास का निवास ब्रज माना जाता है और कृष्ण के कारण ब्रज हिन्दुओं का सदैव से पवित्र तीर्थ स्थल रहा है। ब्रज राजस्थान की पूर्वी सीमा पर स्थिति है अतः मेवाड़ पर सूरदास का प्रभाव पड़ना आवश्यक था। दूसरी ओर सूरदास के श्याम, जिनका जीवन सामान्य-जन का जीवन है, के प्रति जन-जन की अनन्य श्रद्धा होना स्वभाविक भी था। सूरदास के कृष्ण, जो ग्वाल के रूप में दिखाई पड़ते है जनसाधारण के अधिक समीप आ जाते है। चित्रकार ने सूरदास कृत सूरसागर के पदों में रमकर भगवान कृष्ण को अपने समीप पाया है, और उसने 'सूरसागर पदावली के आधार पर कृष्ण जीवन सम्बन्धी अनेक चित्रों का सृजन किया। सूर-कृत सूरसागर के आधार पर बने कुछ सचित्र पृष्ठ श्री गोपी कृष्ण कनेरिया संग्रह में सुरक्षित हैं जिनका समय अनुमानतः १६५० ई० के लगभग होना चाहिए।

मेवाड़ी शैली की कृतियों का समय—मेवाड़ स्कूल की कलाकृतियाँ जगतसिंह की मृत्यु (१६५२ ईसवी) से जयसिंह के मृत्युकाल (१६९८ ईसवी) तक बहुत कम प्राप्त हैं। कुछ वर्ष तक जगतसिंह के काल की कला-परम्परा पर मेवाड़ की चित्रकला चलती रही। राजसिंह (१६५२-१६८० ई०) एक वीर योद्धा, और सभ्य राजकुमार था परन्तु उसका कला प्रेम ठीक प्रकार से प्रमाणित नहीं है। तथापि 'रागमाला' चित्रावली सम्भवता इस राजकुमार के समय में ही चित्रित की गई। 'रागनी गुमारू का चित्र, जो १६६० ईसवी का है और नाभागढ़ संग्रहालय में है, इसी समय का है। इस चित्र में बाग का दृश्य है। परन्तु आज 'रागनी गुमारू' प्रचलित नहीं है। जयसिंह (१६८०-१६९८ ई०) के समय के कुछ भागवत पुराण के सचित्र पृष्ठ प्राप्त हैं, जिनमें

1. भूमिका, मेवाड़ पेंटिंग'—ले० मोती चन्द्र।

The Rasikpriya in the 'Bikaner Darbar collection, (Goetz Art and Architecture of Bikaner P. I. IX) which Dr. Goetz incorrectly stated, bore a date equivalent to 1957 A. D. and, which he ascribed to Amber, has been established to be Mewar Manuscript of the end of 17 th century. (Marg Vol. 4.No. 3. P. 52 and Vol, 5, No. 1, P. 9- 16)

कृष्ण गोवर्द्धन पर्वत उठाये हुए या 'गिरिगोवर्द्धन' नामक चित्र कलाभवन काशी संग्रह और 'कृष्ण दावानल को ग्रस्ते हुए' मोती चन्द्र के निजी संग्रह में सुरक्षित हैं। यह दोनों चित्र अनुमानतः १६८० ईसवी से १७०० ईसवी के मध्य के हैं। श्री गोपी कृष्ण कनेरिया-संग्रह के भागवत पुराण (जिसका समय १६८८ ईसवी) के चित्रों की तथा जयसिंह कालीन उपरोक्त चित्रों की शैली मिलती-जुलती है। डा० मोतीचन्द्र के संग्रह में प्राप्त एक अन्य चित्र 'यमुना तट पर ग्वालों के साथ लीला' (१७०० ई०) मेवाड़ स्कूल के अन्तिम समय की झांकी है।

सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में मेवाड़ी चित्रकला की अपनी विशेषतायें समाप्त हो गई और इन विशेषताओं का स्थान चित्रों की संख्या ने ले लिया। इस शैली की कृतियाँ राजदरबार या सामन्तों तक सीमित न रहीं बल्कि वाणिकों, धार्मिक नेताओं, पंडितों तथा साधारण जनता में भी प्रचलित हुई। इस शैली में शासकों, तथा सामन्तों की छवियां या अन्तःपुर के दृश्य अधिक बनाये गये, इनके अतिरिक्त आखेट दृश्य तथा जलूस इत्यादि के चित्रों का अत्यधिक प्रचलन हो गया। परवर्ती काल में पूर्व निर्मित चित्रों की प्रतिकृतियां तैयार की जाने लगीं और चित्रों में यूरोपियन प्रभाव भी आने लगा। चित्रकारों ने कुछ बड़े आकारों की चित्रमालाएं तैयार कीं, जिनमें भक्त रत्नावली, पृथ्वीराज रासो, दुर्गा-महात्म तथा 'पंचतन्त्र' पर आधारित चित्र मालाएं बड़ी संख्या में बनाई गई हैं। इस समय 'नायिका-भेद', 'बारहमासा' और 'रागमाला' चित्र बहुत प्रचलित और लोकप्रिय हुए। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में और उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इस स्कूल की विशेषताएं समाप्त हो गई और यह कला केवल समसामयिक विलासी जीवन की झांकी मात्र रह गई।[1] इस कला संस्थान ने १६०० ई० से १७०० ई० के मध्य आश्चर्यजनक उन्नति की और उत्तम चित्र उदाहरण प्रस्तुत किये।

मेवाड़ शैली के चित्रों की विशेषतायें—मेवाड़ शैली ने सत्रहवीं शताब्दी तक अपनी कुछ विशेषताएं अर्जित कर ली थीं और इन विशेषताओं के कारण इस शैली का निजी महत्व है। मेवाड़ शैली में वर्ण-विधान (रंग), आकार तथा संयोजन की एक अपनी प्रणाली थी जो कालान्तर में पूर्ण रूप में विकसित होती रही।

चित्रों का रंग—मेवाड़ शैली के चित्रों में चटक रंगों, जैसे-सुरा जैसा लाल, केसरिया, पीला, तथा नीला (लेपिसलाजुली) तथा नील आदि रंगों का विशेष प्रयोग है। चित्रकार अपने रंग प्रायः रासायनिक विधि से भी बनाता था। इन रासायनिक रंगों में प्योडी तथा सिन्दूर विशेष विधियों से बनाये जाते थे। नील तथा महावर का रंग वनास्पतिक है। अनेक रंग जैसे गेरूआई, हिरौंजी तथा रामरज आदि खनिज रंग हैं। चित्रों में लाल तथा पीले रंग का प्रयोग अत्यधिक किया गया है। आकृतियों के चेहरों में सुरा के समान लालिमा युक्त रंग का प्रयोग किया गया है।

1. भूमिका, 'मेवाड़ पेन्टिग—ले० डा० मोती चन्द्र।

संयोजन—चित्रों की पृष्ठभूमि को सामान्यता एक ही रंग या विरोधी रंगों के टुकड़ों में संयोजित किया गया है और इनके ऊपर चित्रों की घटनाओं को उनके महत्व के अनुसार संयोजित किया गया है। चित्र के प्रमुख-व्यक्ति या महत्वपूर्ण-घटना को चित्र के मुख्य भाग में रक्खा गया है।

आकृतियां—मानव आकृतियों की नाकें लम्बी हैं और चेहरे गोल, अंडाकार बनाये गये हैं, चिबुक और गरदन के बीच का भाग अधिक भारी तथा पुष्ट बनाया गया है जिससे स्त्री आकारों में अधिक गम्भीरता, भारीपन और उत्साह की भावना उत्पन्न हो गयी है। स्त्रियां आकार में कुछ छोटी बनाई गई हैं और आकृतियों के नेत्र दो वक्रों के द्वारा मीनाकारी ढंग के बनाये गये हैं जिनमें पुतली के स्थान पर काली बिन्दी रख दी गई है। अजंता की कला परम्परा की उत्तराधिकारिणी होने के कारण हस्त-मुद्रायें तथा अङ्ग-भङ्गिमाएं सुन्दर हैं।

प्रकृति—मेवाड़ शैली के चित्रों में प्रकृति का आलंकारिक रूप चित्रित किया गया है। वृक्षों को आलंकारिक योजना में बनाने के लिए एक-एक पत्ते को स्पष्टता सफेद रंग से युक्त हल्के हरे या अन्य किसी उपयुक्त रंग से गहरी पृष्ठिका पर बनाया गया है और उनको आलेखन से सजाया गया है। वृक्षों को अधिकांश झुण्डों में बनाया गया है, वृक्षों के पत्तों को बनाने में आलेखन और अलंकरण को ही महत्व प्रदान किया गया है, पत्तों के बीच-बीच पुष्पों के गुच्छे अंकित किये गये हैं। परन्तु मुगल प्रभाव के कारण किसी-किसी स्थान पर चट्टान में यथार्थता भी दिखाई पड़ती है। प्रायः वृक्षों को पुष्पित बनाया गया है और पुष्पित पौधे भी बनाये गये हैं। पर्वत तथा चट्टानों में मुगल प्रभाव दिखायी पड़ने लगता है। जल को लहरदार रेखाओं और टोकरी जैसी बुनाई के रेखांकन के ढग से बनाया गया है।

परिप्रेक्ष्य तथा संयोजन—मेवाड़ के चित्रों में साधारण कोटि के दृष्टि-क्रम-परिप्रेक्ष्य का प्रयोग किया गया है, वैसे प्राकृतिक वातावरण आदि में परिप्रेक्ष्य का प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता है। चित्र की मुख्य घटना की ओर दृष्टि केन्द्रित करने के लिये प्रमुख घटना को प्रायः चित्र के मध्य में और गौण घटनाओं को प्रायः इधर-उधर संयोजित किया गया है। भावों की अभिव्यक्ति के लिए अजंता के कलाकार के समान ही चित्रकार ने दृश्य, रंग विधान, नाटकीयता, हस्तमुद्राओं तथा अङ्ग-भङ्गिमाओं का भावाभिवञ्जक प्रयोग किया है।

पशु पक्षी—पशु पक्षियों में पश्चिम भारतीय शैली या अपभ्रंश शैली की ही विशेषतायें हैं और अधिकांश चित्रों में पशु-पक्षी कपड़े के बने खिलौनों के समान आलंकारिक ढंग के हैं, परन्तु मुगल सम्बन्ध और प्रभाव से हाथी, कुत्तों, घोड़ों के चित्रण में पर्याप्त यथार्थता आने लगी थी। मेवाड़ के चित्रकार ने पशु-पक्षियों की आत्मा में अपनी जैसी ही आत्मा का अनुभव किया है इसी कारण पशु पक्षियों में भावुकता दिखाई पड़ती है।

रात्रि दृश्य—रात्रि के दृश्यों को दिखाने के लिये चित्रकार ने गहरी पृष्ठभूमि का प्रयोग किया है। गहरी नीली या धुएं के रंग की पृष्ठभूमि में सफेद बिन्दियों को लगाकर चित्रकार ने तारों से पूर्ण रात्रि के दृश्य बनाये हैं। कभी-कभी रात्रि में तारों के साथ चन्द्रमा भी बनाया गया है।

गोलाई—मेवाड़ शैली वास्तव में भित्तिचित्रण की परम्परा से विकसित हुई थी परन्तु फिर भी मुगल-कला के समसामयिक प्रभाव के कारण सपाट चित्रों में गोलाई या डौल लाने के लिए चित्रकार छाया का प्रयोग करने लगा। चित्रकार ने गरदन के पास कान के नीचे तथा बगलों में भुजा को शरीर से उठा हुआ दिखाने के लिए सुकोमल छाया का प्रयोग किया है।

वेश-भूषा—मेवाड़ी शैली में पुरुषों को घेरदार जामा पहने तथा कमर में पटका लगाये दिखाया गया है। यह पटका लम्बा है और रंगीन पट्टियों से सजा है। कभी-कभी इस पटके में ज्यामितिक अलंकरण का प्रयोग किया गया है। पगड़ियों की बनावट सुन्दर है और जहांगीर कालीन मुगल पगड़ियों से मिलती जुलती है। आरम्भिक चित्रों में ढीली पगड़ियाँ बनाई गई हैं परन्तु बाद के चित्रों में कसी हुई पगड़ियां बनाई गई हैं जिनमें उल्टा फन्दा है। पुरुषों को प्राय: घेरदार जामा पहने चित्रित किया गया है। इन चित्रों में कलिदार जामे का प्रयोग कम दिखाई पड़ता है। स्त्रियों को फूलदार आलेखनों से युक्त कपड़े की चोलियां तथा लहंगा पहने बनाया गया है।

रेखाचित्र संख्या २१
यौवन की अंगड़ाई
उदयपुर भित्तिचित्र, राजस्थानी शैली
(अठारहवीं शताब्दी)

स्त्रियां ऊपर से पारदर्शी आंचल या ओढ़नी ओढ़े हैं। स्त्रियों को ग्रीवा, कमर, भुजाओं तथा कलाईयों में काले फुंदने तथा आभूषण पहने बनाया गया है। लहंगों पर भी प्रायः सुन्दर बेल-बूटे आदि बनाये गये हैं।

भवन— चित्रों की पृष्ठभूमि या मुख्य भाग में योजना को ठोस बनाने के लिए भवन का प्रयोग भी किया गया है। इन भवनों के अन्दर अकबर कालीन मुगल शैली का प्रयोग है। भवनों के शिखर गुम्बददार हैं और उनके साथ छज्जे तथा चबूतरे बनाये गये हैं। इन भवनों में दार्ष्टिक परिप्रेक्ष्य का सामान्य ढंग से प्रयोग किया गया है। प्रायः यह भवन सफेद रंग से बनाये गये हैं।

हाशिये— चित्रों के हाशियों को प्रायः लाल या पीली सादा पट्टियों से बनाया गया है। राजस्थानी चित्रकार ने मुगल चित्रों के समान हाशिये में बेल-बूटे इत्य दि नहीं बनाये हैं।

कृष्ण का स्थान—मेवाड़ शैली के चित्रों में कृष्ण के चित्रण को प्रमुखता दी गई है। प्रायः नायिक भेद, राग-रागिनी चित्रावली या रागमाला चित्रों में कृष्ण और राधा को ही आदर्श प्रेमी तथा प्रेमिका का रूप दिया गया है। कृष्ण तथा गोपियों की लीलाओं के चित्रों में भी कृष्ण को महान प्रेमी का रूप दिया गया है।

सामाजिक जीवन—यद्यपि मेवाड़ शैली के चित्रों में जीवन की झांकी नहीं है, परन्तु भागवत पुराण तथा रामायण के चित्रों में समसामयिक रीति-रिवाज, पहनावा तथा ग्रामीण जीवन का पूर्ण समावेश है। चित्रकार के द्वारा अंकित ग्राम्य जीवन, दरबार, जलूस, विवाह उत्सव, संगीत तथा नृत्य, अन्तःपुर, युद्ध तथा आखेट सम्बन्धी दृश्यों के चित्रों से तत्कालीन राजस्थानी जीवन पर पर्याप्त मात्रा में प्रकाश पड़ता है।

आरम्भिक मेवाड़ कला ने कालान्तर में पर्याप्त विकास किया, यद्यपि उसमें मुगल कला जैसा यथार्थ रेखांकन तथा बारीकी नहीं है और रग में भी मुगल चित्रों के समान सोफयाने नहीं हैं फिर भी इस शैली की अलंकारिकता, चटक वर्ण-योजना तथा संयोजन महत्त्वपूर्ण है।

बूंदी-कोटा को चित्रकला
(बूंदी-कोटा शैली)

बूंदी की स्थिति एवं इतिहास— बूंदी में पहले हाडा राजपूत राजाओं का राज्य था। इस राज्य की सीमा उत्तर में जयपुर तथा टोंक पश्चिम में मेवाड़, दक्षिण में मालव तथा सुदूर दक्षिण में चम्बल नदी से मिलती थी। इस राज्य की चित्रकला के उदाहरण मुगल काल के उदय के साथ प्राप्त होते हैं। इस राज्य का महत्व राओ सुरजनसिंह (१५५४-१५८५ ई०) से आरम्भ होता है। राओ सुरजन सिंह ने ११५७ ई० और १५८५ ईसवी के बीच मेवाड़ की अधीनता त्याग दी और वह मुगलों के अधीन हो गया और १६६९ ई० में उसने मुगलों के सम्मुख रणथम्भोर के दुर्ग में शस्त्र

डाल दिये। राम्रो सुरजन सिंह का पौत्र राम्रो रत्न सिंह (१६०७-१६३१ ई०) जहांगीर के दरबार में सम्मानित हुआ। जहांगीर ने उसको 'सर बुलन्दराय' और 'रामराज' की उपाधि प्रदान की और उसको दक्षिण की चढ़ाइयों में मुगल सेना के साथ भेजा। इसी समय में बूंदी का दक्षिण से सम्बन्ध स्थापित हुआ और बूंदी कला पर दक्षिणी कला का प्रभाव पड़ने लगा।

परम्परा के आधार पर ऐसा कहा जा सकता है कि शत्रुशाल (क्षत्रशाल) (१६३१-१६५६ ई०) ने अपने दरबारी चित्रकार नियुक्त किए। उसके गद्दी से उतरते ही शाहजहां ने यह जागीर उसके भाई माधवसिंह को सौंप दी और इसमें कोटा भी सम्मिलित कर दिया और इस प्रकार अठारहवीं शताब्दी में कोटा भी बूंदी शैली का केन्द्र बन गया। शत्रुशाल के उत्तराधिकारी भावसिंह तथा अनुरुद्ध सिंह दक्षिण के आक्रमणों में मुगलों के उन छटे हुए योद्धाओं में से थे जो दक्षिणी राज्यों के विरुद्ध लड़े। परन्तु कोटा के भीमसिंह (१७०५-१७२० ई०) ने १७१६ ई० में पुनः बूंदी राज्य को बुद्धसिंह से छीन लिया और बुद्धसिंह को बूंदी का राज्य छोड़कर भागना पड़ा। बुद्धसिंह का उत्तराधिकारी उमेदसिंह १७४८ ई० में मराठा सहायता से ही पुनः बूंदी में स्थापित हो सका। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटिश साम्राज्य का उदय हुआ और हाडा राजपूतों का राज्य बूंदी भी ब्रिटिश सत्ता के अधीन हो गया। अंग्रेज अधिकारियों ने विष्णुसिंह (१७७८-१८२१ ई०) को बूंदी का शासक बना दिया और उमेदसिंह (१७१७-१८१६ ई०) को कोटा का शासक बना दिया।

बूंदी शैली के चित्र – बूंदी शैली के चित्रों का विकास रागनी चित्रों से होता हुआ दिखाई पड़ता है क्योंकि इस शैली के आरम्भिक उदाहरण 'रागमाला चित्रावली' के भाग हैं। आरम्भिक शैली का एक उदाहरण 'राग दीपक' का चित्र है जो भारत कला भवन, काशी में सुरक्षित है। दूसरा उदाहरण 'रागनी भैरवी' का चित्र है जो नगरपालिका म्युजियम इलाहाबाद में सुरक्षित है। इस चित्र मे मेवाड़ की परम्परागत शैली और मुगल शैली का प्रभाव दिखाई पड़ता है। अनुमानतः यह उस समय का चित्र है जब बूंदी शैली अपना निजी रूप धारण कर रही थी। इन चित्रों का रंग सरल है परन्तु चटक रंगों के कारण चित्र प्रभावपूर्ण हैं। इन चित्रों में चेहरे की बनावट मेवाड़ शैली के चित्रों के समान भारीपन लिए है। मानव आकृतियों में नाक की बनावट नुकीली है जो अपभ्रंश शैली के चित्रों के समान है। आंखों मे दो बक्रों से एक पंखुड़ी के समान बनाया गया है, चिबुक कुछ छोटी है परन्तु दोहरी है जिससे इन चित्रों के समय का अनुमान लगाया जा सकता है। यह प्रवृत्ति सत्रहवीं शताब्दी के मेवाड़ चित्रों में भी दिखाई पड़ती है, अतः इन चित्रों का समय सत्रहवीं शताब्दी का आरम्भिक भाग होना चाहिए। 'रागनी भैरवी' के चित्र में; जो सम्भवतः १६२५ ईसवी (राम्रो रत्नसिंह काल) का है कुछ विकसित शैली दिखाई पड़ती है। अतः

निश्चित रूप से इस शैली का जन्म लगभग पचास वर्ष पूर्व हो चुका होगा। परन्तु इस समय के उदाहरण प्राप्त न होने के कारण इस शैली को सत्रहवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थ चरण में विकसित हुई मानना पड़ता है।

बूंदी शैली में कुछ ऐसी परम्परागत विशेषताएं हैं जो काफी समय तक अपना प्रभाव जमाये रहती हैं।[1] इन विशेषताओं के आधार पर ही इन चित्रों में घने दृश्य का चित्रण और उसका ध्यानपूर्वक अंकन किया गया है। आकाश में लाल रंग का प्रयोग जो रागनी भैरवी के चित्र में भी है, तथा जल से उठती हुई चंचल लहरों की स्थिति को चित्रित करना मेवाड़ी शैली की विशेषतायें हैं। वृक्षों तथा पुष्पों को सरल और आलंकारिक रूप में गहरी पृष्ठिका पर सफेद मिश्रित रंग से बनाया गया है। 'रागदीपक' वाले चित्र में पुरुषों का पहनावा सपाट पतली पगड़ी- चक्करदार चार नोक का जामा और कमर में संकरा पटका है, जो अकबर जहांगीर कालीन है परन्तु कार्ल खण्डालावाला के अनुसार यह चित्र १६६० ई० से १६९० ई० के मध्य के हैं, क्योंकि इनमें जो मेवाड़ी विशेषतायें हैं वे सत्रहवी शताब्दी के मध्य मेवाड़ी कला में प्रचलित थीं।

विशेषत: बूंदी-शैली की आकृतियों में मेवाड़ी प्रभाव अधिक दिखाई पड़ता है। परन्तु बूंदी शैली के चित्रों में कारीगरी बहुत उत्तम है, चेहरों में कोमलता भी है। आकृतियों के चेहरों में गोलाई लाने के लिए सुकोमल छाया का प्रयोग किया गया है। चेहरे अनुपात में छोटे बनाये गये है और आँखों के पास आँखों के गड्ढों में गहराई दिखाई गयी है। इस समय के कुछ सुन्दर चित्रों के उदाहरण प्राप्त हैं—जिसमें 'पीठिका पर नायक और नायिका' (१६८२ ई०– श्री जी० डी० गुजराती संग्रह, बम्बई), 'प्रेमी और प्रेमिका द्विज का चाँद देखते हुए' (१६९८ ई०—प्रिंस आफ वेल्स म्युजियम, बम्बई) तथा 'परिचारिकाओं सहित रानी' (सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध, प्रिंस आफ वेल्स म्युजियम, बम्बई,) में सुरक्षित हैं।

अठाहरवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बूंदी शैली का पूर्ण विकास होता है और इस समय में अधिक चित्रों का निर्माण हुआ। इस शैली में अलंकरण की प्रवृत्ति अधिक है परन्तु कम कारीगरी से ही प्रभाव सुन्दर बन पड़ा है। अठाहरवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में चित्रों से कारीगरी का यह स्तर गिर जाता है और कारीगरी की कुशलता और दक्षता कम होती जाती है शरीर में भूरा, मिश्रित लाल रंग के स्थान पर हल्के गुलाबी रंग का प्रयोग किया जाने लगता है और कोमल छाया के स्थान पर बोझिल प्रकार की छाया को प्रयोग होने लगता है। सादा पृष्ठभूमि पर भारी

---

1. भूमिका, 'बूंदी पेंटिंग'—लखक प्रमोद चन्द्र।

"Whatever the case my be, we already find in these pictures several elements that survive over a considerable period of time in later Bundi Painting."

छायादार टीले और इन्द्र धनुष वर्ण का आकाश जिसमें घुमड़ते हुए लाल, काले, नीले तथा सुनहरी बादल के टुकड़ों को बनाया गया है। अनेक चित्रों में एक चश्म चेहरे की छाया को गहरे रंग से बनाया गया है जिससे चेहरा सरलता से उभर जाए। आरम्भिक चित्रों में यह छाया सुकोमल है और बारीकी तथा कारीगरी के कारण दृष्टिगोचर नहीं होती, परन्तु बाद के चित्रों में यह छाया कठोर और भद्दी हो जाती है। पृष्ठभूमि साधारणतः पुष्पित लताओं से आच्छादित वृक्षों के झुन्डों से बनाई गई है। इस समय के उदाहरणों में 'राओ सुरजनसिंह के हाथी—'भालेराओ और आनिदा' (१७२५ ई०), जो सम्भवतः पहले के किसी प्राचीन चित्र की अनुकृति है, 'ग्रीष्म में हाथी' (१७५० ई०,) 'कांटा निकालते स्त्री' तथा 'स्नानते' (१७७५ ई०) अठाहरवीं शताब्दी की बूंदी कला के सुन्दर चित्र उदाहरण हैं, जो प्रिंस आफ वेल्स म्युजियम, बम्बई में सुरक्षित हैं। एक चित्र 'राधा और कृष्ण का मिलन' (अठाहरवीं शताब्दी) जो देसाई संग्रह, बम्बई में है, भावात्मक सौन्दर्य के कारण उत्तम है। यह चित्र अठारहवीं शताब्दी के मध्य का है और इसमें शैली की रोचकता आ गई है। इस शैली के अन्तिम अच्छे चित्र उदाहरण १७५० ई० और १७८० ई० के मध्य के हैं। इस समय के चित्र स्वतन्त्र और अच्छी शैली के हैं। यह चित्र अधिक चमकदार और सुन्दर हैं।

अठाहरवीं शताब्दी के कुछ भद्दे चित्र भी प्राप्त हैं जो देखने में अपूर्ण हैं, शायद यह चित्र उन संरक्षकों या चित्र प्रेमियों के लिए बनाये गए जो अधिक कारीगरीपूर्ण चित्रों का मूल्य नहीं दे सकते थे। इन चित्रों में सपाट रंग और कभी-कभी गहरी सपाट पृष्ठभूमि का प्रयोग है और आकृतियों में गोलाई या कारीगरी की बारीकी लाने का प्रयास नहीं दिखाई पड़ता है। सम्भवतः यह सरल चित्र साधारण जनता की माँग को पूरा करने के लिए और अपनी आजीविका कमाने के लिए चित्रकारों के द्वारा बनाये गये होंगे। बूंदी शैली में राग-रागनियों, नायिका भेद, क्रीड़ा, उद्यान दृश्य और कृष्ण लीला चित्रों की अधिकता थी, परन्तु पशु चित्रण भी प्रभावशाली ढंग से किया गया है, जिसमें यथार्थता और मुगल प्रभाव है।

बूंदी शैली की विशेषतायें—बूंदी शैली के चित्रों की कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जिनसे इस शैली का एक अपना भिन्न रूप उभर गया है और राजस्थानी कला शैलियों में इस शैली का मौलिक महत्व है।

आकृतियां—बूंदी शैली के चित्रों में मानव आकृतियों के शरीर का रंग सुरा के समान लाल है परन्तु परवर्ती चित्रों में इस रंग का स्थान गुलाबी रंग ने ले लिया। स्त्रियों के चेहरे मेवाड़ शैली के चेहरों से बहुत समानता रखते हैं। प्रायः चेहरे भारी हैं और लम्बी नोकदार नाक बनाई गई है, परन्तु आंख के पास कोमल छाया लगा कर गहराई दिखाई गई है। चिबुक दोहरी बनाई गई है और स्त्रियों के सिर शरीर के अनुपात में कुछ छोटे बनाये गये हैं। स्त्रियों के मुख पर उत्साह का बोध होता है,

परन्तु मेवाड़ शैली की तुलना में स्त्री आकार अधिक कोमल तथा सुन्दर है। मानव आकृतियों में आँखों को पंखुड़ियों के समान दो वक्रों में बनाया गया है। पुरुष आकृतियाँ हृष्ट-पुष्ट बनाई गई हैं तथा उनमे वीरता का भाव है।

प्रकृति– बूंदी शैली के चित्रों में प्रकृति को उद्दीपन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जल की चंचल लहरों को प्राय: गहरी पृष्ठभूमि पर सफेद रंग से लहरदार रेखाओं के द्वारा बनाया गया है, परन्तु बाद में चित्रों में यह प्रवृत्ति नहीं दिखाई पड़ती है और गहरी पृष्ठभूमि के स्थान पर चांदी के रंग का प्रयोग होने लगता है, जिस पर बारीक लहरदार रेखाओं से उठती लहरें बनाई गई हैं। वृक्षों के पत्तों को सफेद मिश्रित रंगों से गहरी हरी पृष्ठभूमि पर बनाया गया है, परन्तु बाद के चित्रों में गहरी रेखाओं से हल्की पृष्ठभूमि पर पत्तियां बनाने की प्रवृति दृष्टिगोचर होती हैं, फिर भी साथ-साथ पहली पद्धति न्युनाधिक रूप से चलती रहती हैं। वृक्षों को सुन्दर, कोमल, लाल, पीले पुष्पों से पुष्पित तथा लतिकाओं से आच्छादित बनाया गया है। कर्कीय प्रदेश की जलवायु वाली प्रकृति को बूंदी शैली के चित्रों में एक सुन्दर और संवेगात्मक रूप प्रदान किया गया है और प्रकृति को उद्दीपन का रूप दिया गया है।

बूंदी शैली के चित्रों में आकाश का वर्ण विधान चित्र-योजना की एक भव्य विशेषता है। चित्रकार ने आकाश में बादलों को लाल तथा सुनहरे रंगों से आकाश में इन्द्र धनुष जैसी आभा बिखेर दी है। कभी-कभी आकाश में घनाच्छादित सन्ध्या-कालीन प्रभाव बनाया गया है, जिसमें, काले, काले भूरे, नीले बादल लाल और सुनहरी पृष्ठभूमि पर बिखरे बनाये गये हैं।

पृष्ठभूमि में अधिकांश वनस्पति से आच्छादित टीले संयोजित किये गये हैं। इन टीलों में छाया प्रयोग भी किया गया है, सम्भवत: यह टीले बूंदी की स्थानीय प्रकृति का प्रभाव हो सकते हैं।

छाया तथा प्रकाश– बूंदी शैली के चित्रों में सुकोमल छाया के प्रयोग के द्वारा गोलाई लाने का सफल प्रयास किया गया है। छाया दिखाने के लिए महीन तथा पास-पास कोमल काली तिरछी रेखाओं या खत परदाज का प्रयोग किया गया है। इस छाया का प्रयोग मानव आकृतियों में प्राय: आंख के पास तथा कान के नीचे जबड़े के पास गहराई तथा गोलाई दिखाने के लिए किया गया है। कभी,कभी एक चश्म चेहरे को उभार देने के लिए चित्रकार ने आकृति की परछाइं को गहरे रंग से बनाकर बाद में परछाई के किनारों को बारीकी के साथ नीचे की जमीन (पृष्ठभूमि) से मिलाकर कोमल प्रभाव उत्पन्न कर दिया है। इस प्रकार चेहरा पृष्ठभूमि से ऊपर उभर गया है परन्तु परवर्ती चित्रों में कारीगरी की अकुशलता और जल्दबाजी के कारण यह छाया भद्दी और कर्कश बन गई है।

पहनावा तथा ग्राभूषण—इस शैली के चित्रों में पुरुषों को चक्करदार जामा, कमर में लम्बा संकरा पटका ग्रौर सिर पर ग्रधपट्टी पगड़ी बांधे बनाया गया है। स्त्रियों को वक्षस्थली पर चोली, नीचे के भाग में लंहगा ग्रौर सिर पर ग्रांचल या ग्रोढ़नी पहने दिखाया गया है। स्त्रियों की ग्रीवा तथा हाथों ग्रौर कानों में ग्राभूषण, बनाये गये हैं। कपड़ों पर सोने के रंग की बूटियां भी बनाई गई हैं।

पशु चित्रण– इस शैली के चित्रण में ग्रलंकरण को प्रमुखता प्रदान की गई है परन्तु बाद के चित्रों में यह प्रवृति कम होती गई है। पशुग्रों के चित्रण में विशेषतया हाथी का चित्रण बहुत यथार्थ, सशक्त ग्रौर सजीव है। पशुग्रों के चित्रण में पर्याप्त यथार्थता एवं सुन्दरता है।

भवन, साज-सामन तथा उद्यान–बूंदी शैली के चित्रों में समसामयिक भवन-पद्धति के भवन बनाये गये हैं, जिनमें ग्रकबर तथा जहांगीर कालीन मुगल भवन-कला का प्रभाव हैं ग्रौर गुम्बदों से युक्त भवन बनाये गए हैं। भवनों के साथ चबूतरे तथा बरामदे (बारहदरी) बनाये गये हैं। उद्यानों में भी पीठिकाएं तथा फब्वारे इत्यादि के दृश्य बनाये गये हैं, जो सम्भवत: दक्षिणी कला का प्रभाव है। इन उद्यान दृश्यों के चित्रों की मुख्यभूमि में पौधों की पुष्पित पंक्ति बनाई गई हैं। भवन सम्बन्धी साज-सामान तथा पात्र इत्यादि में सोने चांदी के रंगों का प्रयोग किया गया है।

पृष्ठभूमि– चित्रकार ने कभी-कभी गहरी सपाट पृष्ठभूमि का प्रयोग किया है, जिससे चित्र ग्रधिक स्पष्ट ग्रौर ग्राकर्षण बन गया है परन्तु कुछ चित्रों में कारीगरी की न्यूनता के कारण भद्दापन भी ग्रा गया है।

रंग–बूंदी शैली के चित्रों में सोने तथा चांदी के रंगों का ग्रधिक प्रयोग किया गया है। वैसे सामान्यत: बूंदी शैली के चित्रों में पीले तथा लाल रंग को प्रमुखता दी गई हैं। चित्रकार के प्रमुख रंग पीला (प्युड़ी), लाल (सिन्दूर तथा संगरफ), हरा (जङ्गाल), सफेद (सफेदा), काला (काजल), नीला (नील तथा लाजवर्दी), गेरू, हिरौंजी तथा रामरज हैं।

परिप्रेक्ष्य–भवन इत्यादि के रेखांकन में साधारण दार्ष्टिक-परिप्रेक्ष्य दिखाई पड़ता है। वैसे ग्रालेखन को महत्व देने के कारण परिप्रेक्ष्य का स्थान गौण रहा है।

दक्षिण शैली का प्रभाव–बूंदी शैली पर दक्षिण चित्र शैली का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है। बूंदी शैली की स्त्री ग्राकृतियां कुछ छोटी बनाई गई हैं जो दक्षिणी प्रभाव है। चित्रों में पुष्पित पौधे बनाए गए हैं ग्रौर रात्रि के दृश्य बनाने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। रात्रि-दृश्यों में ग्राकाश में सफेद बिन्दुग्रों से तारे तथा द्विज का क्षीण चन्द्रमा दिखाया गया है। चित्र की मुख्य घटना का संयोजन चित्र के बाईं ग्रोर किया गया है, जो सामान्यता दक्षिणी चित्रकला शैली की विशेषताएं हैं।

चित्रों का विषय—बूंदी के चित्रकारों ने विशेष रूप से नायिका-भेद ग्रौर राग-रागनियों के चित्र बनाये हैं, परन्तु नायिका भेद चित्रकार का प्रिय विषय था।

जनता ने भी नायिका-भेद में अधिक रुचि ली, इस कारण भी चित्रकार ने नायिका-भेद पर आधारित चित्रों को महत्व दिया। अन्तःपुर या रनिवास के भोग-विलास युक्त जीवन के दृश्य भी चित्रकार के प्रिय विषय रहे। 'भागवतपुराण' पर आधारित कृष्णलीला के चित्र बनाने की परम्परा सामान्य रूप से राजस्थान में चल ही रही थी, अतः बूंदी का चित्रकार भी इस ओर प्रवृत्त हुआ।

बूंदी के चित्रकारों की आजीविका विशेषरूप से साधारण जनता पर निर्भर थी, अतः चित्रकार ने जनसाधारण की रुचि के चित्र अधिक बनाए। चित्रकार ने कभी-कभी कम कारीगरी तथा कम परिश्रम से अच्छा प्रभाव उत्पन्न किया है। अधिकांश चित्रों में बूंदी का तत्कालीन सामाजिक जीवन किसी न किसी रूप में झलकता है।

यह कला शैली लोकप्रिय थी और साधारणतः चित्रकारों को वाणिकों, ठिकानेदारों, जागीरदारों, जमीदारों तथा पुजारियों आदि का संरक्षण प्राप्त था।

किशनगढ़ की चित्रकला
(किशनगढ़ शैली)

किशनगढ़ की स्थिति—किशनगढ़ एक छोटा सा राज्य था। १६०९ ईसवी में जोधपुर के महाराणा उदयसिंह ने अपने आठवें पुत्र किशनसिंह को अपने राज्य के एक छोटे से भाग का शासक बना दिया। कालान्तर में इस छोटे राज्य या जागीर का विकास हो गया। किशनसिंह के नाम पर यह राज्य किशनगढ़ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। किशनगढ़ के शासक आरम्भ से ही मुगलों से मिल गए इस कारण उनको मुगल दरबार में अधिक सम्मान प्राप्त हुआ और उनके रहन-सहन की पद्धति, कला एवं संस्कृति पर भी यथेष्ठ मुगल प्रभाव पड़ा।

किशनसिंह का जन्म १५७५ ईसवी में हुआ था और उसने १६०५-१६१५ ईसवी तक राज्य किया परन्तु बाद में वह जहांगीर के दरबार में चला गया और मुगल दरबार में १००० पैदल तथा ५०० घुड़सवारों का मनसबदार नियुक्त हुआ। जहांगीर ने स्वयं उसकी 'जहांगीरनामा' में प्रशंसा की है।

किशनगढ़ राजस्थान के मध्य भाग में स्थित है और इसकी सीमाओं पर एक ओर जयपुर तथा जोधपुर राज्य थे, और दूसरी ओर अजमेर तथा शाहपुरा की सीमाएं थीं। किशनगढ़ गुन्डलियों झील के किनारे स्थित है। इस झील के किनारे-किनारे सामन्तों तथा शासकों के अनेक महल तथा गढ़ियां बनी हैं जो मध्यकालीन युग की झांकी प्रस्तुत करती हैं। झील में कलरव करते हुए पक्षियों की चहल-पहल तथा वनस्पतिक सौन्दर्य के कारण यहाँ एक मनोरम दृश्य उत्पन्न हो जाता है।

किशनगढ़ के राजाओं का कला प्रेम—किशनगढ़ राज्य के संस्थापक मुगल दरबार में रहे, और उन्होंने मुगल चित्रकारों और चित्रशालाओं को अवश्य देखा

होगा, परन्तु किशनगढ़ में जो भी चित्र प्राप्त होते हैं वह किशनसिंह के राज्यकाल से लगभग एक शताब्दी बाद के हैं। किशनसिंह के चार पुत्र थे और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र साहसमल (१६१५-१३१८ ई०) गद्दी पर बैठा। साहसमल का एक सुन्दर चित्र मिलता है जिसमें उसके शिकरे तथा शिकरेबाज अंकित किये गए हैं। सम्भवत: यह चित्र किसी प्राचीन समसामयिक चित्र पर आधारित है। साहसमल के पश्चात् उसके भाई जगमल (१६१८-१६२९ ई०) तथा हरिसिंह (१६२९-१६४० ई०) गद्दी पर बैठे। हरिसिंह का भी एक व्यक्ति चित्र मिलता है। अनुमानत: यह चित्र समसामयिक है। हरिसिंह के पश्चात् उसका भतीजा रूपसिंह (१६४३-१६५८ ई०) में गद्दी पर बैठा। रूपसिंह ने रूपनगर बसाया और इस नवीन नगर को उसने अपनी राजधानी बना लिया। रूपसिंह के पश्चात् मानसिंह (१६५८-१७०६ ई०) तथा राजसिंह (१७०६-१७४८ ई०) गद्दी पर बैठे। राजसिंह के पश्चात उसका पुत्र सावन्तसिंह गद्दी पर बैठा। सावन्तसिंह का जन्म १६९६ ई० में हुआ था। सावन्तसिंह वल्लभाचार्य सम्प्रदाय का अनुयाई था। रूपसिंह के समय में ही यह राजवंश बल्लभ-सम्प्रदाय का अनुयाई हो गया था। रूपसिंह के धर्म गुरु श्री गोपीनाथ थे, अत: बल्लभ-सम्प्रदाय के अनुसार कल्यानराय किशनगढ़ के राजाओं के आराध्य देव बन गये। शाहजहां ने रूपसिंह की बल्लभाचार्य के प्रति श्रद्धा देखकर उसको बल्लभाचार्य का एक चित्र भेंट में दिया था जो अकबर के समय (१५५६-१६०५ ई०) में बना कहा जाता है।

सावन्तसिंह (नागरीदास)—सावन्तसिंह का जन्म १६९९ ई० में हुआ था। वह वैष्णव धर्म का अनुयाई था। सावन्तसिंह के धर्मगुरु रणचोध जी थे जो गोपीनाथ जी के पौत्र थे। किशनगढ़ राज्य के राजा और युवराज ही नहीं बल्कि अत:पुर की रानियां तथा राजकुमारियां भी बल्लभाचार्य मत की अनुयाई थीं। राजसिंह की पुत्री राजकुमारी सुन्दरीबाई ने मीरा के समान ही श्री कल्यानराय या कृष्ण भक्ति गीतों की रचना की।

राजसिंह के पुत्र सावन्तसिंह का विवाह १७३० ई० में भांगड़ा के यशवन्तसिंह की पुत्री से हुआ था। सावन्तसिंह स्वयं संस्कृत, फारसी तथा मेवाड़ी भाषाओं का पंडित था। उसने संगीत तथा चित्रकला का भी विधिवत अभ्यास किया था और वह एक अच्छा चित्रकार, कवि और लेखक था। उसने अपनी साहित्यिक रचनाएँ अपने उपनाम 'नागरीदास के नाम से की हैं। किशनगढ़ दरबार के संग्रह में एक रेखाचित्र है। जिस पर अंकित लेख से प्रतीत होता है कि यह चित्र सावन्तसिंह ने युवाकाल में, जब वह चित्रकला का अभ्यास करता था, उस समय बनाया था।[1] इससे स्पष्ट है कि उसने विधिवत चित्रकार के समान चित्रों की रचना की और केवल मनोरंजन तक ही उसका चित्रकला प्रेम सीमित न रहा। सावन्तसिंह एक वीर योद्धा भी था।

1. 'किशनगढ़ पेंटिंग'—लेखक एरिक डिक्सन, पृष्ठ १९।

उसकी वीरता की अनेक कहानियां हैं। कहा जाता है कि उसने दस वर्ष की आयु में मस्त हाथी पर नियंत्रण किया। यह घटना अनुमानतः लगभग १७१९ ई० में घटी।

सावन्तसिंह धार्मिक विचार का व्यक्ति था और सन्तों के समान सरल जीवन व्यतीत करता था। उसमें युवराज जैसा ठाठ-बाट न था। वह एक अच्छा कवि था और हिन्दी कवियों में उसका स्थान उल्लेखनीय है। उसने ,बिहारीचन्द्रिका' लिखी और वृन्द, हरचरनदास, हीरामल, मुन्शी कनीराम आदि पर टीकाएं रचीं और उसने अपना उपनाम नागरीदास रखा। परन्तु जहाँ एक ओर सावन्तसिंह के जीवन में कृष्ण प्रेम था वहां शीघ्र ही एक सुन्दरी आ बसी जिसका नाम 'बनीठनी' था। वह 'बनीठनी' के रूप पर मोहित हो गया और उसका प्रेमी बन गया।[1] शीघ्र ही 'बनीठनी' उसकी पासवां या अनुचरी बनगई।[2] बनीठनी तथा नागरीदास को एक चित्र में एक साथ चित्रित किया गया। 'नागरीदास' ने अपनी रचनाओं में अपने प्रेम का वर्णन राधा के रूप में किया, परन्तु १७४६ ईसवी तक उसने बनीठनी का नाम अपनी रचनाओं में नहीं दिया। बनीठनी पर्दा नहीं करती थी। सावन्तसिंह की विमाता उसको दिल्ली के अन्तःपुर से लाई थी, वह दिल्ली के अन्तःपुर में एक सेविका (लौंडी) थी।

किशनगढ़ शैली का जन्म – किशनगढ़ की चित्रकला शैली का संस्थापक नागरीदास था। उसने ही सर्वप्रथम विधिवत रूप से किशनगढ़ में अपनी चित्रशाला स्थापित की और स्वयं उसने किशनगढ़ की चित्रकला में स्त्री आकृतियों को सुमधुर, कोमलाङ्गी, तथा मौलिक रूप प्रदान किया। वह फर्रूखसियर के पक्ष में था और इस कारण दिल्ली के दरबार में भी रहा। यहाँ पर उसने मुगल चित्रकला का अध्ययन किया। किशनगढ़ के चित्रों में स्त्री-आकृतियों का विकास बनीठनी के रूप में हुआ और दूसरी ओर ब्रजभाषा साहित्य में प्रचलित उपमाओं के आधार पर राधा के सोन्दर्य का अंकन हुआ। यह सारा परिवर्तन नागरीदास और उसके चित्रकार निहालचन्द की कुशल बुद्धि का कार्य था। इस प्रकार किशगढ़ के चित्रकारों ने सावन्तसिंह के राज्यकाल में परम्परागत लोक-कला के मीन-नेत्र एवं गोल भारी चेहरे न बनाकर, कमल और खंजन आकार के नेत्र चाप के समान पतली भृकुटी, पतले सुकोमल अधर और लम्बी पतली नाक को लम्बे पतले चेहरे में बनाकर नारी के वीर भाव के स्थान पर माधुर्य तथा कोमलता, चंचलता तथा नारीत्व भाव की प्रधानता को दर्शाया। स्त्रियां लतिका के समान लचकदार, छरहरे शरीर वाली और लम्बी बनायी गयी है। इह प्रकार किशनगढ़ की स्त्री आकृतियां, राजस्थान की अन्य कला शैलियों से सर्वथा भिन्न हैं। किशनगढ़ शैली अठाहरवीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थ भाग में आश्चर्यजनक रूप से उन्नति को प्राप्त हुई। यह निश्चित है कि इस शैली को सुन्दरी बनीठनी के जीवित रूप से अत्याधिक प्रेरणा, नवीन रूप विधान और कोमलाङ्गी स्त्री आकृति

---

1. तथा 2. 'किशनगढ़ पेंटिंग'—लेखक एरिक डिक्सन, पृष्ठ ८ तथा ९।

टिप्पणी—लगभग १७३९ ई० में बनीठनी दिल्ली दरबार से किशनगढ़ आई थी।

की साकार कल्पना मिली। नागरीदास फर्रूखसियर (१७१३-१६ ई०) का अतिथि बना । अतः उसने फर्रूखसियर कालीन मुगल चित्रकला में विकसित परिवर्तनों को भी देखा था। उसने मुगल कला की विशेषताओं को देखकर अपने राज्य किशनगढ़ में भी कला का विकास किया। उसके समय में बने किशनगढ़ शैली के चित्र उत्तम हैं।

१७४७ ईसवी में राजसिंह की किशनगढ़ में मृत्यु हो गयी और नागरीदास के छोटे भाई बहादुरसिंह ने गद्दी के लिये युद्ध आरम्भ कर दिया। अतः सहायता प्राप्त करने के लिए नागरीदास को दिल्ली के दरबार में जाना पड़ा। यहां पर मुगल बादशाह अहमदशाह ने उसका स्वागत किया और सहायता प्रदान की। परन्तु नागरीदास की पराजय हुई और वह ब्रज-धाम की तीर्थ यात्रा के लिये चला गया। ब्रज से नागरीदास और उसके पुत्र कुमायुं युद्ध (१७५१ ई०) में मराठों की सहायता करते रहे। मराठों की सहायता और मैत्री ने नागरीदास के पुत्र सरदारसिंह ने १७५६ ई० में किशनगढ़ राज्य का आधा भाग प्राप्त कर लिया और इस प्रकार आधे राज्य का शासक बहादुरसिंह और आधे राज्य का शासक सरदारसिंह बन गया। नागरीदास ने सन्यास ग्रहण कर लिया और 'बनीठनी' के साथ नागरीदास ब्रज तथा मथुरा तीर्थाटन हेतु चला गया। नागरीदास की १७५४ ई० में तीर्थाटन करते हुए मृत्यु हो गई। नागरीदास ने पुष्टिमार्ग का संस्थापन किया और इस मार्ग के संवेगात्मक दर्शन पक्ष का किशनगढ़ पर गहरा प्रभाव पड़ा। बहादुरसिंह के पश्चात् विरादसिंह, प्रतापसिंह, कल्यानसिंह, मोकामसिंह तथा अन्तिम शासक पृथ्वीसिंह (१८४०-१८८० ई० तक) किशनगढ़ में राज्य करते रहे। इन सब शासकों के चित्र किशनगढ़ दरबार संग्रह में सुरक्षित हैं।

किशनगढ़ की चित्रकला—किशनगढ़ दरबार के पुराने लेखों से ज्ञात होता है कि किशनगढ़ राज्य में सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक एक अच्छी चित्रशाला स्थापित हो चुकी थी। इस चित्रशाला में सुयोग्य चित्रकार कार्य कर रहे थे और राजा मानसिंह के शासनकाल में सम्भवतः दरबारी चित्रकार कार्य कर रहे थे, क्योंकि एक चित्र-में युवराज मानसिंह को एक घोड़े पर सवार वर्छे से (भाले से) एक काले हिरन का शिकार करते दिखाया गया है। यह चित्र राजा मानसिंह के शासनकाल का होना चाहिए, परन्तु इस चित्र में अंकित लेख के अनुसार यह चित्र १६९४ ईसवी का है। इस चित्र की शैली मुगल-औरंगजेब कालीन शैली से साम्य रखती है। इस चित्र में युवराज की आकृति सुन्दर है, परन्तु सावन्तसिंह कालीन चित्रों की तुलना में यह चित्र हेय है। राजा मानसिंह ने कुशल चित्रकारों की एक दरबारी चित्रशाला का वर्णन दिया हैं। यह चित्रकार सत्रहवीं शताब्दी और उससे पहले कार्य कर रहे थे। 'दरबार-संग्रह' में राजा साहसमल (१६१५-१६१८ ई०) के चित्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह शैली अठाहरवीं शताब्दी के आरम्भ में सुचारू रूप से चल रही थी। इस समय कि किशनगढ़ शैली पर फर्रूखसियर कालीन दिल्ली कलम का प्रभाव है। यह चित्र

राजा मानसिंह (१७०६-१७४६ ई०) के मध्य के हैं और सम्भवतः मुस्वविर (चित्रकार) भवानीदास के बनाये हुए हैं। दरबार के लेखों से ऐसा ज्ञात होता है कि राजा ने १७२२ ई० में अपने दरबारियों के मुखाकृति चित्र बनवाये। दरबार-संग्रह के एक लघु चित्र में राजसिंह को जंगली भैंसे का आखेट करते दिखाया गया है। इस चित्र की शैली अठारहवीं शताब्दी की राजस्थानी या मेवाड़ी शैली से मिलती जुलती है। इस समय तक मुखाकृति-चित्र या आखेट-चित्र ही मिलते हैं, परन्तु शीघ्र ही सावन्तसिंह के समय से ही नवीन शक्तिशाली कला-शैली का किशनगढ़ में विकास हुआ।

सावन्तसिंह के समय के चित्रों में दरबार, शबीह, आखेट आदि प्रतिदिन के विषय दिखाई पड़ने लगते हैं, परन्तु कृष्ण के चित्रों की अधिकता है। इस समय बिहारीचन्द्रिका के आधार पर अनेक चित्र बनाये गये। नागरीदास के पिता के दरबार में सूर्यध्वज निहालचन्द नामक एक कायस्थ चित्रकार कार्य कर रहा था। नागरीदास ने इस चित्रकार को अपनी चित्रशाला में नियुक्त कर लिया और उसने इस चित्रकार की सुकोमल, भावपूर्ण तूलिका से राधा और कृष्ण के मार्मिक प्रेम की तीक्ष्ण अभिव्यक्ति कराई। निहालचन्द की तूलिका ने आकार और रंगों से एक नवीन चित्रविधान और स्त्री सौन्दर्य की कल्पना प्रस्तुत की जिसका प्रेरणा स्रोत बनीठनी का सजीव रूप था।

किशनगढ़ के चित्रकार

निहालचन्द—निहालचन्द चित्रकार का दादा सूर्यध्वज मूलराज कायस्थ दिल्ली के दरबार से किशनगढ़ आया और राजा मानसिंह (१६५८-१७०६ ई०) के यहाँ दीवान (सचिव) के रूप में किशनगढ़ दरबार में सम्मानित हुआ ऐसी अवस्था में यह नही कहा जा सकता कि निहालचन्द ने सह-सचिव पद ग्रहण न करके चित्रकारी का व्यवसाय क्यों अपनाया? निहाचन्द किशनगढ़ का विख्यात चित्रकार था उसके चित्र इतने सुन्दर हैं कि बाद के कुछ भद्दे चित्र जो दरबार संग्रह में हैं, उनके नाम से जोड़ दिये गये हैं। नागरीदास के पश्चात् सरदारसिंह ने भी निहालचन्द को अपने दरबार में सम्मान दिया।

निहालचन्द को सरदारसिंह के सभासदों के साथ एक चांदनी रात की संगीत गोष्ठी के चित्र या 'चांदनी रात के गवैये' नामक चित्र में दिखाया गया है। इस चित्र में निहालचन्द की आयु लगभग ५० वर्ष है। इस चित्र में निहालचन्द को राजा सरदारसिंह के सम्मुख प्रथम स्थान दिया गया है। इस चित्र में प्रत्येक व्यक्ति की आकृति का नाम भी अंकित है। यह चित्र अमरचन्द नामक चित्रकार का बनाया हुआ है और इस चित्र का रचनाकाल १७६० ई० से १७६६ ईसवी के मध्य है। इस प्रकार निहाल चन्द का जन्म अनुमानतः १७०८ ई० के लगभग हुआ होगा। निहालचन्द ने सर्वोत्तम चित्रकृतियाँ नागरीदास के सम्पर्क में आने पर १७३५-१७५७ ई० के मध्य या तनिक

बाद में बनाई होंगी। सम्भवतः निहालचन्द और नागरीदास में घनिष्ट मैत्री सम्बन्ध था और नागरीदास ने ही निहालचन्द को नील वर्ण के देवता कृष्ण और गौर वर्ण की राधा के चित्रण का संकेत दिया होगा जो प्रत्येक वैष्णव के लिए मोक्ष का साधन था। परन्तु एक विचित्र बात यह है कि दोनों ही कृष्ण के प्रचलित चित्र विषयों से सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने 'बनीठनी' के रूप से राधा के आदर्श रूप की कल्पना की। इस प्रकार एक नवीन नारी रूप का अंकन प्रारम्भ हुआ, जो उन्नीसवीं शताब्दी की कला में परम्परागत रूप से चलता रहा। चित्रकार ने इस परिवर्तन के साथ नवीन रंग-योजना, संयोजन और नाटकीयता का समावेश कर चित्र को अधिक प्रभावशाली बनाया। ब्रजभाषा साहित्य का इस शैली पर गहरा प्रभाव पड़ा।

चित्रकार निहालचन्द के कुछ चित्रों पर फारसी के लेख में अमल निहालचन्द लिखा है जिसका अर्थ है निहालचन्द की कृति। शायद यह लेख पुस्तकालय के अध्यक्ष ने लिखा है, परन्तु निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि कुछ चित्रों के हाशियो पर फारसी सुलिपि में निहालचन्द लिखा है तो कुछ चित्रों पर हिन्दी में 'सूर्यध्वज निहालचन्द' लिखा है।

सूर्यध्वज निहालचन्द द्वारा चित्रित १७ '७ ईसवी का 'भागवतपुराण' प्राप्त है, परन्तु इसके चित्रों की शैली में अवनति के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगते हैं। कहा जाता है कि सूर्यध्वज मूलराज के वंश में कई सदस्यों ने चित्रकारी का व्यवसाय आरम्भ कर दिया। निहालचन्द ने चित्रकला का विधिवत रूप से मुगल दरबार में अभ्यास किया था और उसके प्रारम्भिक चित्रों की शैली भी मुगल थी। निहालचन्द के पिता का नाम भीखचन्द था। भीखचन्द के पिता का नाम दरगामहल(दरगामहल) था, वे दोनों भी चित्रकार थे। ऐसा कहा जाता है कि इसी वंश में डूंगरमल का पुत्र भी चित्रकार था। निहालचन्द के दो अन्य वंशजों ने भी आगे चलकर चित्रकला व्यवसाय अपनाया। इन वंशजों का नाम 'सीताराम' और 'बदनसिंह' था।

सीताराम—सीताराम एक अच्छा चित्रकार था और उसकी कुछ कृतियाँ दरबार-संग्रह में सुरक्षित हैं। ऐसा कहा जाता है कि निहालचन्द-वंश की सन्तति अभी भी किशनगढ़ में निवास कर रही है। किशनगढ़ में निहालचन्द के अतिरिक्त और भी कई परिवार थे जो चित्रकारी का व्यवसाय करते थे। दरबार-संग्रह में नामांकित चित्रों से बहुत से कलाकारों के नाम प्राप्त हैं जो भिन्न-भिन्न राजाओं के समय के हैं।

अमरचन्द—इन चित्रकारों में अधिक विख्यात चित्रकार अमरचन्द था, जो निहालचन्द का समसाययिक था। उसका बनाया एक चित्र 'चांदनी रात के गवैये' जिसका पहले उल्लेख किया जा चुका है, दरबार-संग्रह में प्राप्त है। इस चित्र का रचनाकाल अनुमानतः १७६० ई० से १७६६ ई० के मध्य है। अमरचन्द की शैली मुगल है।

अमरचन्द का पुत्र मेघराज भी प्रसिद्ध चित्रकार था। भवानीदास नामक चित्रकार राजा राजसिंह (१७०६-१७४८ ई०) के समय में था, और कहा जाता है कि उसने दरबारियों के अनेक व्यक्ति चित्र बनाये। इसी समय में एक अन्य चित्रकार कल्यानदास का नाम भी प्राप्त होता है। अमरू तथा सूरजमल नामक चित्रकारों ने सावन्तसिंह की चित्रशाला में कार्य किया। नानगराम (१७७१ ईसवी) चित्रकार ने बहादुर सिंह के समय में चित्र बनाये। बाद में सूरजमल, रामनाथ, जोशी सवाईराम, तथा लाड़लीदास आदि चित्रकार के नाम प्राप्त होते हैं। लाड़लीदास ने कल्यानसिंह (१७८८-१८३८ ई०) के राज्यकाल में चित्र बनाये। अमरचन्द के विषय में यह कहा जाता है कि उसने दिल्ली दरबार में चित्रकला की शिक्षा ग्रहण की थी अतः उसकी शैली मुगल थी। किशनगढ़ की चित्रकला पर निहालचन्द की शैली की गहरी छाप है परतु अमरचन्द की कृतियाँ मुगल शैली की हैं।

किशनगढ़ में १८२० ई० के बाद तक सुन्दर चित्र बनते रहे जिनमें 'गीत गोविन्द' पर आधारित कृतियाँ विशेष हैं परन्तु गीतागोविन्द' के चित्रों में स्त्री आकृतियाँ कुछ भिन्न शैली में बनाई गई हैं, फिर भी सुन्दर और आकर्षक हैं, यद्यपि चित्रों में कोमलता कम है। राजा पृथ्वीसिंह (१८४०-१८८० ई०)के समय में उत्तम चित्रकार कार्य कर रहे थे जो निहालचन्द के स्त्री आकारों को परम्परागत रूप से चलाते रहे, परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में इनकी कृतियों में कोमलता के स्थान पर कठोरता आ गई और खुलाई में काली स्याही का प्रयोग होने लगता है। बहादुरसिंह ने १७५६ ई० के लगभग कुशल चित्रकार नियुक्त किये और उसने अपनी राजधानी में भी चित्रकला को प्रोत्साहन दिया। इस समय विशेष रूप से 'कल्यानराय' के चित्र बनाये गये। इस समय का एक चित्र 'कल्यानराय की पूजा' दरबार संग्रह, किशनगढ़ में प्राप्त है।

किशनगढ़ शैली के चित्रों का विषय—किशनगढ़ शैली का विशेष विकास राजा नागरीदास के काल में और उसके पश्चात् हुआ। यद्यपि इस शैली का विकास विशेष रूप से राजदरबार में हुआ फिर भी इस शैली के चित्रों में विषयों की विविधता है और तत्कालीन लोकभावनाए हैं। इस शैली के आरम्भिक चित्रों के विषय आखेट और दरबार के दृश्य हैं जिनमें राजाओं और युवराजों का जीवन है। इस समय में व्यक्ति चित्रों को प्रमुखता मिली। 'युवराज राजसिंह घोड़े पर सवार काले मृग का शिकार करते हुए' (दरबार संग्रह) किशनगढ़ शैली का आरम्भिक चित्र है। राजा साहसमल का चित्र भी इसी प्रकार का है, उसको अपने शिकरेबाजों के साथ खड़ा बनाया गया है। किशनगढ़ का चित्रकार आरम्भ में आखेट दृश्य, दरबार और व्यक्ति चित्रों तक सीमित रहा। नागरीदास के पश्चात् राधा और कृष्ण ही चित्रकार के प्रिय चित्रण विषय होने लगे। किशनगढ़ में 'गीतगोविन्द,' 'भागवत पुराण' तथा 'बिहारीचन्द्रिका' पर आधारित अत्यधिक चित्रों की रचना की गई। कृष्ण के अतिरिक्त

शिव के चित्र भी बनाये गये और चित्रकार ने अन्तःपुर, रंगमहल, स्नानागार तथा रानियों की केलि-क्रीड़ा आदि विषय के अनेक चित्र बनाये। नायिका भेद पर आधारित चित्रों को अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई। नागरीदास के समय में राधा के रूप में बनीठनी को चित्रित किया गया। अन्तःपुर क्रीड़ा के दृश्य अनेक चित्र उदाहरणों में प्राप्त होते हैं और 'चांदनी रात में तालाब' तथा 'कुन्ड की पीठिका' इस प्रकार के सुन्दर चित्र उदाहरण हैं। इन चित्रों में रनिवासों की झाँकी स्पष्ट है। संगीत तथा नृत्य के चित्र भी चित्रकार के प्रिय विषय थे। इस प्रकार के उदाहरण में 'चाँदनी रात की संगीत गोष्ठी' दरबार संग्रह का एक सुन्दर चित्र है। इस चित्र में चांदनी रात में राजा सरदारसिंह अपने मुसाहिबों के साथ महल के प्रांगण में बैठा है, पीछे पृष्ठभूमि में चांदनी से स्निग्ध श्वेत महल के छज्जों पर ख्वाजा लोग बैठे हैं और नीचे चबूतरे पर गोष्ठी हो रही है। गायक राजा के सामने बैठे हैं तथा अन्य सभासदों ने यथास्थान आसन ग्रहण किया है। चबूतरे के दोनों ओर हरियाली है जिसमें केला सुन्दरता से बनाया गया है और चित्र की आकृतियों का नाम लिखा है।

प्रेमी और प्रेमिकाओं के चित्र किशनगढ़ में अपने ही ढंग से बनाये गये हैं। प्राय: नायिका भेद पर आधारित चित्रों में नायक तथा नायिकाओं को सुन्दर नौकाओं पर जलविहार करते दिखाया गया है। इस प्रकार के चित्र उदाहरणों में 'लालबजरा' तथा 'प्रेम की क्रीड़ा' सुन्दर हैं। इस प्रकार के नौकाविहार सम्बन्धी चित्र राजस्थान में अन्यत्र प्राप्त नहीं होते हैं। चित्रकार ने प्रेमी और प्रेमिकाओं की प्रेम क्रीड़ाओं में विशेष रुचि ली है और उनके मिलन-स्थलों के लिए कुंजों तथा लतिकाओं की झुरमुटों या सघन वृक्षों से आच्छादित पीठिकाओं और भवनों का चयन किया है। रात्रि दृश्य भी अपनी-अपनी विशेषता लिए बनाए गये हैं। इस प्रकार के रात्रि दृश्यों में 'दीपावली और दीप' अत्यन्त सुन्दर उदाहरण हैं। चित्र में आलेखन की अपनी विशेषता है तथा रंग की योजना और विषय की अभिव्यक्ति में भी नवीनता है (यह चित्र 'किशनगढ़ पेन्टिंग'—ललित कला प्रकाशन में लेखक श्री एरिक डिक्सन ने प्रकाशित किये हैं)

विशेष रूप से किशनगढ़ के चित्रकार ने कृष्णलीला के चित्र बनाये हैं। यह चित्र हिन्दी साहित्य के आधार पर बनाये गए, परन्तु इनमें राधा और कृष्ण का अनोखा नवीन रूप है। इस प्रकार के चित्रों में 'सांझीलीला', 'कृष्ण राधा का दुपट्टा पकड़ते' तथा 'कृष्ण गोपियों के साथ नृत्य करते हुए' आदि चित्र सुन्दर उदाहरण हैं। भागवत के आधार पर भी अनेक सुन्दर चित्र जैसे 'रुकमिणीमंगल' आदि बनाये गये।

कृष्ण और राधा को तत्कालीन प्रेमी और प्रेमिकाओं का रूप देने की चेष्टा की गई है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि नागरीदास ने बनीठनी के प्रति, कृष्ण और राधा के रूप में, अपने प्रेमी की अभिव्यक्ति की, इसी कारण नवीन कलेवर

और नवीन प्रेम-क्रीड़ाओं की कल्पना चित्र का आधार बनी। किशनगढ़ शैली के चित्रों में नवीनता है और ब्रजभाषा लोक साहित्य की कल्पना है। इन चित्रों में सजीवता तथा सुन्दरता है जिससे भावाभिव्यक्ति और प्रबल हो गई है।

किशनगढ़ शैली की विशेषताएं

वर्णविधान—किशनगढ़ शैली के चित्रों में चटक रग और आकारों की मौलिक उद्‌भावना है। चित्रों में अधिकांश अमिश्रित रंगों का प्रयोग है। प्रायः पीले, और लाल रंग का प्रयोग अधिक किया गया है परन्तु नीले रंग का प्रयोग अत्यधिक शान्तिपूर्ण और सुखद है। आवश्यकता के अनुसार रंगों में सफेद रंग के मिश्रण के द्वारा विभिन्न प्रकार के कोमल रंग बनाए गये हैं। इन रंगों में से हल्के गुलाबी रंग का प्रयोग शरीर में किया गया है। पीला (प्योड़ी), लाल (सिन्दूर तथा संगरफ), हरा (जगाल), नीला (नील), काला (काजल), सफेद (कासागर) तथा सोने, के रंगों का प्रयोग किया गया है।

आकृतियाँ -इस शैली की मानव आकृतियां भी राजस्थान के अन्य कला केन्द्रों से भिन्न हैं। विशेष रूप से स्त्री आकृतियां बहुत कोमलाङ्गी और लतिका के समान लचकदार, पतली, लम्बी, और छरहरे शरीर वाली बनाई गई हैं। किशनगढ़ शैली के चित्रों में पशु-पक्षी मेवाड़ शैली के समान ही बनाये गये हैं।

पहनावा तथा रूप—किशनगढ़ शैली के अधिकांश चित्रों में स्त्रियों का पहनावा लहगा, चोली, तथा पारदर्शी आँचल है। गले, माथे, हाथों तथा कमर में आभूषण बनाए गए हैं, परन्तु सबसे अधिक महत्व का आभूषण वेसरि (नाक का आभूषण) है जो अनोखे ढंग का है। कभी-कभी स्त्रियों को साड़ी पहने भी बनाया गया है। उदाहरणार्थ 'कवि युवराज और बनीठनी' नामक चित्र में बनीठनी को साड़ी पहने अंकित किया गया है। पुरुषों का पहनावा लम्बा जामा तथा पाजामा समसामयिक पहनावे पर आधारित है। पुरुषों के पहनावे में कभी-कभी धोती का भी प्रयोग है और जामे के साथ कमर में पटका और सर पर पगड़ी भी बनाई गई है। कृष्ण को पीताम्बर पहने चित्रांकित किया गया है। स्त्रियों के वस्त्रों में विविध सुन्दर रंगों का प्रयोग है। पर्दा, फर्श के कालीनों तथा कपड़ों में सुन्दर आलेख बनाये गये हैं। कपड़ों तथा शरीर में गोलाई लाने के लिये छाया का प्रयोग किया गया है। चित्र की खुलाई शरीर से मिलने वाले भूरापन लिये किसी लाल रंग से की गई है। लम्बे बाल तथा कर्ण स्पर्शी नेत्र (काजलयुक्त) काले रंग से बनाये गये हैं। कपड़ों में शिकनों तथा वायु के स्पन्दन की भावना है।

रेखा—किशनगढ़ शैली के चित्रों की रेखाएं कोमल, बारीक और भा पूर्ण हैं। रेखाओं में प्रवाह तथा गति है। भौंह तथा बालों को बारीक-बारीक रेखाओं के द्वारा बनाया गया है। बाद के चित्रों में काली रेखाओं का प्रयोग किया गया है।

रात्रि प्रभाव—रात्रि के दृश्यों में चित्रकार ने गहरी पृष्ठभूमि का प्रयोग किया है और दीपकों का झिलमिल प्रकाश पीले रंग के द्वारा बहुत सुन्दरता से बनाया है। साधारणतय: ऐसे दृश्यों में काले मिश्रित नीले रंग से आकाश बनाया गया है।

नौका-बिहार—किशनगढ़ शैली के चित्रों में नौका-बिहार तथा कुंजों से आच्छादित भवन बहुत सुन्दरता से बनाये गये हैं। सम्भवतः नौकाओं का प्रयोग किशनगढ़ नगर के झील के तट पर आवासित होने के कारण किया गया है।

प्रकृति— चित्रकार ने प्रकृति को भावुकता से देखा है और अलंकारिक योजना को अपनाया है। वृक्षों के पत्तों को सुन्दरता से बनाया गया है। प्राय: आम, जामुन, केला आदि वृक्षों का प्रयोग किया गया है और पानी के रंग में चांदी का प्रयोग किया गया है।

नारी सौन्दर्य— किशनगढ़ शैली की सबसे प्रमुख विशेषता है नारी सौन्दर्य। स्त्रियों के चेहरे पतले और कोमल बनाये गये हैं और मेवाड़ शैली जैसा भारीपन नहीं है। चिबुक के नीचे गरदन तक निकला हुआ बोझिल भाग न बनाकर सुकड़ा हुआ भाग बनाया गया है जिससे रूप सुन्दरता की वृद्धि हुई है। नेत्र कमल या खंजन आकार के बनाये गये हैं और नेत्रों की काली रेखाएं कान की ओर बढ़ती बनाई गई हैं। अधर बिम्वाफल के समान लाल हैं और अधरों के किनारे ऊपर की ओर चढ़े हुए बनाये गये हैं, जो इस शैली की अपनी विशेषता है। निष्कर्षत: किशनगढ़ शैली की नारी में स्थानीय नारी सौन्दर्य की छवि है।

पुष्टी मार्ग— इस शैली के चित्रों में पुष्टी मार्ग का अनुसरण किया गया है। चित्रकार ने भगवान के सौन्दर्य की भक्ति में विस्मृत होकर अपनी आत्मा और परमात्मा का प्रतीक क्रमश: राधा और कृष्ण को माना है। इस शैली के चित्र जीते जागते हैं और उनमें आत्मा की सच्ची अभिव्यक्ति है।

जयपुर की चित्रकला
(जयपुर शैली)

जयपुर का ऐतिहासिक महत्व—जयपुर राज्य राजस्थान के प्रमुख राज्यों में से एक था। यह राज्य अपने भव्य भवनों और शक्तिशाली नरेशों के कारण भी अधिक प्रभावशाली बना रहा। परन्तु जयपुर की चित्रकला का विकास तनिक बाद में हुआ प्रतीत होता है और अठाहरवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में जयपुर में बनाई गई उत्तम कृतियों के उदाहरण प्राप्त होते हैं। जयपुर राज्य का राजस्थानी राज्यों में सबसे पहले मुगलों से सम्बन्ध स्थापित हुआ और जयपुर नरेश मुगल दरबार में सम्मानित हुए।

जयपुर के कछवाहा राजवंश की प्राचीन राजधानी आमेर (अम्बर) थी, और सर्वप्रथम आमेर के युवराज बिहारीमल को मुगल दरबार में सम्राट हुमायुं ने ५००० मनसबदारी के पद पर सम्मानित किया। उसके पुत्र राजा भगवानदास ने अकबर

से मित्रता की और उसने १५६२ ईसवी में अपनी ज्येष्ठ पुत्री राजकुमारी जोधाबाई का विवाह सम्राट अकबर से किया। यह प्रथम राजपूत राजकुमारी थी जिसने मुगल अन्त:पुर में प्रवेश किया। इस राजपूत राजकुमारी ने सम्राट जहांगीर या सलीम को जन्म दिया। राजा बिहारीमल के पुत्र राजा भगवानदास और भतीजे राजा मानसिंह ने मुगल सेना में महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण किया।

जयपुर नरेशों का कला प्रेम— आमेर के राजा भगवानदास तथा अन्य राजाओं का कला प्रेम प्रमाणित है। इन राजाओं ने आमेर के उद्यानों में छतरियों पर चित्रकारी कराई जिनके चिन्ह अभी भी प्राप्त हैं। इन चित्रों का समय सोलहवीं शताब्दी का अन्तिम भाग माना जाता है। इसके पश्चात् मिर्जा राजा जयसिंह (१६२५-१६६७ ई०) मुगल सेना का प्रमुख सेनापति था और उसकी अध्यक्षता में २१,००० घुड़सवार राजपूत सेना और २२ बड़े सरदार थे। मिर्जा राजा जयसिंह की १२ जुलाई १६६७ ईसवीं में बुरहानपुर में मृत्यु हो गई और सवाई जयसिंह १६९३ ईसवीं में सिंहासन पर बैठा। सवाई जयसिंह प्रतिभा सम्पन्न शासक था। उसने शासन व्यवस्था, विज्ञान तथा भवन-काल में अनोखी सूझ-बूझ का परिचय दिया। उसने नवीन राजधानी जयपुर का निर्माण कराया और इस नगर को एक निश्चित योजना प्रदान की। उसने ज्योतिष-शास्त्र में भी रुचि प्रदर्शित की और उसके समय में आश्चर्य नहीं कि चित्रकला को भी प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। सवाई राजा ईसरी सिंह (१७४४-५१ ई०), सवाई राजा प्रताप सिंह द्वितीय (१७७८-१८०३ ई०), सवाई राजा जगत सिंह द्वितीय (१८०३-१८ ई०), सवाई राजा जय सिंह तृतीय (१८१८-३५ ई०) तथा सवाई राजा राम सिंह (१८३५-१८८० ई०) के शासन काल में कछवाह कला या जयपुर शैली का मौलिक विकास हुआ।

जयपुर के मुखाकृति चित्र--जयपुर में मुखाकृति चित्रण पर्याप्त समय पूर्व से अपने निजी ढंग पर चल रहा था परन्तु उदाहरण स्वरूप दो भव्य मुखाकृति चित्र ही प्राप्त हैं जिनमें से एक चित्र, 'सवाई राजा जयसिंह द्वितीय' का है तथा दूसरा 'महाराणा प्रतापसिंह जी' (१७७८-१८०३ ई०) का है। यह चित्र बड़े आकार के हैं और इनमें आकृति का पार्श्व भाग दिखाया गया है। इनकी शैली मुगल मुखाकृति चित्रों से सर्वथा भिन्न है। सम्भवत: यह दोनों चित्र अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग के हैं यद्यपि सवाई राजा का चित्र कुछ पहले का जान पड़ता है। इन चित्रों में सादृश्य के साथ ही अलंकारिकता है और आकृतियां राजस्थानी शैली की परम्परा पर बनाई गई हैं। गर्दन में मोतियों की मालायें अंकित की गई हैं जो वक्षस्थल पर सुग-सरि के समान सुशोभित हो रही हैं। फूलदार मुसलिन (रेशमी) कपड़े के मोड़ विवरण सहित सतर्कता के साथ बनाए गए हैं। इन दोनों चित्रों की आकृतियों में चेहरे एकचश्म हैं परन्तु चित्रों की रेखाओं में सफाई, कोमलता और गोलाई है। सीमा रेखाओं के द्वारा चेहरे की कोमलता का प्रभाव उत्पन्न किया गया है। जयसिंह के चेहरे से उसकी बुद्धिमत्ता और शक्ति का आभास होता है। इस चित्र में आकृति के

अङ्गों तथा अङ्ग-भङ्गिमाओं का विधान अलंकारिक और परम्परागत है और उंगलियाँ पतली-पतली बनाई गई हैं आलेखन के द्वारा चित्र में साज-सामान सुन्दरता से भर दिया गया है।

जयपुर के चित्र महाराजा प्रतापसिंह जिस समय गद्दी पर बैठा तो वह अल्पवस्यक था और उसकी माता ने शासन अपने हाथों में ले लिया। रानी ने राजा खुशालीराम को अपना सलाहकार बनाया। इस समय अकबर जयपुर राज्य से अलग हो गया। राजा प्रतापसिंह का चित्र बड़ा और सुन्दर है परन्तु उनके चेहरे से कोमलता का भाव मिलता है, दृढ़ता का नहीं। रेखांकन के द्वारा चेहरा बनाया गया है और छाया का बहुत कम प्रयोग है। राजस्थानी शैली की हिन्दू चित्रकला के मुखाकृति चित्रों में इन उदाहरणों को सर्वोत्तम समझना चाहिये क्योंकि इन चित्रों में प्राचीन भित्तिचित्रों की परम्परा या अपभ्रंश कला का ही विकसित रूप है। जयपुर राज्य व्रज प्रदेश की सीमा पर ही था अतः वैष्णव सम्प्रदाय का जयपुर पर गहरा प्रभाव पड़ा, इस कारण पुष्टि मार्ग से सम्बन्धित अनेक सुन्दर चित्रों का निर्माण किया गया जो सर्वथा भिन्न प्रकार के हैं। सम्भवतः यह चित्र महाराजा प्रताप सिंह के समय के हैं परन्तु यह चित्र जयपुर शैली की प्रतिनिधि कृतियाँ माने जा सकते हैं। एक चित्र में भगवान कृष्ण को गोवर्द्धन धारण किए अंकित किया गया है।[1] इस चित्र में कृष्ण की मुखमुद्रा एकचश्म है और उनका छरहरा शरीर सम्मुख स्थिति में है। उनके शरीर से कोमलता का आभास होता है परन्तु अंग-भगिमा में पर्याप्त दृढ़ता है। कृष्ण के चारों ओर गायें, गोपियां तथा ग्वाल-बाल हैं जो गोवर्द्धन पर्वत के नीचे खड़े हैं और गोवर्द्धन पर्वत को भगवान कृष्ण ने उंगली पर उठा रखा है। पर्वत छत्र का कार्य कर रहा है, ऊपर आकाश में बादलों के मध्य स्वर्ग के देवता दर्शाये गये हैं और वर्षा का भीषण प्रभाव अंकित किया गया है। चित्र में यमुना का किनारा यथार्थ बनाया गया है—आकाश मे ऐरावत पर इन्द्र स्वयं भगवान कृष्ण की पूजा करने जा रहे हैं। इस चित्र में चित्रकार ने बहुत सुन्दर संयोजन विधान लिया है। चित्र की आकृतियों में गति, लय और भाव हैं। इस चित्र में गरुड़, ऐरावत तथा गायें बहुत सुन्दरता से बनाई गई हैं।

दूसरा चित्र 'रासमंड़ल' का है जिसके मध्य में मानव-आत्मा और परमात्मा का प्रतीक भगवान कृष्ण और राधिका का युगल है। इस युगल के चारों ओर गोपियां कई मडलाकारों में नृत्य कर रही हैं।[2] इस चित्र की आकृतियों के चेहरे दिव्य युगल की ओर हैं, मुख्यभूपि की गोपिकाओं का केवल पार्श्व भाग ही दिखाई पड़ रहा है। इस चित्र को आकाशीय-दृष्टि (aerial view) मे बनाया गया है। चित्र में आलेखन-योजना और अलंकरण को प्रधानता दी गई है। दिव्य-युगल में गति है तथा

1. देखिये 'स्टडीज इन इन्डियन पेन्टिंग'—ले० ए० सी० मेहता, फलक १०।
2. यह चित्र 'स्टडीज इन इन्डियन पेन्टिंग' में प्रकाशित किया गया है, फलक ११।

मुद्रायें लावण्यपूर्ण हैं। आकाश में देवगण पुष्पों की वृष्टि कर रहे हैं। इन दोनों ही चित्रों में काले रंग की प्रधानता है और रेखाएं भी काले रंग से बनाई गई हैं। एक अन्य बड़े आकार के चित्र में गोपियों को चित्रित किया गया है। इस चित्र की मूल प्रति जयपुर पोथीखाने में सुरक्षित है।

जयपुर शैली के दो अन्य बड़े आकार के चित्र प्राप्त हैं जो छः फुट लम्बे और तीन फुट चौड़े हैं। यह सुन्दर चित्र तिब्बत के थानकानामी झंड़ों के सामने पट पर बने हैं इन चित्रों में प्रथम चित्र 'ग्रीष्म' और द्वितीय 'शरद' है।[1] प्रथम चित्र में एक युवती राजपूत और मुगल मिश्रित परिधान में यौवन के प्रतीक फलों से लदे एक आम्र वृक्ष के नीचे खड़ी है। स्त्री का बायां हाथ कमर पर रखा है और दाहिने हाथ से ऊपर की ओर आम्र वृक्ष की डाली पकड़े है, तथा नीचे खड़े काले हिरन को देख रही है। हिरन युवती की ओर मुंह उठाए पूंछ हिला रहा है। 'शरद' वाले चित्र में हिरन के स्थान पर शरद का प्रतीक सारस है और आम्र वृक्ष के स्थान पर चम्पक वृक्ष है। और युवती के दाहिने हाथ पर सारिका है जिसे वह वार्तालाप कर रही है। दोनों चित्रों की पृष्ठभूमि से दूर पर आमेर दुर्ग का दृश्य अंकित किया गया है। अग्रभूमि में अलंकारिक ढंग से पौधे बनाये गए हैं, जिनमें पुष्पित सूर्यमुखी को अंकित किया गया है।

जयपुरी सचित्र विज्ञप्ति लेख— जैन धर्म के कारण सचित्र विज्ञप्ति लेखों का भी राजस्थान की कला में पर्याप्त प्रचलन हो रहा था। चतुर्मास हेतु जैन धर्म गुरुओं को आमंत्रित करने के लिए स्थानीय जैन संघ की ओर से जो स्वागतार्थ पत्र भेजा जाता था उसे विज्ञप्ति लेख कहते हैं। ऐसा एक विज्ञप्ति लेख जो बीसवीं शताब्दी का है और श्री सुरपतिसिंह जी इगड़ के संग्रह में है (अनुमानतः इस लेख का समय १६२० ईसवी है), श्री रत्न विजय जी को निमंत्रित करने के लिए भेजा गया था। इसमें अंकित लेख से प्रतीत होता है कि इस लेख को जयपुर के दधीघ नानूलाल ने तैयार किया था परन्तु चित्रकार का नाम लेख में प्राप्त नहीं होता। अनुमानतः यह चित्रपत्री बंगाल से, जयपुर में तैयार कराई गई और ग्वालियर में जैन मुनि के पास भेजी गई थी। यह विज्ञप्ति लेख १६ फुट लम्बी और ११½ इन्च चौड़ी कपड़े की पट्टी पर तैयार किया गया है। इस लम्बी पट्टी में अनेक चित्र हैं। सर्वप्रथम मंगलकलश तथा छत्र का चित्र है जिसके नीचे दो चमरधारी पुरुष और दो मयूर पिच्छिकाधारणी स्त्रियां खड़ी हैं। दूसरे तथा तीसरे चित्र में अष्टमंगलीक तथा चतुर्दश महास्वपनो, सूर्य और श्री त्रिशला माता के चित्र हैं—सूर्य के चित्र में व्याघ्र चित्रित किया गया है। चौथे चित्र में 'जिनमाता तथा सिद्धार्थ राजा का 'महल' बनाया गया है, साथ ही एक जिनालय का चित्र है। पांचवें चित्र में सात

1. यह चित्र 'स्टडीज इन इंडियन पेन्टिंग' में प्रकाशित किए गए है, फलक १२, १३।

श्रवक खड़े हुए प्रभु दर्शन कर रहे हैं तथा अन्य नमस्कार वंदना कर रहे हैं। छठे चित्र में पांच सजे हुए हाथी हैं जिन पर पताकाएं, अंबारी, खुला, हौदा, जनानी अंबारी तथा व्याघ्रमुखदंड हैं। सभी हाथियों पर महावत बैठे है परन्तु एक हाथी पर दो अन्य व्यक्ति बैठे हैं जिन पर पंचवर्णी पताका फहरा रही है। इसी चित्र में पहरेदार, अश्वारोही दल, निशान तथा पताकाधारी, बन्दूकधारी सांडनी-सवार, फौजी सैनिक तथा बैंड आदि हैं। सातवें चित्र में जुजुर्वे तोपें रखी हुई हैं, तदुपरान्त रथ, ऊंट, घुड़सवार, पालकी, रथ आदि हैं। आठवें चित्र में दो नृतकियां तथा वाद्ययंत्रधारी एक बाटिका के अन्तर्गत महल के प्रांङ्गण में खड़े हैं और मुनिराज के स्वागतार्थ श्रावक-दल आगे बढ़ रहा है। नवें चित्र में एक महल की वाटिका में श्री रत्नविजय तख्त पर विराजमान हैं सामने श्रावक तथा श्राविकाएं सुसज्जित वस्त्रों में बैठी हैं। इसी चित्र में गवैये आदि भी बनाये गये हैं। अन्तिम चित्र में जयपुर की झांकी दिखाई गई है और इसमें जयपुर नगर की प्राचीर (परकोटा, शहर) का भाग दिखाया गया है, नगर के चार दरवाजे मकान, वृक्ष, नरनारी, घोड़े, हाथी, इक्के आदि को चित्रित किया गया है। हवामहल, जौहरी-वाजार, जलमहल आदि का सादृश्यपूर्ण अंकन है। चित्र के एक भाग में तम्बू डेरा आदि भी दृष्टि-गोचर होते हैं, साथ ही अनेक मन्दिर भी दिखाई पड़ रहे हैं। इन चित्रों मे जयपुरी (कछवाह) शैली का अच्छा परिचय मिल जाता है।[1]

जयपुर के कुशल चित्राकार गणेश के बनाए अनेक सुन्दर चित्र कलकत्ता के जैन-श्वेताम्बर-पंचायती मन्दिर में लगे हैं जो कि सम्वत् १६२५ से १६३५ के मध्य के बने हुये हैं।

जयपुर शैली की विशेषताएं

विषय—जयपुर शैली के चित्रों में मुखाकृति चित्रों तथा व्यक्ति चित्रों का अपना विशेष स्थान है। जयपुर के राजाओं के बड़े आकार में भी व्यक्ति चित्र बनाये गये। इन चित्रों में राजस्थानी परम्परा बलवती रूप में दिखाई पड़ती है। इन चित्रों के अतिरिक्त शिकार, दरबार आदि के चित्र भी बनाये गये। कृष्ण से सम्बन्धित चित्रों की संख्या अधिक है और कृष्ण की विभिन्न लीलाओं, रास तथा बाल क्रीड़ाओं के अनेक चित्र बनाये गये हैं। दूसरी ओर नायिका-भेद पर आधारित विषयों पर भी चित्र वनाए गये। इन चित्रों में परमात्मा का प्रतीक कृष्ण को माना गया है।

विधान— जयपुरी चित्रों का विधान सुन्दर और सुकोमल है। योजनायें अलंकारिक और संतुलित हैं यद्यपि यत्र-तत्र जहाँगीर तथा शाहजहां कालीन मुगल प्रभाव है। रेखायें कोमल हैं और प्रवाहपूर्ण डौल लिए बनाई गई हैं। चित्र की

---

1. 'अवन्तिका', 'जयपुरी कलम का एक विज्ञप्ति लेख'—लेखक भंवरलाल नाहटा, पृष्ठ ५७ से ५६।

सीमा रेखा से ही चित्राकृति में गोलाई लाने का सफल प्रयास दिखायी पड़ता है। काली रेखाओं का प्रयोग चेहरे की सीमारेखा के किनारे हल्की गोलाई लाने के लिए किया गया है, साथ ही छाया का भी यथोचित प्रयोग किया गया है। अधिकांश चित्रों में एकचश्म चेहरे का प्रयोग किया गया है और मुद्राएं सुन्दर तथा भावपूर्ण हैं। कपड़ों, साज-सामान तथा आभूषणों में सुन्दर आलेखन बनाये गए हैं। स्त्रियों का पहनावा कभी-कभी मुगल ढंग का है परन्तु सामान्य चित्रों में मुगल शैली के भवनों का प्रयोग किया गया है।

जयपुर शैली के चित्रों की खुलाई मुगल चित्रों के समान काले रंग या काली स्याही से की गई है। पशु पक्षियों का बहुत सुन्दर और यथार्थ अंकन किया गया है। पीले, लाल नीले, सफेद तथा काले रंगों की चित्रों में प्रधानता है।

प्रकृति—वृक्ष, पौधे, लता, पुष्प, समस्त वनस्पति तथा प्राकृतिक वातावरण और अलंकारिकता मेवाड़-शैली के समान है। अधिकांश चित्र बड़े आकार के है।

हाशिए—जयपुर शैली के चित्रों में हरे रंग की प्रधानता है। अधिकांश चित्रों के हाशिए रजतवर्णी काली या हरी तथा लाल पट्टियों से बनाये गये हैं। जयपुर शैली में रेशमी कपड़े पर दीवार पर (भित्तिचित्र) तथा कागज पर चित्र बनाये गये हैं।

बुन्देलखण्ड की चित्रकला
(बुन्देला शैली)

बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक महत्त्व—बुन्देलखण्ड की चित्रकला के इतिहास पर दृष्टिपात करते समय सर्वप्रथम दृष्टि बुन्देलखण्ड के शासक राजा वीरसिंह देव पर पड़ती है। वीरसिंह देव कला और साहित्य का संरक्षक और कला प्रेमी राजा था। सम्राट जहांगीर ने राजा वीरसिंह देव को अपने दरबार में तीन हजारी मनसबदारी का पद प्रदान किया। राजा वीरसिंह देव ने मथुरा, ओरछा तथा अन्य स्थानों में अनेक मन्दिर बनवाये। वह एक योग्य शासक था और उसने ओरछा राज्य की सीमाओं का विस्तार किया। उसने राजकोष में धन का भी पर्याप्त संचय किया। १६२७ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। वह एक वीर योद्धा, कला और भवन प्रेमी शासक था। उसने ओरछा तथा दत्तिया में सुन्दर भवन तथा दुर्गों का निर्माण कराया। 'हाफिज-ए-दीवान' की एक प्रति जो वीरसिंह देव (१६०५-१६२७) के समय की है और दत्तिया राजमहल पुस्तकालय की निधि है, राजा के कला प्रेम का उत्तम उदाहरण है। इस प्रति के कुछ चित्र चमड़े पर बनाये गये हैं।

१६२६ ईसवी में वीरसिंह देव ने दत्तिया की जागीर अपने पुत्र भगवानराव को सौंप दी और उस समय से दत्तिया ओरछा से अलग हो गया परन्तु ओरछा राज्य दत्तिया का सम्मान करता रहा। राजा शत्रुजीत (१७६२-१८०१ ई०) दत्तिया का छठा शासका था। वह एक सुयोग्य युवराज था। उसने जाट और मराठों से युद्ध किया

श्रौर राज्य का विस्तार किया । राश्रो शत्रुजीत के पश्चात् उसका पुत्र राजा परिछत सिंहासन पर बैठा ।

बुन्देला चित्र—शत्रुजीत श्रवश्य ही एक सुन्दर युवराज रहा होगा क्योंकि उसका घोड़े पर सवार जो व्यक्ति-चित्र प्राप्त है बहुत भव्य है ।[1] इस चित्र को देख कर ऐसा श्रनुमान होता है कि वह श्रपना चित्र बनवाने का बहुत शौकीन था । उसके श्रौर भी चित्र दत्तिया संग्रह में प्राप्त हैं जिनसे यह बात प्रमाणित होती है । एक चित्र में शत्रुजीत को श्रपने प्रिय श्रश्व 'हयराज पर बैठे' श्रंकित किया गया है श्रौर उसके हाथ में लम्बी तलवार है जो वह दाहिने कन्धे पर रखे है ।[2] मुगल शैली में फर्रूखशियर के समय में इस प्रकार के चित्र बनाए गए थे, परन्तु दत्तिया के चित्रों से उनकी तुलना नहीं की जा सकती । दत्तिया संग्रह के एक चित्र में भव्य बुन्देला सरजार राश्रो शत्रुजीत को खड़ा हुश्रा श्रंकित किया गया है । इस चित्र में श्राकृति का चेहरा एक चश्म है, माथे तथा पलकों पर सम्भवतः चन्दन के चिन्ह हैं । यद्यपि इन चित्रों में माथे छोटे पीछे की श्रोर धंसे हुए हैं श्रौर नाक तथा माथा एक ही सपाट प्रभावपूर्ण रेखा से बनाये गये हैं, श्राकृतियों के नेत्र छोटे-छोटे बनाए गये है श्रौर सर पर्याप्त चपटे तथा श्रनुपात में छोटे बनाए गये है जिससे सर श्रस्वाभाविक प्रतीत होते हैं । बुन्देला शैली के चित्रों में मुगल शैली जैसे वस्त्रों का प्रयोग किया गया है । श्रठाहरवीं शताब्दी के इन चित्रों में राजस्थान की परम्परा है । इन चित्रों के विधान तथा रंग भित्तियों के विधान जैसे सरल श्रौर सपाट हैं श्रौर श्रलंकरण की श्रोर चित्रकार की विशेष रुचि दिखाई पड़ती है ।

बुन्देला चित्रों के विषय—व्यक्ति चित्रों के श्रतिरिक्त बड़ी संख्या में श्रन्य विषयों पर श्रधारित चित्र बनाए गये । इन चित्रों की शैली विभिन्न राजस्थानी शैलियों तथा मुगल शैली से सर्वथा भिन्न है श्रौर उसमें श्रपना निजत्व है । इस शैली में 'रागमाला चित्रावली', रसराज़'(मतिराम १६४३ ई०), 'बिहारी सतसई' तथा कृष्ण लीला पर श्राधारित चित्र प्राप्त होते हैं जिनमें दत्तिया-शैली की श्रपनी विशेषता है । इस शैली के श्रनेक चित्र-उदाहरण उत्तरी भारत के प्रमुख संग्रहालयों में सुरक्षित हैं । यह चित्र श्रपनी एक निश्चित परम्परागत चित्रण प्रणाली के कारण सरलता से पहचाने जा सकते हैं । इनके रंग सरल, सपाट श्रौर चमकदार हैं । इस शैली के चित्रों में भाव का श्रधिक महत्व है, क्योंकि चित्रों के ऊपरी भाग में पीली पट्टी पर लिखी काव्य पंक्तियों में वर्णित भाव के श्राधार पर ही चित्र में भाव दर्शाया गया है इन चित्रों में रेखा, रूप तथा रंग की भाषा में केशव, बिहारी तथा मतिराम श्रादि कवियों की कविता को चित्रमय लिपि प्रदान की गई हैं । श्रधिकांश चित्र मध्यकालीन हिन्दी साहित्य श्रौर नायिका-भेद सम्बन्धी विषयों पर श्राधारित हैं । बुन्देला शैली में

1. तथा 2. यह चित्र 'स्टडीज इन इन्डियन पेंटिंग'—ले० एन० सी० मेहता, में क्रमशः फलक १४ तथा १५ में प्रकाशित हैं ।

अनेक प्रकार की अष्ट या दश नायिकाओं को चित्रित किया गया है, परन्तु नायिका-भेद सम्बन्धी चित्रों में नायक और नायिका को सामान्य मनुष्य के रूप में न बनाकर कृष्ण और राधा का रूप दिया गया है।

मतिराम लिखित 'रसराज' पर आधारित एक चित्र में कृष्ण एक कुन्ज में बैठे हैं और राधिका मुख्यभूमि में एक आम के वृक्ष के सहारे खड़ी हैं, और यह सोच-विचार कर रही है कि प्रीतम कृष्ण के पास जाकर अपना विरह शान्त करना चाहिए या विरह की पीड़ा को सहन करना चाहिए और अपने मान को बनाये रखना चाहिए। इस चित्र में अलंकारिक प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है और चित्र विधान वर्णात्मक है। इस चित्र के ऊपर पीली पट्टी पर मतिराम का छन्द लिखा है। चित्र में एक ओर दो सखियां खड़ी हैं जिनमें से एक दूसरी को राधा की विरह-कथा सुना रही है।

'रागनी-गौरी' के एक चित्र में दत्तिया स्कूल की मुखाकृति चित्रण की दक्षता का प्रमाण मिलता है। सम्भवतः राग और रागिनयों का चित्रण पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी के मध्य में आरम्भ हुआ होगा और सत्रहवीं और अठाहरवीं शताब्दी में रागनी चित्र अधिक बनाए गए। रागमाला चित्रों के सूक्ष्म भावों को रूढ़िवादी अलंकारिक अभिप्रायों के आधार पर बनाया गया है।

भारतीय चित्रकारों ने चराचर में दिव्य अनुभूति, तन्मयता और प्रकृति से तदात्म्य प्रदर्शित किया है। इस दृष्टिकोण से 'रागनी तथा बारहमासा' के चित्र केवल चित्रात्मक कल्पना ही नहीं है वलिक इन चित्रों में चित्रकार ने शक्तिशाली रेखांकन और चटक रंगों के द्वारा प्रकृति में अपनी आत्मा विस्मृति का परिचय दिया है।

बुन्देला स्कूल के चित्रों की तुलना यदि राजस्थानी शैली के चित्रों से की जाये तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह शैली राजस्थानी चित्रों की शैली के समान प्रौढ़ नहीं है। परन्तु मूल रूप में यह शैली राजस्थानी शैली की ही एक शाखा है। दत्तिया शैली के चित्र ओरछा के चित्र से निश्चित रूप से उत्तम हैं। बुन्देला चित्रकार रेखांकन में निर्बल था और उसकी आलेखन योजना साधारण है, कल्पना शक्ति सामान्य है। चित्रकार ने स्त्री, पुरुष या नायक-नायिकाओं की जो आकृतियाँ बनाई हैं, उनमें कल्पना का अधिक विकास नहीं है। चित्रों के रंग साधारण हैं।

बुन्देला शैली के चित्रों की विशेषतायें

बुन्देला कला का विकास सत्रहवीं शताब्दी में दिखाई पड़ता है वैसे यह शैली विशेष रूप से अठाहरवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी में फली-फूली। इस शैली के आरम्भिक चित्रों में व्यक्ति-चित्र अधिक हैं परन्तु इनकी शैली परम्पागत राजस्थानी शैली है जिस पर यथोचित मुगल प्रभाव है। इन व्यक्ति-चित्रों में सर चपटे, छोटे तथा अपने ढंग के हैं। माथा छोटा है और नाक और माथा दोनों की एक ही सपाट रेखा से रचना की गई है। हाथ अङ्ग-भङ्गिमायें तथा अन्य साज-सामान परम्परागत या राजस्थानी मुगल शैली में बनाया गया है, पगड़ी, जामे इत्यादि में डिजाइनों का प्रयोग

है और वस्त्रों को अलंकारिक योजना पर बनाया गया है। जामा प्राय: पारदर्शी बनाया गया है जिससे नीचे का आधा भाग झलकता दिखाया गया है। प्राय: चित्रों में व्यक्ति के खड़े होने का ढंग मुगल शैली के चित्रों जैसा है, परन्तु रंग सरल और रेखाँकन राजस्थानी परम्परा का प्रतीक है।

परवर्ती रागनी चित्रों या काव्य पर आधारित चित्रों में अलंकरण की अधिकता है और सम्पूर्ण चित्र को एक अलंकारिक योजना के आधार पर बनाया गया है। वृक्षों की पत्तियों को अलग-अलग अलंकारिक योजना में सफेद मिश्रित रंग से गहरी पृष्ठभूमि पर बनाया गया है। पृष्ठभूमि में प्राय: टीले बनाये गये हैं जो सपाट हैं और स्थानान्तर का पूर्ण अभाव है। दूर तथा पास की आकृतियां सब एक माप की बनाई गई है और दार्ष्टिक-परिप्रेक्ष्य का अभाव है। अधिकांश चित्रों की रंग योजना सरल है, लाल तथा पीले रंगों का प्रयोग अधिक किया गया है। चित्र के रंगों में कोमलता का अभाव है और रंगों के प्रयोग में कर्कशता आ गई। आकृतियों की सीमा रेखायें बारीक बनाई गई हैं। प्राय: चित्रों में गोलाई लाने के लिए हल्की छाया का प्रयोग किया गया है। चित्रों में कारीगरी और परिश्रम का अभाव है। पशु-पक्षियों को फिर भी भावनाशील और अन्य आकृतियों की तुलना में सुदन्र बनाया गया है, परन्तु चित्र को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि चित्रकार ने चित्र में एकात्मकता(Unity)स्थापित करने की चेष्टा नहीं की है। कुछ चित्रों में उर्दू लिपि में भी चित्र का शीर्षक लिखा है, (देखिए छाया फलक संख्या ७ तथा ८)।

बीकानेर की चित्रकला
(बीकानेर शैली)

बीकानेर का ऐतिहासिक महत्व--बीकानेर में सत्रहवीं शताब्दी के उपरान्त एक रोचक राजस्थानी शैली का विकास होता हुआ प्रतीत होता है। बीकानेर का राजा रायसिंह (१५७१-१६११ ई०) एक कला प्रेमी और संग्रहकर्त्ता शासक था, परन्तु उसके समय की एक ही सचित्र पाण्डुलिपि प्राप्त होती है। यह पाण्डुलिपि 'मेघदूत' नामक रचना की प्रतिलिपि है और सटीक है परन्तु कला-दृष्टि से ये चित्र अपभ्रंश राजपूत शैली के उदाहरण हैं। इन चित्रों से प्रतीत होता है कि बीकानेर शैली सत्रहवीं शताब्दी तक उन्नति को प्राप्त नहीं कर पाई थी। राजा करनसिंह (१६३१-१६५२ ई०) के समय में जहांगीर तथा शाहजहाँ कालीन मुगल दरबारी सभ्यता का प्रभाव बीकानेर पर गहरा पड़ा। इसी समय में मुगल शैली के चित्रों का निर्माण बीकानेर में आरम्भ हुआ। इस समय के चित्रों में सुनहरे रंग का अत्यधिक प्रयोग है। बीकानेर शैली पर दक्षिण की बीजापुर शैली का प्रभाव स्पष्ट है। अनूपसिंह (१६७४-१६९८ ई०) के समय में मुगल दरबार से निराश्रित होकर अनेक चित्रकार बीकानेर आ बसे। इस समय की कृतियों में पूर्ण बीकानेरी छाप है। इस समय की रूकनुद्दीन नामक चित्रकार के द्वारा चित्रित 'भागवत' तथा 'रसिकप्रिया' की प्रतियां उपलब्ध है बीकानेर पर मुगल शैली का सार्वभौम प्रभाव जहांगीर और शाहजहाँ के शासन काल में ही स्थापित हो गया था।

राजा अनूपसिंह (१६७४-१६६८ ई०) के पश्चात् राजा गजसिंह (१७८५-१७८७ ई०), राजा सूरतसिंह (१७८७-१८२८ ई०) और राजा रतनसिंह (१८२८-१८५१ ई०) के समय में बीकानेर चित्रकला की अपेक्षा भवन निर्माण में अधिक उन्नति हुई। राजा गजसिंह ने शाही महल से दरबाजों को कृष्ण-लीला पर आधारित धार्मिक चित्रों से सुसज्जित कराया।

बीकानेरी कला—राजा सूरतसिंह ने शीशमहल का बीकानेर में निर्माण कराया और अनूपमहल को उसने नवीन रूप प्रदान किया। इस समय में बीकानेर के शाही महलों की भित्तियों पर राम-सीता, उमा-महेश, राधा-कृष्ण आदि के धार्मिक चित्र बनाए गए। अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में बीकानेर शैली में हिन्दू देवी-देवताओं की आकृतियों के चित्रण की प्रथा चल पड़ी। इस प्रकार के चित्र सुजान महल के दरवाजों पर प्राप्त हैं जो अठारहवीं शताब्दी के मध्य बनाए गए। बीकानेर में महाराज सुजानसिंह के समय में रनिवास के कक्षों तथा द्वारों को स्त्री-चित्रों से अलंकृत करने की परम्परा चल पड़ी। राजा गजसिंह, सूरतसिंह तथा रतनसिंह के समय की बीकानेर कला में मारवाड़ी, मुगल तथा जोधपुरी प्रभाव बढ़ गया।

बीकानेरी कला शैली का प्रौढ़ रूप अनूपमहल, फूलमहल की साज-सज्जा तथा चन्द्रमहल और सुजानमहल के दरवाजों की चित्रकारी में दिखाई पड़ता है। इन महलों में रागमाला तथा बारहमासा सम्बन्धी सुन्दर चित्र बनाए गए।

मालवा, गुजरात, जोधपुर तथा मारवाड़ की शैलियां

गुजराती स्कूल की अनेक कलाकृतियां प्राप्त हैं। इन कलाकृतियों में जैन पोथी चित्र तथा वसन्तविलास आदि के चित्र प्रमुख हैं। इस शैली का प्रमुख केन्द्र पाटन था, जो जैन धर्म का विशेष केन्द्र था। मालवा तथा गुजरात में अपभ्रंश शैली अपने मूल रूप में मुगल विशेषताओं को ग्रहण कर चलती रही।

१७वीं शताब्दी में जोधपुर में कुशल शिल्पी राजदरबार में कार्य कर रहे थे। इन चित्रकारों ने अनेक राजाओं के व्यक्ति-चित्र बनाए। इन चित्रों का संविधान मुगल है। इन जोधपुरी शैली के चित्रों को बड़ी पगड़ी, लम्बे जामे, हृष्ट-पुष्ट, मोटा, लम्बी मानवाकृतियों की लम्बी कलमों तथा मूछों के कारण सरलता से पहचाना जा सकता है।

मारवाड़ के राजा कालदेव तथा चन्द्रसेन अम्बेर (आमेर) के शासकों से युद्ध में उलझे रहे अतः मारवाड़ी कला का विकास अधिक न हो सका, सम्भवतः इस समय अनेक चित्र युद्ध आदि में भी नष्ट हो गए। इस शैली की जो कृतियां प्राप्त हैं मूलतः अपभ्रंश शैली से सम्बन्धित है। इन चित्रों में अपभ्रंश परम्परा के समान लोक-कला जैसी आकृतियां, सरल सपाटेदार रेखांकन और चटक विरोधी रंग लगाए गए हैं। यह चित्र प्रायः चौखानों या पहियों में चित्रित किये गये हैं मारवाड़ी शैली की आकृतियां कद में छोटी और स्थूलकाय बनाई गई हैं और आकृतियों के सर गोल हैं। मारवाड़ी शैलियों में आकृतियों में माथा पीछे की ओर धंसा हुआ है, और नेत्र बड़े-बड़े परवल के समान बनाए गए हैं।

★

पहाड़ी चित्रकला

७

पहाड़ी चित्रकला
(१७०० ई० से १६०० ई० तक)

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में पंजाब और हिमालय की सुरम्य घाटियों से एक परम्परागत और उन्नतिशील भारतीय कला-शैली के चित्र उदाहरण प्राप्त हुए, जिनसे कला जगत की विचारधारा और अलंकारिक रुचि पर एक परिवर्तनकारी प्रभाव पड़ा। इन चित्रों के प्राप्त होने से भारतीय कला के प्रति विचारधारा ही बदल गई। इन चित्रों की कला-शैली मुगल शैली से सर्वथा भिन्न और भावनापूर्ण थी और इन कृतियों में पहाड़ी आत्मा का सौन्दर्य, सौकुमार्य, वैभव और यौवन मुखरित हो उठा।

सर्वप्रथम १६१६ ई० में डा० आनन्द कुमारस्वामी ने पहाड़ी चित्रों का दो भागों में वर्गीकरण किया और उन्होंने प्रथम वर्ग के चित्रों को उत्तरी-चित्रमाला तथा, द्वितीय वर्ग के चित्रों को दक्षिणी-चित्रमाला के नाम से पुकारा। उत्तरी चित्रमाला से उनका अभिप्राय कांगड़ा स्कूल के चित्रों से था और दक्षिणी चित्रमाला से उनका अर्थ डोंगरा जम्मू स्कूल के चित्रों से था। इस वर्गीकरण में उन्होंने बसोहली स्कूल के चित्रों को भी सम्मिलित कर लिया। इस प्रकार जिन चित्रों को उन्होने जम्मू-स्कूल का माना वे वास्तव में बसोहली, नूरपुर, गुलेर तथा कुल्लू में प्राप्त हुये थे। उन्होंने जम्मू स्कूल का वर्णन इन शब्दों में किया है—'चित्रों का एक संग्रह या भाग,' जो राजस्थानी चित्रों से कुछ भिन्न शैली का था, पंजाब-हिमालय क्षेत्र और विशेष रूप से डोंगरा पहाड़ी राज्यों से प्राप्त होता हुआ दिखाई देता है। इनमें जम्मू सबसे अधिक धनवान एवं शक्तिशाली राज्य था, और यह चित्र उदाहरण विशेष रूप से सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भिक भाग के हैं। इनमें से कई चित्र अपनी शैली के अतिरिक्त (जो अमृतसर के चित्र विक्रेताओं को सामान्यता 'तिब्बती' चित्रों के नाम से मालूम है) अपनी

टाकरी लिपि के लेखों के कारण पहचाने जा सकते हैं। श्री अजीत घोष ने नूरपुर तथा बसोहली स्कूल के आरम्भिक चित्र सत्रहवीं शताब्दी के माने हैं जिनका जम्मू स्कूल से कोई सम्बन्ध नहीं है। उन्होंने बसोहली स्कूल की कृतियों को मुगल स्कूल से पूर्व का माना और यह बताया कि बसोहली जम्मू राज्य में था और पंजाब में नहीं। वास्तव में इस प्रकार के चित्र जम्मू में प्राप्त नहीं हुए हैं और जम्मू का महत्व केवल इस कारण है कि वह एक शक्तिशाली और सबसे अधिक धनवान राज्य था। उन्नीसवीं शताब्दी में ही जम्मू में एक विकसित चित्रकला शैली (संस्थान) का उदय हुआ। इस समय जम्मू राज्य पहाड़ी राज्यों में सबसे बड़ा और शक्ति सम्पन्न राज्य हो गया था। जम्मू के अधीन बहुत सी छोटी-छोटी रियासतें आ जाने से जम्मू का पहाड़ी राज्यों पर प्रभुत्व जमने लगा था। इसी कारण बहुत से कलाकर कांगड़ा छोड़ कर जम्मू राजदरबार में आश्रय पा गये। इन चित्रकारों के वंशजों को जम्मू में अच्छा संरक्षण प्राप्त हुआ और लगभग पचास वर्ष तक उच्चकला संस्थान चलता रहा। जम्मू में अपनी कोई भी चित्रकला शैली पहले से विकसित नहीं थी।

१९३० ईसवी में जब श्री जे० सी फ्रेन्च ने पंजाब की पहाड़ियों का भ्रमण किया, तो उनको इसी प्रकार बसोहली शैली के चित्र उदाहरण चम्बा, मण्डी तथा सुकेत नामक नगरों में प्राप्त हुए।[1] उन्होंने इन चित्रों का विवरण इस प्रकार दिया है--"इस चम्बा संग्रहालय में कई राजाओं के व्यक्ति चित्र हैं जो कांगड़ा स्कूल के नहीं माने जाते हैं, बल्कि स्थानीय कलाकारों ने बनाये हैं। इन चित्रों की शैली बसोहली के चित्रों की शैली के समान है।" इस प्रकार यह अनुमान किया जा सकता है कि यहां बसोहली से सम्बन्धित एक शैली का विकास हुआ या बसोहली में चम्बा कला की शाखा पहुंची। श्री फ्रेन्च को इस शैली के चित्र मण्डी, सुकेत तथा कांगड़ा क्षेत्र से प्राप्त हुये थे।

बसोहली शैली के चित्र पंजाब के विभिन्न संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। बसोहली शैली के कई चित्र हरिपुरगुलेर के राजा बलदेव सिंह, लम्बाग्राम (Lambragram) के राजा ध्रुवदेवचन्द तथा नादौन के मियाँ देवीचन्द के संग्रह में सुरक्षित हैं। इनके अतिरिक्त इस शैली के कुछ चित्र वजीर कर्तारसिंह—वासा बजीरान नूरपुर, राजा रघुवीरसिंह—सांगरी (Shangri)—(कुल्लूघाटी), राजा राजेन्द्रसिंह—अर्की, तथा कुंवर ब्रजमोहनसिंह—नालागढ़ के संग्रह में सुरक्षित हैं। कांगड़ा शैली की परिवक्व अवस्था से पूर्व सम्भवतः यह शैली सम्पूर्ण पजाब तथा जम्मू की पहाड़ियों में प्रचलित थी और फिर पर्याप्त समय तक दोनों शैलियां साथ-साथ विकसित होती रहीं। कालान्तर में कुछ वर्षों तक इन दोनों शैलियों के कलाकारों की विशेष रूप से नूरपुर, चम्बा, मण्डी, गुलेर, तीरासुजानपुर तथा नादौन में होड़ सी लगी रही।

---

1. 'बसोहली पेन्टिंग'—लेखक एम० एम० रन्धावा, पृष्ठ १२।

सत्रहवीं शताब्दी में नेपाल में एक मिश्रित राजपूत शैली के चित्र बनाये गये, जिनमें लाल तथा पीले रंगों की प्रधानता थी और यह शैली नेपाल में अठारहवीं शताब्दी तक चलती रही। नेपाल में चित्रित इस शैली के धार्मिक चित्रों की पत्तियाँ प्राप्त हुई हैं। डा० मोती चन्द ने नेपाल से प्राप्त एक लम्बी चित्रित पत्री (पट्टी) का वर्णन प्रकाशित किया है जिसका समय उन्होंने १७२८ ईसवी माना है। इस पत्री के चित्रों तथा बसोहली स्कूल के चित्रों की रंग-योजना, पुरुषों के वस्त्रों तथा स्त्री रूपों में अत्यधिक समानता है। यद्यपि यह दो राज्य भौगोलिक स्थिति से बहुत दूर हैं और नेपाल के गोरखाओं और बसोहली के राजाओं में कोई सम्बन्ध भी नहीं था। इस कारण इन दोनों स्कूलों के समान विकास और समानता का मूल कारण यह हो सकता है कि इन दोनों कला-शैलियों का उद्गम स्रोत एक ही था।

आर्चर महोदय के अनुसार सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक पश्चिमी-हिमालय के क्षेत्र में किसी प्रकार की चित्रकला विकसित नहीं हुई थी। १६७८ ई० में राजा कृपालपाल एक छोटी रियासत बसोहली का शासक बना और उसके साथ ही एक नवीन कलात्मक जिज्ञासा और कला रुचि जाग्रत हुई। उसके समय में ऐसे चित्र बनाए गये जिनकी तीस वर्ष पूर्व के उदयपुर स्कूल की कृतियों से तुलना की जा सकती है। इस समय में बसोहली में एक भावनापूर्ण शैली का जन्म हुआ। इस नवीन-शैली में सपाट चमकदार, हरे, भूरे लाल, नीले और नारंगी धरातल तथा जंगलीपन लिए एकचश्म चेहरे जिनमें बड़ी-बड़ी आंखें हैं। यह चित्र उदयपुर के १६५०-१६६० ई० के मध्य बने चित्रों से सम्बन्धित प्रतीत होते हैं। परन्तु अभी तक ऐसे ऐतिहासिक प्रमाण प्राप्त हुए हैं जिनसे कि उदयपुर तथा बसोहली के सम्बन्ध के विषय में निश्चय किया जा सके। यह सम्भव हो सकता है कि उदयपुर के राणा राजसिंह के समय में कुछ उदयपुरी चित्रकारों को बसोहली जाकर बसने को बाध्य किया गया हो। यह विदित ही है कि पंजाब के पहाड़ी राज्यों के राजाओं के पूर्वज प्रायः वैवाहिक सूत्र से राजस्थान के राजपूत वंशों से सम्बन्धित थे। इस कारण यह भी सम्भव हो सकता है कि यदि राजा कृपालपाल ने उदयपुर का भ्रमण किया हो तो उसी अवसर पर उसने उदयपुर में अपनी चित्रकला के लिए चित्रकारों की नियुक्ति की हो। परन्तु न तो उदयपुर के राजाओं को बसोहली के राजाओं से कोई सम्बन्ध था और न ही राजा कृपालपाल ने उदयपुर का भ्रमण किया। इस कारण प्रारम्भिक मेवाड़ शैली और बसोहली शैली की समानता का जो संतोषजनक कारण हो सकता है वह यह है कि जो कलाकार दिल्ली से उदयपुर तथा बसोहली गये वह मुगल दरबार के थे। परन्तु मेरी (लेखक की) समझ से हिन्दू धर्म की सनातन एकता और तीर्थ स्थानों के प्रति हिन्दू जगत की श्रद्धा और तीर्थ-यात्रा के प्रति रुचि तथा मठों में धार्मिक सचित्र पोथियों के वितरण की पद्धति से भी सम्भवतः शैली की यह एकात्मकता दृष्टिगोचर होती है। श्रीनाथद्वारा राजस्थान में एक महान तीर्थकेन्द्र था और यहाँ पर असंख्य यात्री तथा धर्म-श्रद्धालु दर्शन हेतु भारत के प्रत्येक भाग से आते थे, और प्रसाद स्वरूप सचित्र पोथियाँ

या श्रीनाथ जी के चित्र ले जाते थे। इस प्रकार राजस्थान उदयपुर या नाथद्वारा की मेवाड़ी शैली तथा उसके चित्र इधर-उधर अवश्य पहुँचे होंगे।

बसोहली शैली के जन्म स्थान का वर्णन करते हुए डा० आनन्द कुमार स्वामी ने १६२६ ईसवी में इस प्रकार लिखा—"यह कहा जा चुका है कि तथा कथित तिब्बती चित्रों (अमृतसर के चित्र विक्रेताओं को जो नाम ज्ञात हैं, यहाँ पर इन चित्रों को जम्मवाल (जम्मू) नाम के वर्गीकरण में रखा जिन पर सामान्यता टाकरी ढंग के लेख मिलते हैं।) को बलौरी या बसोहली नाम से पुकारना चाहिए और जामूली (जम्मू) नहीं।" परन्तु जो कुछ भी हो, इन चित्रों में अनोखी और प्राचीन पहाड़ी कला-शैली दिखाई पड़ती है। यह सम्भव हो सकता है कि तारानाथ को तथाकथित काश्मीर शैली (स्कूल) के साथ ही पहाड़ी चित्रकला भी प्राचीन पश्चिम-भारतीय कला शैली से बहुत आरम्भिक काल में ही छिन्न हो गई और उसका उदय तथा विकास पाल तथा जैन लघु चित्रशैली के रिक्थ पर हुआ हो। परन्तु इस अवस्था के पश्चात स्पष्ट रूप से मुगल दरबार का प्रभाव आने लगा, इस प्रकार चित्रों में एक मिश्रित शैली दिखाई पड़ने लगी।

बसोहली शैली से पूर्व गुजराती चित्रकला का पहाड़ी कला से कोई सम्बन्ध था या नहीं यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, यद्यपि गुजराती-शैली की 'चौरा-पंचशिखा' चित्रमाला (१५७० ई०) तथा बसोहली शैली, दोनों में ही आकृतियों के बड़े नेत्र, पारदर्शी आँचल समान रूप से बनाये गये हैं। तारानाथ (१०६८ ई०) ने पश्चिमी भारत शैली, जिसकी स्थापना मेरू (मारवाड़) के श्री रंगधर ने की थी, के विषय में लिखा है कि—"काश्मीर में भी प्राचीन समय में पश्चिमी भारत शैली के अनुयाई थे।" परन्तु ठीक प्रमाण और उदाहरण प्राप्त न होने के कारण पहाड़ी राज्यों में मुगलों से पूर्व किसी भी प्रकार की जैन अपभ्रंश या गुजराती चित्रकला का प्रचलन प्रमाणित नहीं होता। इस प्रकार गुजराती चित्रकला और प्राचीन पहाड़ी चित्रकला का सम्बन्ध स्थापित करना केवल एक बौद्धिक प्रयास मात्र है।

सत्रहवीं शताब्दी के मध्य पंजाब तथा जम्मू की पहाड़ियों में बसोहली शैली जैसी विशेषताओं से युक्त एक लोक-कला प्रचलित रही हो यह सम्भव हो सकता है। श्री गोएट्ज ने ब्रह्मामौर (भरमौर स्थानीय भाषा में प्रचलित नाम) स्थित चम्बा के राजाओं के महल कपाटों पर लकड़ी में उभारकर काटी गई आकृतियों का वर्णन दिया है। ब्रह्ममौर का यह महल चम्बा के राजा पृथ्वीसिंह ने १६५०-६० ई० के मध्य बनवाया था। उपरोक्त लकड़ी की किवाड़ों पर काटी गई आकृतियों के लिए श्री रन्धावा ने प्राचीन बसोहली शैली का माना है जो निराधार है। यह आकृतियां मुगल-चम्बा शैली की परिचायक हैं और इन आकृतियों में चम्बा के राजा पृथ्वीसिंह तथा मुगल युवराज मुरादबख्श की आकृतियाँ काटी गई हैं। राजा पृथ्वीसिंह का राज्यकाल १६४१-१६६४ ई० माना जाता है। उसने अपने राज्यकाल में चम्बा राज्य में कागज का प्रयोग आरम्भ कराया और उसके समय में सम्भवत: प्रस्तर तथा काष्ठ

उरेहन के रूप में लोककला प्रचलित थी। चम्बा के इस राजा का विवाह बसोहली के राजा संग्रामपाल की पुत्री राजकुमारी से हुआ था। इस प्रकार बसोहली की कला चम्बा या चम्बा की कला बसोहली पहुंची होगी। श्री गोएट्ज ने लकड़ी पर काटी हुई इन आकृतियों का समय १६६४-७० ई० के बीच माना है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन वसोहली या चम्बा शैली या कोई पहाड़ी शैली या क्षेत्रीय लोक शैलियां लोककला के रूप में सम्पूर्ण पंजाब की पहाड़ियों में प्रचलित थीं। यदि क्षेत्र के दृष्टि कोण से देखा जाये तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह कला एक विशाल क्षेत्र में विकसित हुई जिसके लिये बहुत समय की आवश्यकता थी इस कारण यह चित्रकला प्राचीन लोककला जैसी कोई कला रही होगी। बसोहली की विकसित कला का जन्म मुगल और पहाड़ी लोककला के सम्मिश्रण और सम्बन्ध से हुआ क्योंकि स्त्रियों का पारदर्शी आँचल और पुरुषों का पहनावा मुगल ढंग का है, जबकि मुखाकृति चित्रण का ढंग स्थानीय शैली का है, जिसका मूल रूप पहाड़ी लोककला या क्षेत्रीय लोककल से विकसित हुआ जान पड़ता है। यद्यपि बसोहली शैली के चित्रों में पुरुष पहनावा जामा तथा पजामा है परन्तु स्त्रियों के पहनावे में विविधता है और उनको कुचों पर चुस्त चोली या पेशबाज तथा आँचल (ओढ़नी) पहने चित्रित किया गया है। इस प्रकार पहनावे की विविधता से अनुमान होता हैं कि बसोहली शैली केवल दिल्ली शैली का आयत रूप नहीं है बल्कि उसमे स्थानीय लोककला का भी संयोग है।

१६८५-१७०७ ई० तक दिल्ली में सम्राट औरंगजेब की चित्रकला के प्रति उदासीनता और धार्मिक कट्टरता के कारण चित्रकला तथा अन्य कलाओं का दिल्ली दरबार में तिरष्कार होने लगा और कलाकार आश्रय की खोज में राजस्थानी युवराजों तथा पंजाब और जम्मू की पहाड़ियों के राजाओं की शरण में लगभग १६६० ईसवी तक जा बसे। बसोहली के राजा संग्रामपाल तथा उसके उत्तराधिकारी हिन्दालपाल के छवि चित्र प्राप्त हैं। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि कुछ चित्रकार राजा कृपालपाल से पूर्व ही बसोहली में चित्र बना रहे थे। इस आधार पर श्री रंधावा ने इन चित्रों को राजा संग्रामपाल के शासन काल के अन्तिम वर्षों अर्थात् १६६१-७३ ई० का माना है। उनके अनुसार इस शैली के चित्र केवल बसोहली में ही नहीं अपितु चम्बा, नूरपुर, नालागढ़, अर्की, तथा जम्मू में भी बनाये गए। परन्तु वास्तव में इन चित्रों का बारीकी से अध्ययन करने की आवश्यकता है क्योंकि चम्बा के चित्र मुगल संविधान पर आधारित हैं, और अधिक प्राचीन हैं। यह सम्भव है कि इन स्थानों के चित्रों में शैली का प्रारम्भिक रूप न हो। परन्तु यह विचारणीय है कि यदि मुगल दरबार से चित्रकार आये तो उनकी शैली इतनी शीघ्र कैसे बदल गई, इस कारण यह सोचना ठीक है कि पहाड़ी राज्यों में क्षेत्रीय लोक-कलाएं प्रचलित थीं जिनका इस समय से विकास हुआ, अन्यथा इतनी शीघ्र एक शैली सुन्दर शबीहों के उदाहरण प्रस्तुत नहीं कर सकती थी।

पहाड़ी राज्यों की स्थापना सातवीं और आठवीं शताब्दी में राजपूत युवराजों ने अपने बाहुबल से की और यहां पर छोटे-छोटे राज्य स्थापित किये। मैदानी क्षेत्र में अफगानों तथा मुगलों का मुसलमान साम्राज्य स्थापित हो गया था, अतः सत्रहवीं शताब्दी में वैष्णव धर्म का विशेष विकास पहाड़ी प्रदेश में हुआ और यहां हिन्दू धर्म की सुरक्षा भी हुई। वैष्णव सम्प्रदाय ने बसोहली को भावात्मकता प्रदान की। राजा संग्रामपाल के छोटे से बसोहली राज्य में चम्बा के समान सर्वप्रथम बाहर से आये चित्रकारों को आश्रय प्राप्त हुआ। दिल्ली के निराश्रित चित्रकारों का पहला दल जम्मू और पंजाब के पहाड़ी राज्यों में जाकर बसा। अनुमानतः इन चित्रकारों ने बसोहली शैली को जन्म दिया और वैष्णव सम्प्रदाय की अभिव्यक्ति चित्रों के रूप में होने लगी। इस शैली के चित्र पहले बसोहली में और फिर अन्य राज्यों में बनाये गये। १७४५

रेखाचित्र सं० २२
राजा कृपालपाल (बसोहली शैली—१६६४ ई०)

ईसवीं के पश्चात बसोहली शैली का स्थान स्थानीय राज्यों की निजी शैलियां ग्रहण करने लगी। १७३९ ई० में नादिरशाह के आक्रमण १७४७ ई० में अहमदशाह दुर्रानी (अब्दाली) के आक्रमण के पश्चात सिक्खों और मराठों के आक्रमणों से दिल्ली राज्य का

जब विध्वन्स हो गया, तो हिन्दू एवं मुसलमान चित्रकार दिल्ली छोड़कर पुनः पहाड़ी राज्यों की ओर गये। चित्रकारों की यह दूसरी धारा कांगड़ा में पहुंची जिससे कांगड़ा शैली का विकास हुआ।

बसोहली की चित्रकला
(बसोहली शैली)

बसोहली की स्थिति—बसोहली राज्य के अन्तर्गत ७४ ग्राम थे जो आज जसरौटा जिले की बसोहली तहसील के अन्तर्गत आते हैं। जसरौटा जिला जम्मू की सीमा में है। अतः बसोहली आज जम्मू तथा काशमीर राज्य के अन्तर्गत है। बसोहली क्षेत्र की दृष्टि से एक नगण्य, छोटा सा राज्य था परन्तु उसका साँस्कृतिक क्षेत्र में विशेष योगदान होने के कारण उसका अपना महत्व है।

बसोहली के कला संरक्षक राजा—बसोहली का राजवंश अपने लिये पाँडवों की सन्तान मानता था। बसोहली राज्य का संस्थापक राजा भोगपाल (७६५ ई०) था। वह कुल्लू राजवंश का था और उसने दिल्ली के राजा की शक्ति को समाप्त करके बेलोर राज्य और बेलोर या बालापुर राजधानी की स्थापना की। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से सोहलवीं शताब्दी तक बसोहली के राजाओं का विशेष महत्व नहीं है। बसोहली का राजा कृष्णपाल सर्वप्रथम अकबर के समय में १५६० ई० में मुगल दरबार में बहुमूल्य में भेंटों सहित उपस्थित हुआ।

कृष्णपाल के पश्चात उसका पौत्र भुपतपाल (१५६८-१६५५ ई०) राजा हुआ परन्तु उसका समकालीन नूरपुर का राजा जगतसिंह उससे ईर्ष्या करने लगा। उसने मुगल सम्राट जहाँगीर को भूपतपाल के विरोध में भड़का दिया, जिसके फल-स्वरूप भूपतपाल को मुगल कारागार में बन्द कर दिया गया और नूरपुर के राजा जगतसिंह की सेना ने बसोहली पर अधिकार कर लिया। परन्तु भूपतपाल मुगल कारागार से निकल भागा और उसने अपने सामान्तों की सहायता से पुनः नूरपुर की सेना को पराजित कर १६२७ ईसवी में राज्य प्राप्त कर लिया। उसने ही आधुनिक नगर बसोहली की स्थापना की और वह शाहजहां के दरबार में उपस्थित हुआ। शाहजहां का सम्मान करते हुये भूपतपाल को एक चित्र में दर्शाया गया है जो डोगरा आर्ट गैलरी (जम्मू) में सुरक्षित है। भूपतपाल का बसोहली शैली में बना एक चित्र प्राप्त है परन्तु वह समसामयिक चित्र नहीं है।

भूपतपाल के पश्चात १६३५ ईसवी में उसका पुत्र संग्रामपाल १२ वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठा। वह इतना सुन्दर तथा सुकुमार युवराज था कि जब वह शाहजहां के दरबार में सम्मानित हुआ तो शाहजहां के पुत्र दाराशिकोह की बेगमों ने उसको देखने की इच्छा प्रकट की। इस कारण उसको अन्तःपुर में ले जाया गया जहाँ उसके सौन्दर्य पर विमुग्ध वेगमों ने उसको अनेक उपहार भेंट दिए। इस समय

ही संग्रामपाल का मुगल दरबार के चित्रकारों से परिचय हुआ होगा और सम्भवतः उसने ही इन मुगल चित्रकारों से बसोहली चलने के लिये कहा हो। संग्रामपाल के पश्चात उसका छोटा भाई हिन्दालपाल (१६७३-१६७८ ई०) राजा बना। उसका एक व्यक्ति-चित्र पंजाब संग्रहालय, पटियाला में प्राप्त है। हिन्दालपाछ के पश्चात् कृपाल पाल (जन्म १६५० ई०) गद्दी पर बैठा। उसकी दो रानियां थीं। इनमें से एक रानी बन्द्राल की राजकुमारी थी और दूसरी, जो उसकी प्रिय रानी थी, मनकोट की राजकुमारी थी। कृपालपाल विद्वान तथा कला-प्रेमी राजा था उसके शासनकाल में बसोहली कला का सर्वोत्तम विकास हुआ और उसने कलाकारों का संरक्षण प्रदान किया। राजा कृपालपाल का राज्यकाल १६७८-१६९३ ईसवी तक पन्द्रह वर्ष माना जाता है।

कृपालपाल के पश्चात उसका ज्येष्ठ पुत्र धीरजपाल (१६९३-१७२५ ई०) गद्दी पर बैठा। वह अपने पिता के समान कला अनुरागी राजा था परन्तु चम्बा के राजा उजागर सिंह के साथ युद्ध करता हुआ रणभूमि में वीरगति को प्राप्त हुआ। धीरजपाल के पुत्र मेदनीपाल (१७२५-१७३६ ई०) ने चित्रकारों को प्रोत्साहन प्रदान किया और उसने उजागर सिंह को भी पराजित कर पीछे हटा दिया। उसके समय में बसोहली के चित्रों का सुचारू रूप से निर्माण हुआ। मेदनीपाल के पश्चात् जितपाल (१७३६-१७५७ ई०) बसोहली की गद्दी पर बैठा। इसके समय में जम्मू के राजाओं की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई और महाराजा ध्रुवदेव का जम्मू के पहाड़ी राज्यों में बहुत अधिक प्रभुत्व स्थापित हो गया।

१७५७ ई० में अमृतपाल बसोहली का राजा बना। उसने जम्मू के महाराजा रंजीतदेव की पुत्री से १७५९ ई० में विवाह किया और बसोहली पर जम्मू की शक्ति स्थापित होने लगी। इसी समय पंजाब-क्षेत्र में अहमदशाह दुर्रानी और सिक्खों के आक्रमणों के कारण काशमीर और भारत का व्यापार-मार्ग बदल गया और नवीन मार्ग बसोहली की ओर बन गया जिससे बसोहली राज्य की समृद्धि बढ़ गई। अमृतपाल एक सुयोग्य शासक था। इस समय बसोहली नगर चित्रकला का केन्द्र बन गया और इसी राजा के राज्यकाल में बसोहली में भी कांगड़ा शैली ने बसोहली शैली का स्थान ग्रहण कर लिया। विजयपाल (१७७६-१८०६ ई०) तेरह वर्ष की आयु में बसोहली का राजा बना, और इसी समय में चम्बा के राजा राजसिंह ने सिक्खों की सहायता से बसोहली पर विजय प्राप्त कर ली।

१८०९ ई० में समस्त पहाड़ी राज्य महाराजा रणजीतसिंह के अधीन आ गए। बसोहली का राजा महेन्द्रपाल (१८०६-१८१३ ई०) कला-प्रेमी शासक था। उसने जसरोटा की राजकुमारी से विवाह किया। जब वह महाराजा रणजीतसिंह के दरबार में १८१३ ई० में लाहौर में उपस्थित हुआ तो वह बीमार पड़ गया और उसकी मृत्यु हो गई। उसके पश्चात भूपेन्द्रपाल (१८१३-१८३४ ई०) गद्दी पर बैठा और

पिता के समान ही उसकी भी शीघ्र मृत्यु हो गई। १८४५ ई० में बालक कल्यानपाल राजा बना और इसी समय रणजीतसिंह ने बसोहली राज्य को जम्मू की जागीर बनाकर जम्मू के राजा हीरासिंह को सौंप दिया। इस प्रकार बसोहली की कला-निधियां, जिनसे चित्र भी थे, ब्राह्मण वंशों के हाथ आ गई। १८४५ ई० में बेलोरिया राजपूतों ने सिक्खों को बसोहली से बाहर निकाल कर, ग्यारह वर्षीय कल्याणपाल को पुन: बसोहली का राजा बनाया। परन्तु १८४६ ई० जम्मू तथा काशमीर महाराजा गुलाबसिंह के हाथ में आ गए और कल्याणपाल के लिये अनुवृति मिल गई। कल्याणपाल ने सिरमौर तथा सालगरी की राजकुमारियों से विवाह किया, जिससे यह नगर भी कालान्तर में बसोहली कला के केन्द्र बन गए। १८५७ ई० में सन्तानहीन राजा कल्याणपाल की मृत्यु के पश्चात बसोहली राजवंश समाप्त हो गया।

रावी नदी के दाहिने तट पर स्थित बसोहली नगर जो किसी समय जम्मू की सात आश्चर्य की वस्तुओं में से एक था, आज अपनी भूतगाथाओं को अपने वैभवहीन राजप्रसादों तथा अट्टालिकाओं के अवशेषों में छुपाए मौन खड़ा हैं। यह राजप्रसाद आज चमगादड़ों और पक्षियों का आवास-स्थल बन चुका है।

आधुनिक बसोहली नगर की स्थापना राजा भूपतपाल ने १६३५ ईसवी में की थी। इस नवीन राजधानी ने उसने तथा उसके उत्तराधिकारियों ने विभिन्न राजमहलों का निर्माण किया। मेदनीपाल ने रंगमहल और शीशमहल बनवाये जो नायिका-भेद आदि विषयों पर आधारित भित्तिचित्रों से सुसज्जित थे, परन्तु आज यह चित्र नष्ट हो गये हैं। बसोहली राज्य के अतिरिक्त यह शैली अनेक पहाड़ी राज्यों में भी विकसित हुई।

बसोहली शैली के चित्रों का विषय—समकालीन सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति का कला पर सदैव प्रभाव पड़ा है और प्रत्येक कला समकालीन साहित्य, दर्शन तथा लोकभावना से प्रभावित हुई है। वास्तव में ग्यारहवीं शताब्दी में जो वैष्णव धर्म आरम्भ हुआ, उनका पूर्व विकास उत्तरी भारत में सोलहवीं शताब्दी में हुआ। पन्द्रहवीं शताब्दी में श्री बल्लभाचार्य ने ब्रज को अपना केन्द्र बनाया और यहां से ही बल्लभाचार्य ने वैष्णव धर्म के उपदेश दिये। उनके अनुयाईयों में सूरदास मीरा, केशवदास तथा बिहारी प्रमुख हैं जिनकी रचनाओं को उत्तरी-भारत में बहुत लोकप्रियता और सम्मान प्राप्त हुआ। इन कवियों ने भगवान को जीवन में खोजने की चेष्टा की और उन्होंने विष्णु के विभिन्न रूपों में विशेषतया कृष्ण और राम क अपना आराध्य देव माना।

धार्मिक चित्र—कृष्ण का जीवन भारत के सरल, साधारण लोकजीवन से अत्यधिक सन्निकट है। इसी कारण कृष्ण भारतवर्ष में बहुत प्रिय देवता माने जाते हैं। वास्तव में कृष्ण का उद्दन्डतापूर्ण बालकाल और यौवन का जीवन कृषकों

जंगलों, ग्वालों, गोपियों, पशुओं और पक्षियों से सम्बन्धित था और गरीब जनता से बहुत मिलता जुलता था। वैष्णव धर्म राजस्थान तथा उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्र तक ही सीमित न रहा बल्कि पहाड़ी क्षेत्रों में भी पहुँच गया और पहाड़ी चित्रकार की प्रेरणा का मुख्य आधार बना। बसोहली शैली के चित्रों में वैष्णव धर्म की विचारधारा और भक्ति भावना दिखाई पड़ती है। इस शैली में विष्णु तथा उनके दश अवतारों के चित्र प्राप्त हैं। इस शैलीं में चित्रित रामायण की दो प्रतियाँ भी प्राप्त हैं, जिनमें से एक प्रति बसोहली में चित्रित की गई है और दूसरी कुल्लू में चित्रित की गई हैं। रामायण तथा भागवतपुराण वैष्णव सम्प्रदाय के कारण इन चित्रकारों का प्रमुख चित्र विषय बने ?

काव्य तथा रागमाला—चौदहवीं शताब्दी में भानुदत्त कृत 'रसमंजरी' बसोहली के राजा कृपालपाल का प्रिय काव्य ग्रन्थ था (देखिए छाया फलक सं० ८) इस ग्रन्थ में नायक-नायिका भेद, रस तथा शृंगार का सुन्दर वर्णन है, परन्तु कृष्ण का वर्णन नहीं हैं। सम्भवत: राजा कृपालपाल ने ही अपने चित्रकारों से रसमंजरी के चित्रों में कृष्ण को आदर्श प्रेमी का रूप दिलाया हो। इस प्रकार विभिन्न प्रकार की नायिकायें जैसे उत्का तथा अभिसारिका आदि भी आरम्भिक चित्रकारों के चित्र-विषय बनीं।

रसमंजरी के अतिरिक्त बारहवीं शताब्दी की जयदेवकृत गीतागोविन्द काव्य रचना पर भी सुन्दर चित्र बनाये गये।[1] परवर्ती चित्रकारों ने 'बारह-मासा' चित्रावलिओं के निर्माण में विशेष रुचि प्रदर्शित की। इन विषयों के अतिरिक्त बसोहली शैली में 'रागमाला' पर आधारित चित्र भी प्राप्त होते हैं जिमके उदाहरण 'भारत कला भवन' काशी में प्राप्त हैं। इन रागमाला चित्रों तथा बारहमासा चित्रों में कृष्ण और राधा को नायक तथा नायिका का रूप प्रदान किया गया है।

व्यक्ति चित्र—चित्रकार प्रायः दरबार का एक सदस्य होता था और इस कारण उसका प्रमुख उद्देश्य राजाओं, दरबारियों कथा दरबार के अन्य सम्मानित सदस्यों जैसे विद्वान, संगीतज्ञ, सन्त आदि के चित्र बनाना था। इस प्रकार बसोहली में चित्रकार ने समसामयिक इतिहास को अमर बना दिया है।

मानव आत्मा—चित्रकार ने राधा और कृष्ण के प्रेम में मनुष्य की हृदयगत भावनाओं को बड़े मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है। जिस प्रकार कृष्ण के विरह में गोपियाँ व्याकुल हैं उसी प्रकार मनुष्य की आत्मा भी परमात्मा (कृष्ण) के संयोग के लिये व्याकुल हैं। इस प्रकार बसोहली शैली के चित्रों में रहस्यात्मकता का मधुर संयोग है।

---

1. 'इण्डियन पेन्टिग इन पंजाब हिल्स'—लेखक डब्लू० जी० आर्चर, पृष्ठ १५—ने गीतगोविन्द सचित्र प्रति सेन्ट्रल म्युजियम, लाहौर तथा कुछ फुटकर चित्र विक्टोरिया तथा अलबर्ट म्युजियम का समय १७६० ई० माना है।

बसोहली शैली के चित्रों की विशेषताएं

बसोहली शैली के चित्रों की कुछ अपनी विशेषतायें हैं जिनके कारण इस शैली के चित्रों को राजस्थानी तथा कांगड़ा शैली के चित्रों से पृथक किया जा सकता है। यद्यपि बसोहली शैली में कांगड़ा शैली जैसा सौकुमार्य, कोमलता और परिमार्जन नहीं है तो भी उसमें सरलता, सरसता, शक्ति और चमकदार रंगों की अपूर्व सवेगात्मक तीक्ष्णता है जो इस कला को एक महान स्तर पर पहुंचा देती है।

बसोहली के चित्रों में प्रत्येक चित्रण की स्पष्टता के साथ सरल और शक्तिशाली ढंग से व्यक्त किया गया है। काव्यमय भावनाओं को कलाकारों ने मधुरता, सरलता और सरसता के साथ अभिव्यक्ति किया है। बसोहली शैली के चित्रकार ने कम से कम परिश्रम के द्वारा अधिक से अधिक भावाभिव्यक्ति की है। यद्यपि इन चित्रों में आध्यात्मिकता के स्थान पर वासना की अधिक झलक है। बसोहली शैली के कुछ चित्र नितान्त सरल हैं और उनमें तनिक भी रहस्यात्मकता, व्यंग्य या ध्वनि नहीं है, परन्तु प्रत्येक शैली का मूल्यांकन उसकी उत्कृष्ट कलाकृतियों के आधार पर किया जाता है। बसोहली शैली के चित्रों में अभिव्यक्ति का ठेठपन, स्पष्टता, शक्ति, आकर्षक रंगों की चमक और भावों की मधुरता है जो अन्यत्र प्राप्त होना दुर्लभ है।

चित्रों के हाशिये तथा लेख—बसोहली शैली के चित्रों के हाशिये अधिकांश गहरे लाल रग की पट्टी से बनाये गये हैं, तथापि कुछ चित्रों के हाशियों में गहरी लाल रंग की पट्टी के स्थान पर गहरी पीले रंग की पट्टी का प्रयोग किया गया है। ये हाशिये सादा सपाट रंग की पट्टियों से बनाये गये जो मुगल चित्रों के अलंकृत हाशियों से सर्वथा भिन्न हैं।

रसमंजरी तथा गीतगोविन्द पर आधारित चित्रों की पृष्ठिका पर संस्कृत में छन्द लिखे हैं, परन्तु लाल हाशियों पर सफेद रंग से टाकरी लिपि में लेख लिखे गये हैं।

रंग—कांगड़ा के उत्तम चित्रों के सौन्दर्य का रहस्य उनकी छन्दमय योजना है, जबकि बसोहली शैली के चित्रों के आकर्षण का मुख्य कारण, उनके चटक चुलचुहाते रंगों की पवित्रता और प्राथमिक विरोधी रंगों का प्रयोग है। बसोहली शैली के चित्रों के रंगों में अन्तर्भेदनी आकर्षण है। चमकदार और अमिश्रित लाल तथा पीले रंग, जिनका कलाकार ने स्वतन्त्रता से प्रयोग किया है, दर्शक के नेत्रों में गहरा बैठ जाते हैं और उसके हृदय को उद्वेलित कर देते हैं। बसोहली के चित्रकारों ने रंग का प्रयोग प्रतीकात्मक आधार पर किया है। पीला रंग बसन्त तथा सूर्य के ताप तथा प्रकाश का प्रतीक होता है। साथ ही पीला रंग ताप और प्रेमियों के प्रेम-ज्वर का प्रतीक भी है। बसोहली के चित्रकारों के रिक्थ और बड़े-२ धरातल में स्वतन्त्रता से सूर्य प्रकाश दिखाने के लिए पीले रंग का प्रयोग किया है। नीला

रंग कृष्ण तथा वर्षा के बादलों का प्रतीक है। लाल रंग प्रेम के देवता का प्रतीक है और बसोहली शैली के शृंगारिक चित्रों में इस रंग के प्रयोग से चार चांद लग गये हैं। बसोहली शैली के चित्रों में पीले, लाल तथा नीले रंग का प्राथमिक विरोधी प्रयोग आनन्ददायक और सुन्दर है।[1] चित्रों में रंग इतनी कुशलता और सतर्कता से लगाये गये हैं कि वह मीने के समान चमकदार दिखाई पड़ते हैं। विशेष रूप से 'गीत-गोविन्द' के चित्रों में लाल, पीले, ग्रे. नीले हरे रंगों का प्रयोग सुन्दरता से किया गया है।

बसोहली शैली के चित्रों में सोने तथा चांदी के रंगों का प्रयोग कपड़ों की कसीदाकारी तथा अन्य साज-सामान के अलंकरण में किया गया है परन्तु चांदी के रंगों का प्रयोग खिड़कियों, स्तम्भों, छज्जों, जालियों तथा कपड़ों में अधिक किया गया है। मोतियों की मालायें लगाने के लिए कभी-कभी मोटे उभारदार रंग का प्रयोग किया गया है, जिससे मोतियों की गोलाई के साथ उनमें उभार का आभास होता है।

प्रकृति— बसोहली शैली के चित्रों में आलंकारिक ढंग से दृश्य-चित्रण किया गया है और अधिकांश चित्रों में क्षितिज रेखा को बहुत ऊपर रक्खा गया है। वृक्षों की पंक्तियां अलग-अलग अलंकारिका योजना में गहरी पृष्ठभूमि पर सफेद मिश्रित रंग से बनाई गई हैं। अधिकांश मंजनू, आम, अखरोट तथा मोरपंखी के वृक्ष बनाये गये हैं।

वर्षा तथा बादल—बसोहली शैली की कृतियों में बादलों को झीना-झीना वक्राकार अभिप्रायों के द्वारा बनाया गया है। रसमंजरी के चित्रों में गहरे बादल बनाये गये हैं। और इन बादलों में नागिन के समान चमकती हुई दामिनी की चमक दिखाई गई है। दामिनी की चमक को सोने के रंगों से दिखाया गया है। हल्की वर्षा के चित्रण के लिए चित्रकार ने छोटी-छोटी मोती जैसी झिलमिल बिन्दियों का प्रयोग किया है, परन्तु मूसलाधार वर्षा के लिए सीधी रेखाओं से जल-वृष्टि अंकित की गई है। नदी, झील या तालाब में पानी की लहरें बनाने के लिए कुंडलाकार रेखाओं के अभिप्रायों का प्रयोग किया गया है। जल में कमल पुष्पों का अंकन किया गया है और कभी-कभी बगुले भी बनाये गये हैं जिससे जल का किनारा और अधिक सुन्दर बन गया है।

पशु—बसोहली शैली के चित्रों में ढोरों का अंकन निजी ढंग से किया गया है। बसोहली के चित्रों में पशुओं को दुबला, पतला, भूखा, पिचके पेट वाला तथा लम्बे कान और मुड़े हुये सींगों वाला बनाया गया है। वह पशु जम्मू की स्थानीय जाति या वृन्दावन की गौ-जाति के प्रतीक हैं, परन्तु कांगड़ा शैली के चित्रों में ढोरों को हृष्ट-पुष्ट और मोटा-ताजा बनाकर हरियाना जाति के पशुओं का ही अंकन किया गया है।

---

1. 'बसोहली पेन्टिंग'—लेखक एम० एम० रन्धावा, पृष्ठ ११। 'बसहोली के चित्रों में शक्तिशाली प्राथमिक विरोधी रंगों का प्रयोग है।'

पहनावा—बसोहली शैली के चित्रों में पुरुष तथा स्त्रियों का पहनावा विशेष प्रकार का है। पुरुषों को घेरदार जामा (औरंगजेब कालीन मुगल ढंग का) तथा पीछे झुकी पगड़ी पहने दिखाया गया है। स्त्रियों को प्रायः सूथन चोली और ऊपर से पेशबाज या ढीला लम्बा घेरदार चोंगा पहने बनाया गया है, जो रेशमी या पारदर्शी है। स्त्रियों को कभी-कभी छींटदार घाघरा, चोली और पारदर्शी दुपट्टा ओढ़े दिखाया गया है। कृष्ण को पीताम्बर तथा पीली धोती पहने ही बनाया गया है, और मुकुट मोरपंख से युक्त हैं।

आकृतियां तथा शारीरिक सौन्दर्य - बसोहली के चित्रकारों ने रंग का मौलिक और सजीव प्रयोग ही नहीं किया है अपितु स्त्री तथा पुरुष मुखाकृति को नवीन रूप प्रदान किया है। बसोहली शैली के चित्रों में मानव आकृतियों के चेहरों की बनावट विशेष प्रकार की है, जिसमें ढालदार माथा तथा ऊँची नाक को एक ही प्रवाहपूर्ण, अटूट रेखा से बनाया गया है। नेत्रों को कमलाकार रूप प्रदान किया गया है और नेत्रों की विशालता मनमोहक तथा अबोधतापूर्ण है। बादामी वर्ण के शरीर वाली नायिका बसोहली के चित्रकार को प्रिय थी। स्त्रियों को सुकोमल और सुन्दर अङ्ग-भङ्गिमाओं में अंकित किया गया है जिससे उनके रूप और लावण्य की शोभा और भी मनोहारी हो गई है।

आभूषण – बसोहली शैली के चित्रों में आकृतियो को आभूषणों से सुसज्जित बनाया गया है, और राक्षसों को भी आभूषणों से युक्त बनाया गया है। रत्नों से जड़े मुकुट, हार, कुंडल, कड़े, भुजबन्द सुन्दरता के साथ बनाये गये हैं। इन आभूषणों में विभिन्न हीरे तथा रत्न खचित हैं।

भवन—बसोहली शैली के भवनों की भी अपनी विशेषता है। आलेखनों से युक्त कपाट तथा द्वार, जालीदार खिड़कियां, नक्काशीदार लकड़ी या पत्थर के स्तम्भों से युक्त भवन बहुत कुछ अकबरकालीन भवनों से मिलते-जुलते हैं। भवन के कक्षों की दीवारों को सुन्दर ताखों या आलों से सजाया गया है। इन ताखों में गुलाबपाश, इत्रदान, पुष्प पात्र तथा फूलों से भरी तस्तरियों को रखा दिखाया गया है। प्रायः इन सुसज्जित कक्षों में ही नायक और नायिकाओं को चित्रित किया गया है। अधिकांश चित्रों में कक्षों के साथ पिंजड़े में बन्द सारिका या अन्य पक्षियों को अंकित किया गया है। विशेष रूप से इन पिंजड़ों में बन्द या स्वतन्त्र पक्षियों का प्रयोग नायिका भेद के चित्रों में प्रतीकात्मक आधार पर किया गया है।

बसोहली के चित्रों में रूप और लावण्य, यौवन और शृंगार से सजी नारी, वर्षा और तूफान की अंधेरी रात में भयानक जंगल को पार करती, अपनी बड़ी-बड़ी लजीली आँखों में प्रेम और अतृप्त वासना तथा जन्म-जन्म से अपनी आन्तरिक व्यथा को छुपाए पुरुष के प्रति अधीर दिखाई पड़ती है। स्त्री मानव-प्रेम की प्रतीक है। यही प्रेम प्रकृति और महापुरुष आत्मा और परमात्मा का प्रतीक है। जन्म-जन्मान्तर

से व्यथित नारीरूपी आत्मा पुरुषरूपी परमात्मा या प्रियतम में विलीन होने के लिए विह्वल है, इस प्रकार बसोहली के चित्रकार का प्रेम सांसारिक पक्ष की वासना प्रस्तुत करता हुआ लोकोत्तर या पारलौकिक है और प्रेमाश्रयी आध्यात्मवाद का एक महान रूप है।

रेखाचित्र सं० १३
'शिकरे के साथ महिला' (गुलेर शैली—१७६५ ई०)

चम्बा की चित्रकला
(चम्बा शैली)

चम्बा की स्थिति—चम्बा राज्य की स्थापना लगभग दसवी शताब्दी में हुई और १६३० ई० तक यहां पर राजपूत चम्बियाल वंश के राजा राज्य करते रहे। अब यह राज्य हिमाचल प्रदेश के अन्तर्गत है। चम्बा अब एक जिला है परन्तु पहले पांच वजराती (राज्यों) का एक विशाल राज्य था। चम्बा राज्य हिमाच्छादित उतुंग पर्वत शिखरों के मध्य स्थित है। बीसवीं शताब्दी तक चम्बा पहुँचने के लिए पर्यटक या यात्री कांगड़ा तथा नूरपुर के मार्ग से होकर जाते थे। परन्तु अब चम्बा तक पहुँचने के

लिए हिमाचल सरकार की राजकीय परिवहन व्यवस्था है। यह स्थान सड़क मार्ग के द्वारा पठानकोट से ७७ मील की दूरी पर स्थित है। पठानकोट से चम्बा तक जाने के लिए राजकीय मोटर बसों की अच्छी परिवहन व्यवस्था है। यह राज्य पर्वतों से घिरा रहने के कारण अन्य पहाड़ी राज्यों से अलग रहा और अपनी परम्पराओं को रूढ़िवादी ढंग से आधुनिक काल तक चलाए रहा।

चम्बा की सांस्कृतिक थाती बहुत प्राचीन है। चम्बा के श्री हरिहरनाथ मन्दिर तथा श्री लक्ष्मी नारायण मन्दिर बहुत प्राचीन हैं और इनका शिल्प उत्तर-गुप्त-कालीन शैली पालशैली का है। लक्ष्मी नारायण मन्दिरों का निर्माण दसवीं शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी तक माना जाता है। चम्बा के बाहर, देवीकोटी, ब्रह्ममोर (भरमौर), चनेड़, हिदम्बा आदि स्थानों में अनेक प्रस्तर तथा काष्ठ मन्दिरों का निर्माण मध्यकाल में प्रचलित था जिनमें चम्बा की रूढ़िवादी कला परम्परा दिखाई पड़ती है।

चम्बा के राजा –चम्बा का ऐतिहासिक महत्व राजा गणेश वर्मन (१५१२-१५५९ ई०) से आरम्भ हो जाता है। चम्बा राज्य में इस समय मुगल प्रभाव भवन-शैली के रूप में पड़ा। इस शासक के पश्चात् प्रतापसिंह वर्मन (१५५९-१५८६ ई०), वीरभान (१५८६-१५८९ ई०), पृथ्वीसिंह (१६४१-१६६४ ई०), छत्तरसिंह (१६६४-१६९० ई०), उदयसिंह (१६९०-१७२० ई०), उग्रसिंह (१७२०-१७३५ ई०), दलालसिंह (१७३५-१७४८ ई०) उमेदसिंह (१७८४-१७६४ ई०), राजसिंह (१७६४-१७९४ ई०), जीतसिंह (१७९४-१८०८ ई०), चड़तसिंह (१८०८-१८४४ ई०) तथा श्रीसिंह (१८४४-१८७० ई०) तक चम्बा के राजा कलानुरागी सिद्ध हुए।

चम्बा में कला विकास –राजा पृथ्वीसिंह के समय में चम्बा में चित्रकार कार्य करने लगे थे और इसी शासक ने बसोहली की राजकुमारी से विवाह किया था। इस प्रकार चम्बा की कला बसोहली पहुंची होगी ऐसा माना जाता रहा है। पृथ्वीसिंह तथा उसके उत्तराधिकारी राजाओं छत्तरसिंह, उजागरसिंह और उमेदसिंह सभी राजाओं के व्यक्ति-चित्र श्री भूरीसिंह संग्रहालय, चम्बा तथा राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में सुरक्षित हैं जिन्हें श्री कार्ल खण्डालावाला ने परवर्ती बसोहली शैली का मानकर बहुत परवर्ती माना है। परन्तु वास्तव में चम्बा के इन व्यक्ति-चित्रों के सूक्ष्म अध्ययन की आवश्यकता है। यह व्यक्ति-चित्र शैली में जहाँगीर तथा शाहजहां कालीन मुगल शैली की कृतियों जैसे हैं और इनका बसोहली शैली से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार चम्बा में राजा पृथ्वीसिंह के काल में और बसोहली से पूर्व ही चित्र प्राप्त होने लगते हैं। चम्बा में राजा उमेदसिंह बड़ा कलाप्रेमी शासक हुआ है। उसने रंगमहल का निर्माण कराया और रंगमहल में चित्र बनवाने की परम्परा चलाई। उसके समय चम्बा में लघु तथा भित्तिचित्र बनाये जा रहे थे। उसने अखंडचण्डी महल की चम्बा में आधारशिला रखी रंगमहल में चित्रकारी का कार्य उमेदसिंह के

उत्तराधिकारी राजा राजसिंह, जीतसिंह, चड़तसिंह तथा श्रीसिंह के काल तक उत्साहपूर्वक चलता रहा। राजसिंह कांगड़ा के राजा संसार चन्द से लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ और उसके पश्चात चम्बा कला पर काँगड़ा शैली का गहरा प्रभाव पड़ा। राजसिंह के समय में निक्का चित्रकार गुलेर से चम्बा आकर बस गया। संसार चन्द के पतन के पश्चात कांगडा के कलाकार निश्चित रूप से चम्बा आये। रंगमहल के चित्रों को दीवार से उतार कर अब सुरक्षा हेतु राष्ट्रीय संग्रहालय में पुनः उसी पुरानी अवस्था में प्रदर्शित किया गया है। १७३५ ई० में युद्ध और अग्निकांड में चम्बा की बहुत सी कृतियाँ अनुमानता नष्ट हो गई हैं, इस कारण चम्बा शैली के इतिहास को प्रशस्त करने में कठिनाई उत्पन्न होती है। चम्बा में दो चित्रकारवंश राज-संरक्षण में विशेष कार्य करते रहे। इन चित्रकारों का एक वंश वंशीधर का था और दूसरा कृष्ण का। वंशीधर के वंश में ईश्वर, रामदयाल, मगनू, दुर्गा, जवाहर, सोणू, मोतीराम (पोड़िया), होशियारलाल तथा हीरालाल (जीवित) चित्रकारी का कार्य करते रहे। कृष्ण के वंश में लावे, गंगाराम, विल्लू या विल्लोराम (मिस्त्री) तथा प्रेमलाल (जीवित) ने चम्बा के चित्र बनाये। इन चित्रकारों के अतिरिक्त लहरू मियाँ, तारासिंह, घ्यानसिंह, धिन्दीदास, जमील तथा निक्का के पौत्र अत्तरा आदि ने भी चम्बा में चित्र बनाये।

चित्रों का विषय—चम्बा में अन्तःपुर या रनिवास सम्बन्धी चित्र, व्यक्ति-चित्र तथा काव्य पर आधारित धार्मिक चित्र बनाये गये। चम्बा में 'भागवतपुराण', 'रामायण', 'दुर्गासप्तसती' तथा 'रुकमिणी मंगल' का विशेष स्थान था।

चम्बा शैली के चित्रों की विशेषताएं

रेखा—चम्बा शैली के चित्रों में बारीक और कोमल रेखाओं का प्रयोग है। इन रेखाओं में जहांगीर कालीन मुगल शैली की विशेषताएं दिखाई पड़ती हैं। रेखाएं लाल या काले रंग से बनाई गई हैं।

रंग—चम्बा शैली के चित्रों में बसोहली की तुलना में अधिक संगत और शीतल रंगों का प्रयोग है परन्तु आकृतियों को उत्कर्ष प्रदान करने के लिये उनके वस्त्र चटक विरोधी रंगों से भी बनाये गये हैं। चम्बा के चित्रकारों में नीले रंग के प्रति आकर्षण भी दिखाई पड़ता है अन्यथा लाल तथा पीले रंग का प्रयोग सामान्य है।

मानवाकृतियां—चम्बा की चित्रकारी में स्त्री तथा पुरुष का सौन्दर्य विशिष्ट है। चम्बा में मानवाकृतियां लम्बी और हृष्ट-पुष्ट बनाई गई हैं। सामान्यतः मानवाकृतियां खड़ी हुई मुद्रा में बनाई गई हैं। चम्बा के चित्रकार ने भावाभिव्यक्ति के लिये हस्तमुद्राओं तथा अङ्ग-भङ्गिमाओं को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है। मानवाकृतियों के माथे ऊंचे तथा चिबुक बड़ी और भारी बनाई गई, जिससे चम्बा शैली की आकृतियां अन्य शैलियों की मानवाकृतियों से पृथकत्व प्राप्त कर लेती हैं। स्त्रियों के नेत्र बड़े और प्रायः कर्णस्पर्शी बनाये गये हैं, परन्तु ग्रीवा सुडौल और लम्बी है।

वेश-भूषा - चम्बा के चित्रों में प्रायः पुरुष आकृतियों का पहनावा धोती तथा उत्तरीय है जो काशमीरी शैली के संविधान पर आधारित है, परन्तु सामान्य रूप से से जहाँगीर कालीन मुगल पहनावा अपनाया गया है। स्त्रियों के पहनावे में लहंगा, पारदर्शी आंचल तथा कंचुकी का प्रयोग सामान्य दिखाई पड़ता है।

प्रकृति—चम्बा के चित्रों में पर्वतों, सरिताओं, काले मेघों नीले-आकाश, वन उपवनों, उद्यानों तथा बाटिकाओं का मनोहारी अंकन है। वृक्षों में मोरपंख, मंजनू, आम, केला, बरगद, कदम्ब, पीपल, आंवला आदि का सजीव अंकन है। इन वृक्षों के पत्तों को कलाकार ने अधिकांश हल्की पृष्ठभूमि पर गहरी रेखाओं से अलंकारिक ढंग से बनाया है। वृक्षों को पुष्पित बनाया गया है।

पशु-पक्षी— चम्बा के चित्रों में अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों का अंकन है, परन्तु गाय जम्मू तथा हरियाणा जाति के बीच की नस्ल की है।

गोलाई —चम्बा के चित्रों में अंकित मानव आकृतियों में गठनशीलता लाने का सतत् प्रयास दिखाई पड़ता है जो बसोहली के चित्रों में नहीं दिखायी पड़ता है।

भवन— चम्बा शैली के चित्रों में मुगल शैली के भवन बनाये गये हैं। इन भवनों को बसोहली शैली के द्विअयामी भवनों के असमान अधिकांश त्रिअयामी ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

गुलेर की चित्रकला
(गुलेर शैली)

गुलेर का परिचय –जिन कलाकारों के पहुंचने पर कांगडा में चित्रकला का जन्म हुआ वे वास्तव में एक छोटे राज्य गुलेर (हरिपुर गुलेर) से सम्बन्धित थे। गुलेर राज्य की स्थापना कुछ आकस्मिक घटनाओं के कारण १४०५ ई० में कांगडा राज्य की एक शाखा के रूप में हुई।[1] कांगड़ा का राजा हरिचन्द एक बार आखेट के लिए गया। वह अपने साथियों से छूट जाने के कारण जंगल में राह से भटक गया और एक कुएं में गिर पडा। वह कई दिन तक अपने राज्य में वापिस नहीं आया, अत: उसकी रानी सती हो गयी। परन्तु एक साथी ने उसको कुएं से निकाल लिया और वह अपने राज्य पहुंचा, परन्तु कांगडा की गद्दी पर उसका छोटा भाई राजा बन चुका था। अतः उसने गुलेर आकर अपना नवीन राज्य हरिपुर गुलेर स्थापित किया। लगभग २०० वर्ष के पश्चात् इस राज्य की सत्रहवीं शताब्दी में प्रतिष्ठा हुई। यहां की राजधानी हरिपुर गुलेर अनेक वर्षों तक कला का केन्द्र रही।

1. 'इन्डियन पेन्टिग इन पंजाब हिल्स'—लेखक डब्लू० जी० आर्चर, पृष्ठ १७।
"When Guler was founded in 1405 as an off shoot of Kangra a series of unusual circumstances gave it a special relationship to the parent state."

गुलेर की भौगोलिक स्थिति के कारण गुलेर की महत्ता शीघ्र स्थापित हो गई। यह राज्य कांगड़ा के दक्षिण में पंजाब के मैदानी भाग से सन्निकट था। इस राज्य को मुगल संरक्षण भी प्राप्त हुआ। गुलेर के राजा रूप चन्द (१६१०-१६३५ ई०) को शाहजहां का समर्थन मिला। उसके पश्चात् मानसिंह (१६३५-१६६१ ई०) तथा विक्रमसिंह (१६६१-१६७५ ई०) ने राज्य की शक्ति को बढ़ाया। गुलेर राज्य में राजा दलीपसिंह (१६९५-१७४४ ई०) के समय से सांस्कृतिक जागरण होता दिखाई देता है। यह सांस्कृतिक जागरण गुलेर के राजा गोवर्धनसिंह (१७४४-१७७३ ई०) के सयय में उच्च विकास को प्राप्त हुआ।

गुलेर के राजा तथा चित्र—गुलेर का प्रथम राजा हरिचन्द पहले कांगड़ा का शासक रह चुका था और इस कटोच राजवंश या परिवार का वरिष्ठ सदस्य था और वह कांगड़ा के राजा का बड़ा भाई था। इस कारण कांगड़ा राज्य सदैव ही गुलेर को सम्मान की दृष्टि से देखता रहा और गुलेर राज्य के पश्चात् ही कांगड़ा में सांस्कृतिक विकास हुआ। गुलेर काँगड़ा घाटी के नितान्त निचले क्षेत्र में स्थिति था, इस कारण पंजाब तथा गुलेर के यातायात साधन सुगम थे। पहले बताया जा चुका है कि बसोहली के राजा कृपालपाल (१६७८-१६९३ ई०) तक बसोहली शैली पंजाब की पहाड़ियों में प्रचलित हो चुकी थी। इस समय में चम्बा शैली का भी प्रसार हो रहा था। परन्तु १७०० ई० के पश्चात् बसोहली शैली के चित्रकार शनैः शनैः अदृश्य होने लगे जिसके परिणाम स्वरूप विभिन्न पड़ोसी राज्यों की कला पर एक परिवर्तनकारी प्रभाव पड़ा। यहां पर यह अधिक महत्व की बात है कि सुदूर दक्षिण में स्थित गुलेर राज्य में यह परिवतन सबसे पहले दृष्टगोचर हुआ।

गुलेर के चित्रकार—गुलेर के राजा गोवर्धनचन्द के समय में निश्चित रूप में चित्र बनने लगे। लगभग १७४० ई० में मैदानी प्रदेश से आए एक मुगल कलाकार ने गुलेर के राजदरबार में संरक्षण प्राप्त कर लिया। इस कलाकार की शैली में अत्याधिक नवीनता और स्वच्छता (औरगजेब कालीन मुगल शैली) थी। इस चित्रकार की कार्य पद्धति गुलेर के एक अन्य कलाकार नैनसुख की शैली से अत्यधिक मिलती जुलती है। नैनसुख के कुछ समय के पश्चात् जम्बू के राजा बलवन्तसिंह के राज-परिवार के लिए भी चित्र बनाये हैं इन दोनों चित्रकारों की शैली इतनी समान प्रतीत होती है कि जिससे सिद्ध होता है कि नैनसुख ने गुलेर में चित्र बनाये हैं। अब यह प्रमाणित भी हो चुका है कि नैनसुख तथा उसके परिवार के चित्रकारों ने गुलेर में चित्र बनाये हैं। दूर-दूर के स्थानों से यात्री हरिद्वार अपने परिवार के मृतकों के पुष्प गंगा में प्रवाहित करने या हरिद्वार में गंगा स्नान करने आते हैं, यहाँ पर यह यात्री पंडों की बही में अपना नाम तथा वंशावली, पता इत्यादि सूची के रूप में लिखाते या लिखते हैं। इस प्रकार की गुलेर से सम्बन्धित पुरानी बहियां सरदार पंडित रामरखा तथा पंडित प्यारेलाल के पास सुरक्षित हैं। इस बही में पंडे अपनी

धर्मशाला में ठहरने वाले तीर्थ यात्रियों का ब्योरेवार विवरण लिखते हैं। इन बहियों से चम्बा, कांगडा, गुलेर तथा अन्य पहाड़ी राज्यों के चित्रकारों की हरिद्वार यात्राएं प्रमाणित हैं जिनसे उनके स्थान, वंश आदि का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। सरदार रामरखा की बही के एक पृष्ठ पर नैनसुख नामक चित्रकार का एक लेख प्राप्त हैं, जो इस प्रकार है—

> गोत्र सांडल
>
> लिखित नैणा तरखान चत्रेहरा गोलेरदा वासी। बेटा सेऊए दा। पोत्रा हसनूएदा। पड़पौत्रा भारथुए दा। विद्ध पड़पौत्रा दाते दा। नानका पख लिख्या। प्रोहत हरीराम मन्या। नाना दास। पडनाना चूहड़ू। विधडपनाना हरिया। जे भाईए माणके दा लिख्या जे दुए प्रोहते कंछ निकलें ता सेहे लिख्या दा प्रमाण। एह तकरार करी लिखी दत्ता। संमत १८२० जेष्ठ प्र० १ लिख्या।

उपरोक्त लेख से स्पष्ट है कि नैणा (नैनसुख) गुलेर का निवासी था। वह सेऊ का बेटा हसनू का पोता, भरथुए का पड़पोता तथा दाते का विद्धपोता था। नैनसुख के वंशजों ने समय-समय पर अनेक राज्यों से आकर हरिद्वार की इसी बही में अनेक लेख दिए हैं जिससे इस वंश की पूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाती हैं और यह भी प्रमाणित हो जाता है कि इस वंश के लोग अनेक पहाड़ी राज्यों में राजाओं का संरक्षण प्राप्त कर जा बसे थे। इस वंश के चित्रकार १९ पहाड़ी राज्यों में जाकर बसे, यह दूसरे प्रमाणों से भी सिद्ध हो चुका है। इसी वंश के निक्का के वंशज रजौल निवासी श्री भूपेन्द्रप्रकाश तथा श्री चन्दूलाल रायना के पास एक सियालकोटी कागज पर बना आरेख चित्र सुरक्षित है जिससे स्पष्ट है कि इस वंश के कलाकारों ने अनेक राज्यों की कला को प्रभावित किया। इस आरेख में एक योगनी के समान कला देवी की आकृति बनाई गई है जो एक पैर पर खड़ी है और अपनी १५ भुजाएं मकड़ी के जाले के समान फैलाए हैं। इन भुजाओं के पास फीकी स्याही में निम्न १९ पहाड़ी राज्यों के नाम अंकित हैं :

१. श्री गुलेर
२. चम्बा
३. किला कांगड़ा
४. मण्डी
५. सुकेत
६. कहलूर
७. काँगड़ा नादौन
८. जसवान
९. शीबा
१०. दातारपुर
११. श्री गुरूबख्स सिंह
१२. रामगढ़िया जासा सिंह
१३. सुजानपुर
१४. मनकोट
१५. जम्मू
१६. शाहपुर
१७. श्री जयसिंह
१८. नूरपुर
१९. बसोहली

इन नामों से स्पष्ट है कि इस वंश के चित्रकार इन पहाड़ी राज्यों में चित्र बना रहे थे। नैनसुख दो भाई थे। उसके बड़े भाई का नाम मानक (माणकू) था और नैणा या नैनसुख छोटा था। माणकू की वंशावली में आगे माणकू के पुत्र फातू तथा कुशाल फिर पौत्रों में माधो, मोलक, काशीराम के नाम प्राप्त होते हैं। नैनसुख की वंशावली में आगे उसके चार पुत्रों में रांझा, काम, गौढ़ू, तथा निक्का के नाम प्राप्त होते हैं। गौढ़ू तथा निक्का के पुत्रों में सुखिया (सुखनू), सुलतानू, तथा हरखू (हरखू), गोकुल, छज्जू के नाम प्राप्त होते हैं। रांझा हरिद्वार आया था। काम का पुत्र लालसिंह था। आगे चलकर इनके वंश में अनेक चित्रकारों के नाम भी प्राप्त हैं।

राजा गोवर्द्धन सिंह (१७३०-७३ ई०) एक कुशल शासक था और उसने सामन्तिय ख्याति प्राप्त की। उसे घुड़सवारी का बड़ा शौक था। उसके अनेक ऐसे चित्र प्राप्त हैं जिनमें राजा को घुड़सवारी करते चित्रांकित किया गया है गुलेर शैली के लगभग चौदह ऐसे चित्र प्राप्त हैं जो रामायण पर आधारित हैं और राजा दिलीप सिंह कालीन हैं।

गुलेर शैली की विशेषता—गुलेर में १७४० ई० से १७७० ई० के मध्य में दो शैलियों में चित्र बनाए जा रहे थे जिनमें एक चम्बा या बसोहली शैली थी और दूसरी बाहर से आये मुगल कलाकारों की शैली थी। इन दोनों शैलियों ने एक दूसरे को प्रभावित किया परन्तु फिर भी दोनों की विशेषताएं पहचानी जा सकती हैं। मुगल शैली के चित्रों में राजा और उसके दरबार का चित्रण अधिक प्राप्त होता है और धार्मिक चित्र कम प्राप्त होते हैं। इन चित्रों में भंगिमाएं तथा मुद्राएं सुन्दर हैं। प्रत्येक आकृति की कुछ अपनी व्यक्तिगत विशेपता और छवि है। इन चित्रों में रेखा बहुत ही कोमल, बारीक और प्रवाहपूर्ण है। इन चित्रों में प्रकृति की यथार्थ छटा बिखरी हुई है, परन्तु बसोहली शैली में बने चित्रों की सीमा रेखाएं शिथिल, सुनिश्चित अलंकारिक योजनाबद्ध हैं तथा सपाट लाल धरातल का अधिक प्रयोग है। इन चित्रों में लाल, पीले, नीले तथा सफेद रंगों पर आधारित रंगयोजना ली गई है। इन चित्रों में स्त्रियों के चित्रण में भौतिकवादी दृष्टिकोण दिखाई पड़ता है और चित्रकार ने स्त्रियों के छन्दमय शारीरिक सौन्दर्य तथा यौन-प्रतीकों का स्वतंत्रता से प्रयोग किया है, जिनमें काव्यात्मकता और परिमार्जित भावना दृष्टिगोचर होती है।

१७७३ ईसवी में राजा गोवर्द्धनसिंह की मृत्यु के समय गुलेर में अनेक चित्रकार इन शैलियों में चित्र बना रहे थे और एक निश्चित शैली स्थापित नहीं हो पाई थी। यद्यपि इस समय तक अभिव्यंजना के सिद्धान्तों, प्रतीकों आदि में एक नवीनता आ गई थी और किसी नवीन उत्तम शैली के विकास के लिए एक पृष्ठभूमि पूर्ण रूप से बन कर तैयार हो गई थी।

गुलेर शैली के चित्रों का विषय—गुलेर शैली के चित्रों के विषय सामान्यता चार वर्गों में रखे जा सकते हैं जो निम्न हैं—

(१) **रामायण तथा महाभारत**—गुलेर शैली के अधिकांश चित्रों का विषय रामायण तथा महाभारत की प्रमुख घटनाएं हैं। गुलेर शैली की रामायण तथा महाभारत की चित्रावलियां प्राप्त हैं।

(२) **दरबारी चित्र**—इस शैली में राजदरबार या अन्तःपुर के चित्र भी बनाये गये हैं। इन चित्रों में राजा गोवर्धनसिंह के घोड़े की सवारी के चित्र तथा नाच आदि के चित्र विशेष उल्लेखनीय हैं।

(३) **नायिका-चित्र**—नायिका भेद सम्बन्धी चित्र इस शैली की एक विशेषता है। अनेक प्रकार की नायिकाएं कांगड़ा शैली के समकक्ष गुलेर में पहले ही बनाई जाने लगी थीं। इन नायिकाओं में कृष्णपक्ष अभिसारिका, उत्का तथा प्रोषितपतिका नायिका का गुलेर शैली में बहुत भावपूर्ण चित्रण है।

(४) **व्यक्ति-चित्र**—गुलेर शैली में अनेक राजाओं के व्यक्ति-चित्र प्राप्त हैं जिनमें पर्याप्त सजीवता है।

कांगड़ा की चित्रकला
(कांगड़ा शैली)

अठाहरवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में पंजाब की पहाड़ियों में स्थित कांगड़ा राज्य भारतीय चित्रकला का एक महान केन्द्र बन गया। यहाँ चित्रकारों की लगभग एक सौ पचास वर्ष की साधना के परिणामस्वरूप इस शैली में सर्वोपरि भावना और कौशल का लालित्य एक बार दीप की उस अन्तिम लौ के समान जगमगा उठा जिसकी लौ अत्यधिक प्रकाशित हो फिर अन्धकार में सदैव के लिए विलीन हो जाती है। इस शैली में मुगल और राजस्थानी हिन्दू कला और भावना का अपूर्व सम्मिश्रण है। अप्रत्यक्ष रूप से इस शैली पर पाश्चात्य प्रभाव भी पड़ा जिससे चित्रों की सुन्दरता और कोमलता में श्रीवृद्धि हुई है।

संसारचन्द— कांगड़ा शैली की कृतियों के सृजन का समय लगभग १७८० ई० से आरम्भ होता प्रतीत होता है। १७५१ ईसवी से १७७४ ईसवी तक कांगड़ा में कटोच राजपूत वंश के राजा घमंडचन्द का राज्य था। राजा घमडचन्द को अत्यधिक सामन्तीय ख्याति प्राप्त हुई परन्तु वह चित्रकला के प्रति उदासीन ही रहा, और उसके चार व्यक्ति चित्र ही केवल प्राप्त हैं जो सिक्ख शैली के हैं और भद्दे हैं। लगभग १७७५ ई० में कांगड़ा के राजा संसारचन्द ने चित्रकला के प्रति अत्यधिक प्रेम प्रदर्शित किया। वह स्वयं एक चित्रप्रेमी, साहित्यप्रेमी और संगीत मर्मज्ञ शासक था। उसे लगभग बारह या तेरह वर्ष की आयु पर ही चित्र संग्रह में बहुत रुचि थी। इसी समय सन्निकट सम्बन्धी रियासत गुलेर में अच्छे चित्रकार काम कर रहे थे और इस समय तक गुलेर शैली सुनिश्चित रूप धारण कर चुकी थी। राजा संसारचन्द जैसे कला संरक्षक के कला-प्रेम के कारण और पड़ोसी गुलेर-राज्य में उच्च

कला-विकास हो जाने के कारण ही कांगड़ा में भी चित्रकला का उदय आरम्भ हुआ ।[1]

राजासंसार चन्द का कला-प्रेम—जिस समय गुलेर की चित्रकला एक निश्चित पृष्ठभूमि तैयार कर चुकी थी उसी समय कांगड़ा के राजसिंहासन पर राजा संसारचन्द (१७७५-१८२३ ई०) ने दस वर्ष की आयु में पदार्पण किया । १७८६ ई० तक राजा संसारचन्द का प्रभुत्व पहाड़ी राज्यों पर स्थापित हो गया । राजा संसार-चन्द को ललित कलाओं से अत्यधिक प्रेम था । बाल्यकाल में राजा संसारचन्द की चित्रो में विशेष रुचि होने का परिचय प्राप्त होता है । लगभग बारह या तेरह वर्ष की आयु पर उसने चित्रों का संग्रह किया और उसके द्वारा चित्रों के निरीक्षण किए जाने के उल्लेख प्राप्त होते हैं । राजा का यह चित्र-प्रेम जीवन में सदैव बना रहा । राजा का यह कला-प्रेम १८२० ई० तक निश्चित रूप से चलता रहा क्योंकि अंग्रेजी यात्री मूरक्राफ्ट ने लिखा हैं कि—"राजा संसारचन्द के दरबार में इस समय भी कई चित्रकार काम कर रहे थे । राजा को चित्रकला से बहुत प्रेम था और उसके पास चित्रों का एक विशाल संग्रह था" (१८२० ई०) । राजा संसारचन्द वैष्णव धर्म का अनुयाई था और कृष्ण का भक्त था । वैष्णव धर्म का उसके राज्य में भी जोर था । राजपूत परम्पराओं के अनुसार यौन-सम्बन्ध, वधू या किसी रखैल तक सीमित था इस कारण दबी हुई यौन-सम्बन्धी इच्छायें और भावनायें चित्र की कल्पना में स्वछन्द हो उठीं और काव्यमय रूप धारण करने लगीं । कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय के रूप में इन भावनाओं को एक साधन प्राप्त हो गया । इसी कारण स्त्री के प्रति प्रेम का रूप राधा ने ग्रहण कर लिया और राधा के रूप में स्त्री के प्रति पुरुष का प्रेम प्रस्फुटित होने लगा । कांगड़ा शैली के चित्रकारों के प्रमुख केन्द्र गुलेर, नूरपुर, तीरासुजानपुर तथा नादौन थे ।'

गुलेर शैली का कांगड़ा में प्रवेश—जिस समय राजा संसारचन्द कांगड़ा का राजा हुआ तो उसको कृष्ण की भक्ति और चित्रकला ने आकर्षित किया । यह नहीं कहा जा सकता कि उस समय के कुशल पहाड़ी चित्रकारों को उसने अपने दरबार की ओर कैसे आकृष्ट किया । सम्भवतः राजा संसारचन्द का कला-प्रेम और १७७० ई० में गुलेर के कला संरक्षक राजा गोवर्द्धनसिंह की मृत्यु भी कलाकारों के कांगड़ा दर-बार में आने के कारण हो सकती है निश्चित रूप से गुलेर का एक चित्रकार निक्का लगभग १७०० ई० में चम्बा पहुँचा और कुछ अन्य चित्रकार गुलेर छोड़कर गढ़वाल

1. इंडियन पेन्टिग इन पंजाब हिल्स'—लेखक डब्लू० जी० आर्चर, पृष्ठ ४४ ।

"The importance of Guler to Pahari Painting is that it provided an early clearing house for idioms, a series of experiments and finally a succession of masterpieces out of which there developed the greatest style in all the Punjab Hills"

चले गये। गोवर्द्धनसिंह की मृत्यु के पश्चात् गुलेर संकटग्रस्त रहा और ऐसी परिस्थिति में जब १७८० ई० तक राजा संसारचन्द की कला संरक्षक के रूप में ख्याति हो चुकी थी, तो उस समय तक अनुमानतः गुलेर के कई कलाकारों ने उस राजा की सेवायें ग्रहण कर ली होंगी। इस प्रकार इन कलाकारों के नवीन प्राश्रय प्राप्त करने के पश्चात् ही गुलेर की कला ने काँगड़ा में अपनी परिपक्व अवस्था को प्राप्त किया।

काँगड़ा की चित्रकला—काँगड़ा शैली के चित्रकारों के नाप अभी तक बहुत कम प्राप्त हैं और जो नाम प्राप्त हैं उनमें फातू, पुरखू तथा कुशनलाल का नाम प्रमुख है। कार्ल खण्डालावाला ने कुशनलाल को कुशला, नैनसुख के भतीजे के रूप में माना है जो ठीक है जैसा पहले बताया जा चुका है।

काँगड़ा की १७७० ई० से १८०६ ई० के मध्य की कृतियों से ऐसा प्रतीत होता है कि कम से कम दो महान् कलाकार जो गुलेर में मुगल ढंग में चित्र बना रहे थे, अब काँगड़ा दरबार में आ गये। इन चित्रकारों के साथ अनेक साधारण कोटि के चित्रकार भी काँगड़ा दरबार में नियुक्त किए गए। इन दो चित्रकारों में से एक ने 'भागवतपुराण' का चित्रण किया है जिसमें मुगल प्रभाव है, और चित्रों की शैली गुलेर के चित्रों से सम्बन्धित है। इन चित्रों की पृष्ठभूमि में प्रकृति का अंकन स्वच्छ आकाश तथा वातावरण गुलेर के चित्रों जैसा है, परन्तु रेखा अधिक कोमल हो गई है, जिससे यह चित्र गुलेर शैली से प्रथकत्व स्थापित कर लेते हैं। इन चित्रों में रेखा के किनारे डौल होने के कारण एक अद्भुत चमक तथा तथा उभार आ गया है।

दूसरे चित्रकार की शैली का परिचय 'बिहारी सतसई' चित्रावली में प्राप्त होता है। इन चित्रों में सीमारेखा डौलपूर्ण नहीं है और दृश्य चित्रों में भव्यता है। इन चित्रों में गुलेर शैली जैसी निश्चित पृष्ठभूमि नहीं है और मानव आकृतियों की बनावठ उत्तम है। इन चित्रों में हल्की गोलाई का आकृतियों में प्रयोग किया गया है, जिससे मानव आकृतियों का सौन्दर्य निखर आया है। अधिकांश चित्रों में पशु, पक्षियों, नदियों, वृक्षों, लताओं तथा पुष्पों का प्रयोग भी प्रेमियों के मनोवेगों के उद्दीपन हेतु किया गया है। आनन्द कुमारस्वामी के शब्दों में 'यह शैली एक ऐसी कला है जिसमें भावना का पूर्ण त्याग भौतिक तथ्य के संसर्ग पर आधारित है।" (The complete avoidance of sentimentality is founded on the constant reference to the physical fact) जिस प्रकार इन दोनों चित्रकारों की शैली के स्पष्ट उदाहरण कांगड़ा में प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार अन्य कलाकारों की शैली के उदाहरण भी प्राप्त होते हैं। १७७० ई० में गुलेर शैली में स्त्रियों के चेहरे के चित्रण की तीन शैलियां प्रचलित थीं, जिनमें से दो समाप्त हो गयीं और तीसरी शैली को कांगड़ा में उच्चस्तर प्राप्त हुआ। कांगड़ा शैली में स्त्रियों की मुद्राओं में भी विशेष अन्तर आया। गुलेर शैली में बैठी हुई या खड़ी हुई नायिकायें बनाई गई थीं, परन्तु कांगड़ा की नायिकायें सुकोमल, सौन्दर्यपूर्ण, गतिवान, खड़ी मुद्रा में, लज्जा से लतिका

के समान नत मस्तक अपने पटों को फहराती अंकित की गई हैं। आरम्भिक गुलेर शैली के कांगड़ा में प्रवेश करके प्रतीकात्मक रंगों के प्रयोग और परम्परागत आकारों में यथार्थवादी प्रभाव अधिक आने लगा। स्त्री-आकारों की रचना में ज्यामितीय सिद्धान्त का अभी भी पालन होता रहा, परन्तु आकृतियों को अब कोणोत्तर रूप प्रदान नहीं किया जाता था बल्कि कोणदार आकारों का स्थान गोलाई युक्त रूप लेने लगे। भवन की उदग्र रेखाएं कुछ कठोर रखी जाती थीं जिससे आकृतियों के शरीर की कोमलता उभर गई है। शृंगार रस की अभिव्यक्ति के लिये परम्परागत काव्य में प्रचलित प्रतीकात्मक पृष्ठभूमि का सहारा लिया जाता था और इस प्रकार के समस्त चित्रों के लिये कृष्ण सम्बन्धी वैष्णव सम्प्रदाय एक शक्तिशाली प्रेरणा बना हुआ था। वास्तव में राजा संसारचन्द की वैष्णव धर्म के प्रति अनन्य श्रद्धा और वैष्णव-काव्य के कारण ही इन कलाकारों ने स्त्री-सौन्दर्य पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। कृष्ण को दिव्य-प्रेमी माना गया और शृंगारिक विषयों पर अधिकांश चित्र बनाये गये। कृष्ण का जीवन स्वतः ही प्रेमपूर्ण और शृंगारिक है, इस कारण कृष्ण के साथ कृष्ण की प्रिय और इच्छित वस्तुओं को प्रधानता प्राप्त हुई। स्त्री-सौन्दर्य में कोमलता, मधुरता, यौवन, लज्जा तथा चंचलता की भावना दिखाई पड़ती है जो कांगड़ा शैली के चित्रों का प्रिय और महत्वपूर्ण विषय बन गई है।

लगभग पच्चीस वर्ष तक राजा संसारचन्द के दरबार में चित्रकारों को आदर्श संरक्षण और सर्वोत्तम प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, परन्तु १८०६ ई० में काँगड़ा पर संकट आया। नेपाल से गोरखा आक्रमणकारियों की घटा उमड़ी और इन आक्रमणकारियों ने कांगडा पर अधिकार जमा लिया और राजा संसारचन्द को शताब्दियों से प्रसिद्ध अजेय काँगड़ा-दुर्ग में पराजय देखना पड़ी। नेपालियों का यह घेरा लगभग तीन वर्ष तक चलता रहा और गोरखाओं ने चारों ओर लूट-मार और विध्वंस किया। राजा संसारचन्द को १८०९ ई० में दुर्ग से निकलकर जंगलों की शरण लेनी पड़ी। इसी समय में राजा संसारचन्द ने सिक्खों के राजा रणजीतसिंह से सैन्य सहायता प्राप्त कर ली और परिणामस्वरूप यह नेपाली घेरा उठ गया। यह घेरा तो १८११ ई० में उठ गया, परन्तु राजा की शक्ति समाप्त हो गई और काँगड़ा का दुर्ग सिक्खों से सेना के हाथ में चला गया। कांगड़ा राज्य सिक्खों के आधीन हो गया और राजा संसारचन्द को महाराजा रणजीत सिंह के दरबार में जाना पड़ा। इस सुखद परिस्थिति का काँगडा की कला पर गहरा प्रभाव पड़ा, क्योंकि इसी समय में एक चित्रकार सजनू ने काँगड़ा दरबार छोड़ दिया और उसने १८१० ई० में पड़ोसी राज्य मण्डी के शासक राजा ईश्वरी सेन को 'हमीरहठ' नामक राजपूत कथा पर आधारित एक चित्रावली भेंट की। निश्चित रूप से इस संकटकाल में कांगड़ा के चित्रकारों की कलात्मक क्षमता और शिल्प पर भी गहरा प्रभाव पड़ा होगा। वैसे इस समय तक (१८०६ ई०) राजा संसारचन्द की आयु इक्तालिस वर्ष की थी और इस कारण सम्भवतः उसके उत्साह और रुचि में अवश्य ही अन्तर आ गया होगा। इस समय

की राजनैतिक अव्यवस्था तथा राजा की चिन्ता और अरुचि ने चित्रकला पर अत्य-धिक प्रकाश डाला है, अतः इस समय की कलाकृतियों में वह कोमलना और 'सौन्दर्य न रहा। काँगड़ा की चित्रकला के पतन का दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि गोरखा युद्ध में कांगड़ा के उत्तम चित्रकार समाप्त हो गये हों और यदि ऐसा न हुआ हो तो कदाचित् वह अपनी वृद्धावस्था के कारण स्वयं ही मृत्यु को प्राप्त हो गये हों। कम से कम दो महान चित्रकार, जो कांगड़ा दरबार में १७७० ई० में आये थे, कांगड़ा में लगभग अपनी दस या बीस वर्ष की सेवायें प्रदान करके मृत्यु को प्राप्त हो गये हों। यह सम्भव है। हरिद्वार के सरदार रामरखा पंडित की बही से नैनसुख की अस्थियों की प्रवाह की तिथि १७७८ ई० प्रमाणित है। इस प्रकार १८०६ ई० के पश्चात् कांगड़ा की कला की विशेषतायें लुप्त होने लगीं यद्यपि अनेक चित्रकार चित्र-कृतियां बनाते रहे परन्तु उनकी रेखा में निर्जीवता तथा रंग और आकृतियों में भद्दापन तथा विकृति आने लगी।

कांगड़ा शैली का पतन—१८२३ ई० में राजा संसारचन्द की मृत्यु से कांगड़ा कला की उत्साहपूर्ण धारा मन्द ही नहीं पड़ गई बल्कि उसका अस्तित्व ही समाप्त हो गया। राजा की मृत्यु के छः वर्ष पश्चात् उसका उत्तराधिकारी राजा अनिरुद्ध-चन्द गद्दी पर बैठा परन्तु उसको कांगड़ा छोड़कर सतलज पार कर अंग्रेजी राज्य में टोहरी गढ़वाल भागना पड़ा, क्योंकि रणजीतसिंह उसकी दो बहिनों का जम्मू में राजा ध्यानसिंह से विवाह करना चाहता था। एक अंग्रेज यात्री विजने (Vigne) ने लिखा है कि —"राजा अनिरुद्धचन्द ने अपनी समस्त बहुमूल्य वस्तुयें सतलज की ओर भेज दीं।" यद्यपि उसने चित्रों के विषय में नहीं लिखा है परन्तु यह सोचना संगत है कि उसकी इन बहुमूल्य निधियों में चित्र-संग्रह भी थे। राजा ने अपनी बहनों का विवाह गढ़वाल के राजा सुदर्शनशाह (१८१५-५९ ई०) से कर दिया और इस प्रकार कांगड़ा शैली के बहुत से चित्र जो कांगड़ा से राजा साथ ले आया था, राजा ने दहेज के रूप में सुदर्शनशाह को भेंट कर दिए। इस प्रकार कांगड़ा के उत्तम चित्र-संग्रह टीहरी गढ़वाल में पहुंच गए। अनुमान किया जाता है कि इसी समय राजा के साथ अनेक कलाकार हरिद्वार तथा गढ़वाल आए और टीहरी में बस गए। इसी कारण गढ़वाल में बने १८३० ई० से १८६० ई० के मध्य के चित्रों में कांगड़ा शैली का पूर्ण रिक्त विद्यमान है। अपनी बहनों का विवाह गढ़वाल के राजा के साथ करके कुछ समय अनिरुद्धचन्द कनखल (हरिद्वार) में महल बनवा कर तीर्था-टन की दृष्टि से रहा। उसका यह महल चित्रित था जिसके आज भग्नावशेष मात्र रह गए हैं। विवाह के पश्चात् वह स्थाई रूप से शिमला के निकट अर्की में रहने लगा जहाँ उसकी मृत्यु हो गई। अर्की भी इस प्रकार कांगड़ा शैली का केन्द्र बन गया। उसके दो पुत्रों रणवीरचन्द और प्रबुद्धचन्द १८३३ ई० में ब्रिटिश सरकार ने ५०,००० रुपये की जागीर अनुदान में दे दी।

अनिरुद्धचन्द के कांगड़ा से भागने के पश्चात् कांगड़ा में बहुत अशान्ति रही। पहले सिक्ख शासकों के समय में कांगड़ा में अशान्तिपूर्ण वातावरण रहा फिर राजा जोधवीरचन्द के समय में यही स्थिति चलती रही और १८४६ ई० में सिक्खों की पराजय के पश्चात् कांगड़ा में ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित हो गया परन्तु चित्रकार चित्रों का न्यूनाधिक निर्माण करते रहे। १९०५ ई० कांगड़ा में भूकम्प आया जिससे कलाकारों के जीवन और कलाकृतियों दोनों को हानि पहुंची और इस प्रकार कांगड़ा कला समाप्त हो गई। १८५८ ई० की कांगड़ा शैली की एक चित्रमाला ब्रिटिश संग्रह में प्राप्त है। इस चित्रमाला के चित्रों में भद्दे रंग हैं और चित्रों में कठोरता है कांगड़ा शैली के चित्रों में इस प्रकार निर्बलता और निर्जीवता आ गई। १९२९ ई० जब श्री जे० सी० फ्रेंक ने कांगड़ा का भ्रमण किया तो उन्होंने कांगड़ा के चार चित्रकारों १. नन्दू, २. हजारी, ३. गुलाब राम, तथा ४. लक्ष्मन को— चित्रकारी का व्यवसाय करते हुए पाया था।[1] कांगड़ा शैली के चित्रकारों की संतति अब चित्र निर्माण नहीं करती परन्तु अभी भी कुछ ऐसे परिवार हैं जिनके पास चरवों तथा चित्रों का संग्रह है और समय-समय पर यह व्यवसायिक चित्रकारी आदि का कार्य करते रहते हैं। यह चित्रकार चरवों की सहायता से चित्र रचना भी कर लेते हैं परन्तु ऐसे चित्रकार भी एक या दो ही हैं।

सिक्खों के उदय के साथ ही सिक्खों के दरबारों में भी चित्रकार नियुक्त किए गए और बहुत से कांगड़ा शैली के चित्रकार सिक्ख दृष्टिकोण को अपना कर चित्र बनाने लगे और १८१० ई० से कांगड़ा-शैली का एक भिन्न रूप सिक्ख चित्रों में दिखाई पड़ने लगा।

कांगड़ा के चित्रकार—कुछ वर्ष पूर्व समलोटी ग्राम जिला काँगड़ा के एक चित्रकार गुलाबराम ने अपने पूर्वजों की प्राचीन वंशावली प्रस्तुत की है। उसके पूर्वज राजा संसारचन्द के दरबार में चित्रकारी करते थे। उसकी वंशावली निम्न प्रकार से है (पृष्ठ २४८ पर देखें)

पुरखू के पिता धूमन को गुलेर का मूल निवासी बताया जाता है। जो कालान्तर में गुलेर छोड़ कर कांगड़ा की शैली में समलोटी गांव में जाकर बस गया था।

कांगड़ा के चित्रकारों में फत्तू, कुशनलाल या कुशला का नाम महत्ववान है। उपरोक्त दो कलाकारों के अतिरिक्त कांगड़ा के अन्य कलाकारों की हस्ताक्षर सहित

1. टिप्पणी—'इन्डियन पेन्टिग इन दी पंजाब हिल्स'--लेखक डब्लू०जी आर्चर पृष्ठ ८६।

J. C French (Himalayan Art London 1931-P. 181—"gives the names of four Artists—Nandu, Huzari, Gulabu Ram, and Lachman Das who were still at work when he visited Kangra in 1929."

कोई भी कृति प्राप्त नहीं हुई है। कांगड़ा के दो चित्रकारों वसिया और पुरखू का इतिहासकारों ने उल्लेख दिया है। राजा संसारचन्द के दरबार में आश्रित वसिया चित्रकार के प्रपौत्र लक्ष्मणदास से फ्रेंक महोदय ने समलोटी में भेंट की थी। इनके अतिरिक्त पदनू और दोखू को भी कांगड़ा के राजा संसारचन्द के दरबार का चित्रकार बताया जाता है।
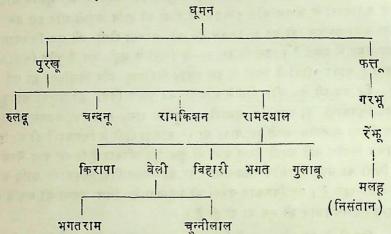
इसी प्रकार काश्मीर के पण्डित शिव (शिवराम) चित्रकार का परिवार भी गुलेर होता हुआ कांगड़ा पहुंचा। कांगड़ा में नैनसुख तथा उसके परिवार के चित्रकारों का विशेष योगदान है जिनका पहले उल्लेख किया जा चुका है।

कांगड़ा शैली के चित्रों का विषय—कांगड़ा के राजा संसारचन्द की वैष्णव सम्प्रदाय की ओर विशेष रुचि होने के कारण भक्ति-काव्य और रीति-काव्य की धारा को दरबारी संरक्षण प्राप्त हुआ है।

धार्मिक चित्र— कृष्ण के प्रेम और शृंगार की भावना कलाकारों के लिए एक मुख्य प्रेरणा थी। कृष्ण को प्रतीक मानकर नाना सांसारिक तथा शृंगारिक लीलाओं को अंकित किया गया। अधिकांश धार्मिक महाकाव्यों पर आधारित प्रेम-कथाओं को चित्रों में प्रधानत: चित्रित किया गया—जिसमें रामायण, महाभारत, हमीरहठ, नल-दमयन्ती, शिव तथा पार्वती की पौराणिक कथाओं को विशेष महत्व प्राप्त हुआ। इन महाकाव्यों को एक नवीन चित्रमय जीवन प्राप्त हुआ और बिहारी तथा महाकवि केशवदास की रचनाओं को भी चित्रबद्ध किया गया।

नायिका भेद—जिस प्रकार मध्यकालीन काव्य में शृंगार की सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रवृति का विवेचन किया गया है उसी प्रकार कांगड़ा शैली के चित्रकारों ने शृंगार की मनोरंजक और भावपूर्ण दशा की सजीव चित्रमय झांकियां प्रस्तुत की हैं। कांगड़ा शैली के चित्रकारों ने तीनों प्रकार की नायिकाओं—(१)—स्वकीया (स्वयं की) (२) परकीय (दूसरे की) तथा (३) सामान्य (किसी की भी) का अंकन किया है।

इन नायिकाओं की आठ अवस्थायें मानी गई हैं जो इस प्रकार हैं (नायिका के यह आठों रूप कांगड़ा शैली के चित्रों में उपलब्ध हैं)।

१. स्वाधीनपतिका।
२. उत्का या उत्कंठिता (या विरहोत्कण्ठिता)[1]।
३. वासकास्या या वासक सज्जा।
४. अभिसन्धिता (या कलहान्तरिता)[2]।
५. खण्डिता।
६. प्रेसितापतिका या प्रेसिता प्रेयसी।
७. विप्र-लब्धा।
८. अभिसारिका।

स्वाधीनपतिका वह नायिका है जिसे उसका योग्म स्वामी प्रेम करता है और उससे प्रेम करने के लिए बाध्य है और उसका जीवन-साथी है। इस प्रकार की नायिका कांगड़ा शैली के चित्रों में राधा के रूप में अंकित की गई है अनेक चित्र उदाहरणों में राधा एक चौकी पर बैठी है और कृष्ण उसके पैर धो रहे हैं या कुंज में बैठे राधा की चोटी गूंध रहे हैं या राधा के चरण दबा रहे हैं या महावर लगा रहे हैं। इन चित्रों में राधा को आत्म अभिमान और आत्म विश्वास से पूर्ण दिखाया गया है।

उत्का वह नायिका है जिसके प्रेम ने निमंत्रण के निश्चित समय पर न आकर अपने विश्वास को खोया है। ऐसी नायिकाओं को नदी के किनारे, वृक्ष के नीचे, धरती पर पत्तों के ऊपर चमेली के पुष्पों की बिछी सेज (चादर) पर खड़ा या बैठा अंकित किया गया है। वृक्ष पर एक पक्षियों के जोड़े को बैठा बनाया गया है। आकाश के काले बादलों की घुमड़ और चंचल-चपला में नायिका उत्कंठा से प्रतीक्षा कर रही है। कभी-कभी मृग भी जल पीते या विचरण करते साथ में बनाए गए हैं।

वासकास्या वह नायिक है जो अपने प्रेमी या स्वामी के आगमन की बाट द्वार की सीढ़ियों पर जोहती है। उसका सफेद चन्दन के समान शरीर दीपक के समान जलता है और उसके नीले वस्त्र कल्पलता के समान कोमल शरीर के चारों ओर फहराते हैं। वह धीरे बोलकर अपनी व्यथा व्यक्त करती है जैसे कि वह अपना जादू चला रही हो। यह नायिका कांगड़ा के चित्रों में अपने शयनकक्ष के द्वार पर प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा में उत्सुक, आशा लगाए खड़ी हुई अंकित की गई है। घर में नायक के स्वागत हेतु तैयारी की जा रही है, प्रेमी एक सुन्दर नौका में नदी की दूसरीं ओर एक सारस के जोड़े के पास बैठा दिखाया जाता है।

1. तथा 2. 'दशरूपक'—लेखक डा० भोला शंकर व्यास, पृष्ठ ६४।

अभिसन्धिता वह नायिका है जो अपने प्रियतम के प्रेम पर विश्वास नहीं करती परन्तु विरह या अनुपस्थिति में दुखी रहती है। इस प्रकार की नायिकाओं के उदाहरण के लिए कृष्ण और राधिका का झगड़ा लिया गया है। कृष्ण राधा के क्रोध को शान्त करने का प्रयत्न करते हैं, राधा और अधिक क्रोधित होती है, परन्तु जब कृष्ण लौट कर जाने लगते हैं तो राधा आवेश में कहे अपने शब्दों पर दुखी होती है।

खण्डिता वह नायिका है जिसका प्रेमी रात्रि को निश्चित समय निमंत्रण पर पहुँचने में असफल रहता है और रात्रि को किसी दूसरी युवती के साथ सहवास करके दूसरे प्रात: आता है और नायिका उसके नेत्रों की लाली देखकर अन्य युवती के साथ उसके रात्रि-सहवास को सिद्ध कर देती है।

प्रेसित-पतिका वह नायिका है जिसका पति सदैव समय-समय पर व्यापार ग्रस्त रहता है। गुलेर-शैली के एक चित्र में यह नायिका इस प्रकार दिखाई गई है—आकाश में बादल, सारस और बगुले देखकर उत्सुक नायिका छज्जे पर जाती है। इस चित्र में प्रेमी की अनुपस्थिति का प्रतीक एक मोर भी अंकित है और वर्षा आरम्भ होने वाली है। अत: नायिका विह्वल होकर सर ऊपर उठाए भगवान से अपने प्रियतम के सकुशल आने की प्रार्थना कर रही है।

विप्र-लब्धा वह नायिका है जो व्यर्थ ही रात्रि भर अपने प्रेमी के आगमन की प्रतीक्षा करती है। इस नायिका को एक वृक्ष के नीचे पत्तियों की सेज के एक कोने पर अंकित किया जाता है। वह दुखी होकर आवेश में अपने आभूषण आदि उतार कर पृथ्वी पर फेंक रही है। पृष्ठभूमि में रिक्त स्थान उसके एकाकीपन तथा दुख का सूचक होता है।

अभिसारिका वह नायिका है जो अपने प्रेमी से मिलने के लिए रात्रि में बाहर जाती है। यह नायिका कांगड़ा के चित्रकार का प्रिय विषय रही है। कृष्ण अभिसारिका और शुक्ल अभिसारिका कांगड़ा शैली के चित्रों में क्रमश: अन्धेरी रात्रि और चांदनी रात्रि में प्रेमी से मिलने के लिए जाती हुई अंकित की गई है। कांगड़ा शैली के चित्रों में कृष्ण अभिसारिका नीला-आंचल डाले अपने प्रेमी को ढूढने जा रही है, अन्धेरी रात्रि में काले बादलों में दामिनी चमक रही है। जंगल में सर्प और चुड़ैल हैं परन्तु ऐसे भयानक वातावरण में भी निर्भीक नायिका (आत्मा), अपनी प्रेमी की तृप्ति के लिए प्रेमी (परमात्मा) को खोजने निकलती है।

प्रेम की अवस्थाएं— प्रेमियों की विभिन्न स्थितियों के अनुसार प्रेम के दो पक्ष हैं जिनमें प्रथम पक्ष वियोग और द्वितीय पक्ष संयोग है। वियोग पक्ष के तीन प्रकार माने गये हैं—प्रथम पूर्वराग अर्थात् प्रेम का आरम्भ, द्वितीय मान अर्थात् प्रेमियों के मिथ्या अभिमान से उत्पन्न वियोग, तृतीय प्रवास अर्थात् प्रेमी के विदेश गमन से उत्पन्न विरह या वियोग। कांगड़ा शैली के चित्रों में विरह की यह तीनों

दशाएं चित्रकार का मार्मिक चित्रण विषय बन गई हैं। पूर्वराग का एक सुन्दर चित्र उदाहरण मिर्जा साहिवान पर आधारित चित्र है, जिसमें एक प्यासा राजकुमार एक गांव के कुयें पर पहुँचता है और एक युवती उसको पानी पिलाती है। जब राजकुमार अपनी अंजुल से पानी पीता है तो उसके नेत्र युवती के मुख पर लगे रहते हैं। इसी प्रकार राधा और कृष्ण के चित्र-उदाहरण प्राप्त हैं जिसमें राधा या तो रसोई में काम कर रही है या बाल गूंथ रही है या स्नान कर रही है और कृष्ण उसको एक छज्जे (दीर्घा) से देख रहे हैं।

भाव—प्रेमियों की संयोग-अवस्था में उत्पन्न वाह्य भावों को कायिक भाव या हाव कहा जाता है। हाव बारह प्रकार के माने जाते हैं। प्रेम में लीन प्रमियों के आलिंगन और चुम्बन से उत्पन्न आनन्द की अवस्था को 'लीला हाव' कहा जाता है। 'विलास-हाव' में प्रेम आनन्द में लीन प्रेमियों के अंग फड़कते हैं और नायिका के नेत्र आनन्द से चमकते हैं। जब नायक की भव्य-वेश भूषा और अलंकरण के प्रति नायिका में आकर्षण दिखाई पड़ता है तो उसको 'ललित हाव' कहा जाता है। जब नायिका अपने सौन्दर्य से निश्चित हो स्वल्प अलंकरण और साधारण वस्त्र ही पहनती है तो 'वैचित्र-हाव' कहा जाता है। जब नायिका प्रेमी के आगमन से प्रेम प्रफुल्लित होकर गलत स्थानों पर आभूषण धारण कर लेती है तो उसको 'विवहर्या-हाव' कहते हैं। कभी-कभी जब क्रोध, आनन्द तथा भय के भाव एक साथ नायिका मे जाग्रत होते हैं और आनन्द मूर्छा होती है तो 'किलकिन्सिता हाव' कहते हैं। कभी-कभी नायिका अपने प्रेमी की बात में अपनी प्रशंसा सुनकर जमहाई या अंगड़ाई लेती है तो यह प्रेम की अभिव्यक्ति 'मोत्राइत्या-हाव' कहलाती है। जब नायिका प्रेमी के आगमन में अरुचि या बहाना दिखाती है और क्रोध और आवेश भरे शब्दों का प्रयोग करती हुई भी हृदय में प्रेमी के प्रति प्रेम भरे रहती है, तो यह भावों का दिखावा 'विवोक-हाव' कहलाता है। जब नायिका प्रेम के उन्माद में आकर अपनी सौम्यता भूल जाती है तो उसकी उत्तरोत्तर बढ़ती इच्छा 'हेल-हाव' कहलाती है। जब नायक नायिक के लिये अपने भाव किसी चिन्ह से व्यक्त करता है तो 'बोध-हाव कहलाता है जैसे यदि प्रेमी प्रेमिका को अपने दुखी या मुरछाये हृदय की अवस्था को दिखाने के लिए मुरझाया कमल-पुष्प भेंट करता है।

रस परिपाक के लिए कांगड़ा के चित्रकार ने विभाव के आत्मबल तथा उद्दीपन दोनों पक्षों का सहारा लिया है, क्योंकि इसकी उत्पत्ति उद्दीपन से होती है। आकर्षक उद्दीपनों में चांदनी, बादल, पुष्प-सुगन्ध (सौरभ), लाल तथा पीले रंग, संगीत कोयल की कूक, पपीहे का स्वर, मधुमक्खियों की गुंजन आदि हैं जिससे आनन्द उत्पन्न होता है। मुद्रा या गति एक ऐसी हिलोर उत्पन्न करती है जिसे अनुभाव कहते हैं, इनमें शरीर की लचक, भृकुटियों के भाव के साथ कटाक्ष प्रमुख हैं।

गुलेर तथा कांगड़ा शैली के चित्रों में संयोग की विभिन्न स्थितियों को सुन्दरता से चित्रित किया गया है। गुलेर शैली के एक चित्र में चांदनी रात में कचनार

के पुष्पित वृक्ष तथा केले के पीछे आधा चांद निकला हुआ है और राजा दीवार पर बैठा हुआ रानी को ऊपर चढ़ा रहा है। रानी बैठी हुई दासी या दूती के सर पर पैर रख कर ऊपर चढ़ रही है और छज्जे की दूसरी रानी अर्धनग्न बिस्तर पर बैठी है। भवन के दूसरे खण्ड में सेविका राजा का बिस्तर लगा रही है। इसी प्रकार अन्य चित्रों में राजा रानी बाग में तकिये के सहारे बैठे आराम करते, मधुपान करते, केलि क्रीडा करते आदि संयोग की विभिन्न स्थितियों में दिखाये गये हैं। अन्तःपुर की झाकियां कांगड़ा चित्रों की प्रमुख विशेषतायें हैं।

बारहमासा—नायिका भेद के अतिरिक्त चित्रकार ने 'बारहमासा' का अंकन सूक्ष्म दृष्टि से किया हैं। इसी प्रकार षडऋतुओं की पृष्ठभूमि में नायिकाओं का भावोद्दीपन अधिक सरल, सुलभ और सजीव हो गया है। कलाकार की दृष्टि उल्लास-पूर्ण फाल्गुन तथा चैत्र मास की पुष्पित तथा पल्लवित प्रकृति की बसन्त शोभा में केन्द्रित हो गई है। कचनार, सेहमल, टेसू, ढाक, शीशम तथा पलाश आदि के पुष्पित वृक्षों, सरसों के खेत, मंजरी से लदे रसाल वृक्ष, आदि चित्रकार ने बड़ी सुन्दरता से अपने चित्रों में अंकित किये है। इसी बसन्त ऋतु में प्रेमियों की क्रीड़ा के लिए होली उत्सव भी आता है। अनेक चित्रों में होली के उत्सव का अंकन किया गया है जिसमें अधिकांश ग्वाल-बालाओं को कृष्ण के ऊपर टेसू के रंग की वर्षा करते दिखाया गया है, साथ ही अबीर और गुलाल की वर्षा से गुलाली बादलों से वातावरण आच्छादित है।

बसन्त के पश्चात वैशाख, ज्येष्ठ तथा आषाढ़ मास के अन्तर्गत ग्रीष्म-ऋतु आती है। इस ऋतु में गुलमोहर के वृक्षों में लाल रंग की प्रस्फुटित होती हैं। ताप के कारण गजराज तालाबों पर जल पीने के लिए निकल पड़ते हैं और तालाबों में अनेक जल क्रीड़ाएं करते हैं। ग्रीष्म के तापमान के कारण सिंह अपनी कन्दराओं में चले जाते हैं और सर्प आदि अपने विवरों से बाहर निकल आते हैं। इस समय नायिका वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर अपने प्रेमी से प्रेमवार्ता करती है और इस संयोग अवस्था की नायिका के नीले वस्त्र पीले पुष्पों से आच्छादित अमलताश वृक्षों से विरोधी रंग स्थापिन कर लेते हैं।

श्रावण तथा भाद्रपद (भादों) मास में वर्षा ऋतु की अनुपम प्राकृतिक छटा दृष्टिगोचर होती है। श्याम घनों की घनघोर गर्जना, चपला की चमक तथा कृष्ण पक्ष की अन्धकारपूर्ण रात्रि भयानक बन जाती है। विरहणी नायिकाएं अपने प्रियतम के वियोग में तड़पती हैं परन्तु यही वर्षा प्रेमियों की संयोगावस्था में एक आनन्द बन जाती है। काले-काले बादलों में बगुलों की धवल पंक्तियां उड़ती दिखाई पड़ती हैं।

शरद ऋतु में अश्विन (क्वांर) तथा कार्तिक मासों में ठन्डक हो जाती है तथा आकाश स्वच्छ हो जाता है। कार्तिक की रात्रि अपनी चांदनी रात के लिए प्रसिद्ध है, इसी समय में नायिकायें अपने प्रियतम की खोज में बाहर निकलती हैं। इस ऋतु में

सूर्यास्त का समय सुन्दर होता है और आकाश सन्ध्या के समय स्वर्णिम लालिमा से जगमगा उठता है।

हेमन्त ऋतु का आगमन अग्रहायण (मागसर) मास में होता है। इस समय में ठन्डक बढ़ जाती है। शिशिर ऋतु पौष तथा माघ में होती है। इस समय में शीत की अधिकता हो जाती है, खेतों में पाला पड़ने लगता है। इस ऋतु में हिमालय के उतुंग शिखरों पर हिमपात आरम्भ हो जाता है। इन छः ऋतुओं को मुख्य रूप से चार भागों— बसन्त, ग्रीष्म, पतझड़ तथा शरद— में बांटा जा सकता है और इन चार भागों को तापमान के अनुसार दिन के चार प्रहारों— प्रातः, दोपहर, सूर्यास्त तथा रात्रि—से तुलना की जा सकती है। कांगड़ा शैली के चित्रों में षडऋतु या बारहमासा पर आधारित चित्रों के अनेक सुन्दर उदाहरण उपलब्ध हैं।

राग-रागिनी चित्र— कांगड़ा शैली के चित्रकारों का विषय-क्षेत्र व्यापक है। नायक-नायिका भेद या बारहमासा ही चित्रकार की सीमा नहीं थे, बल्कि चित्रकार ने राग और रागनियों पर भी चित्र बनाये हैं। इस प्रकार के चित्र आज बहुत कम प्राप्त हैं। इस प्रकार कांगड़ा शैली के चित्रों में 'विरह रागिनी' तथा बसन्त-राग' के चित्र सुन्दर हैं।

दरबारी तथा व्यक्ति-चित्र—कांगड़ा का चित्रकार राज दरबार का एक सदस्य था अतः उसके चित्रों का प्रधान विषय दरबार के दृश्य तथा दरबारियों के व्यक्ति चित्र होना अनिवार्य था। इस प्रकार के दरबारी चित्रों में राजा संसारचन्द के सुन्दर चित्र प्राप्त हैं जिनमें राजा को चांदनी रात्रि मे गवैयों का गाना सुनते या दरबारियों के साथ बैठा दिखाया गया हैं। इन चित्रों के अतिरिक्त अनेक व्यक्ति चित्र और मुखाकृति चित्र भी बनाये गये।

यद्यपि चित्रकार का कांगड़ा राज्य से सम्बन्ध था परन्तु फिर भी उसकी सरल दृष्टि सामाजिक जीवन और जनसाधारण के जीवन की ओर से न हटी। चित्रकार ने विभिन्न उत्सवों जैसे होली, गोवर्धन पूजा इत्यादि पर अनेकों चित्र प्रस्तुत किये हैं। इन चित्रों में चित्रकार ने लोक-भावना और सामाजिक जीवन का एक जीता जागता रूप प्रस्तुत किया है। चित्रकार ने लोक जीवन को कृष्ण के सामान्य लोक जीवन की ओट में प्रस्तुत किया है। कृष्ण का जीवन कृषक तथा ग्वालों के जीवन से सम्बद्ध है और इसी प्रकार चित्रकार ने साधारण लोक जीवन को कृष्ण की जीवन लीलाओं के द्वारा अभिव्यक्त किया है। इस प्रकार लोकपक्ष की झांकियां बहुत ही सरस और कोमल अभिव्यंजना बन गई हैं।

कांगड़ा शैली के चित्रों की विशेषतायें

कांगड़ा शैली के चित्र लघु आकार के बनाए गए है। इन चित्रों की योजना, सपुञ्जन, भावात्मकता, सुन्दरता, सरसता, कोमलता छन्द और गति दर्शक को एक साथ ही मन्त्रमुग्ध कर लेती है। चित्रों की बारीक कारीगरी, स्वच्छता और मीने के

समान चमकदार रंग तथा आकृतियों की गोलाई और डौल इस शैली को भारतवर्ष की सर्वोत्कृष्ट लघु चित्र-शैली के स्तर पर पहुँचा देती है। यह चित्र छोटे आकार में बने हैं और कागज पर बनाये गये हैं।

कागज तथा हाशिया—सियालकोटी कागज की अनेक तह चिपकाकर कागज को मोटा और चित्रण के उपयुक्त बना लिया गया है। कभी-कभी चित्रों के चारों ओर पतला हाशिया बनाया गया है, जिसमें सरल आलेखन भी बनाने गये हैं। कुछ चित्र उदाहरणों में बसोहली शैली के समान लाल पट्टियों का भी हाशिये के रूप में प्रयोग किया गया है फिर भी अधिकांश चित्रों में पतले हाशिये बनाये गये हैं।

रूप तथा आकार— कांगड़ा शैली के चित्रों में वक्रीय आकारों को अपनाया गया है और स्त्री तथा पुरुष दोनों के ही अंगों में यथोजित गोलाई तथा सुडौलता है। स्त्रियों के चेहरे, अंग-भंगिमाओं तथा हस्त-मुद्राओं के बनाने में चित्रकार ने कमाल कर दिया है। यौवन तथा लज्जा से पूर्ण नारी का गुलाबी चेहरा और उसके स्वस्थ अंग कलाकार ने स्मृति, कल्पना तथा नियमों की जकड़ के रहते हुए भी यथार्थ ढग से अंकित किये हैं। प्रायः मानवाकृतियों के नेत्रों को कमलाकार बनाया गया है और चिबुक गोल, पतले, गुलाबी अधर तथा लम्बी-सीधी नासिका बनाई गई है। चेहरे में गोलाई लाने के लिये गरदन के पास तथा आंख के पास सुकोमल छाया का प्रयोग किया गया है। कांगड़ा के चित्रकारों ने नेत्रों को भावपूर्ण और उल्लासपूर्ण बनाया है जिससे जीवन की सजीवता परिलक्षित होती होती है। स्त्रियों के सुकोमल, लहराते हुये श्याम केश कन्धों पर नागिन के समान लहराते पारदर्शी दुपट्टों में चमकते हुये दिखाये गये हैं। अधिकांश चित्रों के चेहरों को एक चश्म बनाया गया है तथापि डेढ़ चश्म चेहरों का प्रयोग भी किया गया है परन्तु उनमें रेखांकन की कुशलता और परमार्जन नहीं है।

वस्त्र तथा आभूषण— कांगड़ा शैली के चित्रों में स्त्रियों को लहंगा, कांचुकी (जिसमें कोहनी तक आस्तीनें हैं और सम्मुख भाग दो तनियों से बंधा है जिससे कुछ खुला रहता है) पहने तथा पारदर्शी दुपट्टा या रेशमी आंचल ओढ़े हुये बनाया गया है। स्त्रियों को कानों में कर्णफूल, कुण्डल, नाक में वेसरि, ग्रीवा में हार, कलाईयों में चूड़ियां, कड़े आदि, उंगलियों में अंगूठियां, माथे पर वेंदी, पैरों में पायल और भुजाओं पर भुजबन्द पहने बनाया गया है कभी-कभी स्त्रियों को पेशवाज और रेशम का दुपट्टा पहने भी बनाया गया है। पुरुषों का पहनावा सर पर कलगी पगड़ी, शरीर पर जामा तथा नीचे चुस्त पाजामा (चूड़ीदार पाजामा) है। पुरुषों के कन्धे पर लटकता पटका और कमर में पेंची बनाई गई है जो मुगल परिधान के समान है। कृष्ण को भी अनेक चित्रावलियों में इसी मुगल वेशभूषा में बनाया गया है। वास्तव में पहाड़ी राजाओं का मुगल दरबार से सम्बन्ध होने के कारण ही यह परिधान पहाड़ी राज्यों में प्रचलित हो गया था। परन्तु फिर भी कृष्ण को अनेक चित्र-उदाहरणों में पीली धोती पहने और सर पर मयूरपंख युक्त सोने का मुकुट धारण किये हुए भी पूर्णतया भारती

लोक परिधान में चित्रित किया गया है। कृष्ण के गले में मोतियों की मालाएं और भुजाओं में भुजबन्द भी चित्रित किये गये हैं। ग्वाल-बाल तथा ग्रामीणजनों को प्रायः लंगोटी लगाये या छोटे जांघियों के समान वस्त्र पहने और सर पर गोल टोपी लगाये अंकित किया गया है (देखिये छाया फलक संख्या ८)। कभी-कभी वर्षा के चित्रों में ग्रामीण तथा ग्वालों को काले कम्बल भी सर से लटकाये बनाया गया है। कपड़ों में सुन्दर आलेखन भी बनाये गये हैं, विशेष रूप से कपड़ों के किनारों पर सुनहरी किनारी बनाई गई है। कांगड़ा शैली के चित्रों में कपड़ों की शिकनें, फहरन तथा मोड़ों को बहुत यथार्थता और कोमलता से बनाया गया है।

पशु तथा पक्षी--कांगड़ा शैली के चित्र चाहे नायक-नायिका भेद पर आधारित हों या बारहमासा चित्रावली हो या राग-रागनी चित्र हों या कृष्ण जीवन से सम्बन्धित चित्र हों, सब ही में चित्रकार ने पशु तथा पक्षियों को मानव-भावना के अनुकूल अंकित किया है। वर्षा में बगुला, विरह में सारस या मोर, विरह-रागनी चित्र में मृग (काला हिरन), नायिका को प्रेमी के आगमन का सन्देश सुनाते हुए कौवे, बत्तखों के जोड़े बहुत सजीव, यथार्थपूर्ण तथा भावपूर्ण हैं। कृष्ण के साथ अधिकांश चित्रों में गायों का अंकन किया गया है। इन पशु-पक्षियों के चित्रण में मेवाड़ शैली जैसा चित्रण की निर्बलता नहीं है, बल्कि चित्रकार ने पक्षियों की अनेक स्थितियों और आंगिक गतियों तथा शारीरिक रचना— जैसे पैरों आदि के अंकन में अपनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है। पशुओं के चित्रण में सजीवता और गति सर्वत्र दिखाई पड़ती है। गायों को अनेक स्थितियों जैसे दौड़ते हुए, कृष्ण की मुरली की ध्वनि की ओर गरदन उठाये विमोहित होते हुए और विश्राम करते हुए आदि अनेक अवस्थाओं में चित्रित किया गया है। कांगडा शैली के चित्रों में गाय हरियाना जाति की है और इसी कारण गाय को हृष्टपुष्ट और विशालकाय (बडी कांठी वाला) बनाया गया है। गाय के अतिरिक्त चित्रकार ने हाथी के चित्रण में भी अपूर्व कुशलता का परिचय दिया है। पशु-चित्रण में सबसे बडी बात यह है कि चित्रकार ने पशुओं में भी मानव जैसी भावना फूंक दी है और इसी कारण मानव-शोक में पशु तथा पक्षी विषादपूर्ण और आनन्द में उल्लासपूर्ण अंकित किये गये हैं। विरहणी के पास मोर की जोडी उद्दीपन ही नहीं वरन् संयोग का भी एक सुन्दर उदाहरण बन जाती है।

वनस्पति तथा प्रकृति—कांगडा के चित्रों में प्रकृति के प्रति एक गहन प्रेम प्रदर्शित किया गया है। प्रायः चित्रों की पृष्ठभूमि को मनोरम प्राकृतिक दृश्यों से संजोया गया है। जिसमें व्यास नदी के क्षेत्र की भव्य वनस्पति और प्राकृतिक छटा विद्यमान है। पहले बताया जा चुका है कि विभिन्न ऋतुओं का अंकन इन दृश्यों में किया गया है, जिनमें अनेक पुष्पित वृक्ष, झाडियों तथा घास के शस्य-श्यामल मैदान अंकित किये गये हैं। अधिकांश वृक्षों में पत्तियां बनाने के लिये गहरी रेखा का प्रयोग किया गया है जिनमें मुगल पद्धति का अनुसरण है, तथापि कभी-कभी राजपूत-शैली

के समान ही सफेद रंग के मिश्रण से बने हल्के रंग से गहरी पृष्टभूमि के ऊपर पुष्प और पत्तियों को सुन्दर आलेखन की योजना में बद्ध किया गया है (देखिये छाया फलक सं० ६)। प्रायः पीपल, वट, बाँस, आम, जामुन, मजनू, केला, कचनार, अमलताश, गुलमोहर, शीशम, ढाक तथा पलाश आदि वृक्षों को बनाया गया है। प्रेमी और प्रेमिकाओं की संयोगावस्था में वृक्ष से लिपटी पुष्पित लतिकाओं को संयोग के प्रतीक स्वरूप अंकित किया गया है। तालाबों को कमल तथा कुमुद पुष्पों से युक्त अंकित किया गया है। नदी में जल का प्रवाह प्रदर्शित करने लिए लहरदार या वक्रीय रेखाओं को बारीकी तथा कोमलता से बनाया गया है।

भवन— कांगड़ा शैली के चित्रों में भवनों का अंकन बहुत भव्य और कलापूर्ण है। विशेष रूप से भवनों की शैली अकबर और जहाँगीर कालीन मुगल भवन शैली है। भवनों को सफेद रंग से बनाया गया है जिनके स्तम्भ सुन्दर आलेखनों से पूर्ण है। मीनारों पर प्रायः गुम्बद और छज्जों में जालियाँ बनाई गई हैं। बरामदों को महरावदार और सीधे घनाकार ठोस पत्थर की शिला (बीम) के प्रयोग से बनाया गया है। दीवारों में प्रायः ताख या आले बनाये गये हैं। दरवाजों तथा बरामदों में लटकते हुए कामदार पर्दे और फर्श पर बिछे हुए सुन्दर कालीन बनाये गये हैं।

रंग तथा परिप्रेक्ष्य— कांगड़ा शैली के चित्रों में दार्ष्टिक-परिप्रेक्ष्य नहीं है। चित्रकार ने अपने आलेखन और चित्रयोजना को कल्पना के आधार पर बनाया है और उसने परिप्रेक्ष्य के प्रयोग से इनकी विकृति नहीं होने दी है, परन्तु इस कमी को उसने चमकदार रंग और कोमल रेखांकन से पूरा कर दिया है। कांगड़ा के चित्रकार ने अमिश्रित रंग जैसे लाल, पीले तथा नीले रंगों का प्रयोग किया है, जो आज भी उसी प्रकार चमकदार बने हुए हैं। मिश्रित तथा हल्के रंगों में चित्रकार ने गुलाबी, बैंगनी, हरा, फाखताई तथा हल्के नीले रंग का प्रयोग किया है। हल्के रंगों के अधिक प्रयोग से चित्रों में ओज और कोमलता की अत्यधिक वृद्धि हो गई है। भवनों के सफेद रंग में अधिकांश अबरकी सफेद रंग का प्रयोग किया गया है। स्त्रियों के परिधान में अल्जेरियन क्रिमसन का प्रयोग किया गया है जो अन्यत्र चित्रों में प्रयोग नहीं किया गया है। बहुत से अपूर्ण रेखाचित्र या चरवे चित्रकारो के संग्रह में नवीन चित्रों के निर्माण के लिये सुरक्षित रखे रहते थे। इन अपूर्ण चित्रों पर रंगों के नाम भी अंकित रहते थे। इस प्रकार के अनेक अपूर्ण चित्रों के उदाहरण प्राप्त हैं जिनसे चित्रों में प्रयुक्त रंगों के नाम ज्ञात हो जाते हैं।

रेखांकन— कांगड़ा शैली के चित्रों को भूरे सियालकोटी कागज पर बनाया गया हैं। चित्रकार ने भूरे सियालकोटी कागज पर हल्के लाल रंग से तूलिका के द्वारा पहले रेखांकन किया है। इन रेखाचित्रों को ऊपर से सफेद रंग से सपाट और पारदर्शी ढंग से पोत दिया गया है। इस सफेद रंग के सपाट प्रयोग के पश्चात् कागज को घोंटकर चिकना कर लिया जाता था, और तब पुनः चित्र की सीमा रेखाओं को

भूरे या काले रंग से उभार दिया जाता था तत्पश्चात् पृष्ठभूमि और आकृतियों में रंग डाल दिये जाते थे। इन रंगों के पश्चात् पुनः रेखाओं को उभार दिया जाता था। प्रायः उस्ताद या गुरू चित्रकार के रेखांकन कर देने के पश्चात् चित्र-अभ्यासी चित्रकार (शिष्य) या साधारण चित्रकार भी चित्र में रंग लगा देते थे।

रेखा – कांगड़ा शैली के चित्रों की शैली की प्रमुख विशेषता रेखा की कोमलता, रंगों की चमक तथा अलंकारिक विवरणों की सूक्ष्मता है। अजंता की कला के समान कांगड़ा की कला भी विशेष रूप मे रेखा की कला है। आनन्द कुमार स्वामी ने कांगड़ा शैली में शक्तिशाली वक्रीय सीमारेखा को चित्र की भाषा या आधार माना है। वास्तव में रेखा की कोमलता प्राप्त करने के लिये कलाकार ने गिलहरी के बालों की बनी तूलिका का प्रयोग किया है। यह तूलिकायें बकरी तथा नेवले के बालों से भी बनाई जाती थीं।

छन्द —कांगड़ा शैली के चित्रकार का प्रधान विषय प्रेम है और प्रेम के विभिन्न भावों का इस शैली में छन्दमय, काव्यमय और चित्रात्मक रूप से अंकन किया गया है। चित्रण की कोमलता और सौन्दर्य के चित्रों में और भी अधिक रोचकता आ गई है। आनन्द कुमारस्वामी के शब्दों में—"चीनी कला के दृश्य चित्रण में छन्द की जो उपलब्धियाँ की हैं वह यहाँ पर मानव प्रेम में हैं।

सोने तथा चाँदी के रंग —कांगड़ा शैली के चित्रों में सोने और चांदी के प्रयोग से चित्र में अधिक ओज बढ़ गया है। आभूषणों, कपड़ों के किनारे, वस्त्रों की बेल-बूटियाँ, भवन का साज-सामान जैसे हुक्का, गडुआ, सिल्फची, तस्तरियां और गुलाब-पाश (गुलाब जल छिड़कने का पात्र) आदि सोने के रंग से बनाये गये हैं और प्रकोष्ठों के आलों या फर्श पर यह साज-सामान संजोया गया है। कभी-कभी चांदनी रात्रि या दामिनी के प्रभाव को उत्पन्न करने के लिये भी सोने या चांदी के रंग का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार जल का प्रभाव उत्पन्न करने के लिए भी चांदी के रंग की पृष्ठभूमि तैयार की गई है। अनेक चित्रों में रात्रि का प्रकाश चांदी के रंग से दिखाया गया है। रात्रि दृश्यों में चित्रकार ने दो प्रकार के प्रकाश—जैसे चांदनी और अग्नि के प्रकाश को बड़ी सफलता से दिखाया है।

वाद्य यन्त्र—कांगडा के चित्रों में कृष्ण की बाँसुरी के अतिरिक्त तम्बूरे, ढोलक, मृदंग, मंजीरा, वीणा तथा सितार आदि अनेक वाद्य यन्त्र बनाये गये हैं।

मानव आत्मा—कांगडा के इन शृंगारिक चित्रों में भावना की अत्यधिक तीव्रता है। हिमालय की तराई के बीहड़ भयानक जंगलों में निरन्तर युद्ध के कारण ही नहीं बल्कि भयानक पशु और विशाक्त जीवों के कारण भी जीवन संकटमय और भयपूर्ण था और सदैव मृत्यु का भय बना रहता था। ऐसी परिस्थिति में जब पुरुष कुशलतापूर्वक घर वापिस आ जाते थे तो स्त्रियों को असीम आह्लाद होता था और

मार्ग में मृत्यु की आशंका के कारण उनका मिलन और भी उन्मादक होता था। यह मानवी उन्माद आत्मा और परमात्मा के प्रेम का प्रतीक बन गया है।

कांगड़ा के चित्र कलाकार की तूलिका से रेखा की कोमलता, लयात्मकता और प्रवाह, रंगों की मीनाकारी जैसी चमक, विवरणों की सूक्ष्मता और मानव प्रेम की गहनता तथा स्निग्ध कल्पना निर्झरणी को प्राप्त कर एक पवित्र और उज्ज्वल कलाकृति बन गये हैं।

कुल्लू की चित्रकला
(कुल्लू शैली)

कुल्लू के कला संरक्षक राजा—सर्वप्रथम कुल्लू की कला का उल्लेख जे०सी० फ्रेन्च ने अपनी पुस्तक 'हिमालय आर्ट' में दिया। कुल्लू में बसोहली शैली शीघ्र पहुंच गई, परन्तु स्थानीय प्रभाव के कारण अपनी निजी विशेषतायें लेकर कालान्तर में प्रस्फुटित हुई। कुल्ली शैली के अनेक चित्र पंजाब संग्रहालय पटियाला में सुरक्षित हैं। सम्भवत: राजा मानसिंह (१६८८-१७१८ ई०) के राज्यकाल में बसोहली से चित्रकार कुल्लू आ बसे। वास्तव में कुल्लू का राजा जगतसिंह वैष्णव सम्प्रदाय का अनुयाई था और उसने वैष्णव धर्म को कुल्लू में प्रोत्साहन दिया। उसके पश्चात राजा जयसिंह (१७३१-१७४२ ई०) तथा राजा टेढ़ीसिंह (१७४२-१७६७ ई०) के समय में यह शैली सुचारू रूप से चलती रही। १७५० ई० से १७६० ईसवी के बीच जबकि समस्त पहाड़ी राज्यों ने कांगड़ा शैल अपना ली थी तो भी कुल्लू में बसोहली शैली उसी प्रकार चलती रही और राजा प्रीतमसिंह (१७६७-१८०६ ई०) के समय में ही कांगड़ा शैली का कुल्लू में प्रवेश हुआ। कुल्लू की राजधानी सुल्तानपुर के अपने महल में राजा प्रीतमसिंह ने भित्तिचित्र बनवाये जिनमें रामायण आदि विषयों पर भी चित्र बनाये गए थे। इस महल में राजा प्रीतमसिंह के पुत्र विक्रमसिंह (१८०६-१८१६ ई०) का भी व्यक्ति-चित्र बनाया गया था। ललित कला अकादमी' ने इस महल के भित्तिचित्रों की प्रतिलिपियाँ तैयार कर ली हैं।

कुल्लू का प्राचीन नाम कुलाटा था इस शैली का प्रारम्भ १७५० ई० के लगभग हुआ। कुल्लू की राजधानी सुल्तानपुर में राजा प्रीतमसिंह (१७६७-१८०६ ई०) के राज्यकाल में चित्रकला का एक प्रगतिशील केन्द्र बन चुका था और अनेक पहाड़ी राज्यों के चित्रकार इस समय में कुल्लू पहुंचे इन चित्रकारों ने कुल्लू में लघु-चित्र बनाये और सुल्तानपुर के महल में चित्रकारी का कार्य किया।

चित्रों का विषय—कुल्लू के चित्रों का विषय सामान्यता अन्य पहाड़ी राज्यों के समान धार्मिक है या व्यक्ति-चित्रों का निर्माण किया गया। कुल्लू के चित्र तीन वर्गों के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) कुल्लू के दरबारी संरक्षण में बने चित्र, (२) कुल्लू के लोकचित्र, तथा (३) कुल्लू के भित्तिचित्र।

कुल्लू के चित्रों की विशेषताएं—कुल्लू शैली के चित्रों की आकृतियों का भारी चेहरा और पुष्ट या भारी चिबुक, विशाल नेत्र, तथा आकृतियों में अबोधता की भावना के कारण यह चित्र सरलता से पहचाने जा सकते हैं। कुल्लू शैली की कुछ विशेषताएं प्रमुख हैं जो निम्न हैं—

(१) इन चित्रों में स्त्रियों की चोली कमर तक बनाई गई है। इस चोली में झालर का भी प्रयोग है और आगे की ओर कोणाकार हैं।
(२) स्त्रियों के वक्षस्थल सपाट और भारी बनाये गए हैं।
(३) पुरुषों के धड़ सर की तुलना में बड़े और अत्यधिक हृष्ट-पुष्ट बनाये गये हैं।
(४) स्त्रियों के सर छोटे, पतले और अन्डाकार बनाए गए हैं।
(५) स्त्रियों को अधिकांश पेशवाज पहने अंकित किया गया है।
(६) कुल्लू शैली के चित्रों में विल्लो (मंजनू) के वृक्ष का प्रयोग अधिक है।
(७) चित्रों के हाशिए लाल, पीली या मटयाली रंग की पट्टी से बनाये गये हैं।

मण्डी की चित्रकला
(मण्डी शैली)

कुल्लू के समीप स्थित मण्डी राज्य में सत्रहवीं शताब्दी के चित्र प्राप्त हुए हैं। जे० सी० फ्रेंच ने 'हिमालयन आर्ट' में मण्डी के राजा सिद्धसेन का चित्र प्रकाशित किया है। सिद्धसेन (१६८६-१७२२ ई०) का चित्र बसोहली शैलीं का है। इस चित्र में सिद्धसेन को अधेड़ावस्था में भीमकाय शरीर वाला दिखाया गया है जिससे यह चित्र १६९० ई० के पश्चात ही बना होगा। मण्डी में बसोहली शैली का प्रभाव शीघ्र आ गया था। कालान्तर में राजा ईश्वरीसेन (१७८८-१८२९ ई०) के समय में कांगड़ा शैली का प्रभाव मण्डी की चित्रकला पर पड़ा। कांगड़ा का चित्रकार सजनू, पहले बताया जा चुका है, मण्डी के राजा ईश्वरीसेन की सेवा में लगभग (१८०६-१८१० ई०) के बीच में आ गया था। उसने इस राजा को हमीरहठ' पर आधारित एक चित्रावली भेंट की थी। मण्डी शैली की सचित्र रामायण की एक प्रति राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में सुरक्षित है जो कपूरगिरि नामक चित्रकार के द्वारा चित्रित है।

१८२६ ई० में मण्डी के राजा जालिमसेन ने जाल्पा और टेरना में काली के मन्दिरों में भित्तिचित्रों का निर्माण करवाया। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक मन्डी में धार्मिक चित्र बनाये गए। १८४६ ई० में मण्डी पूर्णरूपेण अंग्रेजी शासन में आ गया और पाश्चात्य ढंग पर चित्र बनाये जाने लगे, यद्यपि भित्तिचित्रों में मण्डी की परम्परागत चित्रकला चलती रही। राजा बलवीरसेन के समय में मुहम्मदी (मुहम्मद-बख्श) चित्रकार प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ।

जम्मू की चित्रकला
(जम्मू शैली)

जम्मू की स्थिति तथा महत्व—जम्मू राज्य गुलेर से १०० मील उत्तर पश्चिम की ओर स्थित था। यहाँ की कला का अध्ययन करना एक जटिल समस्या है। जम्मू राज्य की स्थापना मध्यकाल में हुई और पन्द्रहवीं शताब्दी तक यह राज्य शक्ति सम्पन्न हो गया। जम्मू राज्य सोलहवीं शताब्दी में उत्तरी पहाड़ियों में सबसे बड़ा राज्य बन गया था। अठाहरवीं शताब्दी में जम्मू के राजा ध्रुवदेवसिंह (१७०३-१७३५ ई०) ने राज्य विस्तार किया और उसके उत्तराधिकारी राजा रनजीतदेव (१७३५-१७८१ ई०) ने भी राज्य विस्तार की नीति को सफलतापूर्ण अपनाया और १७५० ई० तक राज्य की सीमा चिनाव और रावी के बीच विस्तीर्ण क्षेत्र पर स्थापित हो चुकी थी और जम्मू की राजशक्ति का प्रभाव खिस्तवाड़, भाद्रवाह, मनकोट, बन्ध्रलता, बसोहली तथा जसरौटा आदि राज्यों पर स्थापित हो गया था। इस राज्य ने मुगलों के विरुद्ध अफगानों से मिलकर १७४८ ई० में अपनी स्वतन्त्रता सुरक्षित रखी और १७५२ ई० में मुगलों की शक्ति समाप्त होने तक रनजीतदेव नाममात्र को ही दिल्ली से सम्वन्ध बनाए रहा। इस समय में मैदानी भागों में अनेक विप्लव तथा युद्ध हुए, और इस संकटकालीन स्थिति में जम्मू नगर की समृद्धि और अधिक बढ़ गई क्योंकि मुगलों ने ही नहीं वरन् धनी वणिकों ने ही सुरक्षा हेतु जम्मू में शरण प्राप्त की। सिक्खों की शक्ति के उदय से जम्मू को पर्याप्त धक्का लगा और राजा रनजीतदेव को सिक्ख शक्ति के सम्मुख झुकना पड़ा और उसने जम्मू राज्य के सिक्खों को कर देना स्वीकार कर लिया। राजा रनजीतदेव के पुत्र राजा ब्रजराजदेव ने सिक्खों के विरुद्ध विद्रोह भी किया और इस समय तक जम्मू राज्य की महत्ता बनी रही परन्तु ब्रजराजदेव के उत्तराधिकारी के साथ ही यह यश धूमिल पड़ने लगा।

जम्मू शैली तथा चित्र—जम्मू की राजनीतिक परिस्थितियों के आधार पर यह सोचना संगत प्रतीत होता है कि अठारहवीं शताब्दी में जम्मू में चित्रण की कोई शैली अवश्य वर्तमान थी या चित्राकृतियों का निर्माण हो रहा था। जम्मू राज्य का मैदानी क्षेत्रों में सम्बन्ध तथा उसकी आर्थिक स्थिति में समृद्धि के कारण यह सम्भव प्रतीत होता है कि यदि जम्मू के स्थानीय चित्रकारों का उदय नहीं हुआ था, तो अनेक बाहरी राज्यों के चित्रकार जम्मू राज्य के वैभव से आकर्षित होकर आश्रय तथा संरक्षण प्राप्त करने के दृष्टिकोण से जम्मू आये होंगे। परन्तु जम्मू में जो आरम्भिक चित्र प्राप्त हुए हैं वह सब बसोहली शैली के हैं अतः जम्मू के चित्रों के विषय में जानना आवश्यक है। अभी तक लिखित प्रमाणों सहित जम्मू शैली की कोई कलाकृति प्रकाशित नहीं हुई है और जो चित्र आनन्द कुमारस्वामी ने जम्मू के बताए हैं वह

बसोहली के माने गये हैं ।[1] जम्मू के आरम्भिक चित्रों में कुछ अन्त:पुर के दृश्यों के उदाहरण प्राप्त होते हैं और चित्रों में एक ही व्यक्ति कई कार्यक्रमों में व्यस्त दिखाया गया है । इस प्रकार के चार चित्र उदाहरण जो राजा ध्रुवदेव के चतुर्थ पुत्र राजा बलवन्तदेव (बलवन्तसिंह) से सम्बन्धित हैं । आर्चर महोदय ने अपनी पुस्तक 'इन्डियन पेंटिंग इन दी पंजाब हिल्स' --(चित्र फलक ३६ ,३७, ३८, ३९) में प्रकाशित किये हैं । इनमें से प्रथम चित्र में राजा बलवन्तदेव को दरबारियों के मध्य बैठा हुक्का पीते दिखाया गया है । इस चित्र में एक घोड़ा भी बनाया गया है जो राजा बलवन्तदेव के सम्मुख प्रस्तुत किया जा रहा है । द्वितीय चित्र में इसी राजा को प्रार्थना करते अंकित किया गया है । तृतीय चित्र में एक चित्रकार राजा को एक चित्र भेंट करते अंकित किया गया है इस चित्र की पीठिका पर 'राजा बलवन्तदेव' लिखा है । चतुर्थ चित्र में स्पष्ट रूप से दो कागजों के टुकड़ों को चिपकाया गया है । इस चित्र के बाएं भाग में शामियाने में राजा क्षत्र के नीचे अपने सिंहासन पर विराजमान है, और दाएं भाग में लड़कों तथा पुरुषों का एक दल राजा के सम्मुख कत्थक नृत्य कर रहा है । इस दल के पीछे बैठे गवैये भी अंकित किये गये हैं । इन चारों चित्रों में चित्रण शैली एक ही है और किसी में भी देवनागरी लिपि के लेख नहीं हैं । अनुमानत: यह चित्र किसी दरबारी चित्रकार ने बनाए हैं जो दरबार तथा अन्त:पुर से सुपरिचित था । इन चित्रों में राजा शब्द का प्रयोग भी मिलता है जिससे यह निश्चित किया जा सकता है कि अठारहवीं शताब्दी में जम्मू में इस प्रकार के चित्रों की शैली वर्तमान थी ।

इन चित्रों के अतिरिक्त एक अन्य चित्र में टाकारी लिपि में लेख प्राप्त होता है । इस लेख के अनुसार इस चित्र की रचना १७४८ ई० (विक्रम सम्वत् १८०५) में हुई (चित्र संख्या ३५—इन्डियन पेन्टिंग इन दी पंजाब हिल्स—ले० डब्लू० जी० आर्चर— में प्रकाशित) । इस लेख के आधार पर इस चित्र को 'महाराजा श्री बलवन्त-सिंह' का चित्र बताया गया है । लेख से ऐसा प्रतीत होता है कि नैनसुख ने इस चित्र को तीन दिन में तैयार किया था । इस चित्र में राजा को संगीतकारों के दल के साथ अंकित किया गया है और इस चित्र की शैली भी उपरोक्त चार चित्रों जैसी ही है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह चार चित्र भी नैनसुख नामक चित्रकार की

1. इन्डियन पेन्टिंग इन दी पंजाब हिल्स'—ले० डब्लू. जी. आर्चर, पृष्ठ ४५ ।

"No Paintings which are connected with Jammu by written inscriptions have so for been published· while of all the pictures attributed to it by Coomarswamy, the great majority are now-a-days accepted as products of Basohli For Jammu paintinginfact keys to style' are still entirely wanting and it is only by taxing our ingenuity to the utmost that we can hope to rehabilitate it as a school of art"

कृतियां हैं, और नैनसुख ने जम्मू के दरबार में रहकर चित्र बनाए। इसी प्रकार के दो अन्य चित्र प्राप्त हैं जिनमें से एक 'दी आर्ट आफ इन्डिया एण्ड पाकिस्तान' ले० बेसिन ग्रे—फलक ११७ में प्रकाशित हुआ है। इस चित्र की शैली भी उपरोक्त चित्रों से मिलती जुलती है। दूसरे चित्र में एक पहाडी राजा खुले हुए मैदान में शिकार के लिए जा रहा है। इस चित्र की शैली भी पहले चित्र से समान ही है। एक अन्य चित्र जिसमें मियां मुकुन्ददेव का अंकन किया गया है, प्राप्त है। यह चित्र सम्भवत: किसी अन्य राजा या कला प्रेमी के लिए बनाया गया है इस चित्र की शैली सर्वथा भिन्न है, परन्तु केवल कुछ पीछे खड़े सेवकों में नैनसुख के चित्र की आकृतियों से कुछ समानता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नैनसुख की आरम्भिक शैली अपनी निजी विशेषता ग्रहण करने लगती है। आर्चर महोदय ने अपनी पुस्तक 'इन्डियन पेंटिंग इन दी पंजाब हिल्स' में लगभग सोलह ऐसे चित्र प्रकाशित किए हैं जो जम्मू में बनाए गए हैं और इनकी शैली पूर्णतया जम्बू की अपनी निजी अर्जित शैली है। इस विकसित शैली में गुलेर तथा कांगड़ा शैली या बसोहली शैली से कोई भी समानता प्रतीत नहीं होती है परन्तु फिर भी इसमें बसोहली की सपाट रग योजना और गुलेर की प्रवाहपूर्ण रेखा की गति अवश्य दिखाई पड़ती है। निश्चित रूप से नैनसुख के पश्चात जम्मू शैली का एक अपना कला संस्थान स्थापित हो गया। इस शैली के चित्रों की आकृतियों, मुद्राओं, रेखांकन तथा लम्बे जामों में नैनसुख की शैली का रिक्थ विद्यमान है। परन्तु दूसरी ओर चित्र की आकृतियों में गोलाई, बारीकी और कोमलता कम हो जाती है और सपाट, चटक, चमकदार विरोधी रंग, सशक्त रेखा प्रवाह तथा सपाट पृष्ठभूमि दिखाई पड़ने लगती है। इस प्रकार की शैली के अनेक चित्र प्राप्त हैं जिनमें ब्रजराज देव (जम्मू), मियां टिढ़ीमिघालू बोटिया (जम्मू), मियां कैलाशवती बन्द्राल (जम्मू), मियां ब्रजदेव दरबारियों और नृतकियों के साथ, चम्बा के राजा उजागरसिंह का परिचारिकाओं के साथ तथा बच्चों के साथ चित्र, तथा बहादुरसिंह आदि के चित्र प्राप्त हैं। इस प्रकार की जम्मू की एक निश्चित शैली १७५० ई० तक निश्चित रूप से विकसित हो गई थी और १७५० ई० से ही गुलेर के समान इस शैली में अनेक रोमानी या शृंगारिक विषयों का भी प्रचलन होने लगा। इस प्रकार के उदाहरणों में विरहणी मृग के साथ, राधाकृष्ण, तथा स्त्री भजन सुनते हुए आदि चित्र प्राप्त हैं।

जम्मू के चित्रकारों ने अन्य राज्यों के राजाओं के व्यक्ति चित्र भी बनाये, जिनमें राजा घमंडचन्द (कागड़ा) तथा राजा संसारचन्द (कागड़ा) के अनेक चित्र उपलब्ध हैं। राजा संसारचन्द को सिक्खों के साथ चित्रित किया गया है, जिससे अनुमान होता है कि राजा को चित्रकारों ने रनजीतसिंह के दरबार में देखा होगा। परन्तु शीघ्र ही इन चित्रों में सिक्ख प्रभाव आने लगा और चित्रों की लिखाई में विकृति झलकने लगी। इस समय तक सिक्ख शासकों के दरबारी चित्रकार कांगड़ा शैली अपना चुके थे और इसी समय कांगड़ा शैली का जम्मू कला पर भी प्रभाव पड़ा।

जम्मू शैली के चित्रों की विशेषतायें—जम्मू शैली के वास्तविक चित्र नैनसुख के पश्चात के मानना चाहिए क्योंकि नैनसुख की शैली मुगल है । अत: नैनसुख से परवर्ती चित्रों के आधार पर चित्रों की विशेताओं का सूक्ष्म अवलोकन करना उचित होगा ।

मानव आकृतियां – जम्मू शैली के चित्रों की मानव आकृतियां बसोहली शैली या चम्बा शैली की आकृतियों से मिलती जुलती है, परन्तु उनमें बसोहली शैली जैसे नुकीलापन लिये कोणोत्तर आकारों को ग्रहण नहीं किया गया है और चित्रकार ने आकारों की गोलाई को महत्व प्रदान किया है। सेवकों को राजा से आकार में छोटा बनाया गया है और सामान्यता आकृतियाँ हृष्ट-पुष्ट हैं ।

इन चित्रों की मानव आकृतियों में गठनशीलता, उभार और गोलाई को दिखाने के लिये छाया का प्रयोग नहीं किया गया है बल्कि सपाट रंगों से ही आकृतियों को संजोया गया है । प्रायः चित्रों की पृष्ठिभूमि भी सपाट रंग के बनाई गई है ।

रंग तथा रेखा —जम्मू शैली के चित्रों में बसोहली के समान सपाट और विरोधी रंगों का प्रयोग चित्रों की एक बिशेपता है । वृक्ष, पशु-पक्षी का अंकन भी बसोहली जैसा ही है । चित्रों की सीमारेखा प्रवाहपूर्ण, बलवती और छन्दमय है ।

वेश-भूषा— पुरुष आकृतियों को टखनों तक लम्बा जामा पगड़ी लगाए बनाया गया है, स्त्रियों का पहनावा लंहगा, चोली, और परदर्शी ओढ़नी है । कपड़ों इत्यादि में सुन्दर आलेखन बनाये गए है परन्तु भवन मुगल शैली का है ।

पून्छ की चित्रकला
(पून्छ शैली)

पून्छ की स्थिति तथा इतिहास—पून्छ एक छोटा सा राज्य था जो जम्मू से सुदूर उत्तर-पश्चिम में स्थित था। इस राज्य का पड़ोसी राज्य काशमीर था। सत्रहवीं शताब्दी में मुगल सम्राटों का दरबार जब काशमीर में लगता था तो मुगलों के शाही-काफिले इसी छोटे राज्य के मार्ग से होकर अपनी यात्रा करते थे । पून्छ में अन्य पहाड़ी राज्यों से विपरीत पन्द्रहवीं शताब्दी में ही शासक परिवार मुसलमान था, क्योंकि इस राज्य के एक हिन्दू शासक ने, जो जोधपुर के राठौरवंश का राजपूत था, इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। सिक्ख शक्ति के उदय के साथ ही उथल-पुथल आरम्भ हो गई और सिक्खों ने १८१३ ईसवी में पून्छ राज्य को छीन लिया और इस प्रकार पुन: हिन्दू राज्य-व्यवस्था स्थापित हुई । लगभग १८४४ ईसवी तक सिक्ख राजा गुलाबसिंह पून्छ में न रह सका और सिक्ख शासकों के सर्वप्रथम मोती-सिंह (१८८६-१८९७ ई०) ने ही पून्छ को महत्व प्रदान किया इसी प्रकार मुसल-मान राज्य का स्थान पुन: हिन्दू राज्य ने ग्रहण कर लिया परन्तु इस समय तक पून्छ के अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में मुसलमान धर्म का प्रचार हो चुका था और जनता मुसलमान धर्म ग्रहण कर चुकी थी जबकि शासक वर्ग हिन्दू आ गया ।

पून्छ के चित्र—जे० सी० फ्रेंच ने १६२२ ई० में पून्छ यात्रा के समय कुछ भित्तिचित्र राजा के अंतःपुर के महल की दीवारों पर काँगड़ा शैली में बने पाये थे, जो राधा तथा कृष्ण के प्रेम-विषयों पर आधारित थे। इन चित्रों की शैली विशिष्ट थी। उनके विचारानुसार 'यह चित्र १८२० ई० के बाद के है।'[1] परन्तु फ्रेंच महोदय इन चित्रों के छाया चित्र नहीं ले सके अतः अब इन चित्रों का अनुमान लगाना कठिन है और इन चित्रों की विशेषताओं का उल्लेख नहीं किया जा सकता। परन्तु फिर भी फ्रेंच महोदय की सूक्ष्म दृष्टि के आधार पर यह निश्चय किया जा सकता है कि उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में इस पिछड़े हुए क्षेत्र में दक्षिणी पहाड़ी राज्यों से कला पहुंची।

पून्छ की चित्रकला के आरम्भिक चित्र-उदाहरणों में से प्राप्त चार सेन्ट्रल म्युजियम लाहौर (पाकिस्तान) में हैं। यह चित्र पून्छ में प्राप्त हुए थे। इन चित्रों में १७५५ ई० की गुलेर शैली से अधिक समानता है। गुलेर के चित्रकार काँगड़ा और चम्बा राज्य में लगभग १७७५-१७८० ई० के मध्य राजाश्रय प्राप्त करने के लिये पहुंचे, परन्तु सम्भवतः कुछ चित्रकार इससे पूर्व ही लगभग १७७० ई० के समय में सुदूर उत्तर-पश्चिम की ओर गये और इसी समय कुछ चित्रकार चम्बा में पहुंचे। परन्तु पून्छ में प्राप्त चित्र-उदाहरणों से प्रतीत होता है कि लगभग १७६० ई० के पश्चात गुलेर शैली का एक चित्रकार पून्छ में बस गया था और उसने यहां की स्थानीय चित्रशैली को प्रभाविन किया।[2]

पून्छ शैली पर गुलेर का प्रभाव—गुलेर शैली का प्रभाव लाहौर संग्रह के तीन अन्य चित्रों में भी दिखाई पड़ता है। आर्चर महोदय ने इसी प्रकार की शैली विक्टोरिया एन्ड अलवर्ट म्युजियम के चित्रों में पाई।[3] इन चित्रों में शृंगारिक विषय, शारीरिक सौन्दर्य, भवन, प्रकृति और चित्र-विधान में गूलेर शैली से समानता है। परन्तु पून्छ के चित्रों में भृकुटियां अधिक वक्रीय आकार लिये हैं, नाक नक्शा अधिक सुन्दर है और नाक लम्बी है। स्त्री आकृतियां लम्बी होते हुए भी गुलेर शैली के समान है। विक्टोरिया एन्ड अलवर्ट म्युजियम के चित्रों में आकाश कालापन लिये भूरे रंग से बनाया गया है, तथा मैदानी और पहाड़ी प्रदेशों के बनाने में चमकदार

1. 'इन्डियन पेंटिंग इन दी पंजाब हिल्स' -- ले० डब्लू० जी० आर्चर, पृष्ठ ७१ तथा ६२।
   I am greatly indebted to Mr. J. C. French for supplying me with this oral information.'
2. 'इन्डियन पेंटिग इन दी पंजाब हिल्स'—ले० डब्लू० जी० आर्चर, पृष्ठ ७२। टिप्पणी परन्तु आर्चर महोदय ने यह धारणा चित्रों में गुलेर शैली के अत्यधिक प्रभाव या गुलेर शैली से अधिक समानता देखकर ही निर्धारित की है।
3. 'इन्डियन पेंटिंग इन दी पंजाब हिल्स'—ले० डब्लू० जी० आर्चर, पृष्ठ ७२।

सफेद और समूर रंग का प्रयोग किया गया है। यद्यपि पून्छ के चित्रों में गुलेर शैली का प्रभाव दिखाई पड़ता है परन्तु फिर भी पून्छ में प्रचलित स्थानीय शैली की कुछ अपनी विशेषतायें भी चित्रों में बनी रहीं।

पून्छ की स्थानीयता - पून्छ शैली की स्थानीय विशेषतायें यत्र-तत्र चित्रों में बिखरी दिखाई पडती हैं। एक प्रमुख विशेषता यह है कि कुछ चित्रों में स्त्री सेविकाओं को एक ऊँची टोपी लगाये हुए अंकित किया गया है, जिससे यह चित्र मुसलमान परम्परा के द्योतक प्रतीत होते हैं। एक चित्र में मुसलमान चित्रकार का लेख जमीन मुसव्विर फारसी में अंकित है। इस प्रकार के मुसलमान चित्रकारों के लेख अन्य पहाड़ी राज्यों के चित्रों में प्राप्त नहीं होते। सम्भवतः पून्छ में मुसलमान राज्य होने के कारण यहाँ पर चित्रों में इस प्रकार के लेख दिखाई पड़ते हैं। परन्तु इन चित्रों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पून्छ राज्य में १८७५ ई० तक अवश्य ही एक उन्नत शैली में चित्र बन रहे थे और पून्छ राज्य की शैली पूर्णतया अपना निजी रूप ग्रहण कर चुकी थी।

श्री आर्चर ने इस शैली के कई चित्र प्रकाशित किये हैं जो १७५० ई० और १७८१ ई० के मध्य के हैं और निश्चित रूप से पून्छ शैली के हैं। इन चित्रों में दरबार, नाच और देवियों, संतों तथा नायिका-भेद पर आधारित विषयों का चयन किया गया है। पून्छ की चित्रकला के उदाहरण अभी तक किसी संग्रह में नहीं पहुंच सके हैं और अधिकांश चित्र स्थानीय महलों, दफ्तरों आदि में ही हैं, इस कारण पून्छ की कला का ज्ञान अभी अपूर्ण है।

पून्छ की चित्रकला की विशेषतायें—पून्छ चित्रकला को कांगड़ा या गुलेर शैली की उत्तराधिकारणी मानना अधिक संगत न होगा क्योंकि स्पष्ट रूप से उसकी अपनी विशेषतायें चित्रों में परिलक्षित होती हैं।

पून्छ शैली के चित्रों में स्त्रियों को लम्बा तथा छरहरे बदन वाला बनाया गया है और उनके सर गोल तथा मस्तक ऊंचे हैं। स्त्री आकृतियों की नाक लम्बी तथा पतली हैं, मुद्रायें और भंगिमायें ओजपूर्ण हैं, नेत्रों को कमलाकार और उल्लासपूर्ण तथा चमकदार बनाया गया है। स्त्रियों के घाघरे नोकदार बनाये गये हैं, और चित्रों की रंगयोजना पूर्णरूप से स्थानीय प्रभाव लिये हैं। झील के अंकन में कालापन लिये पीले, जोगिया, हरे या गहरा लालपन लिये भूरे रंग का प्रयोग है। कपड़ों में गुलेर तथा काँगड़ा की रंग-योजना के अतिरिक्त गहरा बैंगनी तथा गहरा हरा रंग भी लगाया गया है। पर्वतों के अंकन में सुनहलीपन लिये ग्रे तथा कालापन लिये भूरे रंग का भी प्रयोग किया गया है। इन चित्रों में सबसे अधिक विचारणीय बात यह है कि यह चित्र सपाट रंग के प्रयोग से बनाये गये हैं। यह सपाट रंग के प्रयोग की परम्परा पहाड़ी राज्यों की चित्रकला के आरम्भिक चित्र-उदाहरणों में ही दिखाई पड़ती हैं परन्तु शीघ्र ही मुगल प्रभाव लाने के लिये छाया का प्रयोग किया जाने लगा। इस

सपाट रंग के प्रयोग के कारण पून्छ के चित्रों की आकृतियों, झीलों, तालाबों तथा मैदानी आदि में गहराई या त्रिघाती भावना नहीं दिखाई पड़ती है।

पून्छ के चित्रों में जम्मू शैली के चित्रों के समान ही भवन में फाखतई रंग का प्रयोग किया गया है, परन्तु पून्छ के चित्रों में भवन को बहुत भव्य बनाया गया है।

टिहरी (टेहरी) गढ़वाल की चित्रकला
(गढ़वाल शैली)

गढ़वाल की स्थिति—हिमालय के ऊँचे शिखरों में स्थित छोटे से गढ़वाल राज्य की धार्मिक दृष्टिकोण से अत्यधिक महिमा है। इस हिमाच्छादित पर्वतों वाले प्रदेश से जमनोत्री तथा भागीरथ के पावन स्रोत प्रवाहित होते हैं और इसी प्रदेश में बद्रीनाथ तथा केदारनाथ के तीर्थधाम स्थित हैं। प्रत्येक वर्ष असंख्य पर्यटक इन तीर्थ-धामों की धूलि को मस्तक से चढ़ाने और निर्मल सरित-प्रवाहों में स्नान कर आत्म-विशुद्धि करने के लिये श्रद्धा और भक्ति से पर्वतों की टेढ़ी-मेढ़ी, ऊँची-नीची दुर्गम पगडंडियों पर पैदल चढ़ते दिखाई पड़ते हैं। गढ़वाल राज्य पंजाब के उत्तरी भाग से मिला हुआ है।

ऐतिहासिक महत्व—इस राज्य का ऐतिहासिक महत्व १६५८ ईसवी से आरम्भ होता है, जबकि दाराशिकोह के सुन्दर और उत्साही पुत्र सुलेमान शिकोह ने औरंगजेब से बचने के लिये गढ़वाल के राजा पृथ्वीशाह (पिरथीपतशाह) की शरण ली। मुगल सम्राट औरंगजजेव ने अपने पिता सम्राट शाहजहां को आगरा के दुर्ग में बन्दी बनाकर अपने अग्रज युवराज दारा का अधिकार हस्तगत कर लिया। इस समय दारा लाहौर में था और उसका पुत्र युवराज सुलेमान शिकोह इलाहाबाद में था। सुलेमान शिकोह ने मैदानी क्षेत्रों में फैली औरंगजेब की सेना से बच निकल पहाड़ी मार्गों से यात्रा करके अपने पिता से मिलने की योजना बनाई। उसने नगीना पहुंचकर गढ़वाल नरेश पृथ्वीशाह (१६४६-१६६०ई०) को लिखा है कि वह उसको श्रीनगर (गढ़वाल की राजधानी) में शरण प्रदान करे। पृथ्वीशाह ने युवराज को निमन्त्रण भेज दिया परन्तु साथ ही वह सूचना भेज दी कि गढ़वाल राज्य में अन्न खाद्य पदार्थ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हैं, अतः आप कम व्यक्ति लायें तो मैं आपका स्वागत करूँगा। शाहजादा सुलेमान शिकोह अपने अतिरिक्त साथियों को नगीना छोड़कर केवल सत्रह मुसाहिबों और सेवकों सहित गढ़वाल पहुंचा। मुगल युवराज का यह काफिला १६५८ ई० के अगस्त मास में गढ़वाल पहुँचा था। गढ़वाल नरेश पृथ्वीराज शाह ने युवराज का स्वागत किया और उसने अपने पूर्वजों का महल ठीक कराकर युवराज के लिए आवास की व्यवस्था कर दी। राजा ने इस युवराज का इतना अधिक सत्कार किया कि यह भी कहा जाता है कि राजा इस युवराज को अपनी राज-कुमारी भी देने के लिये तैयार हो गया। युवराज सुलेमान शिकोह के इस सत्रह आदमियों के दल में विख्यात चित्रकार मोलाराम या मौलाराम के पूर्वज श्यामदास, और उसका पुत्र हरदास चित्रकार भी थे। यह दोनों व्यक्ति दिल्ली के चित्रकार थे।

इसी वर्ष के अन्तिम भाग में औरंगजेब समस्त झगड़ों से निपट चुका था अतः उसका ध्यान सुलेमान शिकोह की गतिविधि की ओर गया और उसने राजा जयसिंह के पुत्र कुंवर रामसिंह को सेना सहित सुलेमान शिकोह को पकड़ने भेजा। गढ़वाल का बूढ़ा राजा अपने पुत्र मेदनीशाह की शक्ति के कारण दब चुका था। मेदनीशाह के खर्चे अधिक बढ़ चुके थे। मेदनीशाह (१६६०-१६८६ ई०) के इन खर्चों को मुगल सम्राट बढ़ावा दिये हुये था, अतः मेदनीशाह के अत्यधिक प्रभुत्व तथा दबाव के कारण राजपूत परम्परा के विरुद्ध वृद्ध राजा को विवश हो शरणार्थी रक्षा के निश्चय से हटना पड़ा। कुंवर रामसिंह के नेतृत्व में मुगल सेना पहाड़ी प्रदेश के नीचे रामगंगा के तट पर पाटीलदूण में अपना पड़ाव डाल दिया था। इसी समय कुंवर रामसिंह ने सुलेसान शिकोह को मुगल सेना के हाथों सौंपने का सन्देश गढ़वाल नरेश के पास भेज दिया। बूढ़ा राजा इस विशाल सेना का सामना नहीं कर सकता था। गढ़वाल नरेश ने औरंगजेव की सेना से युद्ध करने का बहाना बनाकर सुलेमान शिकोह को अपनी सेना का सेनापति नियुक्त कर गढ़वाली सैनिकों के साथ पाटली-दूण भेज दिया।[1] इस प्रकार छल से राजा ने सुलेमान शिकोह को कुंवर रामसिंह के हाथों सौंप दिया, परन्तु उसके साथ आये हिन्दू चित्रकार श्यामदास तथा हरदास, गढ़वाल की राजधानी श्रीनगर, जो गंगा के बायें तट पर स्थिति है, में बस गये। बाद में अनेक रूहेला चित्रकार बरेली से १७७४ ई० में रूहेला पराजय के पश्चात् गढ़वाल और यहाँ वस गये। गढ़वाल नरेशों में पृथ्वीशाह के बाद दलीपशाह तथा प्रदीपशाह के पश्चात् फतेहशाह (१६८४-१७१४ ई०) यशस्वी चित्र प्रेमी शासक हुआ।

गढ़वाल की चित्रकला—इस प्रकार मुगल युवराज के साथ सर्वप्रथम यह दो हिन्दू चित्रकार श्यामदास तथा हरदास गढ़वाल में आये। सम्भवतः इन चित्रकारों की शैली राजस्थानी थी क्योंकि इनके वंशज मोलाराम के बनाये चित्र राजस्थानी शैली के हैं। यह चित्रकार सुनार जाति के थे और सम्भवतः सुनारगीरी का कार्य भी करते थे।

गढ़वाल राज्य में हरदास के पुत्र हीरानन्द ने सर्वप्रथम चित्रकारी का कार्य आरम्भ किया। इसी चित्रकार वंश में हीरानन्द के पुत्र मंगतराम तथा परपौत्र मोलाराम ने गढ़वाल के चित्रकारों में अत्यधिक ख्याति प्राप्त की। मोलाराम का जन्म १७४३ ई० में हुआ। मोलाराम के छः भाई और थे परन्तु उनके विषय में ज्ञात नहीं। मोलाराम चित्रकार की अपेक्षा एक अच्छा कवि था और उसके द्वारा रचित चित्र तथा काव्य दोनों के उदाहरण प्राप्त हैं।

मोलाराम—मोलाराम (१७४३-१८३३ ई०) चित्रकार का सबसे पहला

1. 'कला अंक' सम्मेलन पत्रिका—'कवि और चित्रकार मोलाराम'—ले० मुकुन्दीलाल, पृष्ठ २३१ (बैरिस्टर मुकन्दीलाल ने गढ़वाल शैली के बहुत से चित्रों का निजी संग्रह तैयार करके इस शैली को प्रतिष्ठापित करने में महत्वपूर्ण कार्य किया है।)

संरक्षक राजा गढ़वाल का राजा जयकीर्तिशाह था। राजा जयकीर्तिशाह ने मोलाराम के लिए साठ ग्राम जागीर प्रदान की और वह मोलाराम को पाँच रुपये दैनिक वेतन के रूप में देता था।[1] मोलाराम अपने चित्रों पर विवरण, नाम तथा समय आदि अंकित कर देता था। मोलाराम ने नायिकाओं के अनेक चित्र बनाये हैं।

संकट काल—राजा जयकीर्तिशाह बहुत उदार तथा निर्बल शासक था अतः उसके पिता ने १७७२ ई० में कुमायुं का राज्य उसके छोटे भाई प्रद्युम्नचन्द (प्रद्युम्न शाह) के हाथ में पूरक शासक के रूप में सौंप दिया। परन्तु गढ़वाल पर एक भयानक विपत्ति आई और १८०३ ई० में नेपाल से गुरखा आक्रमणकारियों की एक घटा टिड्डी-दल के समान उमड़ पड़ी। गढ़वाल नरेश ने रक्षा हेतु युद्ध आरम्भ कर दिया और देहरादून से बारह मील की दूरी पर स्थित खारबार नामक स्थान पर गुरखाओं से लड़ते हुए जनवरी मास १८०४ ई० में प्रद्युम्नचन्द (प्रद्युम्नशाह) वीरगति को प्राप्त हुआ। इस युद्ध के पश्चात गढ़वाल गुरखाओं के हाथ में आ गया। गुरखाओं ने गढ़वाल पर ग्यारह वर्ष तक लौहदण्ड में शासन किया। गुरखाओं ने अनेक विध्वंश किये और सम्भवतः गढ़वाल के राज-संग्रह के चित्र आदि भी नष्ट हो गये। इस समय गढ़वाल की आबादी लगभग तीन लाख थी जिसमें दो लाख व्यक्तियों को दास बनाकर बेच दिया। १८०३ ई० में गुरखा आक्रमण के कारण गढ़वाल के राज्य परिवार ने श्रीनगर को छोढ़ दिया था। १८१५ ई० में अंग्रेजों की सैन्य सहायता से राजा सुदर्शनशाह ने गुरखाओं को परास्त कर आधा टिहरी गढ़वाल पुनः प्राप्त कर श्रीनगर से लगभग तीन मील की दूरी पर भागीरथी तथा भिलंगना सगम पर टिहरी में अपनी नवीन राजधानी स्थापित कर ली। राजा सुदर्शनशाह (१८१५-१८५६ ई०) के चाचा प्रीतमशाह का चित्र-प्रेम प्रगाढ़ था और श्रीनगर के मोला-राम की चित्र में अभ्यास हेतु आया करते थे। प्रीतमशाह के पश्चात गढ़वाल राजवंश के राजा केशरसिंह, चित्रसिंह, वीरेन्द्रसिंह आदि अपने मनोरंजन के लिए मोलाराम तथा अन्य चित्रकारों से चित्र बनवाते रहे। परन्तु गढ़वाल की शैली की विशेषताओं को न प्राप्त कर सके और इन चित्रों की शैली निम्न कोटि की थी। मोलाराम के चित्रों में— १. मोर प्रिया, २. नायिका तथा चकोर, ३. राजा ललित-शाह और मोलाराम, ४. राधाकृष्ण, ५. नृसिह, ६. वासक-सज्जा, ७. प्रद्युम्न शाह भाई के साथ, ८. खंडिता, ९. घोड़े पर सवार जयदेव बजीर, १०. मयुर मुखी तथा ११. गोपी आदि हैं।

---

1. 'मोलाराम' के शब्दों में गढ़वाल इतिहास—संग्रहकर्ता मुकन्दीलाल—कला अंक।

श्यामदास अरु हरदास ही। पिता पुत्र दोउ राखे पास ही ॥
तूंवर जान दिवांनहिं जाने। राखे हित सौ अत मन माने ॥
तब सौं हम गढ़मांझ रहाये। हमरे पुरखा या विधि आये ॥
तिनके वंश जन्म हम धारा। मोलाराम है नाम हमारा ॥
सुनो चोतरा साहब काजी। तब सौ गढ़महिं रहे ये राजी ॥
पांच रुपपा रोज लगाओ। साठ गाँव जागीर दे दीने ॥
अपने वह उस्ताद हि कीने। पढ़ी फारसी तिनके पास हि ॥
रहे होय जी तिनके पास ही ॥

गढ़वाल के चित्रकार तथा मोलाराम के चित्र --सुदर्शनसिंह (१८१५-१८५६ ई०) पवित्र और धार्मिक विचार का व्यक्ति था और उसको कला तथा साहित्य में अनन्य रुचि थी। वह स्वयं एक लेखक था और उसने अपनी स्मृतियां भी लिखी हैं। उसने मोलाराम और उसके साथी मानूक तथा चैतू को भी संरक्षण प्रदान किया। इन चित्रकारों ने हिन्दू ग्रन्थों और पुराणों आदि पर चित्र बनाये, परन्तु मोलाराम के विषय में आनन्द कुमार स्वामी ने लिखा है कि—"उसको झूठी ख्याति प्राप्त हुई। मोलाराम को यह ख्याति इस कारण भी प्राप्त हुई, कि उस समय परचित पहाड़ी चित्रकारों में केवल वह ही जीवित रह गया था। अठाहरवीं शताब्दी के अन्तिम चरण तथा उन्नीसवीं शताब्दी के बहुत से रेखाचित्र तथा रंगीन चित्र जो पहाड़ी शैली के हैं त्रुटि से मोलाराम के नाम से जोड़ दिये गये हैं।" अत: चित्रों के पुनः अध्ययन की आवश्यकता है। १९१०-११ ई० में आयोजित इलाहाबाद की प्रदर्शनी में डा० आनन्द कुमारस्वामी ने मोलाराम के छ: चित्र खरीदे। बैरिस्टर मुकुन्दी लाल के अनुसार मोलाराम के संग्रह में उसके पिता मंगतराम, पितामह हीरानन्द और पड़पितामह श्यामदास तथा उसके अपने पुत्र ज्वालाराम, प्रपौत्र हरीराम तथा शिष्य ज्वालाराम तथा चैतू के बनाये हुये सहस्त्रों चित्र थे। यह निश्चित है कि मोलाराम के पास अनेक चित्रकारों के चित्रों का खासा संगह था। वह सम्भवत: इन चित्रों पर अपना नाम डाल देता था क्योंकि मोलाराम के प्रपौत्र बालकराम ने लखनऊ में आयोजित 'आल-इन्डिया एक्जीवीशन में १९२५ ई० के जनवरी मास में मोलाराम के जो रंगीन रेखा-चित्र प्रदर्शित किये वह नितान्त भद्दे और बेकार थे, और उसके पितामह के नाम से जोड़ने योग्य नहीं थे। मुकुन्दीलाल बैरिस्टर ने मोलाराम के कुछ चित्रों की प्रशंसा की है, परन्तु जिन चित्रों को उन्होंने मोलाराम का माना है उनमें से कुछ सम्भवत: मोलाराम के बनाये नहीं हैं।[1] मानकू तथा चैतू की कृतियों को देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह मोलाराम के शिष्य नहीं थे बल्कि मानकू नैनसुख का पुत्र मानकू, गुलेर का चित्रकार था और उसके बनाये चित्र राजा अनिरुद्धचन्द के समय में गढ़वाल आ गये थे अथवा वह स्वयं भी गढ़वाल आया। चैतू नामक चित्रकार को नैनसुख के पुत्र कुशला के पौत्र गुरुदास का पुत्र माना गया है। परन्तु यह भी हो सकता है कि यह दोनों गढ़वाल के चित्रकार ही हों क्योंकि मानकू तथा चैतू नाम बहुत प्रचलित नाम थे।

एन० सी० मेहता ने गढ़वाल के राजा नरेन्द्रशाह से प्राप्त एक चित्राधार (एलबम) का अध्ययन करते समय मानकू नामक चित्रकार का नाम 'राधा कृष्ण' के एक भद्दे चित्र पर संस्कृत के छन्द में पाया। मानकू को कार्ल खण्डालावाला ने कांगड़ा का चित्रकार माना है और उनका मत है कि उसने गढ़वाल में चित्र बनाये, जो भ्रामक है। उसका नाम एक अन्य चित्र — 'आंख मिचौनी —की पृष्ठिका पर लिखा

1. 'स्टडीज इन इण्डियन पेन्टिंग'—ले० एन० सी० मेहता, पृष्ठ ४६।

मिलता है। यह चित्र रेखांकन, रंग संयोजन तथा वातावरण की दृष्टि से उत्तम है और उन्होंने गुलेर शैली का माना है। इस चित्र में चांदनी रात्रि में कृष्ण तथा ग्वाला 'आंख मिचौनी' का खेल खेलते दिखाये गये हैं। एक ग्वाल-बालक ने कृष्ण की आंखों को हाथ से ढक रखा है और छुपने के लिए पीछे देख रहा है —कृष्ण उसका हाथ हटा कर सब देख रहे हैं। यह चित्र भी वातावरण तथा रचना की दृष्टि से गुलेर कांगड़ा शैली का नहीं है।

मानूक के समान चैतू के विषय में भी अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हो पाई है। उसका नाम एन० सी० मेहता संग्रह के एक चित्र 'यादव-स्त्रियों का अपहरण' पर अंकित है। इस चित्र का रेखांकन उत्तम है और चित्र में एक आकृति का डेढ़ चश्म चेहरे को छोड़कर शेष सब आकृतियों के चेहरे सवाचश्म बनाये गये हैं। चैतू के बनाये हुए कुछ चित्र श्री पी० सी० मनक संग्रह तथा 'भारत कला भवन', काशी के संग्रह में सुरक्षित है। उसके चित्र रेखा,शैली तथा वर्ण विधान के कारण पहचाने जा सकते है। यदि वह नैनसुख का वंशज था तो मानकू से पर्याप्त छोटा और परवर्ती होना चाहिए और मोलाराम से भी परवर्ती होना चाहिए। चैतू के कुछ भद्दे चित्र उपलब्ध है जो पौराणिक कथा रुकमिणी-प्रणय पर आधारित हैं। एन० सी मेहता के अनुसार यह चित्र चैतू की आरम्भिक रचनाएं हैं जो भ्रामक विचार है। अनुमानतः यह चित्र उसने गढ़वाल के राजघराने के लिये नहीं बल्कि किसी साधारण कलाप्रेमी के लिए बनाये और वह गढ़वाल का चैतू था। इन चित्रों का कागज, रंग तथा जिल्द, जिसमें यह चित्र बंधे हैं, बहुत निम्न कोटि के हैं और गढ़वाल के हैं। उसके दो उत्तम चित्र 'सती का तप' और महादेव की सभा' क्रमशः श्री मनक और 'भारत कला भवन' संग्रह में सुरक्षित है। यह चित्र शैली की दृष्टि से रुक्मिणी-प्रणय कथा के चित्रों में बहुत उत्तम है, और इनमें चैतू की कला शैली की समस्त विशेषताओं का पूर्ण रूप से विकास दिखाई पड़ता है। चैतू ने अपने चित्रों में प्राकृतिक दृश्यों को अधिक महत्व नहीं दिया है। उसकी आकृतियों में सरल रंग और रेखांकन में छन्दमय गोलाई है। उसको रेखा पर पूर्ण अधिकार था और उसने शक्तिशाली रेखा का प्रयोग किया है यह सारी विशेषताएं गुलेर शैली के प्रतिकूल हैं। उसने अपने चित्रों में अलंकरण की अपेक्षा विषय को प्रमुखता प्रदान की है। उसने महान पुरुषों की आकृतियों को अनुपात में बड़ा आकार प्रदान किया है। उसका एक अन्य चित्र, जिसमें राम और लक्ष्मण राजधानी अयोध्या को छोड़कर बन जा रहे हैं, सुन्दर है। एन० सी० मेहता ने इस चित्र का विवरण देते समय उसके सरल रंग विधान की ओर संकेत किया है। इस चित्र में सफेद, पीले तथा लाल रंग प्रमुख हैं, जो राजस्थानी शैली के द्योतक हैं। चैतू ने स्त्रियों के कपड़ों की फहरन बड़ी सुन्दरता के साथ दिखाई है। चैतू ने गीत-गोविन्द, बिहारी तथा मतिराम की काव्य रचना पर आधारित चित्र भी बनाये। उसके चित्र गुलेर शैली की अपेक्षा बहुत सशक्त और सरल हैं।

जैसा पहले बताया जा चुका है गढ़वाल में कांगड़ा के राजा अनिरुद्धचन्द के आने से (लगभग १८३० ई० में) कांगड़ा की कला और कलाकर भी सम्भवत: गढ़वाल आ गये। इस प्रकार कांगड़ा के चित्रों का संग्रह भी गढ़वाल में आ गया। गढवाल की पर्वतीय कला पर काँगड़ा कला का गहरा प्रभाव पड़ा और राजा सुदर्शनशाह के काल में स्थानीय प्रतिभा की जागृति हुई।

मोलाराम के पश्चात उसके वंश में चित्रकला का व्यवसाय चलता रहा और मोलाराम के पुत्र ज्वालाराम (१७८८-१८०८ ई०), पड़पौत्र तुलसीराम, हरीराम तथा बालकराम तक इस परिवार में वंश परम्परागतरूप से चित्रकला का व्यवसाय चलता रहा। तुलसीराम की मृत्यु १९५० ई० में हुई और साथ ही चित्रकला भी इस वंश से लोप हो गई। अनुमानत: गढ़वाल शैली के चित्रों का अच्छा संग्रह गढ़वाल के स्व० नरेश नरेन्द्रशाह के उत्तराधिकारी महाराजा मानवेन्द्रशाह के पास सुरक्षित है, वैसे कुछ चित्र स्व० बैरिस्टर मुकुन्दीलाल के निजी संग्रह में भी हैं।[1] गढ़वाल शैली के कुछ चित्र 'भारत कला भवन' काशी में सुरक्षित हैं। देहरादून निवासी कैप्टेन सूरबीर सिंह के पास भी गढ़वाल शैली की कृतियां बताई जाती है। १७७४ ई० में रूहेला सरदार हाफिज रहमत खां के पतन के पश्चात बरेली, रामपुर, धामपुर, नजीबाबाद के रूहेला चित्रकार भी गड़वाल में आ बसे थे जिनसे रूहेला प्रभाव भी इस शैली में व्याप्त हो गया था और रूहेला चित्र भी गढ़वाल आ गये जो शैली तथा विधान में सर्वथा भिन्न है और सरलता से पहचाने जा सकते है।

टिहरी गढ़वाल शैली की विशेषतायें

गढ़वाल के चित्र भी कांगड़ा के समान ही लघुचित्र हैं और पहली दृष्टि में कांगड़ा और गढ़वाल के चित्रों को पृथक करना कठिन है, परन्तु फिर भी गढ़वाल की स्थानीय वनस्पति, घरेलू वातावरण और रेखा की विशिष्टता ने गढ़वाल शैली में एक निजत्व स्थापित कर दिया है। गढ़वाल शैली में सरल विधान और शक्तिशाली शिथिल रेखा से अंकित आकृतियां या काली रेखा से अकित आकृतियां उसको कांगड़ा शैली से स्पष्ट पृथक कर देती हैं।

रेखा तथा मानव आकृतियां--गढ़वाल शैली के चित्रों में आकृतियों को कांगड़ा शैली की अपेक्षा सरल और सपाट बनाया गया है और रेखा भी उतनी कोमल, गोलाईयुक्त और डौलपूर्ण नहीं है। गढ़वाल शैली के चित्रों में रेखा अधिक बलवती और प्रवाहपूर्ण है। गढ़वाल शैली की आकृतियों में अधिकांश वक्रीय आकृतियों को अपनाया गया है। स्त्रियों को सुन्दर और भावपूर्ण मुद्रा में बनाया गया है। बड़े-बड़े कमल नेत्र, लम्बी सीधी नाक, गोल चिबुक, भावाभिव्यंजक हस्त मुद्रायें तथा अंग भंगिमायें गढ़वाल शैली की स्त्री-आकृतियों की विशिष्टता है। कुछ चित्रों में

1- टिप्पणी—लेखक ने यह चित्र स्व० बैरिस्टर मुकुन्दीलाल के पास बरेली में १९५४-५८ ई० के मध्य उनकी वार्ताक्रमों के साथ देखे। गढ़वाल शैली की कृतियों की खोजबीन में उनका महत्वपूर्ण योगदान है।

काली स्याही से चित्र की ग्राकृतियों की खुलाई की गई है जो रूहेला प्रभाव है ।

वस्त्र तथा ग्राभूषण—स्त्रियों को कोहनी तक ग्रास्तीनदार चोली, लहगा तथा पारदर्शी दुपट्टा ग्रोढ़े बनाया गया है । कपड़ों की शिकनें, तथा मोड़ों को ग्रंकित करने में चित्रकार ने कुशलता का परिचय दिया है । पुरुषों के पहनावे में विशेषतया लम्बा जामा चुस्त तथा पाजामा ग्रौर पगड़ी, पटका ग्रादि बनाये गये हैं ।

भवन तथा घरेलू दृश्य—गढ़वाल शैली के ग्रधिकांश चित्रों में प्रकृति को विशेष महत्व दिया गया है परन्तु किसी-किसी चित्र उदाहरण में रूहेला नक्काशीदार द्वारों का भवन में प्रयोग है । पर्वतों का पृष्ठभूमि में चित्रण किया गया है जिनमें स्थानीयता है । गढ़वाल के चित्रों में घरेलू दृश्य जैसे शयनकक्ष स्नान, शृंगार तथा रसोई ग्रादि से सम्बन्धित दृश्य प्राप्त होते हैं । एक चित्र उदाहरण में यशोदा कृष्ण के लिए भोजन पका रही है । इस चित्र में रसोई का वातावरण सुन्दरता से दिखाया गया है । इसी प्रकार एक ग्रन्य चित्र में प्रात:काल की पूजा का दृश्य ग्रंकित किया गया है जिनमें एक पुजारी को पूजा-उपासना में लीन ग्रंकित किया गया है ।

प्रकृति तथा वनस्पति—गढ़वाल के चित्रकार ने स्थानीय प्रकृति की सुरम्य छवि को ग्रपने चित्रों में बड़ी कुशलता से संयोजित किया है । चित्रकार ने यमुना नदी को मैदान के समतल धरातल पर प्रवाहित सरिता के समान नहीं बनाया है, बल्कि पहाड़ी सरिता यमुना को ऊँचे-नीचे गढ़वाली धरातल के क्षेत्र से प्रवाहित होते दिखाया गया है । चित्रकार ने सरिता के दोनों किनारों पर मैदानी भाग न दिखाकर ऊँचे-ऊँचे, टेढ़े-मेंढ़े गहरे रंग के टीले बनाये हैं, जो वृक्षों से ग्राच्छादित हैं । गढ़बाल के चित्र में ऊँची पर्वत चोटियों को बनाया गया है ।

गढ़वाल शैली के चित्रों में पृष्ठभूमि में दृश्य चित्रण की पद्धति बहुत कुछ मुगल शैली से प्रभावित है । दृश्यों में ग्रधिकाँश ग्राम, गुलमोहर, केला, ग्रमलताश, वट ग्रादि वृक्षों का ग्रंकन किया गया है ।

हाशिये—गढ़वाल शैली के चित्रों में कभी-कभी हाशियों को भी बनाया गया है ग्रौर इन हाशियों में ग्रालेखन बनाये गए हैं जिसमें सोने चाँदी के रंगों का प्रयोग किया गया है कुछ चित्रों में संगरफी तथा सबज (हरे) रंग की पट्टियों से हाशिए बनाये गये हैं जो रूहेला चित्र है ।

गढ़वाल शैली की इन विशेषताग्रों के ग्रतिरिक्त ग्रधिकांश प्रविधि काँगड़ा शैली के समान है ।

विषय—गढ़वाल के चित्रकारों का चित्रण-विषय भागवत पुराण, रामायण, बिहारी सतसई, मतिराम, तथा रागमाला है । इन विषयों के ग्रतिरिक्त चित्रकार ने ग्रनेक देवी देवताग्रों के चित्रों का निर्माण किया है । यहाँ रुकमिणी मंगल, नल दमयन्ती, गीत गोविन्द, नायिका भेद, दशावतार, ग्रष्टदुर्गा, कामसूत्र शिव पुराण, ग्रादि पर भी चित्र बनाये गये ।

टिहरी गढ़वाल के चित्रकारों ने काँगड़ा के चित्रकारों के समान ही राधाकृष्ण का प्रेम-सम्बन्ध लेकर शृंगार के अनेक पक्षों पर चित्र बनाए हैं। अतः गढ़वाल की कला को धार्मिक-कला माना जा सकता है।

काशमीर की चित्रकला
(काशमीर शैली)

काशमीर को धरती का स्वर्ग माना गया है इसका कारण वहां का प्राकृतिक सौन्दर्य है। काशमीर के हिमाच्छादित पर्वत शिखर तथा झीलें लेखकों, कलाकारों तथा शासकों को सदा आकर्षित करती रही हैं। काशमीर की कला तथा साहित्य के विकास में वहाँ के राजाओं ने भी विशेष सहयोग प्रदान किया है। संस्कृत-साहित्य की अनेक रचनाएं काशमीर में ही हुई हैं।

काशमीर की चित्रकला का क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध न होने के कारण काशमीर की चित्रकला का स्वतन्त्र इतिहास प्राप्त नहीं होता। काशमीर में सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी में बनाये चित्र उदाहरण ही प्राप्त हैं। काशमीर शैली अपने स्वतन्त्र रूप में अधिक विकसित नहीं हुई किन्तु उसने राजस्थानी, पहाड़ी तथा मुगल शैलियों के उत्थान तथा विकास में विशेष योगदान दिया।

सोलहवीं शताब्दी के तिब्बती इतिहासकार लामा तारानाथ ने काशमीर के हंसुराज (हंसराज) चित्रकार का उल्लेख दिया है जो एक महान मूर्तिकार तथा चित्रकार था। उसी ने काशमीर शैली को एक नवीन दिशा प्रदान की।

विन्सेन्ट स्मिथ के अनुसार काशमीर के महाराजा ललितादित्य ने ७४० ई० में कन्नौज पर विजय प्राप्त की थी। यह कलानुरागी शासक था। अतः उसने मध्य देश (कन्नौज) के कुछ चित्रकारों को अपने साथ काशमीर निमंत्रित किया। परन्तु रायकृष्ण दास महोदय के अनुसार भारत में राजनीति, धर्म, और संस्कृति सदा से ही स्वछन्द रूप से हर जगह पहुँची है, अतः स्वाभाविक है कि मध्यदेशीय कला भी काशमीर पहुंची होगी। वास्तव में हिन्दू धर्म की सनातन एकता तथा जैन और बौद्ध धर्म की उदारता से धर्म सम्बन्धी प्रचार सामग्री के वितरण के फलस्वरूप मध्य-देशीय कला का काशमीर पर प्रभाव मानना अधिक संगत है।

अकबर कालीन हमजानामा चित्रावली तथा मुगलकला पर काशमीर शैली का पर्याप्त प्रभाव है। रायकृष्ण दास महोदय ने राजस्थानी शैली का जन्म काशमीर शैली से ही माना है। पहाड़ी चित्रों में धोती तथा उत्तरीय पुरुषों की वेश-भूषा काशमीर शैली पर ही आधारित है।

विषय--काशमीर शैली में रामायण तथा कृष्ण लीलाओं के स्फुट चित्र प्राप्त हैं। इन चित्रों के साथ संस्कृत के श्लोक भी लिखे गये हैं। केशवदास के द्वारा रचित

रसिक प्रिया पर भी चवालिस चित्र प्राप्त हैं, जिनको रायकृष्ण दास ने काशमीर शैली का माना है। काशमीर शैली के रागमाला पर ग्राधारित कुछ चित्र बोडलियन लाइब्रेरी, ग्राक्सफोर्ड में सुरक्षित हैं। 'शील भद्र चरित्र' नामक जैन पोथी के चित्र भी काशमीर में ही बनाए गए हैं। इन चित्रों को काशमीर के चित्रकार उस्ताद शालिवाहन (जहाँगीर का दरबारी चित्रकार) ने १६२५ ई० में बनाया था।

काशमीर शैली की विशेषताएं

काशमीर शैली के चित्रों में ग्रधिकांश पीले, लाल या सिन्दूरी रंग का प्रयोग है। पुरुषों की ग्राकृतियों में यथोचित पुरुषत्व की भावना है ग्रौर स्त्रियों की ग्राकृतियाँ ग्रोजपूर्ण, शारीरिक गठनशीलता लिए ग्रौर सुन्दर हैं। जहाँ भी पुरुषों का चित्रण किया गया है उसको धोती तथा उत्तरीय पहने बनाया गया है ग्रौर उनके बादामी शरीर पर विभिन्न ग्राभूषण बनाये गये हैं। काशमीर शैली का रूप-विधान सरल है। काशमीर शैली में लघु चित्रों के ग्रतिरिक्त पट चित्र भी बनाये गये।

★

आधुनिक कला

८

आधुनिक काल की चित्रकला
(१८०० ई० से आज तक)

दिल्ली तथा लखनऊ शैलियां—१७६० ई० में मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही उत्तरी भारत की चित्रकला में सर्वत्र अवनति के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। दिल्ली तथा लखनऊ में कुछ चित्रकार अभी भी चित्रकला का व्यवसाय चलाये हुए थे परन्तु इनकी कृतियां प्राचीन कृतियों की हेय अनुकृतियां थीं। दिल्ली के चित्रकारों ने शीघ्र ही लघु शबीहों का अंकन प्रारम्भ कर दिया और यह शैली उस समय अधिक प्रचलित हो गई। कुछ मुसलमान चित्रकारों के परिवार इस प्रकार के शबीह चित्रों का निर्माण करते रहे। इन चित्रकारों ने विशेष रूप से मुगल सम्राटों की शबीहों का अंकन किया। इन चित्रों में अलंकरण योजना और चित्र में अंकित व्यक्ति का सादृश्य निम्न कोटि का था। यह चित्रकार मुगल शैली के चित्रकारों के वंशज थे और अभी भी इनके रेखांकन में मुगल कला की कुछ विशेषतायें विद्यमान थीं। इन चित्रकारों ने प्राचीन ढंग की सामग्री का चित्र निर्माण में प्रयोग किया और उन्होंने मध्यकालीन ढंग के कागज तथा रंगों का अधिक प्रयोग किया। यह चित्र प्रायः बड़े-बड़े घरानों में स्त्रियां ले जाकर बेचा करती थीं और इस प्रकार चित्रकार बाजारू ढंग से काम करने लगा। इन शबीहों पर गलत नाम भी लिख दिये जाते थे जिससे कि वे सुगमता से बिक जायें। इसी समय दिल्ली में हाथी दांत पर कुछ शबीह चित्र बनाये गये जो कारीगरी तथा भावना में उत्तम हैं। इस प्रकार दिल्ली कलम दम तोड़ने लगी और चित्रकार दूसरे कामों में लगने लगे।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में और उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में लखनऊ में एक भिन्न प्रकार की चित्रण शैली प्रचलित हो गई जो रूमी-कलम के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्कूल ने प्राचीन कला-शैली की कुछ उत्तम विशेषताओं का प्रतिपादन

किया परन्तु इस नवीन शैली पर यूरोपियन कला का भद्दा प्रभाव था। इस स्कूल का प्रमुख विषय शबीह चित्रण था और बहुधा छवि चित्रों में व्यक्ति की वास्तविक सादृश्यपूर्ण आकृति का सफल अंकन हुआ है। चित्र में अन्य साज-समान के चित्रण में अवध की अपनी अनोखी रुचि दिखलाई पड़ती है। इसी समय राजस्थानी कला का भी अधोप्तन हो रहा था।

राजस्थान तथा पंजाब की शैलियां—राजस्थान के प्रमुख नगरों जैसे जयपुर, उदयपुर, नाथद्वार, किशनगढ़ तथा बूंदी आदि नगरों में चित्रकार बाजारू ढंग से धार्मिक चित्र या व्यक्ति चित्र बना रहे थे। यह लघु चित्र विधान तथा शैली में मध्यकालीन परम्परा के अधिक द्योतक थे। परन्तु फिर भी पंजाब के पहाड़ी प्रदेशों में मध्यकालीन जीवन पद्धति जीवित रहने के कारण उन्नीसवीं शताब्दी तक हिन्दू भावना से परिपूर्ण कुछ उत्तम चित्रों का निर्माण होता रहा। पंजाब में लाहौर तथा अमृतसर नगरों में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में सिक्ख चित्रकारों की कृतियां अधिक लोकप्रियता को प्राप्त हुईं। इन सिक्ख चित्रकारों की कृतियों में पूर्व और पश्चिम की कला का अपूर्व समावेश है। कपूरसिंह नामक एक चित्रकार ने अनेक लघुचित्रों का निर्माण किया। इन चित्रों में रेखांकन की कुशलता और गति दर्शनीय है।

पटना शैली—उथल-पुथल के इस अनिश्चित वातावरण में दिल्ली से कुछ मुगल शैली के चित्रकारों के परिवार आश्रय की खोज में भटकते हुये पटना (विहार) तथा कलकत्ता (बंगाल) में जा बसे। यहाँ पर इन चित्रकार परिवारों ने एक विशिष्ट शैली को जन्म दिया, जो पटना या कम्पनी शैली के नाम से प्रसिद्ध है। दिल्ली सल्तनत की औरंगजेब काल में अवस्था बिगड़ने पर अनेक कलाकार दिल्ली छोड़कर नवाब मुर्शिदाबाद के आश्रय में पहुंच गये। नवाब मुर्शिदाबाद ने इन कलाकारों को लगभग चालीस वर्ष तक अच्छा संरक्षण दिया परन्तु अफगान, मराठा, रूहेला और जाट आक्रमणों के कारण तथा कम्पनी के झगड़ों आदि के कारण नवाब की स्थिति खराब हो गयी। इन चालीस वर्षों तक मुर्शिदाबाद कला का केन्द्र बना रहा परन्तु १७५०-१७६० ई० के मध्य कलाकारों को पुन: आश्रय: की खोज में भटकना पड़ा। यह चित्रकार मुर्शिदाबाद छोड़ कर इस सयय पटना होते हुये कलकत्ता जा बसे, इस प्रकार पटना में भी दिल्ली-कलम पहुंची। इसी समय दूसरे कलाकार परिवार भी वहाँ जाकर बस गये।

पटना व्यापारिक केन्द्र था और अंग्रेजी सरकार के अनेक कार्यालय पटना में थे। इस प्रकार अंग्रेजों का वहाँ रहना स्वाभाविक था। यह अंग्रेज अधिकारी इन भारतीय चित्रकारों से अपने लघु व्यक्ति चित्र बनवाते थे और विशेष रूप से भारतीय पशु-पक्षी तथा प्रकृति के चित्रों की मांग करते थे। इस प्रकार के अनेक चित्र कमिश्नर टेलर तथा दूसरे अंग्रेज अधिकारियों ने बनवाये और इंगलैंड भेजे, इसलिये इस शैली को कम्पनी शैली या जान कम्पनी शैली के नाम से पुकारते हैं। इस प्रकार के अनेकों चित्र पटना संग्रहालय तथा विदेशी कला दीर्घाओं में सुरक्षित हैं।

पटना शैली के दो चित्रकारों को वाराणसी के महाराज ईश्वरीनारायणसिंह (१८३५-१८८९ ई०) ने संरक्षण दिया। यह कलाकार लालचन्द और उसका भतीजा गोपालचन्द थे। कहा जाता है यह दोनों काशी के चित्रकार दल्लूलाल के शिष्य थे। यह दोनों चित्रकार पटना शैली में व्यक्ति-चित्र बनाने में निपुण थे।

पटना शैली या कम्पनी शैली के अधिकाँश चित्र राजा, रईसों, जागीरदारों या अंग्रेजों के आदेश पर बनाये गये। इसी समय चित्रकारों ने अबरक के पत्रों पर अतिलघु चित्रों का निर्माण आरम्भ किया।

उन्नीसवीं शताब्दी को पटना शैली के उत्थान का समय माना गया है। इस समय में पटना शैली के चित्रकारों में सेवकराम का नाम प्रमुख है। लाला ईश्वरी प्रसाद (कलकत्ता आर्ट स्कूल के भूतपूर्व उपाध्यक्ष) के पितामह शिवलाल भी पटना के वंश परम्परागत चित्रकार थे। इनके अतिरिक्त हुलासलाल, जयराम दास, झूमकलाल, फकीरचन्द, आदि चित्रकारों का कार्यकाल १८३०-१८५० ई० के मध्य माना गया है। इस समय पटना के चित्रकारों ने फिरका-चित्रों के अतिरिक्त कागज तथा हाथी-दाँत फलकों पर भी चित्र बनाये। पटना शैली के चित्रकारों ने हाथी, घोड़े आदि जानवर, सवारियाँ आदि भी अंकित किये। पटना शैली के चित्रों में जन-साधारण जैसे 'मछली बेचने वाली', 'टोकरी बुनने वाले', 'चक्की वाले' 'लोहार', 'दर्जी', 'सेविका', आदि को भी चित्रित किया गया।

पटना शैली के चित्रों में रेखांकन की कठोरता है और भावना की कमी है, परन्तु आकृति की सीमारेखायें बहुत संतोषजनक बनाई गयीं। कुछ समय तक इन चित्रकारों को ईस्ट इंडिया कम्पनी के यूरोपियन व्यवसाईयों और एंग्लो इण्डियन्स का संरक्षण प्राप्त होता रहा। इन संरक्षकों ने भारतीय तथा यूरोपियन मिश्रित शैली के शबीह चित्रों की मांग की। इन चित्रों में मानव आकृतियों को बहुत कोमलता से चिकना गठनयुक्त और बारीकी से बनाने की चेष्टा की गयी है। इन चित्रों में दिल्ली-कलम की कारीगरी पर्याप्त समय तक बनी रही, परन्तु रंग भद्दे हैं। सामान्यतः भूरे, गन्दे हरे, गुलाबी तथा काले (स्याही) रंगों का चित्रों में प्रयोग किया गया हैं। इस प्रकार के अनेकों चित्र प्राप्त हैं जो 'जान कम्पनी' काल की कला के द्योतक हैं।

दक्षिणी भारत के राज्यों की कला—मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही उत्तरी-भारत की राजनीतिक अवस्था विशृंखलित होने लगी, परन्तु दक्षिणी भारत के अनेक राज्य स्थिर रूप में कला विकास में योगदान प्रदान कर रहे थे। दक्षिणी-भारत में चित्रकला का उत्तरी-भारत की अपेक्षा भिन्न रूप में विकास हुआ। दक्षिण में सोलहवीं शताब्दी से ही फारसी चित्रण शैली प्रचलित थी। सम्भवतः फारसी चित्रकला को तुर्कमान शासकों ने अपने-अपने मुसलमान राज्यों में आश्रय प्रदान किया। इन शैली के आरम्भिक चित्र उदाहरणों में तैमूरिया कला का प्रभाव परिलक्षित होता

है परन्तु कालान्तर में स्थानीय अपभ्रंश तथा राजस्थानी कला के संयोग से इस शैली का रूप परिवर्तित हो गया और यह शैली बहुत कुछ मुगल शैली के समान दृष्टि-गोचर होने लगी, परन्तु फिर भी इस चित्रकला में कुछ नगण्य सी अपनी निजी विशेषतायें स्थाई रूप से प्रचलित रहीं, जिनके फलस्वरूप इस शैली का विकास उत्तरी-भारत की चित्रकला से सर्वथा भिन्न रहा। मुगल साम्राज्य के पतन से चित्रकारों के अनेक परिवार दक्षिण में भी आश्रय की खोज में पहुचे। इन चित्रकारों ने सम्भवत: दक्षिणी शैलियों को बल तथा शक्ति प्रदान की। दौलताबाद तथा औरंगाबाद के चित्रकारों की कृतियां उत्तरी भारत के चित्रकारों की कृतियों की तुलना में छोटी हैं और उनमें वह जीवन तथा गति नहीं है और चित्रों के विषय प्राय: ऐतिहासिक हैं जो समकालीन दक्षिण के शासकों से सम्बन्धित हैं। इन चित्रकारों के वंशज आज भी हैदराबाद तथा निकोण्डा में परम्परागत रूप से कारीगरी आदि के काम करते हैं।

भारत के सुदूर दक्षिणी क्षेत्रों में चित्रकला भिन्न रूप में ही जीवित रही, परन्तु चित्रों की परम्परा तथा शैली उसको उत्तरी भारत की कला से निबद्ध कर देती है। तारानाथ ने दक्षिण की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया है। लामा तारानाथ ने दक्षिण के तीन कलाकारों जय, पराजय, तथा विजय का उल्लेख दिया है। इन चित्रकारों के अनेक अनुयाई थे। दक्षिण की चित्रकला का विकास दो भिन्न-भिन्न संस्थाओं—तंजौर तथा मैसूर—में हुआ।

तंजौर शैली—तंजौर के चित्रकारों की शाखा के विषय में ऐसा अनुमान किया जाता है कि यहाँ चित्रकार राजस्थानी राज्यों से आये। इन चित्रकारों को राजा सरभोजी ने अठारहवीं शताब्दी के अन्त मे आश्रय प्रदान किया। यह चित्रकार हिन्दू थे अत: इस बात की पुष्टि होती है कि राजस्थानी राज्यों की अवस्था खराब होने पर आश्रय की खोज में भटकते हुए यह चित्रकार सुदूर दक्षिण के हिन्दू राज्यों में आकर बस गये। इस प्रकार तंजौर में राजस्थानी चित्रकला पहुंच गयी और राजकीय संरक्षण प्राप्त कर यह कला-शैली पुन: एक स्थानीय शैली के रूप में प्रस्फुटित होने लगी। आरम्भ में इस शैली के चित्रकार बहुत कम थे परन्तु कालान्तर में इनकी संख्या बहुत अधिक हो गयी और तंजौर के अन्तिम राजा शिवाजी (१८३३-५५ ई०) के राज्यकाल में चित्रकारों के अठारह परिवार थे जो हाथी-दांत तथा काष्ठफलक पर चित्रकृतियाँ बनाते थे। काष्ठ-फलकों पर यह चित्रकार जल रंगों के द्वारा चित्र बनाते थे। इन चित्रों में सोने के अतिरिक्त बहुमूल्य हीरे तथा जवाहरात भी लगाये जाते थे। इन चित्रकारों ने मानवाकर व्यक्ति चित्र तैल रंगों में बनाये। यह चित्र आज तंजौर के राजमहल तथा पट्कोटाह के प्राचीन राजमहल में सुरक्षित हैं।

१८५५ ई० में शिवाजी की मृत्यु से इस राज वंश का अन्त हो गया और इस राज-वंश के साथ ही चित्रकारों का राजकीय संरक्षण भी समाप्त हो गया।

अतः चित्रकारों को दूसरे उद्योग धन्धों में लगना पड़ा जिससे कि वह अपनी आजीविका का अर्जन कर सकें। कुछ चित्रकार सुनारगीरी का कार्य करने लगे तो कुछ सोला टोपी या कसीदाकारी आदि के काम में लग गये। अनेक वंश परम्परागत चित्रकार अभी भी अपना व्यवसाय चलाते रहे और इनकी बाजारू कृतियां जनता में प्रचलित रहीं। इन चित्रों के विषय धार्मिक थे अतः स्थानीय हिन्दू जनता में यह कृतियां बहुत लोक प्रिय बन गयीं। इन चित्रों में कलात्मक विशेषताएं बहुत कम हैं और सोने के रंग तथा पिसे हुए जवाहरातों का चित्रों में प्रयोग किया गया है, परन्तु चित्रों में कारीगरी बहुत उत्तम कोटि की है। आरम्भ में तंजौर शैली में प्रमुख रूप से हाथी दांत के फलकों पर शबीह चित्र बनाये गये जो बहुधा छः इंच लम्बे आकार के थे।

मैसूर शैली– दक्षिण के एक दूसरे हिन्दू राजा मैसूर में एक भिन्न प्रकार की कला शैली का विकास हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मैसूर की चित्रकला राजा कृष्ण राज के संरक्षण में अत्यधिक उन्नति को प्राप्त हुई। राजा कृष्ण राज के संरक्षण से पूर्व ही मैसूर शैली लगभग एक सौ वर्ष से प्रचलित थी और विकासोन्मुख हो रही थी। राजा कृष्ण राज के शासन-काल में दरबारी कलाकारों ने अधिक ख्याति प्राप्त की। राजा ने चित्रकारों को अत्यधिक प्रोत्साहन प्रदान किया। इस प्रकार के प्रमाण हैं, कि राजा स्वयं एक मनोनीत विषय पर अनेक चित्रकारों को तुलनात्मक ढंग से चित्रांकन करने के लिये बहुत अधिक प्रेरणा देता था। तंजौर के चित्रकारों के समान मैसूर के चित्रकारों ने भी हाथी-दाँत के फलकों पर अनेक शबीह चित्र बनाये जिनका संग्रह मैसूर के राजमहल में प्रदर्शित किया गया है। १८६८ ई० में राजा कृष्ण राय के निधन के साथ ही चित्रकार भी इधर उधर चले गये और यह शैली समाप्त हो गई।

विदेशी कला का आगमन--उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में भारतवर्ष में चित्रकला का अधिपतन हो गया था और चित्रकला की कलात्मक विशेषताओं का लोप हो गया। चित्रकार पुरानी लकीरें पीटते रह गये और सृजनात्मक सत्ता का पूर्णतया लोप हो गया। इस प्रकार की चित्रकला की बुझती लौ बाजारू कृतियों की धूमिल टिमटिमाहट बनकर उत्तरोत्तर घटती गई। अठाहरवीं शताब्दी के अन्त में और उन्नीसवीं के आरम्भ में लगभग पचास से अधिक अंग्रेजी चित्रकार भारतवर्ष में आये, इनमें से कई चित्रकार अपने व्यवसाय में बहुत दक्ष थे। विशेष रूप से यह विदेशी चित्रकार राजाओं और रईसों के व्यक्ति चित्र तैल रंगों से बड़े आकार (आदम कद मानवाकर) में बनाकर धन कमाने की लालसा से भारत आये थे। इनके चित्रों की माँग देश के धनी वर्ग, राजाओं नवाबों जागीरदारों तथा जमींदारों आदि में इतनी बढ़ी कि भारतवर्ष की रूढ़िवादी परम्परागत चित्रकला की बजारू शैली भी समाप्त हो गई। भारतीय चित्रकला का भविष्य अनिश्चित सा दिखाई पड़ने लगा। १८५७ के प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता

युद्ध में भारतीय पराजय के बाद अंग्रेजी राज्य और सत्ता ने सम्पूर्ण भारत की आस्था और विश्वास को ऐसी ठेस पहुंचाई कि देश की चित्रकला के विषय में सोचना कठिन था।

देश में अनेक विदेशी चित्रकारों के आने से और तैलचित्रों की उत्तरोत्तर बढ़ती मांग के कारण उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में एक नवीन कलाधारा का प्रवाह प्रस्फुटित हुआ जो अधिक स्थाई न था। यह धारा पाश्चात्य कला की थी, और इससे प्रेरित अनेक भारतीय चित्रकारों ने दक्षिणी भारत में सर्वप्रथम पाश्चात्य चित्र-कला में दक्षता प्रदर्शित की। इन चित्रकारों में राजा रविवर्मा का नाम अग्रगण्य है। राजा रविवर्मा ने युरोपियन कला पद्धति के अनुरूप भारत की चित्रकला की धारा को नव-ज्योति प्रदान करने की चेष्टा की।

राजा रविवर्मा —१८४८ ई० में राजा रविवर्मा का जन्म ट्रावनकोर नामक स्थान में हुआ और उनका १९०५ ई० में स्वर्गवास हुआ। राजा रविवर्मा ने अपनी अल्प आयु के लगभग तीस वर्ष भारतीय चित्रकला के प्रसार और प्रचार हेतु समर्पित कर दिये। राजा रविवर्मा ने थियोडोर जेनसन तथा अन्य युरोपियन चित्रकारों से, जो दक्षिण भारत भ्रमण के लिए आते थे, कला दीक्षा ली। राजा रविवर्मा ट्रावनकोर के राजा राजवर्मा के सम्बन्धी थे, अतः राजा और राज-परिवार के सदस्यों ने रविवर्मा की सहायता की। राजा रविवर्मा की कृतियों ने सम्पूर्ण देश में अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त की। राजा रविवर्मा ने व्यक्ति-चित्रों, दृश्य-चित्रों, धार्मिक तथा पौराणिक हिन्दू कथानकों पर आधारित चित्रों का निर्माण किया। उनकी चार बहु-मूल्य कृतियां बैंकुयेटिंग हाल मद्रास में आज सुरक्षित है। राजा रविवर्मा ने पाश्चात्य प्रणाली पर यथार्थ शैली में भारतीय धार्मिक कथाएं चित्रित कीं जिनको जनता ने अध्यधिक श्रद्धा और आदर से सराहा और यह चित्र छपकर सस्ते हो जाने के कारण जनता में बहुत प्रचलित हुए। राजा रविवर्मा ने अपने चित्रों के प्रकाशनार्थ बम्बई में लीथोग्राफ प्रेस खोला और उसी के द्वारा रविवर्मा के चित्र सारे देश में प्रचलित हो गये। उनके द्वारा अंकित पौराणिक चित्रों का विशेष आदर हुआ। आज भी रविवर्मा प्रेम चित्र प्रकाशन करता है। राजा रविवर्मा ने अपने समसामयिक मद्रास के चित्रकार अलेग्री नायडू से चित्रकला की शिक्षा ली थी। उस समय तैल चित्रण में नायडू का नाम बहुत प्रसिद्ध था। नायडू के लिए ट्रावनकोर के महाराजा स्वती त्रियूमल ने १८२९ ई० से १८४७ ई० तक संरक्षण प्रदान किया। नायडू को उस समय युरोपियन पद्धति का भारतवर्ष में सर्वश्रेष्ठ चित्रकार समझा जाता था।

राजा रविवर्मा को ट्रावनकोर के महाराजा और बड़ौदा के गायकवाड़ तथा अन्य धनाढ्य व्यक्तियों का संरक्षण प्राप्त हुआ। इस समय से गायकवाड़ के संरक्षण में रविवर्मा ने अपना ध्यान विशेष रूप से हिन्दू धर्म की कथाओं तथा पौराणिक प्रसंगों के चित्रण में लगाया। राजा रविवर्मा के इन चित्रों में काव्यगत भावना और

उन्नत कल्पना नहीं है और इनको केवल रंगमंच की अनुकृति या धारणा माना जा सकता है। इन चित्रों का विषय तो पूर्णतया भारतीय था, परन्तु शैली और संविधान पूर्णतया पाश्चात्य था, क्योंकि इन चित्रों की रचना जीवित व्यक्तियों को चित्र की अनेक आकृतियों (पात्रों) के स्थान पर नाटक जैसे रंगमंच पर व्यवस्थित करके की गई है। इन जीवित व्यक्तियों या माडेलों से चित्रों का यथार्थ पद्धति में छाया और प्रकाश की पूर्णता, शारीरिक गठन, मांस-पेशियों की सुडौलता तथा नाटकीयता का ध्यान रखते हुए अनुकरण पद्धति पर अंकन किया गया है। इन चित्रों में शारीरिक बनावट सुन्दर है और मांस-पेशियों की सुडौलता पर विशेष ध्यान दिया गया है। परन्तु इन चित्रों में धार्मिक भावना का प्रादुर्भाव न हो सका और यह चित्र साधारण स्थूल जगत की झांकी मात्र बनकर रह गए।

राजा रविवर्मा के चित्रों की आनन्द कुमारस्वामी ने कटु आलोचना की है। उन्होंने लिखा है कि 'रविवर्मा के चित्र नाटकीय हैं।' रविवर्मा के चित्रों का तत्कालीन रंगमंच से स्पष्ट सम्बन्ध था, और इसके अनेक कारण थे। रविवर्मा ने स्वयं कहा था कि—'उन्होंने प्राचीन पौराणिक वेश-भूषाओं की खोज की थी और इसके लिए वे उत्तर-भारत में राम तथा कृष्ण के पावन तीर्थग्रामों का पर्यटन करने भी गये।' परन्तु अधिक सफलता न देख उन्होंने तत्कालीन लोक जीवन तथा उस समय की प्रचलित नाटक मण्डलियों (पारसी नाटक कम्पनियों) से प्रेरणा ग्रहण की और उसी के आधार पर उन्होंने देवी-देवताओं के पौराणिक रूप को चित्रों में प्रस्तुत किया। राजा रविवर्मा ने चित्रकला के इस नवजागरण में अकेले ही व्यक्तिगत रूप से प्रयास किया। परन्तु कालान्तर में जो कला-जागरण की चेतना दिखाई पड़ी, उसमें सामूहिक जन-भावना और राष्ट्रीयता के आन्दोलन की अखिल भारतीय चेतना निहित थी।

इसी समय में राजा रविवर्मा के समसामयिक चित्रकारों में रामास्वामी नायडू को बहुत प्रसिद्धि प्राप्त हुई। रामास्वामी ने भी बड़े आकार के तैल चित्रों का निर्माण किया। भारतीय चित्रकला का व्यवसाय समाप्त हो रहा था और चित्रकार अपने व्यवसाय को छोड़कर दूसरे क्षेत्रों में लगे जा रहे थे। दूसरी ओर विदेशी शासक अपनी संस्कृति को पैठाने के लिए कला प्रशिक्षण हेतु आर्ट-स्कूलों की स्थापना कर रहे थे। इन आर्ट स्कूलों में भारतीय विद्यार्थियों को पाश्चात्य शैली पर चित्रकला का अभ्यास कराया जाता था। यूरोप के कंसिंग्टन स्कूल की शिक्षा पद्धति इन स्कूलों में प्रचलित थी। यहाँ पर विद्यार्थी स्टिल लाइफ (पदार्थ चित्रण), पोरट्रेट (मुखाकृत चित्रण) तथा लैंडस्केप (दृश्य चित्रण) का चित्रण कार्य यथार्थ शैली में करते थे, परन्तु उनके कार्य में कोई प्रगति नहीं हो रही थी, और उनके लिये छाया तथा प्रकाश का प्रभाव समझना एक समस्या थी। अतः इन आर्ट-स्कूलों में भारतीय छात्रों का व्यर्थ ही समय नष्ट हो रहा था। इसी समय कलकत्ता, बम्बई, लाहौर और मद्रास में आर्ट-स्कूलों की स्थापना हो चुकी थी। इन स्कूलों में साधारण स्तर के युरोपियन अध्यापकों के द्वारा कला शिक्षा प्रदान की जाती थी। इन सरकारी आर्ट-स्कूलों के विद्यार्थियों ने

किसी भी ऐसी उच्च कृति का सृजन नहीं किया जिसे महान कहा जा सके। १९०२-१९०३ ई० में दिल्ली में, इन स्कूलों के विद्यार्थियों के अनेक तैल तथा जल रंगों से बने चित्रों की प्रदर्शनी की गई परन्तु इन चित्रों में कोई भी कलात्मक उपलब्धि नहीं थी। यह चित्र युरोपियन शैली के अनुकरण पर बनाये गए थे। इस प्रदर्शनी के चित्रों के विषय में कलकत्ता आर्ट स्कूल के भूतपूर्व प्रिंसिपल परसी ब्राउन ने सर जार्ज वाट द्वारा सम्पादित पुस्तक 'इण्डियन आर्ट एट दिल्ली' में अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकट की – 'यह चित्र अत्यन्त भद्दे और कर्कश थे, इनका रेखांकन त्रुटिपूर्ण था और शैली तथा रंग की दृष्टि से यह चित्र अकुशल कलाकारों की कृतियों जैसे थे।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में अंग्रेज शासकों ने विक्टोरिया कालीन विदेशी चित्रकला का भारत में बीजारोपण करने की अथक चेष्टा की, परन्तु यह कला वृक्ष विकसित न हो सका। इस समय भारतीय चित्रकला का पूर्णतः ह्रास हो चुका था और शासक वर्ग के द्वारा अंग्रेजी संस्कृति तथा कला रोपने के प्रयत्न हो रहे थे। आनन्द कुमार स्वामी ने अपने देश की कला विलुप्ति के लिए 'अधिकांश तथाकथित अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा उत्पन्न रुचियों के परिणाम को कला विलुप्ति के लिए उत्तरदायी बताया है, युरोपियन कला का अनुसरण हमारे देश की कला को जीवन प्रदान न कर सका।' प्रायः ऐसा देखा गया है कि दो संस्कृतियों के संसर्ग में दोनों में ही आदान प्रदान होता है और दोनों संस्कृतियाँ एक दूसरे से परस्पर कुछ ग्रहण करती हैं और कला प्रतिभा एक नवीन पथ प्रशस्त करती है। उस समय देश की अवस्था ऐसी थी कि एक ओर अंग्रेज शासक प्रभुता की हठ में थे, और दूसरी ओर भारतवासी दासता, दरिद्रता और हीनता से उत्पन्न उदासीनता में रहने के कारण साँस्कृतिक आदान-प्रदान करने के लिए उन्मुख न हुए। इस प्रकार कला एक कुंठित अवस्था की द्योतक मात्र ही रह गयी यह स्तब्धता की स्थिति राजनीति, समाज, शिक्षा, कला तथा विश्वास सभी क्षेत्रों में थी। इस प्रकार की स्थिति बहुत समय तक चल नहीं सकती थी। यदि संस्कृति का समन्वय सम्भव न था तो विद्रोह निश्चित था। भारतीय कला में इस भावना के नवजगारण का रूप ग्रहण किया और पुनः कला-विकास की नवीन आशाओं का सूत्रपात हुआ।

कला का पुनरुत्थान

ई० वी० हैवेल—हैवल सन् १८८४ ई० में सर्वप्रथम मद्रास कला विद्यालय के प्राचार्य बने। १८९६ ई० में उन्होंने संसार का ध्यान भारतीय कला की ओर आकर्शित किया। भारतीय कला और संस्कृति के जागरण की ओर जब भारतीय जनता का ध्यान आकर्षित हो रहा था, उसी समय कलकत्ता आर्ट स्कूल के प्रिंसिपल के रूप में हैवाल आये। ई० वी० हैवेल के सहयोग से बंगाल में एक नवीन कला आन्दोलन आरम्भ हुआ। हैवेल ने बंगाली विद्यार्थियों को केवल विदेशी-रीतियों पर कला सिखाने की त्रुटि को समझा और उन्होंने भारतीय जीवन और आदर्श से पूर्ण मुगल तथा

राजपूत कला की ओर ध्यान दिया। हैवेल ने युरोपियन चित्रों की नकल बनवाने की प्रथा को उचित न समझा। किन्तु इस प्रकार अंग्रेज प्रिंसिपल के द्वारा भारतीय कला पर जोर देने की बात को बंगाल की जनता ने रहस्यपूर्ण माना और बंगाल की जनता ने उनके इस आन्दोलन के प्रति एक क्षोभ और प्रतिक्रिया प्रदर्शित की। अनेक बंगाल-पत्र-पत्रिकाओं में इन आशय के लेख प्रकाशित हुये कि अंग्रेज अपनी कला भारतीयों को नहीं सिखाना चाहते। इस प्रकार बंगाल की जनता में इस नवीन शिक्षण पद्धति के प्रति अत्यन्त रोष फैला।

इसी समय में हैवेल ने अपने वरिष्ठ अधिकारियों से युरोपियन चित्रों के संग्रह के स्थान पर उत्कृष्ट भारतीय चित्रों के संग्रह को तैयार करने की अनुमति प्रदान की। संयोगवश हैवेल की भेंट प्रसिद्ध टैगोर परिवार के चित्रकार स्व० अवनीन्द्रनाथ टैगोर ने हुई, और उन्होंने टैगोर की सहायता से भारतीय चित्रकला की कक्षाएं कलकत्ता आर्ट स्कूल में प्रारम्भ की और टैगोर को इन कक्षाओं का अध्यक्ष बना दिया गया। यहां पर ही अवनीन्द्रनाथ ने हैवेल महोदय की देख-रेख में भारतीय शैली में स्वयं भी अनेक प्रयोग किए और 'बुद्ध जन्म', 'बुद्ध तथा सुजाता', 'ताज महल का निर्माण' 'शाहजहाँ' की मृत्यु सफल चित्रों का निर्माण किया।

अवनीन्द्रनाथ टैगोर—अवनीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म १८७१ ई० में जोरासांकू गाँव के ठाकुर परिवार में जन्माष्ठमी के दिन हुआ। अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने भारतीय चित्रकला की परम्परा के टूटे धागे जोड़ना आरम्भ किये। उन्हाने हैवेल की सूझ-बूझ के अनुसार भारतीय कला के उत्थान के लिए देश की प्राचीन चित्रकला को आधार-शिला मानकर आगे बढ़ाने का प्रयास किया। उन्होंने अपने चित्रों में भारतीय अध्यात्म-वाद, काव्य का सौष्ठव तथा पूर्वी देशों की विचारधारा को प्रतिध्वनित करने की चेष्टा की। इस प्रकार आधुनिक भारतीय चित्रकला के पुन: जागरण का आन्दोलन कलकत्ता आर्ट स्कूल के प्रिंसिपल हैवेल महोदय के सतत प्रयत्नों से आरम्भ हुआ और अवनीन्द्रनाथ ठाकुर इस आन्दोलन के कर्णधार बने। कुमारस्वामी ने आधुनिक कला के विषय में उल्लेख देते हुए इस प्रकार लिखा है कि 'कलकत्ता के भारतीय चित्रकारों के आधुनिक स्कूल का कार्य पुन: राष्ट्रीय जागृति का एक पक्ष है।'

अवनीन्द्रनाथ ने अपने प्रारम्भिक वर्षों में युरोपियन शैली के तैल चित्र बनाने का अभ्यास किया था और उन्होंने अपने युवाकाल में इटैलियन चित्रकार गिलहार्डी से विधिवत तैल चित्रण की शिक्षा ग्रहण की थी। कालान्तर में उन्होंने हैवेल के सह-योग से समझा कि स्वदेशी परम्परा के आधार पर ही कला-जागरण को अग्रसर करना उचित होगा और भविष्य में इस जागृति के अनेक कला-आदर्श स्थापित होने की सम्भावना है। इस निश्चय से ही उन्होंने उत्साह और लगन के साथ हैबेल के विचारों को कार्यान्वित करने का कठिन प्रयास किया और वे जनता के समक्ष आए। हैवेल का विश्वास—'भारतीय कला जीवंत एवं मौलिक है', ने अवनीन्द्र बाबू

को बल प्रदान किया। इस प्रकार हैवेल ने जिन सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया उनको टैगोर के द्वारा प्रयोगात्मक रूप मिला। उन दिनों जनता के हृदय में इस प्रकार की एक मात्र आस्था घर कर गई थी कि यूरोप से ही केवल कला प्रेरणा प्राप्त हो सकती है। अत: कला अभ्यासियों ने और बंगला समाचार पत्रों ने इस कला उत्थान के कार्य-क्रम का विरोध किया। परन्तु इन प्रतिक्रियाओं से टैगोर तथा हैवेल को बल मिला।

अवनीन्द्रनाथ ने लगभग १८६१ ई० से चित्रकला का नियमित अभ्यास किया। रवीन्द्रनाथ टैगोर के निमंत्रण पर उन्होंने शांतिनिकेन में १६२० से कला भवन में अध्यक्ष पद संभाला और १६४१ ई० में अपने चाचा 'विश्व कवि रवीन्द्र नाथ में महा-प्राण' का चित्रण करने के पश्चात् उन्होंने अपनी तूलिका को त्याग दिया। किसी भी महान चित्रकार के लिए यह सम्भव नहीं कि वह जीवन भर एक ही लीक पर चलता रहे, फिर अवनीन्द्रनाथ जैसे कलाकार के लिए, जो नवीन प्रयोगों के लिए जागरुक थे, यह कब सम्भव था कि वे एक ही पथ पर चलते रहते। उनकी कृतियों में शैली की इतनी विविधता हैं कि कभी-कभी उनको एक ही चित्रकार की कृति मानने में संशय सा प्रतीत होता है। जिस प्रकार उन्होंने भिन्न-भिन्न माध्यमों से चित्रों का निर्माण किया उसी प्रकार उनके चित्रों के विषय में भी विविधता है। उन्होंने शबीहें, प्राकृतिक दृश्य, जन-जीवन, लोक पर्व तथा इतिहास और पुराण की अनेक कथाओं का अंकन किया है। उनके 'उमर खैय्याम', 'मेघदूत', तथा 'अलिफलैला' के चित्रों में शैली का पर्याप्त अन्तर है। 'भारतमाता, तिष्यरक्षिता का द्रुम डाह', 'गणेश जननी' महाप्राण आदि उनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं। उनकी कृतियों में असंदिग्ध रूप से जापानी, चीनी, फारसी, युरोपीय और तदुपरान्त भारतीय चित्रकला का सम्मिश्रण है, परन्तु सर्वोपरि उनके समन्वयवादी व्यक्तित्व की छाप है। स्टेला क्रमरिश ने इस प्रकार लिखा है कि 'अवनीन्द्र ठाकुर की कला उनके व्यक्तिगत अधिकार पर आधारित है।' अवनीन्द्रनाथ की शैली की बंगाल में कटु आलोचना हुई और यह कहा गया कि उनके चित्रों में चीनी रेखा तथा जापानी 'बाश टेकनीक' का अनुकरण है।

बंगाल स्कूल का प्रचार—राजा रविवर्मा के कला बिकास सम्बन्धी आन्दोलन के पश्चात् आधुनिक चित्रकला के जिस नवीन आन्दोलन का सूत्रपात हुआ उसके प्रवर्तक स्व० हैवेल, डा० आनन्द कुमारस्वामी, स्व० रामानन्द चटर्जी, स्व० अर्धेन्दु कुमार गांगुली, स्व० अवनीन्द्रनाथ ठाकुर थे। आधुनिक चित्रकला के जन्म की एक कहानी 'बंगाल स्कूल' के उपरोक्त आन्दोल से आरम्भ हो भारतीय स्वतंत्रता के साथ पूर्णता समाप्त हो गई। इस पुन: जागरण और कला उत्थान के आन्दोलन को अग्रसर करने में अवनीन्द्रनाथ का योगदान कलाकार के रूप में ही नहीं बल्कि एक शिक्षक तथा प्रचारक के रूप में भी है। हैवेल तथा अवनीन्द्र नाथ ने अपने प्रयत्नों से विद्यार्थियों का एक छोटा दल बना लिया जिसमें उल्लेखनीय चित्रकार स्वर्गीय

सुरेन्द्रनाथ गंगुली, एस० एन० गुप्ता, स्व० नन्दलाल बसु, हकीम मुहम्मद खान, बेंकाटप्पा, शलेन्द्र डे, समीउज जमा, स्व० असित कुमार हाल्दर तथा स्व० वीरेश्वर सेन आदि थे। इस नवीन स्कूल को 'ओरियन्टल आर्ट सोसायटी', जिसकी स्थापना स्व० गगनेन्द्रनाथ टैगोर ने १९०७ ई० में की थी, ने बहुत प्रोत्साहन प्रदान किया। इस सोसायटी के प्रथम सभापति सम्मानीय किचनेर और सर जान वुडरोफी थे। सम्माननीय मि० जस्टिस होलमवुड. श्रीमती यन० विलन्ट, स्काट ओ केमर, ओ० सी० गंगुली, परसी ब्राउन, थार्नटोन तथा जे० पी० मूलर इस सोसइटी के सदस्य थे, जिन्होंने इस आन्दोलन को चलाया और प्रसार में सहयोग दिया। इसी प्रकार अंग्रेजी सरकार के द्वारा प्रचार हेतु अन्य समित' 'इन्डियन सोंसायटी' लन्दन में स्थापित की गयी। इन सोसायटियों के सहयोग से इस दल की प्रदर्शनी भारत तथा अन्य स्थानों में आयोजित की गई।

साधन अवनीन्द्रनाथ ने प्राचीन चित्र परम्परा और तकनीकी साधनों को प्राप्त करने के लिये परम्परागत चित्रकारों को बुलाया सर्व प्रथम उनकी भेंट पटना के चित्रकार लाला ईश्वरी प्रसाद से हुई। वे कांगड़ा शैली के एक वंश परम्परागत चित्रकार थे। इनके प्रशिक्षण से इस नवीन स्कूल के चित्रकारों ने कला की प्राचीन विशेषताओं को जाना।

भारतीय कला के अध्ययन हेतु यह दल अजन्ता, बाघ तथा अन्य कला तीर्थों में भ्रमण करने गया जिससे इस दल के चित्रकारों ने अपने देश की कला का स्वरूप पहचाना। इन चित्रकारों ने अनेक प्राचीन चित्रों की अनुकृतियां भी बनाई।

इसी समय में अवनीन्द्रनाथ ने भित्तिचित्रण की तकनीकी के प्रयोग करने के लिए जयपुर से व्यवसायी भित्तिचितेरों को बुलाकर भित्तिचित्रों के प्रयोग भी किये जिनके परिणामस्वरूप आज भी कलकत्ता आर्ट स्कूल में दीवारों पर 'कच और देवयानी' के चित्र दिखाई पड़ते हैं! इस स्कूल के कलाकारों ने विभिन्न शैलियों में चित्र बनाये। अवनीन्द्रनाथ ने स्वयं चीनी कला की रेखा, जापान की रंग बहाने की पद्धति (वाश टेकनीक) से प्रेरणा ग्रहण की और उनकी आरम्भिक कृतियों में यह विदेशी प्रभाव अधिक बलवती है। १९०१-२ ई० के लगभग अवनीन्द्रनाथ जापानी कलाकारों मोकाहमा, तेकवान और हिसिदा के सम्पर्क में आये और सम्पर्क का उन्होंने पूरा लाभ उठाया।

प्रसार—बंगाल से इस प्रकार एक नवीन कला-जागरण की लहर तो फैली परन्तु इसकी कदाचित कल्पना नही की जा सकती थी कि आगामी वर्षों में इसका विस्तार होगा। इस नवीन जागरण के साथ ही भारतीयता और नितान्त भारतीयता पर अधिक बल दिया जाने लगा जो सदैव एक आलोचना का विषय रही है। परन्तु ज्यों-ज्यों देश में कला विद्यालयों की स्थापना होती गई और कला शिक्षकों की मांग होती गई त्यों-त्यों इस स्कूल का प्रसार होता गया। इस स्कूल को अंग्रेजी सरकार ने

भी विशेष प्रोत्साहन और संरक्षण प्रदान किया अंग्रेजी सरकार ने बंगाल स्कूल के कई चित्रकारों को प्रिंसिपल या शिक्षक नियुक्त करके विभिन्न प्रान्तों के आर्ट स्कूलों में भेजा। जहां-जहां बंगाल स्कूल के चित्रकार पहुँचे वहां-वहां अपना कार्यक्षेत्र बनाते गए परन्तु शीघ्र ही इनकी कला कुछ सीमाओं में जकड़ने लगी और लीक पीटने की परम्परा दिखाई पड़ने लगी। बंगाल स्कूल के जो चित्रकार इधर उधर गए उनमें कुछ चित्रकारों के नाम उल्लेखनीय हैं। स्वर्गीय नन्दलाल वसु शांन्ति निकेतन में कला विभाग के अध्यक्ष रहे। स्वर्गीय असित कुमार हालकर और सोमेन्द्रनाथ गुप्त ने क्रमश: लखनऊ और लाहौर के सरकारी आर्ट स्कूलों में अध्यक्ष पद को ग्रहण किया। वेंकाटप्पा मैसूर और शैलेन्द्रनाथ डे जयपुर कला विद्यालयों में स्थापित हुए। इसी प्रकार देवी प्रसाद राय चौधरी मद्रास के सरकारी आर्ट स्कूलों में अध्यक्ष बने। स्वर्गीय शारदाचरण उकील ने दिल्ली में शिक्षण आरम्भ कर दिया और क्षितेन्द्र मजूमदार इलाहाबाद विश्वविद्यालय की 'रुचिकक्षा' में चित्रकला का प्रशिक्षण करते रहे। इस प्रकार अनेक अन्य चित्रकार भी प्रसार कार्य करते रहे। इन चित्रकारों ने विभिन्न प्रान्तों में जाकर कुछ समय तक कला जाग्रनि को आगे बढ़ाने की चेष्टा की परन्तु बंगाल स्कूल की निर्बलताओं के कारण और समय की परिवर्तनशीलता के कारण यह स्कूल अधिक जीवित न रह सका और तीसरी संतति के आते-आते दम तोड़कर समाप्त हो गया। अवनीन्द्रनाथ को १९५१ ई० अपने स्वर्गवास से पहले ही इस आन्दोलन की दुर्दशा देखनी पड़ी।

रविशंकर रावल का आन्दोलन – बंगाल शैली के चित्रकार गुजरात में नहीं पहुंच सके। गुजरात में एक प्रतिभावान चित्रकार और शिक्षक श्री रविशंकर रावल ने इस जन-जागरण के युग की कला को अपनी सूझ-बूझ और कला कुशलता से एक नवीन रूप प्रदान किया। श्री रावल ने अपना दल अलग संगठित किया और उन्होंने भारतीय कला की मूल विशेषताओं को अपनी कला में बांधने का प्रयास किया है।

बम्बई का पाश्चात्य रूप—बंगाल स्कूल की कला का बम्बई में किंचित भी प्रभाव नही पड़ा। बम्बई में पश्चिमी शैली की प्रधानता बनी रही परन्तु फिर भी बम्बई ने भारतीय कला परम्परा को प्राप्त करने के लिए अजन्ता कला को एक अधिक शक्तिशाली युगीन चेतना के आधार पर नवजीवन प्रदान करने की चेष्टा की, यद्यपि इस प्रयास में पूर्व और पश्चिम की कला का सम्मिश्रण था, परन्तु यह प्रयास अपनी दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयोग था। पूर्व और पश्चिम के कला सिद्धान्तों का सम्मिश्रण और चिन्तन बम्बई की एक अपनी विशेषता रही है। बम्बई स्कूल के प्रचार तथा प्रसार साधनों की कमी के कारण कुछ समय तक बम्बई का यह कला आन्दोलन बंगाल स्कूल के प्रभाव से दबा रहा, परन्तु शीघ्र ही बम्बई स्कूल की कृतियों ने बम्बई स्कूल को चुनौती दी। इस समय से आज तक बम्बई स्कूल चित्रकला का एक शक्तिशाली क्षेत्र बना हुआ है। बम्बई स्कूल के योगदान का हम आगे संक्षिप्त विवेचन करेंगे।

बंगाल स्कूल के चित्रों की विशेषतायें—आनन्द कुमारस्वामी ने बंगाल के आधुनिक स्कूल के कलाकारों की कला की समालोचना करते हुए इस प्रकार उल्लेख दिया था ---'कलकत्ता के भारतीय चित्रकारों के आधुनिक स्कूल का कार्य राष्ट्रीय पुन: जागृति का एक पक्ष है, जबकि उन्नीसवीं शताब्दी के समाज सुधारकों की यह इच्छा थी कि वह भारत को इंगलैण्ड बना दें, तब बाद के कार्यकर्ता समाज में एक ऐसी अवस्था वापिस लाने या बनाने का प्रयत्न कर रहे थे, जिससे भारतीय संस्कृति में अभिव्यक्ति और लागू आदर्शों का अधिक गहराई से मनन किया जा सके।' आनन्द कुमारस्वामी ने आगे इस स्कूल की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए इस प्रकार विचार व्यक्त किये --'यद्यपि श्री टैगोर और उनके शिष्यों ने भव्य शैली को पूर्णतया प्राप्त नहीं किया है, परन्तु उन्होंने निश्चित ही भारतीय कला की आत्मा को पुन: जीवन प्रदान किया है, और इसके अतिरिक्त जैसे कि प्रत्येक सच्चे कलाकार की जिज्ञासा होती है कि उसकी कृति में भिन्न प्रकार का निजी सौन्दर्य हो, यह भावना इनकी कृतियों में दिखाई पड़ती है।'[1]

बीसवीं शताब्दी के साथ ही स्वतन्त्रता आन्दोलन के बीज पनपने लगे थे और इस शताब्दी के प्रथम चतुर्थ भाग में महात्मा गांधी के स्वतन्त्रता आन्दोलन की चिंगारी फूट पड़ी। सम्पूर्ण देश में स्वदेश प्रेम और मातृ-भक्ति की भावना के साथ 'बन्दे मातरम्' की ध्वनि प्रतिध्वनित होने लगी। ऐसे समय में बंगाल के कला-आन्दोलन पर राष्ट्रीय जागृति का प्रभाव स्वाभाविक था। चित्रकार भी देश प्रेम और स्वतन्त्रता की भावना से परिपूरित हो गया था, अत: चित्रकारों ने भारत की प्राचीन गौरवमयी गाथाओं, धार्मिक कथाओं, ऐतिहासिक प्रसंगों, साहित्यिक संसर्गों, तथा जन-जीवन की झांकियों से अपने विषयों का चयन किया। इस प्रकार चित्रकार ने अपनी देश-प्रेम की भावनाओं और अतीत की भव्य झांकी को अंकित कर पुन: एक 'सुजला-सुफला मलयम शीतलाम्' भारती के स्वतन्त्र रूप की कामना की।

बंगाल स्कूल के कलाकारों की कृतियों में विदेशी कला-प्रभाव के रूप में जापानी 'वाश पद्धति के अतिरिक्त पाश्चात्य शैली का यथार्थ रेखांकन और चीनी आलेखन का निश्चित रूप से सम्मिश्रण है। वैसे इस स्कूल की कृतियों में पर्याप्त परिमार्जन, रंगों की कोमलता और भारतीय वस्तुओं के प्रति प्रेम परिलक्षित होता है। डा० आनन्द कुमार स्वामी के अनुसार—'इस स्कूल की कृतियां अजन्ता, मुगल तथा राजपूत चित्रों से प्रेरणा लेकर भी स्पष्ट रूप से निर्बल हैं।'

बंगाल स्कूल के चित्रों की तकनीकी—वाश चित्र बंगाल स्कूल की विशेषता है। इस स्कूल के चित्रकारों ने अपने चित्र में ब्रितानी जल रंगों (Water Colours) तथा ब्रितानी व्हाटमैन या श्वेत कार्ट्रेज कागज का प्रयोग किया है, परन्तु चित्रण विधि में भारतीय, चीनी, जापानी तथा पाश्चात्य प्रणालियों का अनुसरण किया गया

1. 'फाइन आर्ट इन इन्डिया एण्ड सीलोन'—ले० विन्सेंट स्मिथ, पृष्ठ २००।

है। चित्रकार चित्र बनाने के लिए सर्वप्रथम चित्र की आकृतियों को लाल रंग की रेखाओं से अंकित करता, फिर चित्र को पानी में भिगो कर समतल बोर्ड या पटरे पर सुखा कर चित्र की सीमा रेखाओं को स्थाई बना लेता था। इस सीमा रेखा के पश्चात् चित्रकार चित्र के अनेक भागों में रंग भर जाता था और फिर कागज को पुन: पानी में डुबोकर सपाट पटरे पर सुखाकर चित्र के रंगों को स्थाई कर लेता था, जिससे कि ऊपर से रंग की सपाट वाश लगाने पर यह रंग कागज से न छूट जायें। इस क्रिया के पश्चात् वातावरण उत्पन्न करने के लिए एक या अनेक रंगों को सम्पूर्ण चित्र के ऊपर पारदर्शी ढंग से बहा दिया जाता था या वाश लगा दी जाती थी इससे सम्पूर्ण चित्र में चिकनापन, धुंधलापन और रंग का एक-सा सपाट प्रभाव आ जाता था। परन्तु चित्र में ग्रे रंगत (टोन) आ जाती थी। इसके पश्चात् चित्र की आकृतियों को उभारने के लिए रेखांकन को पुन: कत्थई या किसी अन्य रंग से उभार दिया जाता था साथ ही चित्र के किसी-किसी भाग को पारदर्शी, या सफेद मिश्रित अपारदर्शी (उपेयक) रंग के प्रयोग से आवश्यकतानुसार उभार दिया जाता था। साधारणतया अपनी निर्बलता को छुपाने के लिए चित्रकार चित्र के निर्बल या कमजोर भागों को 'वाश' के प्रभाव में दबा देता था। आकृतियों में डौल लाने के लिए छाया तथा प्रकाश का भी आवश्यकतानुसार प्रयोग किया गया है।

बंगाल स्कूल की ह्रासोजनक प्रवृत्तियां—बंगाल स्कूल के कलाकारों ने कल्पना को अधिक महत्व दिया और वे यथार्थता से दूर चले गये। उनकी कृतियों में काल्पनिकता के आधिक्य के कारण आकृतियों की अत्यधिक विकृति होने लगी। चित्रकार अनुपातहीन बड़े-बड़े नेत्र पतली लम्बी उंगलियां, छरहरे बदन, लम्बी नासिका, में अतिशयोक्ति का प्रयोग करने लगे और इस विकृति का चरम उत्कर्ष कल्यान सेन की कृतियों में दिखाई पड़ता है। इस प्रकार शीघ्र इस स्कूल की कलाकृतियों में रूढ़िवादिता तथा ह्रास-चिन्ह स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगे और यह कला शैली लगभग एक चौथाई शताब्दी के पश्चात ही दम तोड़ने लगी और भारतीय चित्रकला में युरोपियन सम्पर्क के फलस्वरूप नवीन प्रवृत्तियां प्रस्फुटित होने लगीं।

बम्बई स्कूल का योगदान

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में बम्बई में भारतीय कला के उत्थान के लिये अनेक प्रयत्न किये गये। यद्यपि यह प्रयास पाश्चात्य दृष्टिकोण पर अधिक निर्भर थे और उस समय बंगाल स्कूल की कला के समर्थकों ने इन प्रयासों की आलोचना की, परन्तु आज यह भारत-युरोपियन मिश्रित कला का समर्थक केन्द्र भारतीय चित्रकला को एक ठोस प्रगति की ओर अग्रसर कर चुका है और समस्त भारतीय चित्रकार कला प्रेरणा हेतु बम्बई की ओर देख रहे हैं।

सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट, बम्बई में जब ग्रीफित्स महोदय प्रिंसिपल नियुक्त होकर आए तो उन्होंने अजन्ता के चित्रों के अध्ययन तथा अनुकृतियों के तैयार

करने का विस्तृत कार्य-क्रम बनाया। उन्होंने अपने शिष्यों सहित उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में अजन्ता की प्रतिलिपियां तैयार करने का कार्य आरम्भ कर दिया था जिसका अजन्ता के साथ उल्लेख किया जा चुका है। ग्रीफित्स महोदय ने लगभग तेरह वर्ष तक अजन्ता के चित्रों का अध्ययन किया, परन्तु उनका यह शोध अध्ययन आर्थिक कारणों से आगे न बढ़ सका।[1]

बम्बई के चित्रकारों ने नवीन शताब्दी के प्रथम चतुर्थ भाग में पाश्चात्य तथा भारतीय शैली के सम्मिश्रण का प्रयास आरम्भ कर दिया। सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट, बम्बई के नवीन प्रिंसिपल सालोमन की अध्यक्षता में धुरन्दर तथा लालकलां ने इस दिशा में कई महत्वपूर्ण प्रयोग किए जो सफल और उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं। इन कृतियों में सृजनात्मक शक्ति और सच्ची अनुभूति है। सालोमन के प्रयासों को स्व० श्री जगन्नाथ अहिवासी जैसे कुशल भारतीय चित्रकारों से अधिक बढ़ावा प्राप्त हुआ। श्री अहिवासी सर जे० जे० स्कूल आफ आर्टस, बम्बई में इन्डियन कक्षा (भारतीय कला की कक्षा) के अध्यापक के रूप में महत्वपूर्ण कार्य करते रहे और कुछ वर्ष पूर्व वहां से अवकाश ग्रहण कर बनारस विश्वविद्यालय वाराणसी में कला विभाग के अध्यक्ष के रूप में कार्य करते रहे है।

स्व० श्री अहिवासी की देख रेख में बम्बई के कला अभ्यासी छात्रों ने प्राचीन भारतीय कला शैलियों जैसे अजन्ता, राजपूत, तथा कांगड़ा आदि शैलियों का विशेष रूप से अध्ययन किया और उनके चित्रकारों ने इन शैलियों को अपनी कला का आधार बनाया। भारतीय कला के विकासोन्मुख रूप के साथ बम्बई आर्ट-स्कूल ने पाश्चात्य शैली का भी अति उत्तम रूप विकसित किया। अनेक चित्रकारों ने यथार्थ शैली में पाश्चात्य ढंग से दृश्य चित्रण, पदार्थ-चित्रण, व्यक्ति-चित्रण (पोरट्रेट), द्रुत-रेखांकन (स्केचिंग) तथा स्मृति-चित्रण में प्रगति की। इस स्कूल के चित्रकारों ने टेम्परा तथा तैल चित्रण की पाश्चात्य पद्धति पर अधिक बल दिया और सर्वोत्कृष्ट कृतियां प्रस्तुत की।

---

1. 'इन्डियन इनहैरिटेन्स' भाग २, प्र० भवन्स बुक यूनिवर्सिटी—ई० वी० हैवेल, सम्पादक के० एम० मुन्शी, पृष्ठ ५१।

"A Singular chapter of accidents, continued with the usual economical reason, prevented Mr. John Griffiths from doing full justice to them in his work on Ajanta, and it is to be feared that interest in Indian Art, apart from Archaeology, is not sufficiently strong to encourage any one to undertake the task of filling up the gaps before these almost unique records of early Indian Art, have entirely disappeated."

नूतन प्रवृतियां

यद्यपि आधुनिक युग के अन्तर्गत अवनीन्द्रनाथ तथा नन्दलाल वसु दोनों ही व्यक्ति आ जाते हैं, फिर भी वे एक विगत परम्परागत कला के समर्थक या उद्धारक ही कहे जा सकते हैं, वास्तव में यह परम्परागत कला या ऐकेडेमीवाद की जो नवीन पाश्चात्य धारा चली वह कला के आदर्श रूप और पाश्चात्यपन की प्रभावशाली समस्याओं कों नहीं सुलझा सकी। इस आन्दोलन में दो विरोधी प्रवृतियाँ प्रवाहित हो रहीं थीं इस कारण कलाकार कभी एक ओर झुक जाते थे और कभी दूसरी ओर। इस आन्दोलन के चित्रकारों ने सीमित विषयों को बार-बार दोहराया अतः इस शैली या आन्दोलन की नीरसता तथा निर्बलता ने युवा कलाकारों को एक अन्य दिशा की ओर अग्रसर होने के लिए विवश किया। नवोदित चित्रकारों ने जन-रुचि की अवहेलना न कर कला को जनसुलभ और सामान्य बनाने का प्रयत्न किया। कला क्षेत्र में विडंवना की यह स्थिति रवीन्द्रनाथ ठाकुर की चित्र-कृतियों के समय तक ज्यों की त्यों बनी रही। इसी समय यामिनीराय भी एक आधुनिक चित्रकार के रूप में प्रतिक्रियावादी बनकर कला जागरण के क्षेत्र में आये। यामिनीराय ने लोक कला के आधार पर भारतीय कला को नवीन जीवन प्रदान करने की नूतन चेष्टा की।

इस नवीन प्रतिक्रिया के फलस्वरूप कलाकारों को ऐकेडेमीवाद से हटकर अपनी नूतन प्रवृतियों को दिखाने का अवसर प्राप्त हुआ। लोक-साहित्य, लोक-कला, सरल भक्ति सम्प्रदाय, कृषकों तथा नाविकों के घरों की कला तथा गीतों—कबीर, दादू तथा अन्य लोकप्रिय रहस्यवादी संतों की वाणी—ने कलाकारों में सरल और सुलभ कलाकृतियों के निर्माण की चेतना को प्रोत्साहन दिया। १६४० ई० तक मान्यताएं बदल गईं और नूतनवादी कलाकृतियों की प्रदर्शनियाँ कलकत्ता में मान्यता प्राप्त करने लगीं।

यामिनीराय—यामनीयराय का जन्म ग्राम वेतियातोर जिला बांकुड़ा (पश्चिमी बंगाल) में १८८७ ई० में हुआ। यामिनीराय सोलह वर्ष की अवस्था में कलकत्ता आए और उन्होंने गवर्नमेन्ट आर्ट स्कूल से कला प्रशिक्षण समाप्त कर आरम्भ में पाश्चात्य शैली में चित्र बनाये। उनको शबीहकार के रूप में ख्याति प्राप्त हुई, परन्तु बाद में उन पर बंगाल स्कूल का प्रभाव भी पड़ा।

उनकी स्वच्छन्द अभिरुचि को तत्कालीन कला-धारा से सन्तोष प्राप्त नहीं हुआ और उनकी मौलिक सृजना के प्रति इच्छा अधिक बलवती हुई। १६२१ ई० में लगभग चौंतिस वर्ष की अवस्था में उनका ध्यान बंगाल की लोककला, और गया (बिहार) के पट-चित्रण की ओर गया। यामिनीराय लोककला से प्रेरणा ग्रहण करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहे। वह बंगाल के अनेक गाँवों में गए जहाँ वह कुम्हारों, बुनकरों, गुड़ियां तथा खिलौने बनाने वालों आदि की कृतियों को देखते समझते और रेखांकित करते रहे। इस ग्रामीण लोक कला के अध्ययन से उनकी इस बात का ज्ञान

हुआ कि इन परम्परागत ग्रामीण कलाकारों ने अनायास ही रंगों, आकारों तथा छन्द के रहस्य को पा लिया है। यामिनी ने लोक कला के अभिप्रायों तथा प्रतीकों को ग्रहण कर अपनी नवीन चित्रात्मक सुव्यवस्था में संजोया। इन कृतियों की नवीनता से उनको मानसिक संतोष भी प्राप्त हुआ। आर्थिक संकट होते हुए भी वह अपने जीवन संघर्ष के साथ नवीन प्रयोग चलाते रहे, परन्तु बहुत समय तक कला क्षेत्र में उनको मान्यता प्राप्त न हो सकी। धीरे-धीरे युग परिवर्तन के साथ उनकी कला के सरलतम रूप को कला आलोचकों ने पहचाना और सराहा। १९२९ ई० से १९३६ ई० के मध्य यामिनी बाबू मेयो कला विद्यालय लाहौर में सहायक निर्देशक के पद पर कार्य करते रहे। उसके पश्चात् वे लगभग दो वर्ष तक फोरमैन क्रिश्चियन कालेज में प्रधान पद पर रहे। १९३८-४७ ई० के मध्य उन्होंने लाहौर के सिटी स्कूल आफ फाइन आर्ट्स के निर्देशक पद पर कार्य किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ भारत-विभाजन के समय वे दिल्ली आ गये, वहाँ उन्होंने शिल्प-चक्र संस्था की स्थापना की।

यामिनीराय ने अपनी कला प्रेरणा के विषय में स्वयं लिखा है कि—'मैं बालक सुलभ कला से प्रेरित हूं।' उन्होंने टेम्परा रंगों के द्वारा कपड़े, कागज तथा पट्ठे पर नवीन प्रयोग किए हैं। उनके चित्रों में अधिकांश सपाट रंग, सरल आकार, और चमकदार वर्ण विधान को अपनाया गया है। अधिकांश चित्रों की रेखायें मोटी परन्तु अत्यधिक बलवती हैं। यामिनीराय के चित्रों की एकल प्रदर्शनी ए० सी० ए० गेलरी न्यूयार्क में १९५० ई० में आयोजित की गई। इस प्रदर्शनी में पट्ठे, कपड़े, कागज तथा चटाई पर बने चित्र थे। इस एकल प्रदर्शनी को बहुत अधिक सफलता प्राप्त हुई परन्तु १९५४ ई० से यामिनीराय ने काष्ठ-मूर्ति निर्माण में अधिक रुचि प्रदर्शित करना आरम्भ कर दी थी। उनकी कलाकृतियों में 'ईसामसीह', 'शृंगार', 'नृतकी', तथा 'मृदंग वादक' आदि उत्तम चित्र कृतियां हैं। १९५५ ई० में रायबाबू को 'पद्मविभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया गया। इस महान चित्रकार का ८८ वर्ष की आयु में २४ अप्रैल १९७२ ई० को कलकत्ता में स्वर्गवास हो गया। उनको भारत का पिकासो कहा जाता है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर—कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ का जन्म जोरसांको (कलकत्ता) में १८६१ ई० में हुआ और विश्व कवि का सम्मान प्राप्त कर वे १९४१ ई० में स्वर्ग सिधारे। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर ने जब पचास वर्ष की काव्य साधना के पश्चात चित्रकला का अभ्यास लगभग १९२४ ई० में गम्भीरता से आरम्भ कर दिया, तो उन्होंने एक नवीन पाश्चात्य विचारधारा के आधार पर रचना आरम्भ की जो कल्पना और मानसिक तत्व के आधार पर ही आधारित थी। टैगोर अपने काव्य कौशल के आधार पर १९१३ ई० में 'नोविल पुरस्कार' ही नहीं प्राप्त कर चुके थे वरन् पाश्चात्य कला जगत की प्रभाववादी विचार धारा और कलाकृतियों और नवीन प्रवृतियों से भी भली भाँति परिचित हो चुके थे। अंततः उन्होंने पाश्चात्य कलाकारों के समान ही वाह्य रूप और यथार्थ अनुकरण की सीमा को तोड़कर भावना को पहचाना।

उन्होंने अपने अचेतन जगत से प्राप्त रंग, रेखाओं तथा आकारों में अपनी अभिव्यक्ति की। रंग के धब्बों तथा पांडुलिपियों में कांट-छांट के चिन्ह के संयोजन में उनको अपनी आत्मा की लय तथा छन्द प्राप्त हुआ। पांडुलिपियों और स्याही के

रेखाचित्र सं० २४

'पेन स्केच'—रवीन्द्रनाथ टैगोर

धब्बों में इस कवि को अपने अचेतन जगत की सुसुप्त भावनाएं दिखाई पड़ीं, फिर क्या था कवि चित्रकार बन गया। रवीन्द्र बाबू ने अपने चित्रों की आकृतियों को कल्पना के आधार पर बनाया है यथार्थ नहीं। उनके शब्दों में 'कला में सत्य का

अस्तित्व तब ही निहित रहता है जब वह हमको यह कहने के लिए बाध्य कर देता है कि 'मैं देखता हूं'।[1]

टैगोर की चित्र कृतियों को 'पागल व्यक्ति की कला' कह कर पुकारा गया, परन्तु उन्होंने इस वाक्य का उत्तर इस प्रकार दिया—'मेरे चित्रों का जन्म (सृजन) किसी शिल्प-कुशल अनुशासन या परम्परा में नहीं हुआ है और वे जान-बूझ कर की गई किसी वस्तु की अभिव्यक्ति का प्रयास नहीं हैं।[2] टैगोर का यह कथन सत्य है, क्योंकि उनकी कृतियों में रंग, रेखा और आकारों की अकलात्मक, सहज और अनगढ़ व्यवस्था है और उनकी रचनाओं में केवल बौद्धिक प्रयास अधिक है। अमर कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने १९२० ई० में शान्ति निकेतन के प्रांगण में 'कला भवन' (आर्ट स्कूल) की स्थापना की। १९३० ई० में उन्होंने अपने चित्रों की एकल प्रदर्शनी पेरिस में आयोजित की। 'कला भवन' की स्थापना के पश्चात अवनीन्द्रनाथ ने शान्ति निकेतन में कला भवन का अध्यक्ष पद ग्रहण कर लिया और अन्तिम दिनों तक वे वहाँ कार्य करते रहे।

इस प्रकार बंगाल स्कूल के पतन के साथ भारतीय चित्रकला में पुन: जीवन फूंकने के नवीन प्रयास हुए जिनमें पाश्चात्य विचारधारा और बौद्धिकता की छाप थी। इसी समय में पाश्चात्य कला की विशेष मर्मज्ञा एक चित्रकर्त्री कुमारी अमृता शेरगिल की कला ने भारतीय कला को एक नवीन मोड़ और बल प्रदान किया।

अमृता शेरगिल—अमृता शेरगिल का जन्म १९१३ ई० में हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट में हुआ। १९३४ ई० के अन्त में पेरिस की चित्रशालाओं तथा अकादमियों में चित्रकला का प्रशिक्षण प्राप्त कर अमृता भारत आई और शिमला में अपने माता पिता के निवास स्थान में उन्होंने अपनी चित्रशाला स्थापित की। इस समय उनकी अवस्था लगभग इक्कीस वर्ष थी।

अमृता शेरगिल लाहौर के एक सिक्ख धनी, उमराव सिंह की पुत्री थीं। उनकी माता हंगेरियन थीं। आरम्भ से ही उन्हें चित्रकला में रुचि थी। अत: वे लगभग ग्यारह वर्ष की अवस्था पर ही अपनी माता के साथ इटली गईं और फ्लोरेन्स की एक चित्रशाला में उन्होंने कला-दीक्षा ग्रहण की। यहाँ पर यथार्थवादी पद्धति पर कला अभ्यास कर वह कुछ समय के लिए भारत आईं परन्तु पुन: पेरिस

1. 'माडर्न आर्ट इन इन्डिया'—ले० अजीत मुखर्जी, पृष्ठ १५।
"The only evidence of truth in art exists when it compels us to say, 'I See'. A donkey we may pass by in nature, but a donkey in art we must acknowledge even if it be a creature, that disreputably ignores all its natural history responsibly even if it resembles a mashroom in its head and a palmleaf in its tail."
2. 'माडर्न आर्ट इन इन्डिया'—ले० अजीत मुखर्जी, पृष्ठ १५ तथा १६।

चली गईं। पेरिस में उन्होंने पियर वैया तथा प्रोफेसर लूसिया सीमों की चित्र-शालाओं में कला अभ्यास किया। सर्वप्रथम १९३० ई० में इनके चित्रों का प्रदर्शन 'ग्राँदसलों' में आयोजित एक प्रदर्शनी में किया गया। इस प्रदर्शनी में 'धड़' (जिसमें एक नग्न महिला का पार्श्व छाया तथा प्रकाश में अद्भुत ढंग से चित्रित है) तथा 'युवतियां', नामक चित्र प्रदर्शित करके अमृता फ्रांस में प्रसिद्ध हो गईं। उनके यह चित्र 'माडेल पद्धति' या 'एकेडेमिक शैली' पर आधारित थे।

१९३४ ई० में जब अमृता भारत आईं तो उन्हें 'भारतीय लड़कियों' नामक चित्र पर नई दिल्ली की 'आल इण्डिया फाईन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसायटी' की प्रदर्शनी में स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ। १९३६-३७ ई० के मध्य उन्होंने समस्त भारत का पर्यटन किया, और सर्वप्रथम उन्होंने अजंता के विशाल और भव्य भित्तिचित्रों को देखा और भारतीय कला तथा जीवन से प्रभावित हुईं। अमृता की कला ने यहाँ से ही एक नवीन मोड़ लिया और उन्होंने अजन्ता तथा पहाड़ी चित्रों की सरल और सपाट कोमल रंगों की प्रतीकात्मक शक्ति को समझा। उन्होंने बसोहली शैली के पहाड़ी चित्रों की सरल योजना से विशेष प्रेरणा ली परन्तु उनके चित्र बड़ी कैनवास पर तैल रंगों में बने हैं।

अमृता की कला पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके चित्रों में भारतीय विषयों की नवीनता, तकनीकी नवलता, रेखा की लय, छन्द और रंगों की सबल दार्ष्टिक चेतना है। सतत् प्रयोगों और चिन्तन के पश्चात् अमृता ने अपनी प्रतिभापूर्ण कला में मार्ग प्रशस्त किया। उनके चित्रों में 'वधू का शृंगार', 'गणेश पूजा', 'त्रावणकोर के बालक' और 'स्त्रियाँ' तथा 'नील-वसना' उनकी विल-क्षण प्रतिभा के ज्वलन्त प्रमाण हैं। उनके अनेक चित्रों का संग्रह राष्ट्रीय नूतन कला दीर्घा (गेलरी) नई दिल्ली में सुरक्षित है।

उनके चित्रों में रंग विधान की नवीनता, चमक और रंगों के अत्यधिक बल या विविध रंगतें भारतीय चित्रकला के लिए एक नवीन अध्याय हैं। उनके चित्रों में लाल तथा पीले रंगों का सशक्त और आत्म-अभिव्यंजक प्रय ग है। उन्होंने स्वयं कहा था—'रंगों को मैं पूजती हूं।' उनके चित्रों में तूलिका स्पर्शों के प्रवाह के साथ-साथ धरातल को भरने के लिए बड़े-बड़े धरातल खण्डों का प्रयोग है। अमृता की महत्वा-कांक्षा को यथार्थवाद का आग्रह अनन्त सीमा तक प्रभावित कर चुका था। वे कभी भी अपनी कला साधना में अतीत के स्वर्णिम स्वप्नों और कल्पना की उड़ान में नहीं भटकीं। आरम्भ में उन्होंने भारत की जर्जर ग्रामीण दुखी जनता को अंकित किया और उन्होंने अपने मौलिक रागात्मक तत्व को खोजा। अमृता ने अत्यन्त स्थूल और अत्यन्त दृश्यात्मक कला के प्रति प्रतिक्रिया दिखाकर अपनी कला का वह नवीन मार्ग चुना जो आज भी भारतीय कला अभ्यासी नवयुवकों के लिए प्रेरणाप्रद है। १९३८ ई० में वे पुनः बुडापेस्ट गईं और वहाँ उन्होंने डा० बिक्टरईगान से विवाह किया

और उसी वर्ष वे भारत लौट आईं । परन्तु वे अपने वैवाहिक जीवन का सुख प्राप्त न कर सकीं, और अट्ठाईस वर्ष की आयु पर १९४१ ई० में उनका देहान्त हो गया। उनके चित्रों में विषाद स्पष्ट दिखाई पड़ता है —'भिखमंगे', 'ग्रामीण' तथा अपने 'निजी चित्र' सब ही में उनकी विषादमय भावना दिखाई पड़ती है।

यामिनीराय तथा अमृता शेरगिल के ठोस प्रयोगों से क्षयशील बंगाल स्कूल को गहरी ठेस पहुँची और अन्ततः यह स्कूल दम तोड़ गया । इस नवीन जागृति और प्रयास ने भारतीय कला को नवजीवन प्रदान किया । अतः इन कलाकारों के प्रयासों को 'रिवाइवललिस्ट मूवमेन्ट' या 'पुनर्जीवन आन्दोलन' के नाम से पुकारा जाता है।

गगनेन्द्रनाथ ठाकुर – इन प्रगतिशील कलाकारों के अतिरिक्त ठाकुर परिवार के ही एक अन्य सदस्य कवि रवीन्द्र के अग्रज गगनेन्द्रनाथ ठाकुर ने डा० स्टैला क्रैमरिश के प्रभाव में आकर १९२३ ई० के लगभग अनेक घनवादी प्रयोग आरम्भ कर दिये । उन्होंने घनवादी तथा स्वपनिल शैली आदि अनेक शैलियों में चित्र बनाये। इन चित्रों में काले फाखतई तथा हल्के भूरे रंग का प्रयोग है। उनके चित्रों में पाश्चात्य प्रभाव अधिक है और समसामयिक युरोपियन कला की छाप है। उनके चित्रों में 'स्वपनिल-देश' उनकी प्रतिभा का परिचायक है। प्रायः उनके चित्रों में हास्य और मौज की तरंग है।

नन्दलाल बसु – नन्दलाल बसु का जन्म ३ सितम्बर १८८३ ई० में मुंगेर जिले के हवेली खड़गपुर में हुआ था। कालेज की शिक्षा को स्वेच्छा से त्याग कर वे गवर्नमेन्ट आर्ट स्कूल में भर्ती हो गये । इस प्रकार वे आचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के सम्पर्क में आये और उनके शिष्यों में उनको सर्वोत्कृष्ट स्थान प्राप्त हुआ। उसको १९१७ ई० में रवीन्द्रनाथ टैगोर के द्वारा स्थापित 'विचित्रा' नामक शिल्प-कलाकेन्द्र तथा 'ओरएण्टल स्कूल आफ आर्ट्स' का प्राचार्य नियुक्त किया गया। उनकी कला प्रतिभा देखकर १९२२ ई० में गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगौर ने उनको शान्ति-निकेतन में कला विभाग के अध्यक्ष पद पर निमंत्रित कर लिया । नन्दलाल बसु ने, अजन्ता, बाघ आदि गुफाओं के भित्तिचित्रों की प्रतिलिपियां तैयार कीं; जिससे उनकी ख्याति फैल गई। १९२४ ई० में वे चीन गये जहां उन्होंने चीनी कला का अध्ययन किया। इसी समय उनको कांग्रेस अधिवेशन के पंडाल सजाने के लिये भी आमन्त्रित किया गया। बसु ने विषय तथा तकनीकी की दृष्टि से भारतीय परम्परा की सीमा में बंध कर ही अपने प्रयोग किये। उनके प्रमुख चित्रों में 'शिव का विषमान', 'सत्ती', 'दुर्गा', 'बुद्ध और मेष', 'अर्जुन', 'युधिष्ठर की स्वर्ग यात्रा', 'स्वपन', 'वीणा वादनी', 'गाँधी जी की डाँडीयात्रा', 'संथाल-संथालिन', 'उमा की तपस्या', 'विरहणी', 'मेघ', 'उमा' आदि हैं। 'रूपावली' तथा 'शिल्प कथा' उनकी कला विषयक पुस्तकें हैं। उन्होंने जीवन के अन्तिम वर्षों में जिन कृतियों का निर्माण किया उनमें असाधारण रेखांकन दिखाई पड़ता है। उनके चित्रों में रेखा, चित्र की आकृति का प्राण बन गई है। आलोचकों ने उनकी कृतियों के विषय में इस प्रकार कहा है कि 'उनकी कृतियां

कला के इतिहास में एक क्षण है, सदा प्रवाहमान निरन्तर गतिशील धारा नहीं है।' उनकी कृतियों में आधुनिक अभिव्यक्ति का सामना करने की क्षमता नहीं है। नन्दलाल बसु को राष्ट्रीय सम्मान 'पद्मविभूषण' से विभूषित किया गया। १९५३ ई० में उन्होंने शान्ति निकेतन के कला विभाग से निवृति प्राप्त की परन्तु फिर भी चित्र बनाते रहे और १९६७ में उनका निधन हो गया।

असित कुमार हाल्दर— स्व० असित कुमार हाल्दर से कला जगत पूर्णतया परिचित है। वे आचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रमुख शिष्यों में से थे और स्व० नन्दलाल बसु, क्षितीन्द्र मजूमदार और शैलेन्द्र डे के गुरू भाई थे। वे गवर्नमेन्ट स्कूल आफ आर्टस-लखनऊ के प्राचार्य रहे। प्रयाग में नगरपालिका संग्रहालय में उनकी अनेक कृतियां सुरक्षित हैं। उन्होंने अजन्ता, बाघ तथा जोगीमारा के चित्रों की अनुकृतियां (१९१०-१९१४ ई० के बीच) तैयार कीं। 'उमरखैय्याम' चित्रावली में शैली की मौलिकता है। उन्होंने भारतीय कला की परम्परा से हट कर चलने का प्रयास भी किया परन्तु परम्परा में रंगे कलाकार को सफलता न मिली। उन्होंने लकड़ी, रेशम, हाईबोर्ड आदि पर बराबर प्रयोग किये। उनके चित्रों में आकृति की सरलता तथा रेखा का प्रवाह दर्शनीय है। उनके चित्रों में 'कुणाल', 'अकबर एक महान निर्माता' तथा 'रहस्य' आदि उल्लेखनीय हैं। हाल्दर बाबू कलाकार होने के अतिरिक्त एक बंगला गीतकार थे। मेघदूत का बंगला अनुवाद और उनके दृष्टान्त-चित्र उनकी उल्लेखनीय रचनायें हैं।

देवी प्रसाद राय चौधरी—वे आचार्य अवनीन्द्रनाथ के योग्य शिष्य माने जाते हैं। चित्र की अपेक्षा मूर्ति के नेत्र में उनको अधिक सम्मान प्राप्त है। वे मद्रास स्कूल आफ आर्ट्स के प्रिंसिपल के रूप में कार्य करते रहे। उन्होंने बनजारों, मछुओं तथा पहाड़ी जीवन से सम्बन्धित अनेकों चित्र बनाये। उन्होंने पाश्चात्य कला के सम्मिश्रण से अपनी शैली को प्रशस्त किया। १९५८ ई० में उनको राष्ट्रीय उपाधि पद्मभूषण' से सम्मानित किया गया।

मन्थन का युग, भविष्य की सीमायें और स्वतन्त्रता के पश्चात् की चित्रकला

यामिनीराय और अमृता शेरगिल की प्रगतिशील कृतियों ने भारतीय चित्र-कला के क्षेत्र में हलचल पैदा कर दी और अब हम एक मंथन और चिन्तन के युग में पहुच चुके हैं। इस युग की कला में रूढ़िवादी परम्परा या रसाभिव्यक्ति को वह स्थान प्राप्त नहीं है जो बौद्धिकता या तर्क को है। १९४० ई० तक भारत में नवीन विचारधारा स्वछंद रूप से प्रवाहित होने लगी और अनेक चित्रकारों ने पाश्चात्य देशों की नवीन प्रवृतियों को लेकर यथार्थवादी, यथा-यथार्थ (स्वप्निल शैल) घन-वादी, रचनावादी, प्रभाववादी, अभिव्यंजनावादी, सूक्ष्मवादी (अस्फुट) तथा प्रगतिवादी प्रवृति की अपनी कृतियों में दर्शाया है। इन चित्रकारों ने इस बात को समझा कि

युरोप की 'ऐकेडमी शैली' के अतिरिक्त अनेक चित्र शैलियां हैं जिनकी पद्धति अधिक बलवती है और भारतीय चित्रकारों को अपनी परम्परागत भूत की कला से लिपटा रहना भ्रान्तिपूर्ण है। इन चित्रकारों ने वर्तमान में अपनी आस्था प्रदर्शित की और वर्तमान के आकर्षक रूप को पहचाना। कला वह सरिता है जो सदैव अपने मार्ग को बदलती रहती है और युग, जाति तथा देश रूपी तटों का प्रतिबिम्ब उस पर पड़ता रहता है। कला वैज्ञानिक साधनों की उपलब्धि है और विकास के साथ सदैव ही परिवर्तनशील और विकासोन्मुख होती रही है।

ब्राकुये, साव्रे, स्त्रार्विस्की और पिकासो का पेरिस हमारे समय का प्रधान अन्तर्राष्ट्रीय कला-केन्द्र है और कलाकारों की प्रेरणा का स्रोत है। भारतवर्ष के आधुनिक कलाकारों के केन्द्र मुख्यतया कलकत्ता, बम्बई, तथा दिल्ली हैं, और इन कलाकारों को इन केन्द्रों के आधार पर तीन वर्गों में रक्खा जा सकता है। यद्यपि यह सीमा भौगोलिक ही होगी और कलात्मक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि इन नूतनवादी कलाकारों ने अपनी निजी और मौलिक सत्ता को कलासृजन में सर्वोपरि आधार माना है।

कलकत्ता ग्रुप - कलकत्ता के नवोदित प्रगतिशील कलाकारों ने अपने लिये 'कलकत्ता ग्रुप' के नाम से पुकारा है। इस दल के कलाकार युग की वैज्ञानिक उपलब्धि और प्रगति के प्रति जागरुक रहे। यह कलाकार अब भारत के अनेक भागों में फैल गये हैं। इस ग्रुप का आरम्भ १९४३ ई० में अकाल पीड़ित बंगाल में हुआ अत: इस दल के कलाकार मानववादी हैं। इन चित्रकारों में रथीन मैत्र, गोपाल घोष, सुनील माधव सेन, प्राणकृष्ण पाल, गोवर्धन आशु, कमलादास गुप्ता आदि चित्रकार हैं। गोवर्धनसेन, हेमन्त मिश्रा तथा पारितोष सेन का कलकत्ता ग्रुप के कलाकारों में प्रमुख नाम हैं। इन चित्रकारों ने प्रभाववादी शैली के आधार पर चित्र रचनाएं की हैं या लोककला को इन चित्रकारों ने अपनी कला का आधार माना है। इन चित्रकारों ने लोककला के प्रतीकों और उसकी सरलता से बहुत कुछ ग्रहण किया है।

नूतनवादी प्रवृतियां - स्वतंत्रता के पश्चात् मनीषी डे शैलोज मुखर्जी तथा सुधीर रंजन खास्तगीर ने परम्परागत कला का उद्धार करने के लिये प्रयत्न किये। उन्होंने लोककला से प्राचीन कला की विशेषताओं को ग्रहण करने का प्रयास किया और प्रभाववादी प्रवृतियों को अपनाया।

कला के नवीन विकास में बम्बई तथा दिल्ली दल के कलाकारों का विशेष महत्व है। बम्बई दल के कलाकारों में अनेक स्वयं कुशल प्रयोगशील चित्रकार हैं और किसी नाम विशेष का बन्धन स्वीकार नहीं करते। इन चित्रकारों में बेन्द्रे, माली, रावल चावड़ा, अलमेलकर सातवलेकर और अरुणबोस है। इन चित्रकारों के अतिरिक्त कुछ ऐसे प्रभावशाली चित्रकार हैं जो अपने लिये 'प्रोग्रेसिव ग्रुप' के नाम से पुकारते हैं। इन चित्रकारों में हुसैन, फ्रांसिस सूजा, आरा, रजा, गोडे, हैवर,

अकबर पदमसी, लक्ष्मण पई आदि हैं। इन चित्रकारों ने अपनी कृतियों में व्यवस्था, आकार और रंग योजना को ही प्रधानता दी है और किसी पुरानी शैली या कला आन्दोलन का समर्थन नहीं किया है।

भारत की राजधानी दिल्ली में भी जैसा स्वाभाविक है चित्रकारों का एक नूतनवादी दल विकसित हो चुका है यह दल किसी वर्ग विशेष के अन्तर्गत नहीं आता। यहां के अग्रगण्य चित्रकारों में कुलकर्णी, भावेश सान्याल, कंवलकृष्ण, सतीश गुजराल, शान्ति दुवे, सुलतान अली, शैलोज मुखर्जी, वीरेन डे, दिनकर कौशिक, बद्री, के० सी आर्यन, अविनाश चन्द्र, स्वामी नाथन, कृष्णा खन्ना हैं। नूतनवादी भारतीय चित्रकारों में गायताडे, वीन डे, जी० आर० सन्तोष के० सी० पन्नीकर, गुलाम शेख, भूपेन, सुन्दरम्, विकास भट्टाचार्य, जगमोहन चोपड़ा गुलाम शेख, मनुपारिख, ए० रायना, त्रिलोक कौल, पम्मीलाल, एस० नन्द गोपाल, गणेश पिपाठे, लक्ष्मण पै, हरे कृष्ण लाल, जयराम पटेल, विभवदास गुप्त, प्रदोषदास गुप्त, प्रफुल्ला, वी० प्रभा, दीपक बैनर्जी, अनुपम सूद, ज्यन्त, पारिख, होरे, अम्बादास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी सन्दर्भ में आगे कुछ नूतनवादी चित्रकारों का परिचय वर्णमाला क्रम के अनुसार दिया जा रहा है।

अविनाश--'यदि आकृतिमूलक कला के दार्ष्टिक आनन्द और अमूर्त कला के मानसिक आनन्द का एक साथ भोग करना हो तो अविनाश के चित्र देखना सर्वोचित रहेगा।' (सारिका फरवरी १९६९)। प्रचार और विज्ञापन की दुनिया से दूर रहने कारण उन्हें अधिक ख्याति नहीं मिली है। कला को वह जीवन से अलग चीज नहीं मानते। उनका विचार है कि – चित्रकार रंग तथा रूप के माध्यम से मानसिक अनुगूंजों की जो अभिव्यक्ति करता है, वही कलात्मक, दार्ष्टिक-अभिव्यक्ति है।"

अविनाश का जन्म १९३४ ई० में बरेली में हुआ। उनके पिता अग्रज तथा अनुज कवि तथा लेखक होने से कारण उनको काव्य के प्रति रुचि तथा लेखन शक्ति संस्कार से ही मिली। कालेज के दिनों में वह कला विभाग के अध्यक्ष प्रो० हरिशचन्द्र राय के सम्पर्क में आये और शीघ्र लैंडस्केप्स में उन्हें प्रशंसनीय सफलता मिली। 'वट-वृक्ष', 'रानी खेत के खेत', 'बनारस घाट की नौकाएं', 'पुष्पित कचनार' उनके प्रतिनिधि लैंडस्केप हैं। १९५७ से १९६० ई० के बीच कला अध्ययन के लिए वे बम्बई गये।

उनके अन्य टेम्परा तथा तैल चित्रों में 'लय', 'फलवाली', गढ़वाली नृत्य', 'रिक', शवयात्रा' आदि सुन्दर चित्र हैं। उन्होंने वाश शैली तथा प्रभाववादी दृष्टि के पश्चात् १९६० में अस्फुट कला को अपनाया है और उनके मोमिया चित्र उत्तम हैं। जिनमें 'हिचकोले', 'चन्द्रयात्रा' तथा 'संघर्ष' उत्तम हैं। उन्हें 'पहाड़ी जोड़े' तथा 'मकबरा' नामक चित्र पर शिक्षा विभाग सम्मानित कर चुका है। इस समय मूर्त एवं अमूर्त कला के प्रयोगों में लगे हुए हैं। संप्रति डा० अविनाश वर्मा डी०ए०वी० कालेज,

देहरादून, में चित्रकला विभाग (ड्रायङ्ग एण्ड पेन्टिङ्ग विभाग) के अध्यक्ष पद पर कार्यरत हैं। उनके चित्र तथा लेख 'धर्मयुग', 'सारिका', तूलिका' तथा 'जगत' आदि में प्रकाशित हो चुके हैं।

उनके टेम्परा तथा तैल-रंगों से बने चित्रों में तूलिका स्पर्शों की लयात्मकता और ज्यामितीय आकारों का गठन दर्शनीय हैं। उनके चित्र अमेरिका, कनाडा, तथा भारत के अनेक नगरों जैसे, शिमला, मद्रास, अलीगढ़, लखनऊ, दिल्ली, भूपाल, जयपुर, बम्बई, देहरादून आदि में पहुंच चुके हैं।

अनादि अधिकारी—अनादि अधिकारी बम्बई क्षेत्र के प्रतिभावान कलाकारों में गिने जाते हैं। उसकी कला में अत्यधिक अनुशासन, सच्चाई और लगन है। आपने कम चित्रों की रचना की है परन्तु उनका स्तर उच्च है। आप सौम्य प्रकृति के हैं एवं एकान्त और शान्तिमय जीवन के पक्षपाती हैं। आप अपने एकान्त जीवन को कैनवास पर मूर्तिमान करना चाहते हैं।

अब्दुलरहीम अप्पाभाई अलमेलकर—अलमेलकर बम्बई के प्रतिष्ठित कलाकारों में से एक हैं। उन्होंने यामनीराय तथा अमृता शेरगिल की कलात्मक मान्यताओं को अपनी सूझ-बूझ के आधार पर आगे बढ़ाया है। उन्होंने परम्परा से प्रेरणा ग्रहण कर वर्तमान का समर्थन किया है। उनकी कला में राजपूत कला और मेडन मंडन शैली का समन्वय है और पाश्चात्य कला का समर्थन नहीं किया। उनके चित्र रेखा प्रधान हैं। उनकी रेखाओं में बल और गति के साथ अलंकारिता क्षमता है। उनकी कृतियों में 'राख से पुनर्जन्म', 'पक्षी तथा आदिवासी महिला' उल्लेखनीय चित्र हैं। उन्होंने जनजातियों के जीवन से सम्बन्धित चित्र प्रस्तुत किये हैं, जो उत्तम हैं।

अकबर पदमसी - अकबर पदमसी का जन्म १९२९ में हुआ। उन्होंने बम्बई स्कूल आफ आर्ट्स से कला शिक्षा ग्रहण की। १९५० ई० में वे रजा के साथ पेरिस गये और वहाँ उन्होंने विश्व की महान कला शैलियों तथा कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन किया। उनके चित्रों की देश-विदेश में अनेक बार प्रदर्शनियाँ आयोजित हो चुकी हैं। अकबर पदमसी के अनुसार—'चित्र देखने के लिये होता है, उसका दृष्टि-आकर्षण ही उसकी सफलता है।' विदेश से लौटने पर १९५४ ई० में पदमसी की कृतिओं को भारत में यथोचित मान्यता प्राप्त हुई। इसी वर्ष पदमसी के चित्रों की प्रदर्शनी जहाँगीर कला दीर्घा बम्बई में आयोजित हुई। इस प्रदर्शनी के चित्रों पर अश्लीलता का दोष लगाकर प्रदर्शनी और चित्रकार दोनों को बम्बई के सत्ताधारियों ने बन्द कर दिया। परन्तु न्यायालय पदमसी के पक्ष में आया और पदमसी का छुटकारा हुआ। पदमसी के चित्रों में प्रायः रंग काले, भूरे, सफेद, गुलाबी तथा ग्रे हैं। उनकी आकृतियों में कुछ अपनी मौलिक विशेषता है जिसके द्वारा भावाभिव्यक्ति की गई है।

आर० पी० श्रीवास्तव—डा० आर० पी० श्रीवास्तव गवर्नमेन्ट कालेज फारवीमैन पटियाल में फाईन आर्ट डिपाटमेन्ट के अध्यक्ष हैं। उन्होंने यथार्थवादी शैली के पश्चात्, प्रयोगवादी कलाकार के रूप में सशक्त कृतियाँ प्रस्तुत की हैं। उनके चित्र तथा लेख अनेक पत्र तथा पत्रिकाओं में सम्मानित हो चुके हैं। उन्होंने अनेक सेमीनारस तया आर्टिस्टिस कैम्प का आयोजन किया है और पटियाल क्षेत्र की रुचि तथा कला निधियों को अग्रसर किया है। उनके तैल चित्र पंजाब तथा पंजाब के बाहर बहुत प्रसंशा कर प्राप्त चुके हैं।

अशीश बरन मिश्रा—अशीश बाईन वर्ग एलेन स्कूल, मसूरी के कला विभाग के अध्यक्ष हैं। उन्होंने चित्रकला से एम० ए० की उपाधि ग्रहण करने के उपरान्त मसूरी में अनेक चित्र प्रदर्शनीयां आयोजित की हैं। उनके चित्रों में गढ़वाल, के दुर्गम क्षेत्रों के जीवन की झलक दिखाई पड़ती है। उनके अनेक चित्र उत्तर प्रदेश में प्रकाशित हो चुके हैं और अनेक चित्र अमेरिका तथा अन्य देशों में सम्मानित हो चुके हैं। वे प्रयोगशील युवा चित्रकार एवं मूर्तिकार हैं।

उषा मन्त्री—उषा मन्त्री ने लोक-कला की परम्परा पर अपनी कला शैली का विकस किया। अमृता शेरगिल के पश्चात उनका स्थान माना जाता है। उषा के चित्रों में नारी जीवन का विषाद, करुणा और ममता है। उनके चित्रों में 'दर्द की अंगड़ाइयां' हृदयस्पर्शी चित्र है।

एन० खन्ना—जन्म १९४०; शिक्षा राजकीय कला एवं शिल्प महाविद्यालय, लखनऊ। भारत की महत्वपूर्ण प्रदर्शनियों में चित्रों का प्रदर्शन होता रहा है। सात एकल प्रदर्शनियों का आयोजन हो चुका है जिनमें उ० प्र० राज्य ललित कला अकादमी द्वारा १९६९ में अयोजित प्रदर्शनी सम्मिलित है। उनको उ० प्र० राज्य ललित कला अकादमी १९६५; उ० प्र० कलाकार संघ (रजतपदक) १९६३; आगरा विश्वविद्यालय के अनेक पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। कला विषयक लेख अनेक पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। आजकल वे उ० प्र० राज्य ललित कला अकादमी में प्रदर्शन अधिकारी के पद पर कार्य कर रहे हैं।

"जीवन में व्याप्त विसंगतियों के मुझे चित्रकार बना दिया। जीवन की अनुभूति घनीभूत होकर मेरे चित्रों में उभरने लगी। इस प्रकार से जीवन और समाज के प्रति अपनी प्रतिक्रिया मेरे अपने चित्रों में बलवती होती चली गयी। मेरे मन के उद्गार रंगों और खुरदरी सतह के प्रयोगों का दामन पकड़कर मेरे चित्रों में अभिव्यक्त होने लगे। जीवन की समस्यायें ही मेरे चित्रों की भावभूमि बन गयीं"
—एन० खन्ना।

के० एच० आरा—आरा के चित्रों की अनेक प्रदर्शनियाँ देश-विदेशों में आयोजित हो चुकी हैं। आरा ने विशेष रूप से प्राकृतिक विषयों से सम्बद्ध चित्रों को बड़ी मौलिकता से बनाया है। उनकी कृतियों में फूल-फल फारसी लघु चित्रों की

याद दिलाते हैं। इन चित्रों के फल-फूलों में रंग तो हैं पर सुगन्ध का आवास नहीं होता है। आरा के चित्रों की १९६१ ई० मे जहाँगीर आर्ट गेलरी— बम्बई में प्रदर्शनी आयोजित की गई जो पर्याप्त सफल मानी गई। इस प्रदर्शनी में प्रदर्शित ५० नग्न चित्रों को लेकर विरोधी दल ने बम्बई प्रशासन से प्रदर्शनी बन्द करने की मांग की। परन्तु उनके चित्रों को सराहा गया और प्रदर्शनी ज्यों की त्यों चलती रही।

के० के० हेब्बर—के० के० हेब्बर सतत् अपनी शैली के निजीपन को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहे। उन्होंने अमृता से प्रेरणा ली और आगे चलकर वे जार्जकीट की चित्र शैली और फ्राँस की विविध शैलियों से प्रभावित हुये। उन्होंने रंगों के मनोवैज्ञानिक पक्ष को लेकर चित्रों का रग विधान प्रस्तुत किया है।

उनके चित्रों के विषय कृषक, मजदूर, मछली वाले, फल-फूल बेचने वाले और श्रमिक लोग हैं। इनकी रेखाकृतियाँ लयपूर्ण हैं और नाटकीय गति से सजीव बन पड़ी हैं।

हेब्बर के चित्रों में रंगयोजना मौलिक और रुचिकर है। उन्होंने राजपूत शैली के चित्रों के रंगों की लाक्षणिकता तणा चटकपन के महत्व को पहचाना है और उन्होंने अपने चित्रों में लाल, पीले तथा नीले रंग का अधिक प्रयोग किया है। १९६० ई० में उनके चित्रों की आल इण्डिया फाईन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट सोसायटी नई दिल्ली की कला दीर्घा में प्रदर्शनी आयोजित की गई। इस प्रदर्शनी के चित्रों में उन्होंने नये दृष्टिकोणों से परिपूरित चित्र प्रदर्शित किये। उनके तैल चित्र सराहनीय है। 'ब्रज' तथा 'श्रीनगर' उनकी उत्तम कृतियां हैं।

के० एस० कुलकर्णी - के० एस० कुलकर्णी का जन्म पूना के समीप स्थित बेलगांव में १९१८ ई० में हुआ। १९४० ई० में वे बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट्स में आये। सर जे० जे० स्कूल से डिप्लोमा प्राप्त करने के पश्चात् सरकार ने उनको दो वर्ष की छात्रवृति प्रदान की। यूरोप, अमेरिका, तथा एशिया के अनेक देशों का वे बार-बार भ्रमण कर चुके हैं। १९५०-५१ ई० में अमेरिका में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय कला-सम्मेलन में वे भारतीय प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलति हुए। १९५५ ई० में राष्ट्रीय ललित कला अकादमी का पुरस्कार उनको प्राप्त हो चुका है। उन्होंने काँग्रेस अधिवेशनों के पंडाल सुसज्जित करने में भी ख्याति पाई है। कुलकर्णी के चित्रों का आधार ग्रामीण कला तथा जीवन है। उनके चित्रों का संग्रह देश और विदश के अनेक चित्र संग्रहालयों में सुरक्षित है। उनके चित्रों में 'कथावाचक' तथा 'शृंगार' उत्तम कृतियां हैं।

गोपाल कृष्ण—(जन्म १९४१) गोपाल कृष्ण ने एम० ए० (अंग्रेजी) बरेली कालेज से पास कर कला प्रेम के कारण कला शिक्षा राजकीय कला एवं शिल्प महाविद्यालय लखनऊ से ग्रहण की। भारत की महत्वपूर्ण प्रदर्शनियों में उनके चित्रों का प्रदर्शन हो चुका है और अनेकों पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं। १९६७ में उत्तर प्रदेश

राज्य ललित कला अकादमी तथा १९७१ में उत्तर प्रदेश कलाकार संघ द्वारा उनको पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। आजकल वे इन्डियन इन्स्टीट्यूट आफ टेकनालाजी, कानपुर में हियूमेनिटीज विभाग में कला अध्यापन का कार्य कर रहे हैं।

गोपाल कहते हैं कि—"मैं अधिकतर प्राकृति तथा वातावरण से प्रभावित होकर जल रंगों अथवा तैल रंगों में दृश्य अंकित किया करता था, बाद में जब मैं कानपुर में रहने लगा तो मेरे ऊपर औद्योगिक नगर की प्रतिक्रियायें गहराई से असर करने लगीं। मेरे इधर के चित्रों में यही प्रतिक्रिया घनीभूत होकर अभिव्यक्ति पाने लगी है। इसी प्रतिक्रिया का रूप भावना प्रधान अधिक है उसलिए इन्हें अमूर्त रूपों में ही सफलतापूर्वक व्यक्त किया जा सकता है।" बरेली ग्रुप के वे उदीयमान युवा कलाकार हैं।

गोपाल मधुकर—राजकीय कला विद्यालय-लखनऊ से मूर्तिकला में पोस्ट डिप्लोमा प्राप्त कर वैंजनाथ (कांगड़ा) में कला प्रशिक्षक रहे। संप्रति वे बारहसैनी कालेज, अलीगढ़ में चित्रकला विभाग के अध्यक्ष हैं। उनको चित्र तथा मूर्तिकला दोनों पर समान अधिकार है। उनके चित्रों में 'दहेज', 'चीन और भारत', 'मृत्यु और शान्ति' आदि उल्लेखनीय है। उनके चित्रों की एकल प्रदर्शनी आल इन्डिया फाईन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसायटी की कला दीर्घा में आयोजित हो चुकी है। उनके चित्रों में मूर्ति का ठोसपन और टेक्स्चर की मौलिकता दिखाई पड़ती है। डा० मधुकर ने कोलाज चित्र भी बनाए हैं जो उत्तम हैं।

छाया आर्य –१९५९ ई० में छाया ने सर जे० जे०,स्कूल, बम्बई से डिप्लोमा ग्रहण किया और दो वर्ष अध्ययन के लिए सरकार से छात्रवृत्ति पाई। इसी समय अपने विवाह के पश्चात् अपने पति के साथ इंगलैंड जाने का अवसर प्राप्त हुआ जहाँ उन्होंने पिकासो के चित्रों की प्रदर्शनी देख उससे प्रेरणा ली। उनकी कला पाश्चात्य तथा भारतीय कला का संयोग है।

छैलबिहारी बार्तरिया इनका जन्म बरेली में हुआ। कला अध्ययन हेतु वे बम्बई के सर जे० जे० स्कूल गए। यहाँ पर उनको कम्पोजीसन में विशेष पुरस्कार प्राप्त हुए और उनको सर जे० जे० स्कूल के श्रेष्ठतम छात्रों में गिना गया। उनकी कला प्रतिभा के कारण उनको स्वर्णपदक तथा अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए। उनके चित्रों की प्रशंसा बम्बई की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई। संप्रति वे डी० ए० बी कालेज, कानपुर के कला विभाग के अध्यक्ष हैं। स्वास्थ्य बिगड़ जाने पर भी वे सदैव चित्र की परिकल्पना में लगे रहते हैं उनके कम्पोजीसन्स (चित्रों) में रंगों की कोमलता, रेखा की बारीकी सराहनीय है। पिछले कुछ वर्षों से उन्होंने नूतनवादी दृष्टिकोण दर्शाया और अमूर्त चित्र विधान लेकर सफल चित्रों का संयोजन किया। तैल रंगों तथा टेम्परा रगों पर उन्हें असाधारण अधिकार था।

ज्योतिष भट्टाचार्य कलकत्ता आर्ट्स स्कूल में कला शिक्षा प्राप्त कर वे इटली की कला का अध्ययन करने के लिए विदेश गए । उनकी कृतियों में यथार्थवाद, प्रभाववाद और अन्त में सूक्ष्म या अमूर्त कला का उत्तम रूप प्रस्फुटित हुआ है । ग्राफिक्स के आज वे सुप्रसिद्ध कलाकार हैं । उनको १९५९ ई० और १९६१ ई० में क्रमश: राष्ट्रपति से रजत पदक और स्वर्ण पदक प्राप्त हुए हैं ।

जार्ज कीट—उनका जन्म लंका में हुआ, परन्तु वे अपनी कला शैली के कारण भारतीय कला के क्षेत्र में सम्मानित हैं । जार्ज कीट ने भारतीय कला तथा संस्कृति का अध्ययन ही नहीं किया है वरन् उनको आत्मसात कर लिया है । उनका रंग विधान, रेखायें, संयोजन भारतीय होते हुए भी उनकी मौलिकता दर्शनीय है । उनकी कला पर पिकासो, सेजां, गोगां तीनों की कला का प्रभाव माना जाता है । उन्होंने ज्यामितीय ढंग से आकृतियों को रेखाओं में बद्ध किया है । उन्होंने सम्पूर्ण चित्र-विन्यास को ज्यामितीय रेखाओं, त्रिभुजों आदि से विभक्त कर इच्छित रूपों को प्राप्त किया है । उनके कृष्ण लीला सम्बन्धी चित्र उल्लेखनीय हैं !

प्राण नाथ मांगो प्राण नाथ मांगो पंजाब के निवासी हैं । उन्होंने पंजाब के रंगीन, उत्साहपूर्ण जीवन को समीप से देखा है । उनकी शैली में लोक कला का अद्भुत सम्मिश्रण है । उनके चित्र प्रभाववादी धारणा पर आधारित हैं । सम्प्रति वे आल इन्डिया हैन्डीक्राफ्ट बोर्ड, दिल्ली में आलेखन विभाग के निर्देशक हैं ।

पी० टी० रेड्डी—पी० टी० रेड्डी ने बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट्स से कला डिप्लोमा प्राप्त कर निरत कला साधना की है । अपनी कला साधना के २५ वर्षों के पश्चात् इनकी कृतियों में स्पष्ट उभार आ गया है । उनके चित्रों में लोक शैली तथा टेक्स्चर प्रणाली का अद्भुत सम्मिश्रण है । उनके चित्रों में 'तीन सखी, 'संगीत', 'नृत्य करती हुई युवती', 'विश्राम' आदि उल्लेखनीय हैं ।

परमानन्द चोयल – वे महाराज भूपाल कालेज, उदयपुर में चित्रकला विभाग के अध्यक्ष हैं । उन्होंने सर जे० जे० स्कूल से कला शिक्षा प्राप्त कर इगलैण्ड में उच्च कला अध्ययन किया । उन्हें इस अध्ययन के लिये जापान सरकार ने भेजा था । उन्होंने तैल रंगों में सुन्दर लैंडस्केप्स बनाए हैं । उनकी डिस्टार्शन शैली की कृतियां उत्तम हैं । उनके रंग चमकदार हैं और टेक्स्चर का उनमें मुख्य प्रयोग है ।

प्रफुल्लचन्द्र जोशी (प्रफुल्ला)—श्रीमती प्रफुल्लचन्द्र जोशी का नाम आधुनिक महिला चित्रकारों में विशिष्ट है । उनको १९५४ ई० में 'रागिनी टोड़ी नामक चित्र पर बम्बई आर्ट सोसायटी से पुरस्कार मिल चुका है । इसी प्रकार 'दरबारी कानड़ा' पर भी उनको सर जे० जे० स्कूल ने स्वर्ण पदक प्रदान किया ।

प्रकाशचन्द बरुआ– प्रकाश का जन्म १५ अगस्त १९२६ ई० में हुआ । मेरठ कालेज से बी० ए० डिग्री प्राप्त करने तक वे एक सफल अभिनयकार के रूप में प्रसिद्ध

हो चुके थे। चित्रकला का प्रेम उन्हें सदैव रहा और वे कलाकारों के सदैव ससर्ग में रहे। उन्होने मिट्टी के पात्रों की चित्रकारी, दृश्य चित्रण तथा अलंकार सम्बन्धी कला को विशेष रूप से अपनाया है। बाद में उन्होंने दृश्य चित्रों पर विशेष बल दिया, जिनमे रंगों का स्वच्छ प्रयोग है और टेक्स्चर आकर्षक है। १९७२ ई० में उन्होंने अपने चित्रों की प्रदर्शनी आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसायटी, की कला दीर्घा दिल्ली में आयोजित की। वे जी० बी जैन कालेज, सहारनपुर में कला विभाग के अध्यक्ष पद पर रहे और २५ नवम्बर १९८३ ई० को उनका स्वर्गवास हो गया।

विजय भारद्वाज—कु० विजय ने सरल तथा सुन्दर वर्णविधान युक्त शैली अपनाई है। उनके चित्र मसूरी आदि स्थानों में प्रदर्शित हो चुके हैं। संप्रति महारानी भाग्यवती देवी कालेज, बिजनौर में चित्रकला विभाग की अध्यक्षा हैं और उन्होंने बिजनौर में कला जागरण लाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आगे उनसे बहुत आशा की जाती है।

भावेश सान्याल—भावेश सान्याल चित्रकार और मूर्तिकार दोनों ही रूपों में प्रख्याति प्राप्त कर चुके हैं। आपके चित्रों में लोक कला की सरलता, प्रभाववादी आकृतियां, चित्ताकर्षक रंग विधान, और अजन्ता का सपाटपन है। उनके चित्र 'स्नान' और 'संगीतज्ञ' उनकी तकनीकी और शैलीगत विशेषताओं के प्रतीक हैं। आपके चित्रों में गम्भीरता है।

भगवती प्रसाद कम्बोज—आगरा विश्वविद्यालय से एम० ए० चित्रकला की उपाधि ग्रहण करने के पश्चात आप आगरा कालेज, आगरा के चित्रकला विभाग में प्रवक्ता पद पर नियुक्त हो गये और अनेक वर्षों तक इस पद पर रहे। आजकल वे इस विभाग के अध्यक्ष हैं। आपने यथार्थ बादी, तथा यथा यथार्थ बादी कलाकार के रूप में सफल प्रयोग किये हैं और अनेक प्रदर्शनियों में आप के चित्रों को सम्मान मिला है।

मगन सिंह—चित्रकला विभाग, आगरा कालेज, आगरा में मगन सिंह आर्य भी एम० ए० करने के पश्चात भगवती काम्बोज के पश्चात प्रवक्ता नियुक्त होकर पहुँच गये। आपने यथार्थवादी शैली अपनाई है और मुखाकृति चित्रण में विशेष दक्षता दर्शाई है—उनके-चित्र प्रदर्शनियों में सम्मानित हो चुके हैं।

चित्रा सिंह—डा० श्रीमती चित्रा सिंह प्रवक्ता चित्रकला विभाग, आगरा कालेज, आगरा की प्रगतिशील महिला, चित्रकार हैं—उनके तैल चित्र प्रयोगशील कला के उदाहरण हैं—अनेक प्रदर्शनियों में चित्र सम्मानित हो चुके हैं।

मदनलाल नागर—मदनलाल नागर का जन्म ४ जून १९२३ ई० को लखनऊ में हुआ। उनकी स्कूली शिक्षा की प्रगति नवीं कक्षा से आगे न बढ़ सकी। मदन के अग्रज विख्यात लेखक अमृतलाल नागर ने उनको लखनऊ के सरकारी आर्ट स्कूल

में भर्ती करा दिया जहां उनको असित कुमार हाल्दर जैसे चित्रकार का निर्देशन प्राप्त हुआ। १९४६ ई० में इस स्कूल की शिक्षा समाप्त कर मदन ने देश के विभिन्न भागों का भ्रमण किया। १९४९ ई० में लखनऊ और १९५१ ई० में मसूरी में आयोजित अखिल भारतीय प्रदर्शनियों में उनके चित्र प्रदर्शित किये गये। १९५० ई० में उन्होंने अपने चित्रों की प्रथम एकल प्रदर्शनी लखनऊ में आयोजित की, तब से वे अनेक एकल चित्र प्रदर्शनियां कर चुके हैं। १९७२ ई० की प्रदर्शनी में उत्तर प्रदेश राज्य ललित कला अकादमी ने उनकी एक नूतनवादी कृति पर उनको पुरस्कृत किया है। उन्होंने अनेको शैलियों में प्रयोग किये। कृतियों में मनुष्य का मायाजाल' उत्तम है। १९६३ ई० में उनको राष्ट्रीय ललित कला अकादमी से 'निराला पुराना शहर' नामक चित्र पर पुरस्कार मिला।

माधव सातवलेकर—माधव सातवलेकर बम्बई क्षेत्र के प्रसिद्ध कलाकार हैं। उनकी कृतियों में पाश्चात्य तथा भारतीय कला का मौलिक ढग से सयोग किया गया है। कोमल छाया और प्रकाश से निवद्ध उनकी आकृति सीमा रेखाओं में गहराई के साथ चित्र के धरातल में बैठ गई है। बृद्ध सम्बन्धी चित्र उनके विशेष चित्रों में माने जाते हैं। इसी प्रकार रामायण की कथा 'स्वर्ण मृग' आदि चित्र सुन्दर हैं।

मनीषी डे—मनीषी डे ने भारतीय कला के उत्थान के सतत् प्रयत्न किये हैं। उनकी कृतियों में भारतीय रेखा और आकृतियों की सरलता दर्शनीय है। वे लोक-कला से प्रभावित हैं। उनके चित्रों में रेखा सौष्ठव, रंग विधान उत्तम और आकर्षक है। उनके चित्रों में 'संथाल वधु', 'दीपावली' आदि उल्लेखनीय हैं। उनके रेखाचित्र शक्तिशाली रेखाओं से निबद्ध हैं।

मकबूल फिदाहुसेन—मकबूल फिदाहुसेन का जन्म १९१६ ई० में हुआ। इंदौर आर्ट स्कूल से शिक्षा प्राप्त कर वे बम्बई में चलचित्र कलाकार के रूप में अनेक वर्षों तक कार्य करते रहे। १९५३ ई० के पश्चात् उन्होंने कला क्षेत्र में पदार्पण किया। आज वे सतत् नवीन प्रयोगों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कलाकारों में से एक हैं। उनकी आरम्भिक कला का आधार जैन चित्र थे परन्तु आज उनका दृष्टिकोण पूर्ण सूक्ष्मवादी बन चुका है। उनको जापान में प्रदर्शित चित्रों पर अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। उनकी कृतियां देश-विदेश में सराही गई हैं।

उनके चित्रों की सफल प्रदर्शनियां हैदराबाद तथा जहांगीर आर्ट गैलरी बम्बई में आयोजित हो चुकी हैं। वे कई बार युरोप के अनेक देशों का, कला अध्ययन हेतु, भ्रमण कर चुके हैं। युरोप से लौटने के पश्चात् लगभग १९७० ई० में उन्होंने त्रिवेणी कला संगम दिल्ली में एक डिमांस्ट्रेशन (चित्र निर्माण प्रदर्शन) आयोजित किया जिसमें उन्होंने अचेतन जगत के आधार पर चित्र रचना कर दिल्ली के नागरिकों को विस्मय विमुग्ध कर दिया।

उनके चित्रों में 'ढुलकिया', 'बैलगाड़ी' 'घोड़े', 'वापसी' आदि उत्तम कृतियां हैं। उनके चित्र आज संसार की अनेक प्रसिद्ध कला-दीर्घाओं में पहुँच चुके हैं।

मोहन सामन्त—मोहन सामन्त को कुलकर्णी, हुसेन, रजा, गुजराल जैसे अग्रगण्य चित्रकारों की श्रेणी में गिना जाता है। उन्होंने अपनी कला का विकास भारतीय लघुचित्रों तथा पाश्चात्य शैलियों के आधार पर किया है। वे सदा परिवर्तन की ओर उन्मुख रहे हैं। उन्होंने हाल ही में स्थाई रूप से अमेरिका की नागरिकता स्वीकार कर ली और वे अमेरिका चले गये।

दिनकर कौशिक—दिनकर कौशिक का जन्म २५ जून १९१८ को धारवाड़ (मैसूर राज्य) में हुआ। उन्होंने शान्ति-निकेतन के कला-भवन में अपनी कला दीक्षा ग्रहण की। १९५७ ई० में उनकी ख्याति फैलने लगी। इन्होंने अनेक देशों का भ्रमण किया और समसामयिक कला का अध्ययन किया है। १९५५ ई० में इटली सरकार की ओर से कला-अध्ययन के लिए वे रोम गये। वे इटली, इंगलैण्ड तथा फ्रांस का पूर्णरूपेण भ्रमण कर चुके हैं। उनके चित्रों की एक प्रदर्शनी सर्वप्रथम शिल्पीचक्र दिल्ली के तत्वावधान में १९५२ ई० में आयाजित की गई। १९५७ में उनके चित्र युरोप के अनेक नगरों में प्रदर्शित किये गये।

उनके चित्रों को अनेक बार अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों में प्रदर्शित किया जा चुका है। वे युरोप की प्रभाववादी कला से प्रभावित हैं और शान्तिनिकेतन की भारतीय परम्परा उनकी मौलिकता का आधार है।

अनेक वर्षों तक दिल्ली के बहुधधी विद्यालय में ललित कला का अध्यापन करने के पश्चात वे लखनऊ आर्ट स्कूल के प्रिंसिपल पद पर कार्य करते रहे और अब वहाँ से निवृत्ति प्राप्त कर चुके हैं।

नारायण श्रीधर बेन्द्रे—नारायण श्री बेन्द्रे का जन्म २१ अगस्त १९१० ई० को इन्दौर में हुआ। उन्होंने कुछ समय तक स्टेट स्कूल आफ आर्ट, इन्दौर में डी० डी० देवलालीकर से चित्र शिक्षा प्राप्त की और बाद में बम्बई आर्ट स्कूल से राजकीय डिप्लोमा प्राप्त किया। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की है। वे दो बार आर्ट सोसाइटी आफ इण्डिया के अध्यक्ष रहे। १९७२ ई० से वे ललितकला अकादमी के उपाध्यक्ष पद पर रहे। बेन्द्रे एशिया तथा यूरोप के अनेक देशों में कला के अध्ययन के लिए भारत सरकार के द्वारा बिदेश भेजे गये या विदेशी सरकारों के बुलाने पर वे वहां भ्रमण कर चुके हैं। काश्मीर की मनोरम प्रकृति और राजस्थानी नगरों की सुन्दरता ने उनको सदैव आकर्षित किया है। वे सदैव अनेक शैलियों में प्रयोगशील रहे हैं। १९५८ ई० में उन्होंने चीन तथा इटली का दौरा किया। इसी समय वे चीनी कलाकारों की तूलिका से प्रभावित हुए। विश्व के सभी प्रमुख देशों में उनके चित्रों में प्रदर्शनियां हो चुकी हैं। उनके चित्रों में जलरंगों जैसी ताजगी और चमक है। काले रंग का उन्होंने सन्तुलन के साथ खुलकर प्रयोग किया है। नीले, पीले,

नारंगी तथा बैंगनी विरोधी रंगों के प्रयोग में उनको दक्षता प्राप्त है। उनके अनुसार-कलाकार 'दृश्य-अदृश्य पदार्थों' और भावनाओं से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थियों को सुलझाता है और उन्हें अपनी कल्पना तथा शैली के द्वारा सहज ग्राह्य बनाता है।' वे बड़ौदा विश्वविद्यालय के कला विभाग के अध्यक्ष पद पर अनेकों वर्ष तक कार्य कर निवृत्ति प्राप्त कर चुके हैं। संप्रति वे बम्बई में 'ग्राफिक्स' कार्य के लिए स्थापित हो गये हैं।

उनके चित्रों में 'दार्जिलिंग के चाय बागान में युवती', ज्येष्ठ की दोपहर' तथा अमरनाथ और कशमीर के दृश्य उल्लेखनीय हैं।

रामगोपाल विजय वर्गीय—विजय वर्गीय स्वभाव से ही कवि तथा कलाकार दोनों ही हैं। वे भारतीय कला परम्परा के पोषक कलाकार हैं। उनके चित्रों में लावण्ययुक्त रूप, आकर्षक रेखांकन कोमल रंगों का विधान दर्शनीय है। उनके 'शकुन्तला' तथा 'मेघदूत' सम्बन्धी चित्र सुन्दर हैं।

रणवीरसिंह विष्ट—रणवीरसिंह विष्ट उत्तर प्रदेश के उन नवोदित कलाकारों में से प्रमुख हैं जिन्होंने नई आस्था और नवीन कला प्रवृत्तियों को दिखाया है। वे लखनऊ आर्ट स्कूल से अपना कला प्रशिक्षण समाप्त कर देश भ्रमण के लिए निकल पड़े, फिर लखनऊ आर्ट स्कूल में अध्यापक बन गये। आज वे इसी आर्ट स्कूल में प्रिंसिपल हैं। वे अमेरिका का हाल में ही भ्रमण करने आये हैं। वे फाविज्म की ओर अग्रसर हुये और सतत् प्रयोग करते रहे और राष्ट्रीय ललितकला अकादमी ने उन्हें नूतनवादी कलाकारों में सम्मानित किया है।

विष्ट के चित्रों में तकनीकी नवीनता और थीम्स (विषय) की मौलिकता है। उनके चित्रों की अनेक प्रदर्शनियां नैनीताल, लखनऊ, इलाहाबाद, दिल्ली आदि नगरों में हो चुकी हैं। उनके चित्रों में 'नल पर भीड़', 'भगवान बुद्ध', 'लाल पृष्ट-भूमि पर वृक्ष', 'चेहरे', 'श्रम' आदि उल्लेखनीय हैं।

१९६५ ई० में आपको राष्ट्रीय ललित कला अकादमी ने पुरस्कृत कर के सम्मानित किया है।

रामकुमार—रामकुमार गोआ निवासी हैं और १९२४ ई० में उनका जन्म हुआ। उन्होंने बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट से शिक्षा ग्रहण की। रामकुमार एक कलाकार ही नहीं बल्कि कला समीक्षक भी हैं। वे प्रयोगवादी कलाकार हैं और अन्तर्राष्ट्रीय कला क्षेत्र में स्थान पा चुके हैं। उन्होंने देश-विदेश की कला का अध्ययन किया है। वे अपनी रागात्मक अनुभूतियों को कैनवास पर अपने अन्तर में उत्पन्न बिम्ब के आधार पर उतारते हैं। वे पेरिस आदि यूरोप के नगरों का भ्रमण कर चुके हैं।

उनके अनेक चित्र भावलोक सेसम्बन्धित हैं। परन्तु वे पराम्परागत पौराणिक प्रतीकों पर आधारित हैं। उनके चित्रों में रंगयोजना और रूप सज्जा का निजी महत्व

है। उनको राष्ट्रीय ललित कला अकादमी द्वारा पुरस्कृत किया जा चुका हैं। संप्रति वे बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में अध्यापक हैं।

रघुवंशकुमार भटनागर—रघुवंशकुमार का जन्म १९३६ में हुआ। उन्होंने दिल्ली के पोलीटेक्निक से कला अध्ययन समाप्त कर अपनी चित्र प्रदर्शनियों में प्रशंसा पायी। उनकी कृतियां अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों में भारत की ओर से जापान आदि देशों में प्रदर्शित की जा चुकी है। वे युरोप की यात्रा कर चुके हैं और उन्होंने ग्राफिक्स तथा अमूर्त चित्रकला के लिए अपना स्थान बना लिया है। उन्हें राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हो चुकी है और अकादमी पुरस्कार मिल चुके हैं।

वीरेन—वीरेन का जन्म १ अगस्त १९३६ को अमृतसर में हुआ। १९५७ ई० में वे कोलम्बो गये, वहाँ वे बौद्धकला से प्रभावित हुये। वीरेन कुछ समय बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में भी कला का अध्ययन करते रहे। परन्तु सन्तोष न पाकर वे रंगों तथा आकारों, बिम्बों तथा दृश्यों के अपने प्रयोग करने लगे। वीरेन आज अमूर्त कला के क्षेत्र में उदीयमान चित्रकार हैं। उन्हें 'भिक्षुओं', 'घुमक्कड़ों' तथा जानवरों से विशेष प्रेम है। उनके चित्रों में अनुभूति प्राय: अस्पष्ट, धुंधली और व्यंगात्मक रूप में रहती है।

बद्रीनाथ आर्य—(जन्म १९३६), बद्रीनाथ आर्य ने कला शिक्षा, राजकीय कला एवं शिल्प महाविद्यालय, लखनऊ में प्राप्त की। वे अनेक महत्वपूर्ण कला प्रदर्शनियों में चित्रों का प्रदर्शन कर चुके हैं।

उनको उ० प्र० राज्यपाल पुरस्कार, अखिल भारतीय चित्रकला प्रदर्शनी, १९६५; अखिल भारतीय मैसूर दशहरा प्रदर्शनी, (स्वर्ण पदक) १९६१, १९६२, १९६३; एकेडमी आफ फाइन आर्टस, कलकत्ता, १९६३; ललित कला परिषद १९५५; उ० प्र० कलाकार संध, लखनऊ, १९७१ से पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। आजकल वे राजकीय कला एवं महाविद्यालय, लखनऊ में कार्यरत हैं।

उनके अनुसार—"मेरी कला का ध्येय कभी भी पुरस्कार प्राप्त करना या पुरस्कृत चित्रों की दुम पकड़ कर आगे प्राप्त होने वाले पुरस्कारों का पीछा करना नहीं रहा है। मुझे तो अपने चित्र के प्रदर्शन मात्र से ही सन्तोष हो जाता है। मेरा लक्ष्य एक ही रहता है कि मैं अपनी भावना को भौतिक स्वरूपों में नये प्रयोगों के आधार पर अभिव्यक्त कर सकूं। तकनीक कोई भी हो सकती है क्योंकि वह कभी पुरानी नहीं होती। तकनीक वही होनी चाहिए जो आंतरिक भावना को अभिव्यक्त करने में पूरी तरह समर्थ हो। मुझे वाश तकनीक अपनी भावना की अभिव्यक्ति में अधिक उपयुक्त लगती है किन्तु मैं वाश चित्रों की परम्परा में बंधना कभी पसन्द नहीं करता।"

वीरेन्द्र नारायण—जयपुर में उनकी प्रतिभा को कला प्रेमी भली प्रकार पहचान चुके हैं। उनका जन्म बरेली (उ० प्र०) के एक सम्पन्न परिवार में हुआ।

१९५० ई० से चित्रकला की ओर अग्रसर हुए और आगरा विश्वविद्यालय के स्नातक की डिग्री प्राप्त कर लगभग १९५५ ई० में अध्ययन हेतु शान्ति-निकेतन में कला-भवन के छात्र बने। उनकी कला से उनके आचार्यगण बहुत प्रभावित रहे और उन्होंने शान्ति निकेतन से स्वर्ण पदक प्राप्त किया। इस समय आचार्य नन्दलाल बसु के वे निकट सम्पर्क में आये। संप्रति वे महारानी कालेज, (राजस्थान विश्वविद्यालय) जयपुर में चित्रकला विभाग के अध्यक्ष हैं। अभी हाल में ही उनके चित्रों की एकल प्रदर्शनी, दिल्ली में आयोजित की गई जिसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। उन्होंने जोधपुर तथा जयपुर में अनेक फ्रेस्को चित्र बनाने में ख्याति पायी है। अब वे भारतीय आकारों को लेकर नूतनवादी प्रयोगों में रत हैं। उन्होंने जयपुरी फ्रेस्को में विशेष निपुणता प्राप्त की है और १९७४ ई० में उन्होंने भित्ति चित्रण का प्रशिक्षण देने के लिये जयपुर में कलाकार शिविर लगाया। उनके बातिक चित्र उनकी मौलिक खोजों तथा प्रयोगशीलता के कारण निखर उठे हैं।

सुधीर रंजन खास्तगीर—सुधीर रंजन खास्तगीर का जन्म भारत के समृद्ध नगर कलकत्ता में १४ सितम्बर १९०७ ई० को एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। बालकाल में ही हठी सुधीर रंजन कला आचार्यों की चर्चा का विषय बन गये। पिता की अनुमति बिना ही खास्तगीर ने शान्ति निकेतन में बी० ए० के स्थान पर कला-भवन में प्रवेश ले लिया। स्व० रवीन्द्रनाथ टैगोर के नाटक तथा नृत्य मंडल में वे सदैव ही प्रमुख रहे। नन्दलाल बसु की कला परम्परा में दीक्षित हो उन्होंने देश भ्रमण किया। इसी समय उनकी मनीषी डे, प्रभाष नियोगी, गोपाल घोष आदि कलाकारों से मित्रता हो गई। खास्तगीर पहले ग्वालियर के 'सिन्धिया स्कूल', फिर देहरादून के 'दून स्कूल' में कला विभाग के अध्यक्ष रहे। अन्त में वे लखनऊ के गवर्नमेन्ट आर्ट स्कूल में प्रिंसिपल पद पर कार्य करते हुए निवृत प्राप्त कर बोलपुर चले गये। खास्तगीर की प्रतिभा, मूर्तिकाल तथा चित्रकार दोनों रूपों में प्रस्फुटित हुई है, परन्तु वे पहले मूर्तिकार हैं पीछे चित्रकार।

खास्तगीर ने अपने चित्रों में अन्तर की ताल और लय को मुखरित कर दिया है। उनके रंग शोलों (चिन्गारियों) के समान कैनवास पर धधकते दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने अपने चित्रों में कभी टूटे तूलिका स्पर्शों और कभी लम्बे तूलिका स्पर्शों का प्रयोग किया है। उन्होंने चमकदार नीले, नारङ्गी, सिन्दूरी, पीले, गेरुआ तथा काले रंगों का प्रभाववादी कलाकार के रूप में खुलकर प्रयोग किया है। रौंदा नामक यूरोपीय मूर्तिकार का उन पर गहरा प्रभाव है परन्तु नन्दूबाबू की परम्परा उनकी रेखा में विद्यमान है। १९५७ ई० में उनको भारत सरकार ने 'पद्मश्री' से विभूषित किया। खास्तगीर के अनेक चित्र देशी और विदेशी संग्रहों में हैं। उनके चित्रों में 'अमलताश पर कौवे', 'प्रतीक्षा', 'गाँधी', 'गौतम चित्रावली', 'आत्मविस्मृति', 'दीपावली नृत्य' आदि प्रमुख चित्र हैं।

सैयद हैदर रजा—हैदर रजा लगभग छब्बीस वर्षों से पेरिस में रह रहे हैं। उन्होंने स्थाई रूप से फ्रांस की नागरिकता ग्रहण करली है। १९५२ ई० में उनके चित्रों की फ्रांस में प्रदर्शनी आयोजित हुई तो कला- विशेषज्ञ जेकस लेसिन ने हैदर के चित्रों के बारे में इस प्रकार कहा था 'वे अद्‌भुत थीं, सूर्य किरणों से स्निग्ध हुए समयानीय दृश्यचित्र धरती से उपेक्षित नगरों के थे सैयद हैदर रजा ने इनमें रात और दिन की भिन्नता को व्यक्त करने का प्रयास किया है।,

रजा के पिता मध्यप्रदेश के जंगलों के अधिकारी थे। इस प्रकार इन घने जंगलों से रजा का घरेलू सम्बन्ध था। बालकाल में उन्होंने जंगलों की जटिलता, भयानकता तथा बीहड़पन को देखा था।

पेरिस जाने के बाद वे दो बार भारत आये हैं और उन्होंने अपनी प्रदर्शनियाँ आयोजित की हैं। उनके चित्रों में आकार और रंगों का सूक्ष्मवादी ढग से आयोजन है। उनको रंगवादी कलाकार कहना उपयुक्त होगा। उनकी कृतियो में जगल की 'अग्नि' से सम्बन्धित चित्र विशेष प्रभावकारी है।

रजा ही एक ऐसे विदेशी चित्रकार हैं जिन्हें १९५६ ई० में कला क्षेत्र का प्रसिद्ध पुरस्कार 'प्री द क्रतिक' (क्रिटिक ऐवार्ड) प्राप्त हो चुका है। १९७६ ई० में वे पुनः भारत आये और उन्होंने कलकत्ता तथा बम्बई में प्रदशनियां आयोजित की।

हृदय नारायण मिश्र –(जन्म १९४६) कला शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी; राजकीय कला एवं शिल्प महाविद्यालय, लखनऊ। पांच कला प्रदर्शनियों का आयोजन हो चुका है। कला विषयक लेखन में उनकी विशेष अभिरुचि है। आजकल वे डी० ए० वी० कालेज देहरादून के चित्रकला विभाग में अध्यापन का कार्य कर रहे हैं।

उनके अनुसार—"पहले मेरी ऐसी धारणा थी कि इस संसार में जो कुछ है वही सब कुछ है और उससे प्राप्त होने वाला सुख ही सुख है। मैं अधिकतर सांसारिक जीवन अथवा प्रकृति से अभिभूत होकर चित्र बनाया करता था। उन चित्रों में अपनी रुचि को ही अधिक महत्व देता था लेकिन बाद में मुझे ऐसा अनुभव हुआ f कला केवल अपने सुख के लिये ही नहीं है बल्कि उसका भागीदार समाज भी होता है। मैं अब ऐसे ही चित्र बनाना पसन्द करता हूं जो मुझे आनन्द के साथ ही साथ दर्शकों को भी उसी तरह प्रभावित करें। आज का संसार विज्ञान और औद्योगीकरण के अभिशाप से त्रस्त होकर इस प्रकार गुमसुम तथा भ्रमित होकर बैठ गया है जैसे वह उस क्षण की प्रतीक्षा कर रहा हो कि कब इस दुनिया का विस्फोट होता है। किन्तु मैं ऐसा अनुभव करता हूं कि इस मनोदशा से छुटकारा दिलाने वाला एक ही आधार है और वह है 'योग'। मुझे विश्वास है कि मानव इसके द्वारा निश्चित ही आनन्द का मार्ग खोज लेगा, यही मेरे चित्रों की भूमिका है।"

सतीश गुजराल—सतीश गुजराल का जन्म १९२५ ई० में हुआ। उन्होंने जी० डी० आर्ट्स कालेज, लाहौर और बाद में सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट्स, बम्बई में कला शिक्षा ग्रहण की। तदुपरान्त उन्होंने मेसिकों से एडवांस पेन्टिग तथा मुराल तकनीकी में डिप्लोमा प्राप्त किया। न्यूयार्क, मेक्सिको बम्बई तथा दिल्ली में उनके चित्रों की एकल प्रदर्शनियों को अत्यधिक सफलता तथा प्रशंसा प्राप्त हुई है।

गुजराल आज अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के कलाकार माने जाते हैं। यह ख्याति उन्होंने अपनी शैली के कारण अर्जित की है। उसकी आरम्भिक कृतियों में यथार्थ और अभिव्यंजनावाद की अतिवादिता है। वे प्रभाववादी कला को आधार मानकर चले और मैक्सिको की कला से अत्याधिक प्रभावित हैं।

संप्रति वे मुराल के लिए अग्रगण्य कलाकार माने जाते हैं। चण्डीगढ़ तथा दिल्ली की अनेक सरकारी इमारतों को उन्होंने मुराल चित्रों से अलंकृत किया है। उनके तैल चित्रों में भी अब अमूर्तवादी कला का शक्तिशाली रूप उदित हुआ है।

उनके चित्रों की एक प्रदर्शनी १९५४ ई० में इन्डिया हाऊस में हुई। उनकी एक सफल प्रदर्शनी १९६१ ई० में न्यूयार्क में आयोजित हुई।

उनके चित्रों में गहरे नीले, पीले, भूरे, लाल तथा काले रंगों का असाधारण ढंग से प्रयोग दिखाई पड़ता है। उनके आधुनिकतम चित्रों में रंग उनकी अमूर्त कला की भाषा बन गये हैं। उनकी आकृतियां प्राय: विशालकाय, भयानक तथा विकराल हैं। उनके चित्रों में 'मेक्सिकन नारी', 'परिवार', 'कृष्ण मेनन', 'गालिब' आदि उल्लेखनीय हैं।

सतीश चन्द्र—(जन्म १९४१) उनकी कला शिक्षा राजकीय कला एवं शिल्प महाविद्यालय, लखनऊ में हुई। अनेक महत्वपूर्ण कला प्रदर्शनियों में उनके चित्रों का प्रदर्शन हो चुका है। उ० प्र० राज्य ललित कला अकादमी तथा उ० प्र० कलाकार संघ के द्वारा पुरस्कृत हो चुके हैं। वे दस एकल प्रदर्शनियों का आयोजन कर चुके हैं, जिनमें उ० प्र० राज्य ललित कला अकादमी द्वारा १९६४ तथा अमेरिका में १९६७ में आयोजित प्रदर्शनियां सम्मिलित हैं। आजकल वे राजकीय कला शिल्प महाविद्यालय, लखनऊ में कार्य कर रहे हैं।

सतीश का कहना है—"मुझे प्रकृति में जो कुछ भी अच्छा लगता है मैं उसी को चित्रित करता हूं किन्तु प्रकृति को देखने का मेरा अपना दृष्टिकोण है। मैं प्रकृति में जो कुछ देखता हूं उसको वैसा ही चित्रित नहीं कर सकता। मैं प्रकृति के कुछ विशिष्ट गुणों से ही प्रभावित होता हूं और उनके अतिरिक्त जो कुछ भी होता है उसे मैं अपने चित्र में गौण स्थान देता हूं।"

सरन बिहारी लाल सक्सेना—डा० सरन बिहारी लाल सक्सेना ने आगरा विश्वविद्यालय से एम० ए० चित्रकला में उत्तीर्ण होने के पश्चात कानपुर को अपना

कार्य क्षेत्र बनाया। कानपुर विश्वविद्यालय से आपने पी० एच० डी० की। आप डी० ए० वी० कालेज, कानपुर चित्रकला विभाग में प्रवक्ता रहे। यहाँ आपने अनेक चित्र प्रदर्शनियों में भाग लिया। आपने नवीन प्रयोग भी यही से प्रारम्भ किये और तैल चित्रण में यथा यथार्थवादी शैली का अनुसरण किया। संप्रति वे चित्रकला विभाग, (ललित कला), के बरेली कालेज, बरेली, में अध्यक्ष पद पर कार्यरत हैं। आजकल आप पुन: यथार्थवादी कला के समर्थक हैं। और वे अपने चित्रों की अनेक प्रदर्शनियाँ आयोजित कर चुके हैं। कला सम्बन्धी शोध क्षेत्र में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। वे एक कला समीक्षक और लेखक हैं।

सुरेन्द्रबहादुर (सुमानव)—सुमानव का जन्म बरेली में हुआ। कालेज शिक्षा के बाद ड्राफ्ट्समैन का कार्य किया, परन्तु कला रुचि के कारण वे नौकरी त्याग कर लखनऊ के आर्ट स्कूल चले गये। यहाँ डिप्लोमा कक्षा में उन्होंने प्रथम स्थान पाया। संप्रति वे सैनिक स्कूल, इलाहाबाद में कला प्रशिक्षक हैं। १९७२ ई० में उनको उत्तर प्रदेश अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ है। वे अमूर्त अस्फुट कला की ओर अग्रसर हैं। वे बरेली ग्रुप के उदीयमान युवा कलाकार हैं।

शैलोज मुखर्जी —शैलोज का जन्म १९१० ई० में हुआ। शैलोज ने पूर्व और पश्चिम की कला का समन्वय स्थापित किया। उनके प्रारम्भिक चित्र राजपूत तथा मुगल शैली पर आधारित है परन्तु बाद के चित्रों में अभिव्यंजनावादी या प्रभाववादी दृष्टिकोण अपनाया गया है। उनके चित्रों की १९४७ ई० और १९५९ ई० में पिकासो तथा रूसो के साथ प्रदर्शनी हुई थी। उनके चित्रों में 'पनघट,' 'कपड़े सुखाती स्त्री' आदि सुन्दर हैं। उन्होंने पोलीटेक्निक, दिल्ली तथा शारदा उकील स्कूल आफ आर्ट्स में अध्यापन कार्य किया। शैलोज मुखर्जी १९६० ई० कलासाधना करते निधन को प्राप्त हो गये।

शान्ति दवे—शान्ति दवे का जन्म १९३१ ई० में हुआ। उन्होंने बड़ौदा विश्वविद्यालय के कला विभाग में कला शिक्षा पाई। देश-विदेश की प्रदर्शनियों में उनके चित्र प्रशंसा प्राप्त कर चुके हैं। बड़ौदा क्षेत्र के कलाकारों में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। वे अनेक प्रदर्शनियों में पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं।

१९५९ ई० से वे अमूर्तवादी कला की ओर उन्मुख हैं। उन्होंने अरूपता की ओर उन्मुख होते हुए चमकदार रंगों के पैटर्न; तूलिका की स्वच्छन्द गति को महत्व दिया है। १९६२ ई० के पश्चात् उन्होंने मोमिया चित्रों का निर्माण किया है और उसके वे सिद्धहस्त कलाकार माने जाते हैं। इस प्रकार का उनका चित्र 'हिम पर प्रकाश' उल्लेखनीय है। १९६३ ई० में उनके चित्रों की दिल्ली में एक प्रदर्शनी आयोजित हुई, जिससे उनको ख्याति मिली।

श्याबक्ष चावड़ा—श्याबक्ष चावड़ा ने देश-विदेश की कलाओं का अध्ययन किया है। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के कलाकारों में से एक हैं। उन्होंने लोक जीवन तथा

लोक नृत्यों के थीम्स पर बिशेष ख्याति पाई। उनके चित्रों में रेखा की लय, गति, सरलता आकृतियों की मुद्रायें सशक्त हैं। नृत्यरत आकृतियां, रंगमंच पर अभिनय करते हुये पात्रों के क्रिया कलाप, समूह गान आदि चावड़ा ने सफलता से व्यक्त किये हैं।

उन्होंने नित नवलता का स्वागत किया है। उन्होंने अमृताशेरगिल, सेजों गोंगा, मातीस आदि से कला प्रेरणा ग्रहण की है। उनके चित्रों में लोक नृत्य सम्बन्धी चित्र उत्तम हैं। 'श्रीलंका का कैन्डियन लोक नृत्य' उनकी उत्तम कृति है।

शिवकुमार शर्मा—शिवकुमार का जन्म ५ अगस्त १९३५ में हुआ। संप्रति वे मेरठ कालेज, मेरठ में चित्रकला विभाग के अध्यक्ष हैं। उन्होंने नूतनवादी कलाकार के समान प्रयोग किये हैं और उन्होंने थ्रीप्लाई के रेशों के आधार पर अस्फुट चित्र नियोजन की प्रणाली को अपनाया है। वे उदीययान चित्रकारों में से एक हैं।

यज्ञेश्वर कल्याणजी शुक्ल—यज्ञेश्वर शुक्ल का जन्म १९०७ ई० में हुआ। १९३४ ई० में उन्होंने सर जे० जे० आफ स्कूल आर्ट में प्रथम स्थान प्राप्त कर डिप्लोमा प्राप्त किया ज़िसके फलस्वरूप उन्हें 'मेयोपदक' प्राप्त हुआ। इसी वर्ष उन्हें पूना आर्ट्स सोसायटी से स्वर्णपदक प्राप्त हुआ। १९३६ ई० में एक सत्य के रूप में आधुनिक भारतीय चित्रकार के रूप में ब्रिटिश कला प्रदर्शनी, लंदन में हिस्सा लिया। १९३८ ई० में वे कला अध्ययन के लिये रायल अकादमी आफ आर्ट्स, रोम भी गये १९४७ ई० को पेरिस तथा युनेस्को में आयोजित चित्र प्रदर्शनी में उन्होंने भारत की ओर से प्रतिनिधित्व किया। इसी वर्ष सरकार ने उनको चीन भेजा। उनके चित्रों की अनेक प्रदर्शनियां--बड़ौदा संग्रहालय (१९४९ ई०), बम्बई (१९५० ई०) टोकियो (१९५७ ई०) आदि स्थानों में हो चुकी हैं। १९५८ ई० में फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट सोसायटी, दिल्ली की ओर से आयोजित राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में उनको प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ।

संप्रति यज्ञेश्वर शुक्ल जे० जे० स्कूल आफ आर्ट्स में कला विभाग के अध्यक्ष हैं। उनके चित्र देश-विदेश में पहुँच चुके हैं।

हरिश्चन्द्र राय—उनका जन्म बरेली के एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। वे बालकाल से ही चित्रकला में विशेष रुचि लेते रहे। उन्हें चित्र, मूर्ति, संगीत, अभिनय, नृत्य तथा काव्य का युवाकाल तक प्रेम दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया। लगभग १९४३ ई० में वे लखनऊ आर्ट स्कूल में भरती हो गये जहाँ उन्होंने स्व० असितकुमार हाल्दर का विशेष स्नेह प्राप्त हुआ। वे लखनऊ आर्ट स्कूल में सदैव प्रथम स्थान प्राप्त करते रहे। लखनऊ कला तथा संगीत अध्ययन के पश्चात वे बरेली में आ गये और उन्होंने बरेली कालेज में अनेक वर्ष कला प्रशिक्षण किया। १९५० ई० में उन्होंने अपने नेतृत्व में एक युवा कलाकारों का दल (बरेली ग्रुप) (बरेली स्कूल आफ आर्ट तथा बरेली आर्ट सर्किल) संगठित किया। इस दल के कलाकारों में ग्रामी

(मेरठ), बीरेन्द्र (जयपुर), अविनाश (देहरादून पहले उल्लेख किया जा चुका हैं— इस पुस्तक के लेखक), राजन (लखनऊ), गोपाल (कानपुर), नफीस न्याजी (बरेली), सुमानव (इलाहाबाद), श्याम (पटना), नरेन्द्र, हरिहर (बरेली), रामस्वरूप (बरेली) आदि ने उच्च अध्ययन कर मौलिक शैलियां दिखाई हैं। कला के उच्च अध्ययन हेतु उन्होंने स्वयं बम्बई सरकार का भी चित्रकला में डिप्लोमा ग्रहण किया।

१९६२ ई० में वे कालेज आफ आर्ट्स नाहन (हि० प्र०) के प्रिंसिपल नियुक्त होकर एक नवीन संस्था की आधार शिला रखने गये। अब यह कालेज राज्य सरकार ने शिमला में स्थानान्तरित कर दिया है। उन्होंने चित्र के प्रति अत्यधिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया है। उनके चित्रों में रंगों की प्रांजलता, रेखा की बारीकी और कोमलता प्रशंसनीय हैं। उनके दृश्य-चित्रों में प्रकृत्ति की आत्मा मुखरित हो उठी है। उनके द्वारा बनाया गया बुलगानिन का द्रुत रेखाचित्र (लाईफ स्केच) अन्तर्राष्ट्रीय मेले में टेलीविजन पर दिखाया गया है। वे स्वयं भारतीय शैली के कुशल चित्रकार हैं परन्तु आधुनिकता या नूतनता को बुरा नहीं मानते थे। उनके अनुसार सच्ची अनुभूति के लिए उपयुक्त शैली के द्वारा अभिव्यक्ति करना कला है।

उनके अनेक चित्रों में 'सीस्टा', 'कवि', 'प्रलय' तथा रानीखेत के लैन्डस्केप्स उल्लेखनीय हैं। उनके चित्र अमेरिका, स्काटलैंड, इंगलैंड आदि में पहुंच चुके हैं। भारत में कला संरक्षकों के पास उनकी कृतियां हैं।

आधुनिक कला के विकास का नवीन अध्याय बम्बई तथा दिल्ली दल के कलाकारों से अधिक प्रगति को प्राप्त हुआ है। विगत वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के कलाकार प्रोफेसर एन० एस० बेन्द्रे की अध्यक्षता में बड़ौदा विश्वविद्यालय के कला विभाग ने प्रगति को प्राप्त किया था। नवोदित कला प्रशिक्षण वाली संस्थाओं में राजकीय कला विद्यालय, शिमला (पहले यह विद्यालय १९६२ ई० में नाहन में स्थापित किया गया था) तथा राजकीय विद्यालय, चण्डीगढ़ ने कला क्षेत्र में नवीन प्रयोग आरम्भ कर दिये हैं। प्रिंसिपल हरिशचन्द्रराय, जो स्वयं कुशल मूर्तिकार, चित्रकार, आलोचक तथा विचारक हैं, के निर्देशन में राजकीय कला विद्यालय, शिमला ने आश्चर्यजनक उन्नति की है। राजकीय कला विद्यालय चण्डीगढ़ के प्रिंसिपल, सुशील सरकार, जो सुविख्यात चित्रकार है, के निर्देशन में अनेक युवा कलाकारों ने अपनी मौलिक प्रतिभा दिखाई है।

सर्वप्रथम आगरा, मेरठ, कानपुर तथा राजस्थान और विक्रम विश्वविद्यालय के उपरान्त भी चित्रकला में स्नातकोत्तर कक्षायें अनेक विश्वविद्यालयों में प्रारम्भ कर दी हैं! उदयपुर विश्वविद्यालय के अन्तर्गत भूतपूर्व प्रोफेसर पी० यन० चोयल की अनोखी डिस्टार्शन पद्धति तथा कलात्मक सूझ-बूझ से वहाँ की कला में एक परिवर्तन आया हैं। हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस में विख्यात चित्रकार के० एस० कुलकर्णी की अध्य-

क्षता में ललित कला विभाग की स्थापना हुई, परन्तु आजकल रामचन्द्र शुक्ला के पश्चात इस पद पर पम्मी लाल कार्य कर रहे है।

इन अग्रगण्य चित्रकारों के अतिरिक्त अनेक अन्य चित्रकारों ने ख्याति प्राप्त की है जिनमें रमेशचन्द्र साथी, योगी, बद्री, राजन (लखनऊ), श्याम (बरेली ग्रुप-पटना) डी० पी० डुलिया (गोरखपुर), अजमतशाह (अलीगढ़), ने अपनी शैली को परम्परा के आधार पर विकसित किया है। अनेक प्रयोगशील कलाकारों में अवतारसिंह पंवार, विजेन, काजी, गायतोंडे, सलीम कुक्कल, मुनीसिंह, कालकी, धीर, सरला, सूरजसदन, भावसार, ज्ञानेन्द्रकुमार, जवाहरलाल, सनतकुकार चटर्जी तथा कानपुर के मकबूल अन्सारी, सुरेश सक्सेना, रूपनारायण बाथम, राजेन्द्र निगम, जे० एस० सैनी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

अनेक नवोदित कलाकारों में रामचन्द्र शुक्ल, नागदेव, बघेला, वामन ठकरे, गम्भीर (अमृतसर), कु० नीलकमल (जालन्धर), हरिकृष्ण भारद्वाज (शिमला), कु० शिवकुमारी रावत (उज्जैन), श्रीमती प्रज्ञा रश्मि (देहरादून), विजयपालसिंह, (बदायूं) आशीशवरन (मसूरी), मगनसिंह आर्य (आगरा), प्रबोधनाथ (मेरठ), कु० विजय (बिजनौर), ज्योतिस्वरूप (झांसी सैनिक स्कूल), कुलभूषण, जगरोशन, (सहारनपुर) ने अपनी नूतनवादी प्रवृत्तियाँ दिखाई हैं। इन चित्रकारों के अतिरिक्त कृपालसिंह शेखावत (जयपुर), शैल चोयल (उदयपुर), बी० सी० गुई तथा उनकी पुत्री दीपिका गुई (अजमेर), एस० एच० काजी, मीनाक्षी काजी (जयपुर) रमेश गर्ग (चित्तौड़) आदि राजस्थान में प्रगतिशील कलाकारों के रूप में कार्य कर रहे हैं। बरेली में सरन बिहारी लाल ने सक्रिय कलाकार के रूप में १९७५ ई० से कार्य आरम्भ किया है।

आधुनिक समस्या—आधुनिक कलाकारों के समक्ष रोटी और कपड़े का प्रश्न है अनेक कलाकारों को जनतांत्रिक समाज में ठीक आश्रय प्राप्त नहीं है। सरकारी सहायता एक वर्ग विशेष और वयोवृद्ध संतति के कलाकारों तक सीमित है और छोटे तथा बड़े नगरों में नगरपालिका या प्रशासन के द्वारा कलाकारों को आर्थिक सहायता, चित्रशालायें तथा चित्रदीर्घायें निःशुल्क दिलाने का प्रश्न है। आज चित्रों का समाज में आर्थिक दृष्टि से उपयुक्त मूल्यांकन नहीं हो पाया है। अतः सरकार का दायित्व है कि युवा चित्रकारों की कृतियों को राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बिक्री के लिये अच्छे साधन उपलब्ध कराये। देश की कला के विकास में युवा पीढ़ी का सदैव योगदान रहा है क्योंकि युवक ही नूतनवादी विचारधारा के जन्मदाता होते हैं अतएव युवा कलाकारों की स्थिति को सतत् रूप से सुदृढ़ बनाने की अत्यधिक आवश्यकता है।

भारतवर्ष के सार्वजनिक चित्र संग्रहालय

1. अजमेर संग्रहालय, अजमेर (अजमेर दुर्ग में स्थिति)—स्थापना 1908 ई० ।
2. अलवर संग्रहालय, अलवर— स्थापना 1940 ई० ।
3. भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता ।
4. विक्टोरिया संग्रहालय, कलकत्ता ।
5. आशुतोष कला संग्रहालय, कलकत्ता—स्थापना 1937 ई० ।
6. कोटा संग्रहालय, कोटा—पुन: व्यवस्था 1951 ई० ।
7. जयपुर संग्रहालय (अल्बर्ट हाल), जयपुर—1876 ई० उद्घाटन 1887 ई० ।
8. राज्य पुस्तकालय, जयपुर ।
9. नागपुर संग्रहालय, नागपुर—स्थापना 1963 ई०
10. नगरपालिका संग्रहालय, इलाहाबाद—स्थापना 1947 ई० ।
11. बड़ौदा संग्रहालय, बड़ौदा—स्थापना 1914 ई० ।
12. बीकानेर सग्रहालय, बीकानेर—स्थापना 1937 ई० ।
13. मद्रास संग्रहालय, मद्रास—स्थापना 1951 ई० ।
14. सेन्ट्रल एशियन येंटिक्विटीज म्युजियम, नई दिल्ली—स्थापना 1929 ई० ।
15. राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली—स्थापना 1957 ई० ।
16. प्रान्तीय संग्रहालय, लखनऊ—स्थापना 1963 ई० ।
    (अब यह संग्रहालय बनारसीबाग के नवीन भवन में पुनर्व्यवस्थित कर दिया गया है)
17. 'भारत कला भवन', वाराणसी—स्थापना 1920 ई० ।
18. पंजाब संग्रहालय, शिमला—स्थापना 1947 ई० ।
19. पंजाब संग्रहालय, पटियाला ।
20. सालारजग संग्रहालय, हैदराबाद—स्थापना 1949 ई० से पूर्व ।
21. प्रिंस आफ वेल्स संग्रहालय, बम्बई ।
22. माडर्न गेलरी आफ आर्ट, नई दिल्ली—स्थापना 1954 ई० ।
23. चण्डीगढ़ संग्रहालय, चण्डीगढ़ ।
24. भूरिसिंह संग्रहालय, चम्बा ।
25. उदयपुर संग्रहालय, उदयपुर ।
26. ग्वालियर दुर्ग स्थित गूजरी महल संग्रहालय, ग्वालियर ।
27. राज्य पुस्तकालय, रामपुर ।
28. डोगरा आर्ट गेलरी, जम्मू ।
29. खुदाबख्श पुस्तकालय, बांकीपुर ।
30. पटना संग्रहालय, पटना ।

भारतवर्ष में चित्रों के निजी संग्रह

1. महाराजा वर्द्धवान-संग्रह ।
2. महाराजा बनारस-संग्रह ।
3. नवाब रामपुर-संग्रह ।
4. महाराजा उदयपुर-संग्रह ।
5. श्री गगनेन्द्रनाथ टैगोर-संग्रह (कलकत्ता) ।
6. बाबू सीताराम लाल-संग्रह (बनारस) ।
7. पी० सी० मानकू-संग्रह (बांकीपुर) ।
8. श्री मोतीचन्द्र खजान्ची-संग्रह (बम्बई) ।
9. श्री मुकुन्दीलाल-संग्रह (कोटद्वार) ।
10. राजा ध्रुवदेव, लम्बाग्राम-संग्रह ।
11. मियां करतार सिंह-संग्रह (जम्मू) ।
12. राजा बल्देव सिंह-संग्रह (गुलेर) ।
13. राजा आनन्द चन्द-संग्रह (विलासपुर) ।
14. जे० के० मोदी-संग्रह (अहमदाबाद) ।
15. राधा कृष्ण जालन-संग्रह (पटना) ।
16. जे० के० कनेरिया-संग्रह (कलकत्ता) ।

कुछ कला बीथियां

1. माडर्न आर्ट गेलरी, नई दिल्ली ।
2. ज्योति गेलरी, नई दिल्ली ।
3. फाइन आर्ट एण्ड क्राफ्ट सोसायटी गेलरी, नई दिल्ली ।
4. ललित कला दीर्घा, रवीन्द्र भवन, नई दिल्ली ।
5. जहांगीर आर्ट गेलरी, महात्मा गांधी रोड, फोर्ट-बम्बई ।
6. चैमोल्ड आर्ट गेलरी, बम्बई ।
7. उत्तर प्रदेश राज्य ललितकला अकादमी, कला दीर्घा, लाल बारहदरी, लखनऊ ।
8. जे० के० आर्ट गेलरी, कानपुर ।

कलाकारों के प्रमुख कला संगठनों की सूची

अमृतसर--

इण्डियन अकादमी आफ फाइन आर्ट्स, कपूर रोड।

कलकत्ता —

अकादमी आफ फाइन आर्ट्स, इण्डियन म्युजियम हाउस, 27 चौरंगी रोड।

दी कलकत्ता आर्ट सोसायटी, 7 लिन्से स्ट्रीट।

इण्डियन कालेज आफ आर्ट्स एण्ड ड्राफ्ट्समैन, धर्मतला स्ट्रीट।

कोल्हापुर—

कला-निकेतन, 117-बी० महाद्वार।

माडल आर्ट इंस्टीट्यूट।

गडग—

आसाम ललित कला अकादमी, पान बाजार, गोहाटी (आसाम)।

ग्वालियर—

मध्य भारत कला परिषद।

जयपुर—

राजस्थान ललित कला अकादमी, कृष्ण निवास, महावीर रोड।

नई दिल्ली—

आल इन्डिया फाइन आर्ट्स एन्ड क्राफ्ट्स सोसायटी, ओल्ड मिल रोड।

ललित कला अकादमी, रवीन्द्र भवन, बंगाली मार्केट।

दिल्ली शिल्प चक्र, शंकर मेंशन, कनाट सर्कस।

पटना—

शिल्पकला परिषद, राजकीय कला विद्यालय (बिहार)।

पूना—

भारतीय कला प्रसारिणी सभा, 147 ए० सदाशिव पैठ, लक्ष्मी रोड।

बम्बई—

दी आर्ट सोसायटी आफ इन्डिया, सैंडहर्स्ट हाउस, सैंडहर्स्ट रोड।

दी नूतन कला मन्दिर, ब्लावत्स्की बिल्डिग, फ्रेंच ब्रिज।

बम्बई आर्ट सोसायटी, जहाँगीर आर्ट गेलरी, महात्मा गाँधी रोड, फोर्ट।

जी० डी० आर्ट सोसायटी -

कलादीप—सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट, दादा भाई नैरोजी रोड।

बरेली—

बरेली आर्ट सर्किल, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड बिल्डिंग।

बोलपुर—

शांति निकेतन कला परिषद।

भागलपुर—

कलाकेन्द्र।

भोपाल—

रिदम् आर्ट सोसायटी, टी० टी० नगर।

मद्रास—

प्रोग्रेसिव पेंटर्स एसोसियेशन, 2-कासा मेजर रोड।

साउथ इन्डियन सोसायटी आफ पेंटर्स, म्युजियम हाउस, दगमोर।

राजकोट—

सौराष्ट्र कला मण्डल, राजकोट।

लखनऊ—

यू० पी० आर्टिस्ट एसोसिएशन, 37 हजरतगंज।

उ० प्र० राज्य ललित कला अकादमी, लाल बाहरदरी।

शिमला—

पंचाल ललित कला अकादमी, मोरवेन।

श्रीनगर—

जम्मू एण्ड काशमीर अकादमी आफ आर्ट एण्ड कल्चर।

हैदराबाद—

हैदराबाद आर्ट सोसायटी, हैदरगुदा।

चण्डीगढ़—

राज्य ललित कला अकादमी, चण्डीगढ़ म्युजियम बिल्डिङ्ग।

संदर्भ ग्रन्थ

(हिन्दी)

अवध उपाध्याय

चित्रकला, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 2005 वि० ।

अवनीन्द्रनाथ ठाकुर

भारत शिल्प के षठांङ्ग, नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, 1958 ई० ।

अशोक मिश्र

भारतेर चित्रकला, बंगाल पब्लिशर्स, कलकत्ता, 1958 ई० (बंगाला) ।

असित कुमार हाल्दर

भारतीय चित्रकला, चन्द्रलोक प्रकाशन, इलाहाबाद, 1959 ई० ।

ललित कला की धारा, चन्द्रलोक प्रकाशन, इलाहाबाद 1960 ई० ।

डा० जगदीश गुप्त

भारतीय कला के पदचिन्ह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1961 ई० ।

प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1967 ई० ।

डा० द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल

भारतीय वास्तु शास्त्र प्रतिमा-विज्ञान— वास्तु वाङ्मय प्रकाशनशाला, शुक्ल-कुटी, फैजाबाद रोड, लखनऊ, 1856 ई० ।

भारतीय वास्तु शास्त्र प्रतिमा-विज्ञान-प्रतिमा-लक्षण

वास्तु वाङ्मय प्रकाशनशाला, शुक्ल कुटी, 10 फैजाबाद रोड, लखनऊ, 1967 ई० ।

नन्दलाल बसु

भारतीय कला का सिंहावलोकन, दिल्ली, 1955 ई० ।

रूपावली, विश्वभारती ग्रन्थालय, कलकत्ता, 1949 ई० ।

शिल्प कला, साहित्य भवन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, 1952 ई० ।

नान्हलाल चमनलाल मेहता

भारतीय चित्रकला, हिन्दुस्तानी अकेडेमी, इलाहाबाद, 1933 ई० ।

मनोहरलाल

कला एक अध्ययन, रामनारायण लाल, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण, 1955 ई० ।

प्राईमर आफ आर्ट, रामनारायण लाल, इलाहाबाद ।

डा० मोती चन्द
दक्खिनी कलम, बीजापुर, भारत कला भवन, बनारस ।

रांगेय राघव
प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास ।

राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह
महाराज संसारचन्द, आत्माराम, दिल्ली, 1959 ई० ।

रामगोपाल विजयवर्गीय
राजस्थानी चित्रकला, विजयवर्गीय कला भवन, जयपुर, 1953 ई० ।

रामचन्द्र शुक्ल
कला तथा आधुनिक प्रवृत्तियां, सूचना विभाग, लखनऊ, 1958 ई० ।
कला का दर्शन, कॉरोना आर्ट पब्लिशर्स, मेरठ, 1964 ई० ।
नवीन भारतीय चित्रकला, किताब महल, इलाहाबाद, 1884 ई० ।

राय आनन्द कृष्ण
अजन्ता के चित्रकूट, राजकमल प्रकाशन, देहली, 1959 ई० ।

राय कृष्ण दास
भारत की चित्रकला, नागरी, प्रचारणी सभा, वाराणसी, 1939 ई० ।
भारतीय मूर्तिकला, नागरी प्रचारणी सभा, काशी, 2019 संवत् ।

शैलेन्द्र दे
भारतीय चित्रकला पद्धति, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण 1940 ई० ।

शचीरानी गुटू
कला दर्शन, साहनी प्रकाशन, दिल्ली, 1953 ई० ।

सतीश चन्द्र काला
भारतीय चित्रकला, बैलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, 1936 ई० ।
सम्मेलन पत्रिका—कला विशेषांक, 1958 ई० ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

(अंग्रेजी)

Abdul Fazl 'Allami'

Ain-i-Akbari : tr. by H. Blochmann, Calcutta, 1873-74.

Acharekar, M. R.

Rupadarsini : The Indian Approach to Human Form, Rekha Publication, Bombay 1949.

Agrawal, V. S.

Gupta Art : U. P Historical Society, Lucknow, 1947.

The Romance of Himachal Painting : Roop Lekha xx No. 2 1948-49, pp. 83-93.

Anand, Mulk Raj

The Hindu View of Art . George Allen & Unwin, London, 1933

The Chamba Rumals : Western Railway Annual, Bombay 1952, and Marg Vol. No. 4.

Arther, Mildred

Patna Painting : Royal India Society, 2nd Ed, London, 1948.

Archer, W. G.

Garhwal Painting : Faber and Faber, London, 1954.

India and Modern Art : George Allen and Unwin, London 1959

Indian Paintings from Bikaner : The Listner, Sept. 29th, 1949.

Indian Painting in the Punjab Hills : Her Majesty's Stationary; Office, London, 1952.

Kangra Painting : Faber & Faber, London, 1952.

The Loves of Krishna in Indian Painting & Poetry : George Allen & Unwin, London, 1957.

Auboyer, Jeannine

Bagh Caves in the Gwalior State : Pub. by The India Society in Cooperation with the Deptt. of Archeology, Gwalior, 1927.

Binyon, Laurence

The Court Painters of the Grand Moghuls : Humphery Milfored, London. 1921.

Brown, Percy

Indian Painting : Y. M. C. A. Publication House, 5th Ed. Calcutta, 1947.

Indian Painting Under the Mughals : Clarendon Press, Oxford, 1924.

Coomaraswamy, A. K.

History of Indian & Indonesian Art : Edward Goldston, London, 1927.

Introduction to Indian Art : Theosophical Publishing House, Madras, 1923.

Catalogue of Indian Collections, Part V : Rajput Painting, Bostan Museum.

Catalogue of Indian Collections, Part VI : Moghual Painting, Bostan Museum.

Rajput Painting : Humphrey Milford, London, 1916.

Dey, B.

Jamini Roy, Dhoomimal Dharam Dass, New Delhi.

Dickinson, Eric

Kishangarh Painting : Lalit Kala Academy, Delhi.

Diamond Maurice, S.

Mughal Painting Under Akbar the Great : Bul. Metr, Mus. Art. XII no. 2, 1953, pp. 46-51.

Douglas Barret and Basil Gray

Treasures of Asi—Painting of India : The World Publication Company, Ohiao.

French J. C.

Art in Chamba : Art and Letters XXV, 1951, pp. 45-48.

Himalayan Art : Oxford University Press, London, 1931.

Kangra Frescoes, Art and Letters, xxii, 1948, pp. 57-59.

Jhon Leden Esk, M. B.

The Memories of Zahir Uddin Mohamad Babur Emperor of Hindustan.

Ganguli, O. C.

Indian Art and Heritage : Oxford Book and Stationary Co., Calcutta, 1957.

Goetz, Herman

Art of the World (I, India) : Holand Co., Germany, 1959.

Raja Iswari Sen of Mandi and the History of Kangra Paintings : Bul. Baroda Mus. II., 1944-46 pt. I, pp. 35-37.

Gray Basil

Deccani Paintings : The School of Bijapur, Bul Marg. I. xxiii, pp. 74-76.

Rajput Painting : Faber & Faber, London, 1938.

Griffiths, John

The Paintings in the Budhist Cave Temples of Ajanta : London 1896-97.

Haldar, A. K.

Art and Tradition

(The) Buddhist Cave of Bagh : Burlington Magazine, Oct. 1923.

Havell, E. B.

A Handbook of Indian Art : John Murray, London, 1920.

Indian Ministry of Information & Broadcasting

Indian Art through the Ages : 2nd ed , New Delhi, 1951.

Jahangir

Tuzuk-i-Jahangir or Memories of Jahangir : London 1909-14.

Khandelvala, Karl

Pahari Miniature Painting : New Book Comp. Bombay, 1958.

Sher Gill Amrita

The Art of Amrita Sher Gil : Kitabistan, Allahabad, 1943.

Kramrisch Stella

The Art of India Through the Ages : Phaidon Press, London, 2nd ed., 1955,

Painting at Badami : Journal of the Indian Society of Oriental Art, Calcutta, IV, pp. 57-61.

Martin, F. R.

(The) Miniature Painting & Painters of Persia, India & Turkey in 8the th to 18th cent. : Bernard Quaritch, London 1912.

Mehta, N. C.

Gujrati Painting in the 15th Century : India Society, London, 1931.

Studies in Indian Painting : Taraporevala, Bombay, 1926

Mookerjee, Ajit

Modern Art in India, Oxford Book & Stationary Co.

Moti Chandra

Mewar Painting . Lalit Kala Academy, New Delhi.

An Illustrated M. S. of Mahapurana in the Collection of Shri Digambar Naya Mandir, Delhi, pp. 68-80 Lalit Kala, No. 5 April 1959.

Mukandilal

Garhwal School of Painting. (1658-1858 A. D.) : Roop Lekha, xx, No. 1-2, xxi, No. 1 and 2.

Some Notes on Mola Ram Rupam, No. 8. Calcutta, Oct 1921)

Mukherji, Radha Kamal

(The) Culture and Art of India : George Allen & Unwin, London, 1959.

Prehistoric India.

Randhawa, M. S.

Kangra Valley Painting : Publication Division, Delhi, 1954.

Kangra Paintings of Bhagavata Purana ; National Museum of India, New Delhi, 1960.

Chamba Painting : Lalit Kala Accademy, New Delhi.

Dr. Rai Govind Chandra

Studies in the Develcpment of Ornaments and Jewellary in Proto-Historic India : Chowkhamba Sanskrit Series office, Varanasi—1, 1964.

Ravindra Nath Tagore

Ravindra Nath Tagore on Aesthetics, Edited by Prithwish Neogy, Orient Longmans, Calcutta, 1961.

Sivaramamurti, S.

Western Chalukya Paintings at Badami : Lalit Kala pp. 49-58, No. 5 April 1959.

Smith, Vincent A.

(A) History of Fine Arts in India and Ceylon : Cleardon Press, Oxford, 2nd ed. 1939.

Saraswati S. K.

A Survey of Indian sculpture : Firama K. L. Mukhopadhyay, Calcutta, 1964.

Vogei, J. Ph.

Portriat Painting in Kangra and Chamba : Art and Letters, x, 1947, pp. 200-115.

Antiquities of Chamba State, Part I : Govt. Printing Press India, Calcutta, 1911.

Wilkinson J. V. S.

Mughal Painting : Faber and Faber, London, 1948.

Zimer, H.

(The) Art of Indian Asia : Pantheon Books Inc., New York, 1955.

शब्दानुक्रमणी

अन्य उपयोगी प्रकाशन

कला: सिद्धान्त और परम्परा

लेखक : डा० सरन सक्सेना एवं डा० सुधा सरन

ललित कला के विद्यार्थियों के लिये एक उपयोगी रचना है। इस पुस्तक में कला की परिभाषा, अर्थ वर्गीकरण एवं कला, धर्म, समाज, नैतिकता तथा परम्परा के पारस्परिक सम्बन्धों को उचित व्याख्या की गई हैं। रसनिस्पत्ति, रस सामग्री, रसाभियक्ति, साधारणीकरण कला और सौन्दर्य, लोक कला आदि विषयों की भारतीय विचारकों के आधार पर पुस्तक में सरल ढंग से चर्चा की गई है। यह पुस्तक ललित कलाओं के दर्शन का अध्ययन करने हेतु भारतीय विश्वविद्यालयों के छात्रों के लिये परम लाभदायक सिद्ध होगी।

समीक्षक

डा० अविनाश ब. वर्मा

अध्यक्ष

चित्रकला विभाग

डी० ए० वी० कालेज, देहरादून।